साक्षात्कार

डॉ. विकास दवे
सम्पादक

ISSN : 2456-1924

साक्षात्कार

नवम्बर-दिसम्बर, 2020
अंक : 485-486 संयुक्तांक

सम्पादकीय एवं ग्राहकीय पत्र-व्यवहार : निदेशक/सम्पादक, साहित्य अकादमी, संस्कृति भवन, बाणगंगा, भोपाल-462003

फ़ोन : 0755 - 2554782 (कार्यालय)

साक्षात्कार की प्रकाशनार्थ रचनाओं के लिए
email : sakshatkarnew@gmail.com पर मेल करें।
web : http://mpsahityaacademy.com पर भी पढ़ सकते हैं।

वार्षिक सहयोग राशि

व्यक्तिगत ग्राहकों के लिए : ₹ 250

संस्थाओं के लिए : ₹ 300

आजीवन : ₹ 3,000

यह अंक : ₹ 50 (रजिस्टर्ड डाक खर्च अतिरिक्त)

समस्त बैंक ड्राफ्ट/मनीआर्डर '**निदेशक, साहित्य अकादमी, भोपाल**' के नाम स्वीकार्य होंगे।

आवरण : अमरजीत कुमार

व्यंग्य चित्र : देवेन्द्र शर्मा, इंदौर

आकल्पन : राकेश सिंह

मुद्रण : मध्यप्रदेश माध्यम, अरेरा हिल्स, भोपाल

'साक्षात्कार' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार अपने हैं। सम्पादक या साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन का उनके विचार के प्रति सहमत होना आवश्यक नहीं है।

साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश का मासिक प्रकाशन

अनुक्रमणिका

संपादकीय // 05

बातचीत

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल से डॉ. विकास दवे की बातचीत // 07

आलेख

परशुराम शुक्ल : बाल साहित्य और भारतीय जीवन मूल्य // 12

राजेन्द्र उपाध्याय : बच्चों में पठन-पाठन की अरुचि एक सार्वभौम संकट // 22

डॉ. मनीष काले : बच्चों में संस्कार-राष्ट्रीयता के रोपण का अनुष्ठान : देवपुत्र // 27

रमेश दवे : बाल विमर्श : बचपन पर संवाद // 33

कमल किशोर गोयनका : हिन्दी बाल साहित्य के शिखर व्यक्तित्व // 40

सुषमा यदुवंशी : बाल साहित्य में वैज्ञानिकता का समावेश // 42

विजयलक्ष्मी सिंह : दुनिया का अनोखा स्कूल 'हिम्मतशाला' // 44

कु. प्रीति जायसवाल : 21वीं सदी के हिंदी बाल काव्य में जल की महत्ता // 46

बद्री प्रसाद वर्मा 'अनजान' : बाल साहित्य और बाल पत्रिकाओं का इतिहास // 49

डॉ. फ़कीर चंद शुक्ला : बाल साहित्य की आवश्यकता तथा महत्त्व // 61

आनन्द सिंघनपुरी : बाल साहित्य के हस्ताक्षर वसंत // 66

भानु भारवि : बाल कथा में वन्यजीव // 70

सीमा मिस्त्री : बाल काव्य में हास्य रस // 74

डॉ. सोनाली निनामा : बालसाहित्य का पुरातन एवं आधुनिक स्वरूप // 79

बलदाऊ राम साहू : आज के बच्चे और बाल-साहित्य // 85

राजीव नामदेव 'राना लिधौरी' : बाल साहित्य का वर्तमान परिदृश्य // 88

ज्योति नाहर पाटीदार : बाल साहित्य में आत्मकथा लेखन // 92

अनिता बिरला : राष्ट्र निर्माण में बाल साहित्य की रचनात्मक भूमिका // 94

दिनेश प्रताप सिंह 'चित्रेश' : लोककथा बनाम बाल कहानी // 98

डॉ. दिनेश पाठक 'शशि' : दायित्व // 103

डॉ. दिनेश प्रसाद साहू : नयी सदी और बालसाहित्य-लेखन // 106

डॉ. जगदीश व्योम : हिन्दी बाल-साहित्य और निरंकार देव सेवक // 110

डॉ. लोकेन्द्र सिंह कोट : बच्चों को हारना सिखाना है, जीतना तो इनबिल्ट है // 114

माया बदेका : बाल साहित्य और हमारा दायित्व // 116

मीरा जैन : बालमन और भावी जीवन // 118

आचार्य नीरज शास्त्री : हिंदी भाषा और बाल साहित्य // 121

आइवर यूशिएल : बाल-विज्ञान लोकप्रियकरण : सहयोग अपेक्षित // 127

प्रो. उषा यादव : परशुराम शुक्ल : लीक से हटकर लेखन // 131
कर्नल प्रवीण त्रिपाठी : भारत में बाल साहित्य // 141
डॉ. प्रीति प्रवीण खरे : हिंदी बाल साहित्य में प्रयुक्त विविध शैलियाँ : एक अवलोकन // 144
राजकुमार जैन 'राजन' : वर्तमान परिवेश में बाल साहित्य की महत्ता // 156
मनोहर चमोली 'मनु' : भाग्य, किस्मत, कुण्डली बनाम तकनीक-विज्ञान, ज्ञान // 161
संतोष कुमार सिंह : पहेलियाँ बढ़ाती हैं बुद्धि की सामर्थ्य // 166
सविता प्रथमेश : बाल साहित्य और विज्ञान // 169
डॉ. शील कौशिक : हिन्दी बाल साहित्य में राष्ट्र भावना // 173
श्याम नारायण श्रीवास्तव : हिंदी बाल साहित्य में लोरी गीत और सिरोठिया जी // 176
डॉ. सुरेन्द्र विक्रम : बालसाहित्य के संदर्भ में // 183
तरुण कुमार दाधीच : प्रेरक बाल साहित्य की आवश्यकता // 192
डॉ. विजयानंद : हिंदी बाल पत्रकारिता // 193
प्रभा पारीक : बाल साहित्य और सामाजिक परिवेश // 197
सुमन बाजपेयी : क्रिएटिव राइटिंग-आकार देना होता है कल्पना व यथार्थ को // 200
डॉ. अर्जुन दास खत्री : बाल विकास : मनोविज्ञान एवं शिक्षा // 204
डॉ. आरती स्मित : बाल साहित्य और चित्र // 210
डॉ. कृष्णा कुमारी : बाल साहित्य की आवश्यकता, उपयोगिता और विशिष्टता // 216
संगीता सेठी : बाल साहित्य : नैतिकता और आनंद // 220
शिखर चंद जैन : फलों के इंद्रधनुषी टोकरे सा हो बाल साहित्य // 223
डॉ. लता अग्रवाल : नन्हें शिशुओं का उपहार हैं फ़िल्मी लोरियाँ // 226
डॉ. मोहम्मद अरशद खान : संचार माध्यम, बालक और बाल साहित्य // 232
डॉ. विमला भंडारी : बाल साहित्य के उन्नयन और संवर्धन में संस्थागत योगदान // 237
श्रीमती वंदना बघेल : सामाजिक चेतना में बाल पत्रिकाओं का योगदान // 245
डॉ. सुधा गुप्ता 'अमृता' : स्वातंत्र्योत्तर बालकविता में षड ऋतु वर्णन // 251
पवन चौहान : हिमाचल के बाल साहित्य की विकास यात्रा // 258
डॉ. रेखा मण्डलोई 'गंगा' : नैतिक मूल्य और बालक // 262
ओमप्रकाश क्षत्रिय 'प्रकाश' : बाल साहित्य का स्तर विभेदक विश्लेषण // 264
डॉ. प्रभा पन्त : सकारात्मक मानव संस्कारों की संवाहिका : बाल कहानियाँ // 269
अखिलेश श्रीवास्तव 'चमन' : हिन्दी बाल साहित्य : आवश्यकता बदलाव की // 274
शालिनी तायवाड़े : 21वीं सदी के बाल नाटकों में रंगमंचीय परिदृश्य // 279
डॉ. मंजरी शुक्ला : बाल साहित्य के पुरोधा // 283
नीलम राकेश : पहचानो बालमन की चुनौती को // 297
हरि जोशी : बच्चों की तुकबंदी भी सृजनात्मकता है // 300
विवेक रंजन श्रीवास्तव : वैज्ञानिक अभिरुचि के विकास हेतु बाल विज्ञान // 303

संपादकीय

मेरे एक विद्वान मित्र एक बार मुझसे यह चिंता व्यक्त कर रहे थे कि भारत जैसे संयुक्त परिवार परंपरा वाले देश में वृद्धाश्रमों की बढ़ती संख्या क्या हमारे लिए चिंता का विषय नहीं होनी चाहिए? तब मैंने उनसे आग्रह किया था कि जिस दिन भारतीय समाज 'बाल भवन', 'बाल संस्कार केंद्रों', 'बाल साहित्य शोध संस्थानों' को बनाने और नगर-नगर मोहल्ले-मोहल्ले में बच्चों की रचनात्मक गतिविधियाँ संचालित करने वाले केंद्रों के निर्माण में पैसा खर्च करने लगेगा उस दिन से वृद्धाश्रम बनाने की आवश्यकता क्रमश: समाप्त होती चली जाएगी।

भारत में बाल साहित्य की अत्यंत प्राचीन परंपरा संस्कार देने के लिए उपयोग में लाई जाती रही है। मुझे आज से ढाई दशक पहले जब यह ज्ञात हुआ कि संपूर्ण विश्व में बाल साहित्य पर शोध कार्य संपन्न कराने के लिए पृथक से विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई है अथवा बड़ी संख्या में शोध केंद्र संचालित किए जाते हैं उसी समय भारत में बाल साहित्य केंद्रित एक भी शोध केंद्र अथवा विश्वविद्यालय का नहीं होना आश्चर्य में डाल गया था। सौभाग्य से बाद में भारत के प्रथम सबसे बड़े बाल साहित्य शोध केंद्र का हिस्सा बनने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। इस समय संपूर्ण भारत में केवल गुजरात राज्य में चिल्ड्रन यूनिवर्सिटी की स्थापना की गई है किंतु इस प्रकार के शोध आधारित अनेक संस्थानों की भारत के प्रत्येक राज्य और उनकी राजधानियों में आवश्यकता है।

मध्यप्रदेश शासन ने इस दिशा में सोचते हुए 'बाल साहित्य सृजन पीठ' की स्थापना की है। वर्तमान संस्कृति मंत्री आदरणीया उषा ठाकुर जी से व्यक्तिगत चर्चाओं में जब मैंने बाल साहित्य की अकादमी की स्थापना की आवश्यकता के संबंध में विषय रखा तब से वे लगातार मध्य प्रदेश में 'बाल साहित्य अकादमी' की स्थापना की ओर चिंतन मनन कर रही हैं। संभवत थोड़े ही समय में इस प्रकार की बाल साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश में आकार लेती हमें दिखाई दे सकती है। बाल साहित्य को समर्पित साक्षात्कार का यह अंक आप सबके कर कमलों में सौंपते हुए अत्यधिक आनंद की अनुभूति कर रहा हूँ। पिछले माह के अंकों के प्रकाशन की योजना जब बन रही थी तब मुझे याद आया कि मैं देशभर की साहित्यिक पत्रिकाओं के संपादकों से सदैव आग्रह करता रहा हूँ कि बड़ों के लिए प्रकाशित होने वाली साहित्यिक पत्रिकाओं के भी वर्ष में कम से कम एक विशेषांक बच्चों को और बाल साहित्य को समर्पित होना चाहिए। संपादकों की यह असीम अनुकंपा रही कि भारत की अनेक प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिकाओं ने वर्ष में एक अंक नवंबर माह में बाल साहित्य को केंद्र में रखकर प्रकाशित करना प्रारंभ किया। चूँकि नवंबर माह में बाल दिवस होता है इसलिए इस माह में हम अपने देश की उस नई पौध की थोड़ी चिंता कर लें जो आने वाले समय में इस राष्ट्र के कर्णधार बनने वाले हैं। मेरे जीवन का अधिकांश समय बाल साहित्य तथा उसके शोध कार्य को संपन्न कराने में बीता है इसलिए भी यह विषय मेरे लिए अत्यंत रुचि का रहा। इस अंक के लिए पृथक से कोई पत्र व्यवहार लेखकों से नहीं करना पड़ा। आधुनिक नवीन माध्यमों का उपयोग करते हुए व्हाट्सएप, फेसबुक और ई-मेल द्वारा दी गई सूचना के आधार पर देश भर के बाल साहित्य से जुड़े रचनाकारों ने अंक हेतु अपने आलेख एवं शोध आलेख भेजे। चूँकि यह बड़ों की पत्रिका है इसलिए इसमें बाल साहित्य की रचनाएँ तो नहीं प्रकाशित कर पाएँगे किंतु बाल साहित्य पर समीक्षात्मक आलेखों का प्रकाशन कर के इस अंक को तैयार किया जावे यह तय किया। इस अंक में लेखकीय सहयोग देने वाले सभी बंधु भगिनी को हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

मेरे अनेक मित्रों के मन में यह प्रश्न आता होगा कि आखिर बाल साहित्य पर इतने अधिक विमर्श की आवश्यकता क्यों है? ऐसे मित्रों के यह संज्ञान में लाना चाहूँगा कि इन दिनों संपूर्ण विश्व में बच्चों को लेकर अत्यधिक चिंता और चिंतन प्रारंभ हुआ है। नई पीढ़ी को जीवन मूल्य, संस्कार और परंपराओं से जोड़ने के लिए पूरी दुनिया लालायित है। इस कार्य में केवल और केवल बाल साहित्य ही सहायक सिद्ध हो सकता है। इस समय सामाजिक परिदृश्य बहुत तेजी से बदल रहा है। संयुक्त परिवारों में बच्चों को जिस ढंग से हाथों हाथ लिया जाता था, वे सारे दृश्य अब विलुप्त प्राय हो गए हैं। दुर्भाग्य से परिवारों में चार से बच्चे तीन हुए, तीन बच्चे दो तक पहुँचे और धीरे-धीरे दो बच्चों की योजना को 'शेर का बच्चा एक ही अच्छा' कह कर 'सिंगल किड्स फैमिली' तक समाज की यात्रा संपन्न हो गई। अब तो पश्चिमी जगत से DINK (डिंक परिवार) जैसे विचार भारतीय समाज में पसर रहे हैं। डिंक अर्थात् 'डबल इनकम नो किड्स' की संस्कृति प्रचलन में आ रही है। लोग अपनी जिम्मेदारियों से भाग रहे हैं, ऐसे में बच्चों को संस्कार देने का, उन्हें अपनी संस्कृति सिखाने का काम कौन करेगा? घर में हमने हर काम के लिए ढेरों कमरे बना लिए लेकिन आज यह आवश्यक लग रहा है कि एक कमरा दादा-दादी का भी हो। हमारे घर के वरिष्ठ जन चलते-फिरते संग्रहालय, वाचनालय और अनुभवों का समृद्ध भंडार हैं। बच्चे उनसे सुनकर कथा, कहानी, गीतों से जो सीख ले लेंगे संभवत: वैसे जीवन मूल्य और वैसी सीख उन्हें दुनिया के किसी अच्छे से अच्छे ग्रंथ से प्राप्त होना कठिन होगी। बाल साहित्य मानव सृजन का साहित्य है ऐसे में बच्चों के लिए लिखना है तो खुद को भी बच्चा बनना पड़ेगा।

बाल मन बड़ा कोमल होता है। उनसे मिलते ही आपकी सारी समस्या अपने आप खत्म हो जाती है। इसलिए इस पीढ़ी को संस्कार देने के लिए सार्थक प्रयासों की आवश्यकता है। मेरा तो यह व्यक्तिगत मत है कि इस संवेदनशील साहित्य को लिखने वाले बाल साहित्यकारों के प्रशिक्षण पर भी जोर दिया जाना चाहिए। देश में आज जैसा माहौल है, बच्चा वह देखना नहीं चाहता, उसे सब एक साथ दिखाने की कोशिश नहीं की जाना चाहिए। आज का समय ऐसा हो चला है कि यहाँ शरीर छोटे और दिमाग बड़े हो रहे हैं। बच्चों को पौष्टिक भोजन की तरह पौष्टिक, मानसिक खुराक देना भी जरूरी है। इसलिए अच्छे बाल साहित्य का सृजन अनवरत होते रहना चाहिए। इस अंक की योजना बनाते समय मुझे भी यह कल्पना नहीं थी कि देश भर से इतनी बड़ी मात्रा में बाल साहित्य आधारित आलेख एवं शोध आलेख प्राप्त होंगे। सभी प्राप्त आलेखों का उपयोग तो नहीं हो सका किंतु श्रेष्ठ आलेखों को भी प्रकाशित करने का सोचने पर यह अंक बड़ा और बड़ा होता चला गया। यही कारण है कि इस अंक को नवंबर और दिसंबर माह का संयुक्त अंक बनाकर अधिक पृष्ठ संख्या के साथ प्रकाशित करने की योजना बनाई है। आशा है सभी विद्वत साहित्यकार गण इस अंक पर अपनी सम्मति मुझे प्रदान करने की कृपा करेंगे। मुझे यह आभास हो रहा है कि यह अंक निश्चित रूप से बाल साहित्य शोध के क्षेत्र में एक बड़ी उपलब्धि सिद्ध होगा। इस अंक को बाल साहित्य के क्षेत्र में शोध करने वाले शोधार्थी मानक ग्रंथ की तरह भविष्य में उपयोग करेंगे। पुन: आप सब के सहयोग हेतु धन्यवाद देते हुए यह अंक आपके हाथों में सौंप रहा हूँ। जिस लाड़-दुलार से आप बच्चों को स्नेह प्रदान करते हैं उसी भाव से इस अंक को भी स्नेह प्रदान करें।

आपका ही

डॉ. विकास दवे

संपादक

अपनी पत्रिका के शीर्षक के अनुरूप भारत भर के वरिष्ठ रचनाकारों से संवाद स्थापित करते हुए साक्षात्कार लेकर उनकी साहित्य यात्रा और रचना कर्म से अन्य रचनाकारों को परिचित करवाना यह इस स्तम्भ का मुख्य हेतु रहेगा। यूँ तो 'साक्षात्कार' पत्रिका अपने नाम के अनुरूप इस तरह के साक्षात्कारों का पहले भी प्रकाशन करती रही है किंतु इसमें एक प्रयोग प्रारंभ किया है। विगत दिनों भारतीय साहित्यिक पत्रकारिता के संदर्भ में एक पुस्तक में श्रद्धेय माखनलाल चतुर्वेदी जी और धर्मवीर भारती जी के संबंध में एक आलेख पढ़ते हुए यह ध्यान में आया कि कोई भी साहित्यकार पत्रिका का संपादक बनते ही अपने आप को एक अलग पाले में खड़ा कर लेता है और रचनाकारों को दूसरे पाले में खड़ा कर देता है। यदि संपादक और रचनाधर्मियों के बीच सीधा संवाद स्थापित करने की सुचारू व्यवस्था बन जाए तो स्वाभाविक रूप से वह साहित्यिक पत्रिका साहित्यकार पाठकों के लिए भी अत्यंत आत्मीय हो जाती है। बस इसी बात को ध्यान में रखकर यह सोचा है कि पत्रिका में संपादकीय का आकार भले थोड़ा छोटा रहे किंतु मैं स्वयं चर्चा करके वरिष्ठ रचनाकारों के साक्षात्कार लूँ और उन्हें आप सबके समक्ष रखूँ। इस बहाने मेरा तो प्रशिक्षण होगा ही आप सब भी इन रचनाकारों के जीवनानुभवों से बहुत कुछ प्राप्त कर सकेंगे। इसी श्रृंखला में प्रस्तुत है यह साक्षात्कार।-सम्पादक

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल से डॉ. विकास दवे की बातचीत

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल पाँच दशक से भी अधिक समय से साहित्य लेखन कर रहे हैं और अभी भी सक्रिय हैं। साहित्य की विविध विधाओं में उनकी 100 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। उनकी रचनावली 11 खंडों में प्रकाशित हुई है। 5000 पृष्ठों की इस रचनावली में उनका बालसाहित्य भी सम्मिलित है। दूरभाष के माध्यम से कई बार उनसे लंबी चर्चा हुई। स्वाभाविक था कि बालसाहित्य को लेकर भी उनसे बातचीत हुई। बालसाहित्य पर हुई चर्चा के कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत हैं-

डॉ. विकास दवे : यह युग कंप्यूटर का है। कभी-कभी लगता है कि बच्चे पुस्तकों से अधिक कंप्यूटर की ओर आकर्षित हो रहे हैं। इसे आप कितना उचित मानते हैं?

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल : कंप्यूटर का प्रयोग अब जीवन का हिस्सा बन चुका है। कंप्यूटर से बालकों को अलग-थलग नहीं किया जा सकता, फिर भी कंप्यूटर पुस्तकों का स्थान नहीं ले सकता। मानवीय संवेदना जगाने के लिए पुस्तक से अच्छा विकल्प कुछ नहीं हो सकता। हाँ पुस्तकों को, विशेष रूप से बालकों की पुस्तकों को, इतने आकर्षक रूप में छापा जाए कि बच्चे उन्हें अपने खिलौनों से भी अधिक प्यार कर सकें।

डॉ. विकास दवे : आपकी दृष्टि में आदर्श बालसाहित्य कैसा होना चाहिए? उसकी गुणवत्ता का क्या मापदंड होना चाहिए?

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल : साहित्य हमारी भावनाओं को समृद्ध करता है, हमारी अनुभूतियों को बल देता है। अच्छा बालसाहित्य वही है, जो बच्चों को संवेदनशील बनाए। अपने आसपास की

प्रकृति, पर्यावरण, पेड़-पौधों, पक्षियों और अन्य प्राणियों के प्रति संवेदना जाग्रत करने वाला साहित्य ही सच्चा और अच्छा साहित्य हो सकता है। हिंसा को उकसाने वाला साहित्य भी आज भरपूर लिखा जा रहा है। बच्चों को ऐसे साहित्य से दूर ही रखा जाए, यह आवश्यक है।

डॉ. विकास दवे : बालसाहित्यकार के सामने आज कई प्रकार की चुनौतियाँ हैं। एक अच्छे बाल साहित्यकार में किन गुणों की अपेक्षा आप समझते हैं?

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल : यह तो सभी स्वीकार करते हैं कि बालसाहित्य की रचना सरल कार्य नहीं है। हमें बच्चों की रुचि, उनकी इच्छा-अनिच्छा को जानना होगा, बच्चों के लिए साहित्य बच्चा बनकर ही लिखा जा सकता है। कविता हो या कहानी अथवा नाटक बच्चों के सामने उसका दृश्य उपस्थित कर देना जरूरी है, तभी श्रेष्ठ बालसाहित्य की रचना हो सकती है।

डॉ. विकास दवे : प्राय: एक शिकायत की जाती है कि हिंदी में अच्छे बालसाहित्य का अभाव है, आप इस विषय में क्या सोचते हैं?

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल : यह धारणा बड़ी भ्रामक है। कितने ही सिद्ध-प्रसिद्ध साहित्यकारों ने बालसाहित्य की रचना की है। वे अब ऐसा नहीं सोचते कि बालसाहित्य की रचना से उनका स्तर कम हो जाएगा। कितने ही संस्थान और प्रकाशक आकर्षक और विविधरंगी बालसाहित्य प्रकाशित कर रहे हैं। मैं यह कह सकता हूँ कि बालसाहित्य का कायाकल्प हुआ है। पुस्तक मेलों में बच्चों को पुस्तकें खरीदते और पढ़ते देखकर अपार सुख मिलता है। इतना अवश्य है कि ऐसी रंग-बिरंगी पुस्तकों के अधिक मूल्य के कारण अभिभावक अपनी जेब टटोलने लगते हैं।

डॉ. विकास दवे : क्या बालकों के लिए लिखा गया साहित्य उपदेशात्मक होना चाहिए?

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल : देखिए बालसाहित्य की पहली शर्त है मनोरंजन। मैं यह मानता हूँ कि बालसाहित्य उद्देश्यपरक तो हो, लेकिन उसमें उपदेश थोपा हुआ या आरोपित नहीं होना चाहिए। घटना या परिस्थिति से प्राप्त ज्ञान ही उसके श्रेष्ठ होने का प्रमाण हो सकता है।

डॉ. विकास दवे : आपने शोध के क्षेत्र में भी बड़ा काम किया है। क्या आप मानते हैं कि शोध और आलोचना की दृष्टि से बालसाहित्य का क्षेत्र पिछड़ा हुआ है?

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल : पिछले दो दशकों में बालसाहित्य पर शोध का दायरा बहुत विस्तृत हुआ है। कितने ही बाल साहित्यकारों के साहित्य, बालमनोविज्ञान और बालसाहित्य की प्रवृत्तियों पर शोध की ओर छात्रों का रुझान बढ़ा है।

मुझे यह बताते हुए प्रसन्नता हो रही है कि अब तक बालसाहित्य पर 200 से अधिक शोधछात्रों को शोध-उपाधि प्राप्त हो चुकी है और 70 से अधिक आलोचना-पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं।

डॉ. विकास दवे : आपने बच्चों के लिए 60 से अधिक लघु नाटक लिखे हैं। इसी के साथ प्रेमचंद जी की 12 कहानियों का नाट्य रूपांतर भी किया है। यह नाटक मनोरंजक भी हैं और बच्चों को कर्तव्य-कर्म की शिक्षा भी देते हैं। अनेक नाटकों में व्यंग्य और हास्य का पुट भी है। प्राय: कहा जाता है कि बालनाटकों के लिए मंच ही नहीं है तो इनके लिखने का उद्देश्य क्या है?

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल : बालनाटकों का कोई व्यवस्थित मंच नहीं है यह बात तो सत्य है,

किंतु स्कूलों में प्रतिवर्ष सांस्कृतिक कार्यक्रम होते हैं। ऐसे अवसरों पर अनेक नाटक भी अभिनीत किए जाते हैं और तब बच्चों की भाषा में लिखे गए सरल नाटकों की खोज होती है। ये नाटक विशेष रूप से स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों को ध्यान में रखकर लिखे गए हैं। ये सरल भी हैं, शिक्षाप्रद भी और बालमनोविज्ञान के अनुकूल भी। इनमें से अनेक नाटक कुछ अन्य संस्थाओं ने भी मंचित किए हैं। हिंदी में बालनाटकों के अभाव की पूर्ति में ये नाटक अपनी भूमिका निभा सकें, यही अपेक्षा इनके लेखन के पीछे रही है।

डॉ. विकास दवे : आपने गीत-ग़ज़ल, नाटक, एकांकी, जीवनी, कहानियाँ, व्यंग्य एवं बाल साहित्य सभी विधाओं में कार्य किया है। साहित्य की इन सभी विधाओं में आपने किस प्रकार से कार्य किया?

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल : लगातार अध्ययन करते रहने ने मुझे एक शिक्षक बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। मुझे बाल्यावस्था से पुस्तकों में खोए रहने का शौक था। खेलने की बजाय अपने समय का उपयोग अध्ययन करने में करता था। मैंने अपने जीवन में हर किस्म की किताबों का अध्ययन किया। प्रेमचंद की पुस्तकें पढ़ीं तो गुलशन नंदा के उपन्यास भी पढ़े। आचार्य चतुरसेन शास्त्री का साहित्य पढ़ा तो गुरुदत्त का साहित्य भी। जैनेंद्र की पुस्तकें पढ़ीं और कर्नल रंजीत के जासूसी उपन्यास भी। उन दिनों हर दिन एक उपन्यास पढ़े बिना चैन नहीं मिलता था। ग्रीष्म ऋतु और छुट्टियों के दिन उपन्यास को सिरहाने रखना और सुबह दिन निकलते ही उसका अध्ययन शुरू कर देने से मेरी उन दिनों की दिनचर्या आरंभ होती थी। इन्हीं सब ख्यात साहित्यकारों का साहित्य पढ़कर मेरे अंदर भी साहित्य लेखन के बीच जमने लगे अपने अध्ययन के लिए जब मैं मुरादाबाद आया तो साहित्यिक गतिविधियाँ भी बढ़ती गईं। प्रारंभ में तो केवल कविता लेखन आरंभ हुआ। बाद में व्यंग्य लिखे। बिजनौर आने के बाद जनाब मिश्र खानकाही को अपना साहित्य गुरु बनाया और ग़ज़ल के साथ अन्य विधाओं में लेखन आरंभ हुआ।

डॉ. विकास दवे : आपने बालसाहित्य काफी लिखा है। इसके पीछे बच्चों के प्रति प्रेम है या अन्य कोई कारण है?

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल : बच्चे देश की भावी पीढ़ी हैं। यदि बच्चों में संस्कार, नैतिक मूल्य विकसित हों तो इससे समाज एवं देश को लाभ मिलता है। मैं शिक्षक रहा हूँ। मैंने अनेक विद्यार्थियों को पढ़ाया है। बच्चों के मनोविज्ञान को मैंने समझा है, इसलिए मैंने एक संकल्प लिया बाल-शिक्षण की एक अच्छी संस्था की स्थापना की जानी चाहिए। नगर के सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय महानुभावों को अपना मंतव्य बताया। सब ने सराहा, परिणाम था जुलाई 1964 में संभल में बाल विद्या मंदिर की स्थापना हुई। निर्मल सोच, कठिन परिश्रम, सच्ची लगन और दिव्य शक्ति से आस्था के साथ किए गए कार्य व्यर्थ जा ही नहीं सकते। 1964 में बनाया विद्यालय आज भी पूरी निष्ठा के साथ चल रहा है।

डॉ. विकास दवे : आपने बाल मनोविज्ञान को अपने साहित्य में बड़े ही सुंदर तरीके से प्रस्तुत किया है। इसकी कोई खास वजह है?

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल : मेरे मन में प्रश्न उठता रहा कि कोई साहित्यकार क्यों एक विधा में

कार्य करते हुए संतुष्ट नहीं होता। इस प्रवृत्ति को यह कहकर नहीं टाला जा सकता कि प्रत्येक विधा में ख्याति अर्जित करने के लिए कुछ साहित्यकार यह मार्ग अपनाते हैं। सोचता हूँ तो उत्तर आता है कि साहित्य सृजन वास्तव में रचनाकार की अभिव्यक्ति का माध्यम होता है। अपने जीवन के व्यापक अनुभवों को किसी एक विधा के माध्यम से व्यक्त करना साधारणतया संभव नहीं होता। कुछ अनुभव कहानी में प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किए जा सकते हैं कुछ नाटक में, कुछ कविताओं में तो कुछ ललित निबंधों में। कविताओं में भी कुछ गीतों में तो कुछ ग़ज़लों में या कुछ दोहों में सब अनुभव पृथक-पृथक विधाओं की माँग करते हैं। संभवत यही कारण था कि मैंने समय-समय पर साहित्य की विविध विधाओं में स्वयं को व्यक्त करने का प्रयास किया। इसी क्रम में मैंने बाल मनोविज्ञान को समझा और बालसाहित्य सृजन किया।

डॉ. विकास दवे : आपने कहानियों, नाटकों आदि में बाल साहित्य का सृजन किया। ऐसा क्यों?

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल : मैं बाल सुलभ मन की जिज्ञासा एवं मनोभावों को समझने का प्रयास करता रहा हूँ। इनको व्यक्त करने के लिए मैंने कहानी को माध्यम बनाया। हिंदी साहित्य में बाल नाटकों का अभाव रहा है, शायद इसी कारण मैंने बाल नाटकों की रचना की है।

डॉ. विकास दवे : आप अपनी सृजनात्मकता का श्रेय किसे देना चाहेंगे?

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल : कोई भी लेखक या साहित्यकार स्वयं कुछ नहीं होता। वह कहीं न कहीं से प्रेरणा ग्रहण करता है। चाहे वह परिवार हो, समाज हो, देश हो या फिर पल-प्रतिपल घटती घटनाएँ। मैं एक शिक्षक रहा हूँ। पढ़ाने के दौरान कई ऐसी चीजें मेरे सामने आईं, जिनसे मुझे प्रेरणा मिली। कई विद्यार्थियों ने मुझे प्रेरणा दी। सृजनात्मकता का श्रेय किसी एक को नहीं दिया जा सकता। इसकी एक लंबी सूची है, किंतु इतना जरूर है कि वे सभी जो मेरे साथ रहे, मेरे प्रेरणास्रोत रहे और विशेषतया पिता का अनुशासन एवं परिवार का सहयोग इस श्रेय का हकदार है।

डॉ. विकास दवे : जहाँ एक ओर विज्ञान के नए प्रयोग हो रहे हैं, वहीं आप बाल मनोविज्ञान एवं बालमन पर केंद्रित साहित्य का सृजन कर रहे हैं, कैसे?

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल : विज्ञान के चाहे जितने प्रयोग हों पर व्यक्ति का व्यक्तित्व और उसके मनोभाव अलग-अलग भूमिका निभाते हैं। मैंने परिवार में पितृ छाया में अनुशासित जीवन जिया, पिता को मेहनत और संघर्ष करते देखा। पिता से डाँट और पिटाई भी खाई। मेरे अंदर का बच्चा अभी भी जीवित है। मैंने इसीलिए अपने बचपन के मनोभावों को लेकर बाल साहित्य लिखा, बाल मन को समझा है। विज्ञान भी तो हमें प्रगति का मार्ग दिखाता है।

डॉ. विकास दवे : आपकी कहानियों के धागे जीवन की घटनाओं से जुड़े हुए हैं। इसके लिए आपको व्यक्तिगत प्रेरणा कहाँ से मिली?

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल : बी.टी. की परीक्षा उत्तीर्ण करते ही बचपन के स्कूल की टाट पट्टी याद आई, जिन्हें हर बच्चा अपने बैठने के लिए घर से लेकर आता था। लकड़ी की तख्ती, कलम और बुदक्का, जिसमें खड़िया का घोल तैयार करते थे। पहाड़े याद करने के लिए रटंत विद्या। जरा सी चूक हुई कि हाथ आगे करो और कनेर की संटी से सटाक, या कान पकड़कर मुर्गा। इन छोटी-छोटी बातों से

समाज में घटित हो रही घटनाओं से भी कहानियों की प्रेरणा मिलती रही।

डॉ. विकास दवे : आपने अपनी कहानियों में मानव सभ्यता एवं इतिहास को बड़ी मात्रा में उकेरा है। इसके पीछे क्या मुख्य कारण है?

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल : बच्चे इतिहास से बहुत दूर हैं। मैंने अपनी कहानियों में इतिहास को इसलिए प्रस्तुत किया कि बच्चे इतिहास से परिचित हो सकें। बहुआयामी साहित्य में देश काल का चित्रण आन्तरिक तथा बाह्य दोनों रूपों में किया है। बाह्य वातावरण में रहन-सहन, वेशभूषा, खानपान, रीति-रिवाज, मान्यताएँ, परंपराएँ तथा राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियों आदि का चित्रण किया है। आन्तरिक वातावरण की सृष्टि के अंतर्गत मानवीय संवेदना, उनसे संबंधित विविध विषयों का चित्रण करने का प्रयास किया है।

डॉ. विकास दवे : आपने अपनी कहानियों में पाषाण युग से धातु युग तक का सफर तय किया है इसके पीछे क्या इतिहास में आपकी रुचि है?

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल : साहित्य समाज का प्रतिबिंब है। जब-जब समाज में परिवर्तन होता है, तब-तब साहित्य में भी परिवर्तन होता है। मैंने साहित्य में नई दिशाओं की तरफ कदम बढ़ाया। प्राय: बच्चे इतिहास में रुचि नहीं लेते इसी कारण बच्चों को समझाने के लिए उन्हें कहानी के रूप में उसे प्रस्तुत किया।

डॉ. विकास दवे : आपने बालकों के लिए प्रेरणाप्रद साहित्य का सृजन किया है। क्या परिवार में या समाज में कोई बालक आपकी प्रेरणा बना है?

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल : मैं भी तो कभी बालक था। मैंने अपने से ही सीखा है। हालाँकि परिवार में बालक हैं। उनसे भी आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में बहुत कुछ सीखा है। मैंने अपने बचपन में कई रंग देखे हैं। साहित्यकार बनने से पहले मैं भी एक विद्यार्थी था, उससे पहले एक बच्चा भी था। मैंने अपनी पारिवारिक परिस्थितियों को आत्मसात किया। जो कुछ सीखा, अनुभव किया, उसी को अपने साहित्य में उकेरा।

डॉ. विकास दवे : उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ से आपको साहित्य भूषण तथा हरियाणा साहित्य अकादमी से आजीवन साहित्य साधना सम्मान प्राप्त हुआ। आपको कैसा महसूस हुआ?

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल : जब किसी साहित्यकार की रचनाओं को पाठक पूरे चाव से पढ़ते हैं तो सृजन की संतुष्टि प्राप्त होती है और जब कोई पुरस्कार मिले तो सोने पर सुहागा। नि:संदेह बहुत अच्छा महसूस हुआ लेकिन सबसे सच्चा पुरस्कार तो पाठकों की प्रशंसा है। यदि वह मिल जाए तो सारे पुरस्कार सार्थक हो जाते हैं।

डॉ. विकास दवे : वर्तमान में जो साहित्य सृजित हो रहा है उससे आप संतुष्ट हैं?

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल : आजकल बहुत अच्छा लिखा जा रहा है। नई पीढ़ी बहुत अच्छा साहित्य सृजन कर रही है। साहित्य सृजन भी वक्त एवं परिस्थितियों के फलस्वरूप बदलता रहता है। कुछ चीजें गले नहीं उतरतीं परंतु बाकी सब ठीक है।

परशुराम शुक्ल

बाल साहित्य और भारतीय जीवन मूल्य

अपरिग्रह, अस्तेय, अस्मिता, अहिंसा, आध्यात्मिकता, आस्था, ईमानदारी, उत्तरदायित्व, कर्मठता, कार्यक्षमता, क्षमाशीलता, चरित्र, चिन्तनशीलता, जिज्ञासा, दया, करुणा, दूरदर्शिता, देशभक्ति, नम्रता, निर्भयता, निर्मलता, निश्छलता, निष्ठा, नि:स्वार्थता, नैतिकता, परिश्रम, परोपकार, प्रवीणता, प्रसन्नता, प्रायश्चित, प्रियभाषिता, मौलिकता, लोक-कल्याण, लोकप्रियता, विनम्रता, शालीनता, शुचिता, संवेदना, संस्कृति, संस्कार, सच्चरित्रता, सत्यनिष्ठा, सदाचार, सद्भावना, समदर्शिता, सरलता, सहजता, सहानुभूति, सहृदयता, सामाजिकता, सृजनात्मकता, सौन्दर्य-बोध, सौहार्द आदि कुछ महत्त्वपूर्ण जीवन-मूल्य हैं। यूँ तो सभी जीवन-मूल्य महत्त्वपूर्ण होते हैं, किन्तु इनकी संख्या इतनी अधिक है कि इन्हें एक अध्याय में समेटना कठिन ही नहीं असम्भव है। केवल धर्मपाल मैनी सम्पादित ग्रंथ, मानवमूल्य-परक शब्दावली का विश्वकोष में सात सौ पचपन मूल्यों की बात की गई है।

यहाँ पर कुछ जीवन-मूल्यों का परिचय संक्षेप में दिया जा रहा है-

परोपकार-परोपकार दो शब्दों से मिलकर बना है-पर और उपकार। अर्थात् दूसरों का तन-मन-धन तीनों से उपकार या कल्याण करना। वास्तव में परोपकार में नि:स्वार्थ सेवा भाव की भावना निहित है। किसी को दान देना मेरी दृष्टि में परोपकार नहीं है, किन्तु किसी गरीब बच्चे को पुस्तकें देना, उसकी स्कूल फीस देना, किसी भूखे व्यक्ति को भोजन कराना, अपना आवश्यक कार्य छोड़कर सड़क पर घायल पड़े व्यक्ति को अस्पताल पहुँचाना, एक शिक्षक द्वारा किसी छात्र को घर बुलाकर अथवा उसके घर जाकर नि:शुल्क पढ़ाना, एक डॉक्टर द्वारा किसी गरीब रोगी की चिकित्सा करना और उसे अपने पास से दवा देना अथवा किसी अन्य ढंग से उसके लिए दवाओं की व्यवस्था करना, गरीबों को सर्दियों में कम्बल अथवा रजाइयाँ देना आदि परोपकार के उदाहरण हैं। किसी कवि ने कहा है-

''दान दीन को दीजिए, मिटे दरिद की पीर।
औषध ताको दीजिए, जाके रोग शरीर।।''

दान और परोपकार दोनों जीवन मूल्य हैं किन्तु दोनों में अन्तर है। दान में स्वार्थ की भावना होती है। उदाहरण के लिए मंदिर की दान पेटी में रुपया-पैसा, सोना-चाँदी आदि डालना, धन देकर मंदिर में दानदाता के रूप में पत्थर लगवाना, विशिष्ट अवसरों पर सम्पन्न पंडितों को भोजन कराना आदि दान की श्रेणी में आते हैं। इनके पीछे दानदाता का उद्देश्य पुण्य की इच्छा अथवा यश की इच्छा होती है। अर्थात्

स्वार्थ होता है, जबकि परोपकार नि:स्वार्थ किया जाता है। इसी प्रकार नेत्रदान, अंगदान, रक्तदान, देहदान आदि परोपकार के अच्छे उदाहरण हैं।

महात्मा गाँधी हमेशा दो कपड़े पहनते थे। एक कपड़ा ऊँची धोती की तरह और एक कपड़ा शॉल आदि के समान शरीर का ऊपर का भाग ढँकने के लिए। एक बार उन्होंने एक स्त्री को नदी में निर्वस्त्र स्नान करते देखा। स्त्री के पास एक ही कपड़ा था, जो उसने नदी के किनारे एक सूखे स्थान पर रख दिया था।

गाँधी जी का हृदय द्रवित हो गया। वह करुणा से भर उठे। उन्होंने तुरन्त अपना ओढ़ने वाला कपड़ा नदी में इस प्रकार बहाया कि वह बहता हुआ निर्वस्त्र स्नान करने वाली स्त्री के पास पहुँच गया, जिसे उसने झपट कर पकड़ा और अपने शरीर पर लपेट लिया। यह भी परोपकार का उदाहरण है।

यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि परोपकार किसी पर तरस खाकर नहीं किया जाता है, बल्कि आत्मा की आवाज पर अपना कर्तव्य समझ कर किया जाता है।

कुछ विद्वानों ने दान, दया, करुणा, कर्तव्यनिष्ठा, त्याग आदि को परोपकार के समानान्तर माना है। ये सभी भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं, समाज के लिए उपयोगी और हितकारी हैं तथा जीवन-मूल्य हैं, किन्तु ये परोपकार से भिन्न हैं। इनमें आपस में भी पर्याप्त भिन्नता होती है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि दूसरों की नि:स्वार्थ सेवा भावना को कर्तव्य समझ कर जब तन-मन-धन से कोई कार्य किया जाता है तो इसे परोपकार कहते हैं। इसके मूल में दूसरों का हित अर्थात् परहित की भावना होती है।

मानवता-हम सब मानव हैं और मानव का एक ही धर्म होता है- मानवता। मानवता से बड़ा विश्व में कोई धर्म नहीं होता। मानवता शब्द आदमीयत, इन्सानियत और मनुष्यत्व अथवा मनुष्यता का समानार्थी है। अत्यन्त सरल शब्दों में मानव के मानवीय गुणों को मानवता कहते हैं।

यूँ तो सभी जीवन-मूल्य मानव, परिवार, समाज, देश और विश्व के लिए हितकर एवं कल्याणकारी होते हैं, किन्तु मानवता सर्वश्रेष्ठ जीवन-मूल्य है। मानवता अपने आप में सभी जीवन-मूल्यों को समेटे हुए है। अर्थात् सभी जीवन-मूल्य मानवता में समाहित हैं। सभी जीवन-मूल्य इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। मानवता की सर्वोच्चता को देखते हुए ही जीवन-मूल्यों को मानव-मूल्य भी कहा जाता है।

मानव अपने विकासशील मस्तिष्क के कारण धरती का सर्वश्रेष्ठ प्राणी बन गया है। सम्भवत: इसीलिए मानव की रक्षा पशुधर्म नहीं है, किन्तु पशुओं की रक्षा करना मानव धर्म है अर्थात् मानवता है।

मानवता के महत्त्व को देखते हुए ही विश्व के लगभग सभी बालसाहित्यकारों ने मानवता अर्थात् मानव-धर्म पर रचनाओं का सृजन करके अपने मानव-धर्म का परिचय दिया है-

''मानवता का पालन करके, जीवन सफल बनाओ।
प्रेम करो नित बच्चों से तुम, इनको खूब पढ़ाओ।
अपने साथ दूसरों के भी, बच्चों को अपनाओ।
बच्चे ईश्वर का स्वरूप हैं, यह समझो, समझाओ।
मानवता का पालन करके, जीवन सफल बनाओ।। (सूरज पाना है, पृष्ठ-31, 32)

मानवता अर्थात् मानव धर्म पर यदि केवल कविताओं के उदाहरण दिये जाएँ तो एक पूरी पुस्तक

तैयार हो जाएगी। वास्तव में 'मानवता' पर सैकड़ों ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं।

मानवता एक अर्जित जीवन मूल्य है। यह जन्मजात नहीं होता है। इसे व्यक्ति द्वारा अपने परिवार और समाज की संस्कृति, परिवार और समाज के लोगों के व्यवहारों का अनुकरण, आत्मचिन्तन, स्वाध्याय, देशाटन आदि के द्वारा अर्जित किया जाता है।

मानव में जन्म के समय पशुओं वाली विशेषताएँ होती हैं। वह जब और जहाँ इच्छा होती है, मल-मूत्र विसर्जित करता है, भूख लगने पर रोता है, पेट भर जाने पर आराम करता है अथवा सोता है। उसके न सोने का समय होता है, न सोकर उठने का समय होता है, न दूध पीने का समय होता है और न हँसने-रोने का।

धीरे-धीरे नवजात बच्चे का समाजीकरण होता है। अर्थात् वह समाज में रहने योग्य और सामाजिक कार्यों में भाग लेने योग्य बनता है। समाजीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो जीवन भर चलती है। अर्थात् मानव जीवन भर सीखता और समझता है।

मानवता एक ऐसा जीवन मूल्य है जो किसी भी आयु में व्यक्ति में जाग्रत हो सकता है। कभी-कभी व्यक्ति में किसी भी घटना को देखकर, किसी का प्रवचन सुनकर, मानव-मूल्यों से युक्त किसी भी आदमी के सम्पर्क में आने से अथवा इसी प्रकार के किसी अन्य कारण से जाग्रत हो सकता है।

इसके विपरीत स्थिति भी हो सकती है अर्थात् मानवीय गुणों से युक्त एक व्यक्ति के जीवन में किसी घटना के घटित होने पर, किसी दुष्ट प्रवृत्ति के व्यक्ति के सम्पर्क में आने से अथवा इसी प्रकार के किसी अन्य कारण से परिवर्तन हो सकता है और वह मानवीय गुणों को छोड़कर पाशविक गुण अपना सकता है। कहते हैं कि महर्षि वाल्मीकि डाकू थे किन्तु नारद जी का उपदेश सुनकर महान रामभक्त बन गए और उन्होंने 'रामायण' जैसे महाकाव्य की रचना की।

आत्मसंयम मनुष्यत्व को प्राप्त करने का सर्वाधिक सफल प्रयोग है। आत्मसंयम, सत्य, अहिंसा, मानवता, परोपकार, देशप्रेम, प्रियवंदिता, बलिदान आदि सभी जीवन-मूल्य इस प्रकार के होते हैं कि इनका पूर्णरूप से पालन नहीं किया जा सकता, किन्तु पालन करने का अधिकतम प्रयास किया जा सकता है। इस दृष्टि से मानवता सहित सभी मूल्यों के पालन करने वालों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. वे लोग जीवन-मूल्यों की उपेक्षा करते हैं अर्थात् इनका पालन नहीं करते, बल्कि जीवन-मूल्य विरोधी व्यवहार करते हैं। चोर, घूसखोर, ठग आदि अपराधी प्रवृत्ति के लोग इसी श्रेणी में आते हैं। दूसरे भाग में वे लोग आते हैं जो जीवन-मूल्यों के प्रति श्रद्धा रखते हैं एवं इनके पालन करने का प्रयास करते हैं। किन्तु परिस्थितियों अथवा ऐसे ही अन्य कारणों से जीवन-मूल्यों का पूरी तरह पालन नहीं कर पाते हैं। तीसरी श्रेणी अथवा भाग में वे लोग आते हैं, जो संतों, महात्माओं, योगियों, महात्मा गाँधी जैसे महापुरुषों के समान जीवन-मूल्यों का पालन करने का अधिकतम प्रयास करते हैं तथा इसमें काफी सीमा तक सफल भी होते हैं। किन्तु ये भी जीवन-मूल्यों का शत-प्रतिशत पालन नहीं कर पाते हैं। वास्तव में कोई भी व्यक्ति अथवा कृति कभी पूर्ण नहीं होती है। मनुष्यत्व जैसे जीवन-मूल्य इसे पूर्णता की ओर ले जाने का प्रयास करते हैं। सम्पूर्ण विश्व को सुख-शान्ति प्रदान करने का यह एक मात्र साधन है-

मनुष्यत्व की श्रेष्ठ भावना, सबके मन मंदिर में आये।
करुणानिधि यदि ऐसा हो तो, ये जग खुशियों से भर जाये।

मानव-धर्म और मानवता पर केन्द्रित एक कविता-

''देव जहाँ विचरण करते हों धर मानव का वेश।

प्रभु! हो ऐसा भारत देश, प्रभु! हो ऐसा भारत देश।। (तिरंगा, पृष्ठ-74, 75)

संस्कार-भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख तत्व संस्कार-विधान का परिपालन है। यह एक शाश्वत मानव मूल्य है। संस्कार का हमारे व्यक्तिगत जीवन के साथ ही पारिवारिक जीवन एवं सामाजिक जीवन में विशेष महत्त्व है। संस्कार (सम+कृ+छत्र) का मुख्य अर्थ-शुद्धि अथवा परिष्कार है। इसके अन्तर्गत उन अनुष्ठानों अथवा कृत्यों को सम्मिलित किया गया है, जो जन्म से लेकर मृत्यु तक द्विज जातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) के लिए आवश्यक हैं। भारतीय संस्कृति की यह मान्यता है कि ये अनुष्ठान यथासंभव प्राकृत वासनाओं एवं दुर्गुणों को दूर करके शरीर, वाणी, मन एवं बुद्धि का परिष्कार करते हैं।

संस्कार एक व्यापक शब्द है। इसका उपयोग मनुस्मृति, कौटिल्य अर्थशास्त्र, पंचतंत्र, चाणक्य नीति, भगवत् गीता, महाभारत, मीमांसा सूत्र, रामायण, रघुवंश, योगसूत्र सहित संस्कृत साहित्य के अधिकांश ग्रन्थों में किया गया है एवं भिन्न-भिन्न अर्थों में किया गया है। कहीं इसका प्रयोग सुधारने, सजाने, व्यवस्थित करने, सफाई करने के लिए किया गया है, तो कहीं शिक्षा एवं उपदेश के लिए किया गया है। कहीं-कहीं संस्कार शब्द बड़े ही सीमित अर्थ में आया है और केवल अंत्येष्टि क्रिया अथवा पूर्वजन्म की वासनाओं को पुनर्जीवित करने के गुण (वैशेषिकों द्वारा माने गये चौबीस गुणों में से एक) को संस्कार कहा गया है। संस्कार शब्द का भले ही अनेक अर्थों में उपयोग किया गया हो, किन्तु इसे मुख्य रूप से उन अनुष्ठानों के रूप में ही समझा जाता है, जो द्विजों के लिए आवश्यक हैं। 'तंत्रवार्तिक' में संस्कार के इसी अर्थ को महत्त्वपूर्ण मानते हुए स्पष्ट किया गया है- 'योग्यता चादधाना: क्रिया: संस्कारा इत्युच्यते' अर्थात् संस्कार वे क्रियाएँ अथवा रीतियाँ हैं, जो योग्यता प्रदान करती हैं।

प्रत्येक संस्कार में अनेक भौतिक एवं धार्मिक तत्व पाये जाते हैं। डॉ. कैलाश चन्द जैन ने दस तत्त्वों का उल्लेख किया है। ये इस प्रकार हैं- 1. अग्नि-यह प्रथम अनिवार्य तत्त्व है। यह विश्वास किया जाता है कि अग्नि से अमंगलकारी शक्तियाँ दूर रहती हैं। इसके साथ ही अग्नि मानव एवं देवताओं के बीच मध्यस्थ का कार्य करती है। अग्नि के दो गुण हैं-असत् को जलाना और प्रसरण शीलता। ये दोनों गुण संस्कार विधायक हैं।

2. स्तुतियाँ और आशीर्वचन-प्रत्येक संस्कार में व्यक्ति, परिवार अथवा समाज की सुख, शान्ति एवं समृद्धि के लिए स्तुतियों और आशीर्वचन का विधान होता है। इनके बिना संस्कार पूरा नहीं होता। स्तुतियाँ जहाँ अपने अहं के विजर्सन की भूमिका बनाती हैं, आशीर्वचन वहाँ पर (दूसरे का) मंगल विधान करता है।

3. अभिसिंचन-जल में अशुभ प्रभावों का निवारण करने और अमंगलकारी शक्तियों का विनाश करने की शक्ति होती है। अत: स्नान, आचमन, और अभिसिंचन संस्कारों का अनिवार्य तत्त्व माना जाता है।

4. दिशा निर्देशन-सभी मंगलकारी संस्कार पूर्व की ओर मुँह करके सम्पन्न होते हैं। अशुभ संस्कारों में दिशा इसके विपरीत होती है। इस प्रकार का दिशा निर्देशन प्रत्येक संस्कार में देखा जा सकता है।

5. प्रतीकत्व-प्रत्येक संस्कार में अनेक ऐसी भौतिक वस्तुओं का उपयोग किया जाता है, जिनके निश्चित प्रतीकात्मक अर्थ होते हैं। उदाहरणार्थ पत्थर दृढ़ता का और चावल समृद्धि का प्रतीक है।

6. निषेध-सभी संस्कारों में नियमों के साथ ही निषेधों पर भी पूरा-पूरा ध्यान दिया जाता है। शुभ

संस्कार अशुभ माह, दिन, नक्षत्र में नहीं सम्पन्न कराये जाते। भोजन सम्बन्धी निषेध भी होते हैं।

7. फलित ज्योतिष-सभी संस्कारों में फलित ज्योतिष का विशेष महत्त्व होता है। प्रत्येक संस्कार शुभ दिन और शुभ नक्षत्र में ही सम्पन्न होता है। कुछ धर्म ग्रन्थों में संस्कार सम्बन्धित नक्षत्र विषयक नियम विस्तार से दिये गये हैं।

8. सामान्य तत्त्व-प्रत्येक संस्कार में कुछ न कुछ सामान्य तत्त्व अवश्य होते हैं। फूल और पत्तों का मण्डप बनाना, उसे सजाना और सगे-सम्बन्धियों को आमंत्रित करना, नये वस्त्र एवं आभूषण पहनना सामान्य तत्त्व हैं।

9. सांस्कृतिक तत्त्व-सभी संस्कारों में किसी न रूप में सांस्कृतिक तत्त्व अवश्य विद्यमान रहते हैं। इन्हें संस्कारों को सम्पन्न कराते समय किये जाने वाले विधि विधानों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

10. आध्यात्मिक वातावरण- प्रत्येक संस्कार में घर के भीतर अथवा घर के बाहर जहाँ संस्कार सम्पन्न होता है, एक विशेष प्रकार का आध्यात्मिक वातावरण बन जाता है। यह वातावरण परमानंद का बोध कराता है। (मानव मूल्य परक शब्दावली का विश्वकोष पृष्ठ-1884)

संस्कार का तात्पर्य और प्रयोजन सदा सकारात्मक तथा मान सापेक्ष होता है। परन्तु दानव, दुष्ट, अहंकारी, असामाजिक भी कुछ संस्कार विकसित करते हैं। शुक्राचार्य दानवों को संजीवनी विद्या सिखाते हैं और भी कई संस्कार करते हैं। ये मानवता के विरोधी और शत्रु, समाज विरोधी तथा अस्तित्त्व को बढ़ाने वाले होते हैं, जो निषेधपरक हैं।

शरीर मन और अध्यात्म तीनों के विकास के लिए संस्कार के तीन भेद किये जा सकते हैं- शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शरीर ही सभी सिद्धियों का साधन है और अध्यात्म ही परम पुरुषार्थ (मोक्ष) पाने का कारण। दोनों की सहायता करता है-मन। कारण वहीं योजनाएँ बनती हैं, आकांक्षाओं के पुष्प लगते हैं। उसे संस्कारित कर शरीर और अध्यात्म दोनों को सिद्ध किया जा सकता है।

संस्कार मनुष्यता के विकास के लिए नितांत आवश्यक है। यह अलग बात है कि मनुष्य अपने स्वार्थ के कारण संस्कार को अधिक महत्त्व न दे। केवल ब्राह्म संस्कारों पर ध्यान दे। इसे विकसित करने के साधन हैं- श्रेष्ठ गुरु, पंडित, साधु का सत्संग करना, शास्त्र में वर्जित सोलह संस्कारों को सिद्ध (विकसित) करने का मनोयोग पूर्वक अभ्यास। संकल्प की दृढ़ता तथा शनैः-शनैः संस्कारों को अपने व्यक्तित्व के साथ घुला देना- तादात्म्य करना। सत्साहित्य, शास्त्र, धर्मग्रन्थों का पारायण एवं निरन्तर अभ्यास।

शुद्धि की धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक परिष्कार के लिए किये जाने वाले अनुष्ठान संस्कार कहलाते हैं। जिस प्रकार खेत को जोत-निराकर बीज वपन के योग्य बनाया जाता है, उसी प्रकार मनुष्य को विभिन्न अनुष्ठानों, अनुशासनों और नियमों से संस्कारित किया जाता है ताकि उसकी पात्रता विकसित हो, जहाँ अनुकूल और मानवीय गुण बीज का वपन हो सके। इससे उसका व्यक्तित्व इस प्रकार विकसित होता है, जहाँ 'अर्पित हो मेरा मनुज काय, बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' (मैथिली शरण गुप्त) संभव हो जाता है। अहं से इदं की यात्रा लघु से विराट की यात्रा यहीं से आरम्भ होती है।

संस्कार यदि मनुष्य को मनुष्य बना पाया, उसमें मानवीय गुणों का सम्यक समावेश करा पाया तो वह खरा है, अन्यथा ढकोसला एवं बाह्याडम्बर है।

संस्कारों के मुख्य रूप से दो प्रयोजन होते हैं-लोकप्रिय अथवा चमत्कारी प्रयोजन और कर्मकांडीय

अथवा सांस्कृतिक प्रयोजन। प्रत्येक संस्कार में व्यक्ति को अमंगलकारी शक्तियों से बचाने के लिए और उनसे दूर रखने के लिए अनुष्ठान किये जाते हैं। इसी से व्यक्ति का विकास और समृद्धि संभव हो पाती है। इसी प्रकार यह माना जाता है कि देवी-देवताओं के वरदान से जीवन सुखी रहता है एवं व्यक्ति का यश बढ़ता है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु ही स्तुतियाँ की जाती हैं और यश आदि का आयोजन होता है।

संस्कारों के कर्मकाण्डीय अथवा सांस्कृतिक प्रयोजन भी होते हैं। विभिन्न संस्कारों द्वारा व्यक्ति को पवित्र करना, विद्याध्ययन हेतु प्रेरित करना, संयमित एवं अनुशासित जीवन द्वारा व्यक्तित्व का विकास, कर्त्तव्य पालन द्वारा जीवन यापन और अंतिम समय में इस नश्वर शरीर को त्याग कर मोक्ष प्राप्ति आदि इस उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। मनुष्य और पशु के शिशु में कोई भेद नहीं होता। संस्कार ही उसे मनुष्य बनाते हैं फिर उसे उदात्त भी बनाते हैं।

भारतीय संस्कारों में हमारी संस्कृति की सांस्कृतिक सामाजिक, आध्यात्मिक आदि मान्यताओं की विलक्षण गरिमा निहित है तथा इसे गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। गर्भाधान संस्कार में शक्तिशाली और गुणवान संतान की कामना है तो पुंसवन पुत्र प्राप्ति की इच्छा पूरी करता है। सीमान्तोनयन में नारी का सम्मान है एवं जातकर्म में शिशु को अमंगलकारी शक्तियों से बचाने और उसे दीर्घजीवी बनाने की इच्छा दिखाई देती है। इसी प्रकार नामकरण में ज्योतिष के प्रति आस्था, अन्नप्राशन में स्वस्थ जीवन, कर्णवेध में रोग निवारण तथा उपनयन और वेदारम्भ में शिक्षा का महत्त्व परिलक्षित होता है। विवाह गृहस्थ जीवन के महत्त्व पर आधारित है तथा वानप्रस्थ और संन्यास मोक्ष की ओर ले जाते हैं। अंतिम संस्कार अन्त्येष्टि मानव की जीवन यात्रा की समाप्ति के साथ ही आत्मा और परमात्मा के चिर मिलन का बोध कराती है। इस प्रकार संस्कारित जीवन मानव जीवन को आदर्श जीवन का स्वरूप प्रदान करता है।

संस्कार एक लम्बे समय तक भारतीय जीवन दर्शन का अभिन्न अंग बने रहे। इसके बाद इनके स्वरूपों में परिवर्तन आरम्भ हुए। वर्तमान में बहुत से संस्कार तो पूरी तरह समाप्त हो चुके हैं और जो संस्कार किये भी जा रहे हैं, वे अपने उद्देश्य से बहुत दूर हो चुके हैं। भौतिकवादी विचारधारा, धन के महत्त्व में वृद्धि, पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति का प्रभाव औद्योगीकरण, नगरीकरण, आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी तथा बढ़ते हुए यातायात और संदेश वहन के साधनों ने संस्कारों को विस्मृत कर दिया है। आज बड़ी तेजी से मानव संस्कारहीन होता जा रहा है। यही कारण है कि समाज में अपराध, वेश्यावृत्ति, जुआखोरी, नशाखोरी तथा इसी प्रकार की समस्याएँ तेजी से बढ़ रही हैं और सशक्त से सशक्त सरकारें भी इन पर नियंत्रण करने में अपने को असहाय अनुभव कर रही हैं। आज संस्कारों की बड़ी आवश्यकता है। वास्तव में संस्कार प्रगति और समृद्धि का विधान हैं। वे भारतीय संस्कृति के साथ ही मानवता के आदर्श हैं। संस्कारों में दिव्य शक्ति है। इनके द्वारा मानव की मानवता की रक्षा के साथ ही वर्तमान समय की अनेक समस्याओं का समाधान भी किया जा सकता है। डॉ. रविशंकर दीक्षित के शब्दों में ''षोडश संस्कारों के प्रयोजनों में भारतीय संस्कृति की व्यावहारिक, नैतिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक चारित्रिक आदि मान्यताओं की आदर्श प्रतिष्ठा निहित है।'' (मानव मूल्य-परक शब्दावली का विश्वकोष पृष्ठ-1886)

देशभक्ति- देशभक्ति दो अलग-अलग शब्दों से मिलकर बना है-देश और भक्ति। इन दोनों शब्दों के अलग-अलग और अपने-अपने अर्थ होते हैं।

देश का अर्थ प्राय: स्थान से होता है। कभी-कभी लोग अपने पैतृक गाँव को भी देश कहते हैं।

एक बार मैं अपने मित्र के घर गया। मित्र के घर पर उसके अलावा और नहीं था। मित्र भी घर पर इसलिए मिल गया था, क्योंकि मैंने मोबाइल फोन पर अपने आने की सूचना पहले से दे दी थी। मेरे पूछने पर मित्र ने बताया कि उसकी दादी 'देश' जा रही हैं। उन्हें छोड़ने के लिए मम्मी, पापा, बड़े भैया तथा दोनों छोटी बहनें रेलवे स्टेशन गये हैं। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैं तो भारत, रूस, इग्लैण्ड, पौलेण्ड, जापान आदि को देश समझता था। मैं कुछ समझ नहीं सका, अत: मैंने फिर पूछा- ''किस देश गयी हैं?'' मित्र को हँसी आ गई। वह बोला-''यार! हमारे यहाँ पैतृक गाँव को 'देश' कहते हैं। दादी को अपने देश से बहुत लगाव है। इसलिए वे प्राय: 'देश' जाती रहती हैं।'' मुझे भी हँसी आ गयी, साथ ही एक नयी जानकारी भी मिल गई।

ऐसी ही स्थिति भक्ति की भी है। व्यक्ति द्वारा सगुण अथवा निगुर्ण ब्रह्म की उपासना ही भक्ति है। जब व्यक्ति अपने इष्ट अथवा आराध्य का श्रद्धापूर्वक भजन, पूजन अथवा आराधन करता है तो इसे भक्ति कहते हैं। अलग-अलग धर्मों के मानने वाले व्यक्तियों को आराध्य अलग-अलग होते हैं तथा इनके आराधना करने के ढंग भी अलग-अलग होते हैं। राम, कृष्ण, शिव, विष्णु, हनुमान, दुर्गा, गणेश आदि हिन्दुओं के इष्ट हैं। हिन्दू इनमें से एक, अनेक अथवा सभी देवी-देवताओं की आराधना, उपासना करते हैं तथा वृत, पूजा, यज्ञ आदि अनुष्ठानों के द्वारा इन्हें प्रसन्न करने का प्रयास करते हैं। भक्ति में श्रद्धा का होना अनिवार्य है। मैंने बालक को अपना इष्ट माना है और बालवंदन किया है-

हे बाल रूप! विश्वरूप।
तुमको मेरे शत्-शत् प्रणाम।।
सच्चाई के तुम ज्योतिपुंज।
सुरभित सुमनों के नव निकुंज।।
मानवता गर्व करे तुम पर,
तुम देवतुल्य नयनाभिराम।। तुमको मेरे... (चारों खाने चित, पृष्ठ-14)

यह तो रही देश और भक्ति की अलग-अलग बात। अब आइए देश भक्ति की चर्चा करें।

राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रप्रेम, मातृभूमि प्रेम, राष्ट्रभाषा प्रेम, सैनिकों की शौर्यगाथाएँ, महान व्यक्तियों के परिचय, देश की प्राकृतिक सम्पदा का गुणगान आदि सभी को देशप्रेम में सम्मिलित किया जाता है। देश और राष्ट्र में अन्तर होता है, किन्तु सामान्य रूप से इन दोनों को एक ही अर्थ में प्रयोग किया जाता है।

देश भक्ति एक भावना है। इसमें व्यक्ति, जाति, धर्म, सम्प्रदाय, क्षेत्रीयता, प्रादेशिकता, व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक हित-अहित आदि से ऊपर उठकर तन-मन-धन से पूरी तरह से अपने आपको अपने देश के लिए समर्पित कर देता है।

देश भक्त में देशभक्ति के बदले धन, पद, शक्ति आदि को पाने की लालसा नहीं होती है। सुभाषचन्द्र बोस, शहीद भगत सिंह, शिवराम सुखदेव, अशफाकउल्ला खान, चन्द्रशेखर 'आजाद', मातंगिनी रानी गिडालू, लाला लाजपत राय आदि इसके अच्छे उदाहरण हैं। इन्होंने देश के लिए अपने प्राणों तक का बलिदान कर दिया।

देशभक्ति की भावना नि:स्वार्थ होती है। इसमें देश के लिए कुछ करने की तीव्र इच्छा होती है।

किसी भी प्रकार की स्वार्थपूर्ति की कामना से किया गया कार्य देशभक्ति नहीं होता। वर्तमान समय के अधिकांश नेता इसके उदाहरण हैं। ये सत्ता, पद, शक्ति, धन आदि प्राप्त करने के लिए देशभक्ति का ढोंग करते हैं, लोक-लुभावन बातें करते हैं, खुले आम झूठ बोलते, झूठे वादे करते हैं।

देशभक्ति पर परिवेश का प्रत्यक्ष, प्रभाव पड़ता है। बीसवीं सदी में सर्वाधिक देशभक्ति की रचनाओं का सृजन किया गया। इसका प्रमुख कारण अंग्रेजों के अत्याचार, देशभक्त, क्रान्तिकारियों की गतिविधियाँ, अहिंसक आन्दोलन आदि थे। वर्तमान समय में इस प्रकार का परिवेश नहीं है, फिर भी देशभक्तिपूर्ण रचनाओं का थोड़ा बहुत सृजन हो रहा है-

1. ''हाथ जोड़कर हम सब बच्चे, देव! माँगते यह वरदान।
विद्या का धन दो हम सबको, जिससे बढ़े हमारा ज्ञान।।
पढ़-लिखकर हम सब बन जाएँ, सीधे, सच्चे और महान।
काम करें जग में कुछ ऐसे, जिससे बढ़े देश का मान।। (नंदनवन, पृष्ठ-85)

देश भक्ति की भावना की कमी का ही यह दुष्परिणाम है कि बहुत से लोग भारत में रहते हैं और पाकिस्तान के गुण गाते हैं। कुछ शिक्षण संस्थाओं में भारत विरोधी तत्व नारे लगाते हैं- ''भारत तेरे टुकड़े होंगे।'' अथवा ''पाकिस्तान जिन्दाबाद, भारत मुर्दाबाद'' भारत में बहुत से लोग तो ऐसे हैं, जो अपनी राजनीति चमकाने के लिए चीन तक की प्रशंसा करते हैं। यह सब देश भक्ति की भावना की कमी के कारण है।

हम सबको यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि जिस प्रकार भ्रष्टाचार हमेशा ऊपर से नीचे आता है, उसी प्रकार देश भक्ति भी ऊपर से नीचे आती है। जिस दिन हमारे नेता और प्रशासनिक अधिकारी देशभक्त हो जाएँगे, भारत विश्व पुन: जगद्‌गुरु हो जाएगा।

प्रकृति-प्रेम और पर्यावरण संरक्षण - हमारी धरती पर बल्कि अब तो यह कहना चाहिए कि अंतरिक्ष तक में जो संरचनाएँ पायी जाती हैं, वे दो प्रकार की होती हैं। पहली-मानवकृत संरचनाएँ और दूसरी-वे संरचनाएँ जिनका निर्माण मानव ने नहीं किया है। जिन संरचनाओं का निर्माण मानव ने नहीं किया है, बल्कि किसी अन्य शक्ति अथवा सत्ता ने किया है, प्राकृतिक कहलाती हैं तथा प्राकृतिक संरचनाओं का निर्माण करने वाली शक्ति अथवा सत्ता को प्रकृति कहते हैं। मानव का निर्माण भी प्रकृति ने किया है। प्रकृति मानव की सहचरी है, प्रकृति ने ही मानव के भीतर चेतना को जन्म दिया एवं मानव को जीवन का वास्तविक आनन्द प्रकृति के साहचर्य से ही प्राप्त होता है। प्रकृति का मानव जीवन से अटूट सम्बन्ध होता है। जिस दिन प्रकृति नष्ट हो जाएगी, मानव भी समाप्त हो जाएगा, मानव जाति समाप्त हो जाएगी-

''धरती माँ ने जन्म दिया है, धरती माँ ने पाला है।
किन्तु हाय हमने धरती का, सर्वनाश कर डाला है।।
जिन वृक्षों ने धरती माँ के, गहरे जख्मों को पाटा।
बड़े बेरहम होकर हमने, ऐसे वृक्षों को काटा।। (चारों खाने चित, पृष्ठ-75)

मानव के प्रकृति के साथ अत्यन्त सरल, सहज, स्वाभाविक, वास्तविक, पूर्ण और घनिष्ठ सम्बन्ध होते हैं। व्यक्तिवाद, भौतिकवाद, नगरीकरण, औद्योगीकरण, विज्ञान और तकनीकी आविष्कारों से प्रभावित होकर आदमी बहुत बदल गया है, उसके जीवन मूल्यों का बहुत पतन हो गया है, किन्तु उसके

प्रेम में कोई परिवर्तन नहीं आया है। वह महानगरों में अपने घर में गमलों में पौधे लगाता है। अगर उसके फ्लैट में धूप नहीं आती है तो वह मनीप्लान्ट जैसे छाया में उगने वाले पौधे लगाता है, पिंजड़ों में विभिन्न प्रकार के पक्षी पालता है। यहाँ तक कि जब उसे लम्बी छुट्टियाँ मिलती हैं तो वह अपने गाँव जाता है अथवा नैनीताल, मसूरी, शिमला, श्रीनगर, कुल्लू, मनाली जैसे प्राकृतिक सौन्दर्य से भरे पर्यटन स्थलों की सैर करता है। बच्चे तो ऐसे प्राकृतिक स्थलों पर बहुत आनन्दित होते हैं।

बच्चे प्राकृतिक सौन्दर्य के सबसे कुशल चितेरे होते हैं। इसे बरसात के मौसम में सभी स्थानों पर देखा जा सकता है। पानी बरसा और बच्चे निकल पड़े घर से और बना लीं अपनी टोलियाँ-

हम बच्चे भी देख घटाएँ,
निकल घरों से बाहर आते।
पानी में सब मस्ती करते,
बाग-बगीचों में इठलाते।। (मेरा रोबो बड़ा निराला, पृष्ठ-30)

प्रकृति प्रेम को तीन स्तरों में विभाजित किया जा सकता है- 1. सात्विक प्रकृति प्रेम, 2. राजसी प्रकृति प्रेम और 3. तामसी प्रकृति प्रेम। सात्विक प्रकृति प्रेम, प्रकृति प्रेम की सर्वोच्च श्रेणी है। इसमें व्यक्ति प्रकृति से बिना किसी प्रकार से कुछ भी प्राप्त करने की इच्छा के उससे प्रेम करता है। हमारे ऋषियों-मुनियों का पूरा जीवन सात्विक था। वे बिना किसी लोभ-लालच के प्रकृति से प्रेम करते थे। उनके जीवन के समान इनका प्रकृति प्रेम भी सात्विक था।

राजसी प्रकृति प्रेम मध्यम श्रेणी का होता है। इसमें व्यक्ति के प्रकृति प्रेम में कुछ प्राप्त करने की इच्छा होती है, किन्तु अपनी इस इच्छा की पूर्ति के लिए वह प्रकृति को कोई हानि नहीं पहुँचाता है। अपने फ्लैट में सुन्दर-सुन्दर गमलों में सुशोभित पौधे लगाना, छायादार वृक्ष लगाना अथवा फल देने वाले वृक्ष लगाना राजसी प्रकृति प्रेम के सुन्दर उदाहरण हैं।

तामसी प्रकृति प्रेम सबसे निम्न श्रेणी का होता है। इसमें व्यक्ति व्यावसायिक लाभ के लिए प्रकृति प्रेम का दिखावा करता है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति हजारों वृक्ष काटता है और सैकड़ों की संख्या में वृक्षारोपण करता है तो इसे तामसी प्रकृति प्रेम कहेंगे। वास्तव में यह प्रकृति प्रेम न होकर प्रकृति का दोहन है। बड़े-बड़े जंगल साफ करके कल-कारखाने अथवा कॉलोनी बनाना, नदियों पर बाँध बनाना, सड़कें बनाने, सड़कें चौड़ी करने अथवा रेलवे लाइन बिछाने के लिए वृक्ष काटना, गिट्टी बनाने के लिए पत्थर की बड़ी-बड़ी चट्टानें डायनामाइट से उड़ा देना आदि अनेक ऐसे कार्य इस समय किये जा रहे हैं, जिनसे प्रकृति का शोषण हो रहा है। ग्लोबल वार्मिंग इसका सबसे बड़ा दुष्परिणाम है। इस प्रकार अतिवृष्टि अनावृष्टि, पहाड़ों पर चट्टानों का खिसकना, बाढ़, सूखा, भूचाल, मौसम के क्रम में परिवर्तन आदि प्रकृति के दोहन के अन्य घातक दुष्परिणाम हैं। (चिड़िया नीड़ बनाती, पृष्ठ-42, 43)

हम सभी पर प्रकृति जीवन भर उपकार करती है। हमारी आवश्यकताएँ पूरी करती है। हम सभी को मानसिक शान्ति प्रदान करती है। किन्तु हममें से बहुत कम लोग ऐसे होते हैं जो प्रकृति के महत्त्व, उसकी उपयोगिता और मानव जीवन के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए उसकी आवश्यकता को समझ पाते हैं।

प्रकृति को केवल सरल, सहज, संवेदनशील और सहृदय व्यक्ति ही समझ सकता है। महर्षि

वाल्मीकि, कालिदास, जयशंकर 'प्रसाद', सुमित्रानंदन पंत आदि अनेक कवियों ने प्रकृति को निकट से देखा, समझा, प्रकृति की शाश्वत सौन्दर्य सत्ता का साक्षात्कार किया और इससे प्रभावित होकर ऐसे कालजयी ग्रन्थों का सृजन किया, जिन्होंने उन्हें अमर बना दिया।

बाल साहित्यकार सर्वाधिक सरल, सहज, संवेदनशील और सहृदय होता है। यही कारण है कि बाल साहित्यकारों ने सर्वाधिक प्रकृति चित्रण किया है। शायद ही कोई ऐसा बाल साहित्यकार होगा जिसने तितली, तोता, बादल, वर्षा, सर्दी, धूप, बिल्ली आदि बालप्रिय विषयों का मनोहारी चित्रण न किया हो, मैंने भी अपनी लगभग सभी काव्य कृतियों में बालरुचि के प्रकृति सम्बन्धी रचनाओं का सृजन किया है। 'हमारे प्राकृतिक प्रतीक' में तो केवल राजकीय पशुओं, राजकीय पक्षियों, राजकीय वृक्षों और राजकीय पुष्पों पर कविताएँ हैं।

आज का मानव प्रकृति प्रेम तो दूर की बात प्रकृति से बहुत दूर जा चुका है और व्यावसायिक प्रवृत्ति का हो जाने के कारण प्रकृति का दोहन कर रहा है। इसलिए पर्यावरण, प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो गयी है। नदियों में शहरों के कल-कारखानों की घातक गन्दगी और सीवर निरन्तर गिरते रहने से अनेक स्थानों पर गंगा तक का पानी पीने योग्य नहीं रह गया है। इसी प्रकार फैक्ट्रियों और कारों, बसों आदि से निकलने वाले जहरीले धुएँ ने हवा को इतना प्रदूषित कर दिया है कि दिल्ली जैसे महानगरों में व्यक्ति को साँस लेने में परेशानी होने लगी है और अनेक प्रकार की बीमारियाँ पैर पसार रही हैं। जलप्रदूषण और वायु प्रदूषण के समान मृदा प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण आदि भी तेजी बढ़ रहे हैं। पिछले कुछ समय से यह देखा जा रहा है कि एल.ई.डी. के बल्ब और रॉडें ऐसी घातक किरणें छोड़ रहे हैं जिससे मानव के रोग तेजी से बढ़ रहे हैं। अभी मानव का ध्यान मृदा प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण और प्रकाश प्रदूषण की ओर गया ही नहीं है। आधुनिक परमाणु के परीक्षण भी पर्यावरण के लिए कम घातक नहीं हैं। विश्व के पर्यावरणविदों ने पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को इतना खतरनाक माना है कि यह मानव जाति को धरती से समाप्त कर सकती है। इस प्रकार यह विश्व की सबसे बड़ी समस्या बन चुकी है। हो सकता है कि कोरोना और इबोला जैसे वायरस पर्यावरण प्रदूषण के कारण उत्पन्न हुए हों। इसलिए-

आज समय की माँग यही है, पर्यावरण बचाओ।
ध्वनि, मिट्टी, जल, वायु आदि, सब पर्यावरण हमारे।।
जीव जगत की रक्षा करना, अब कर्त्तव्य हमारा।
शोर और मिट्टी का संकट, दूर करेंगे सारा।
पर्यावरण बचायेंगे हम, आज शपथ यह खाओ।।
पर्यावरण ...

यह तो रही परोपकार, मानवता, संस्कार, देशभक्ति, प्रकृति-प्रेम आदि कुछ जीवन मूल्यों की बात। वास्तव में सभी जीवन मूल्य मानव और समाज के लिए आवश्यक हैं। जिस दिन विश्व से जीवन मूल्य समाप्त हो जाएँगे, मानव और समाज का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*

राजेन्द्र उपाध्याय

बच्चों में पठन-पाठन की अरुचि एक सार्वभौम संकट

हाल ही में हम लोग सिनेमा देखने गए। देर से पहुँचे थे तो निचली क्लॉस के सब टिकट फुल हो गए थे, इसलिए मेरा, मेरी पत्नी और बिटिया का टिकट लेने में हजार से ज्यादा रुपए ढीले करने पड़े। इंटरवल में अक्सर बाथरूम जाकर आकर बैठ जाता हूँ, क्योंकि खाने-पीने की चीजें महँगी होती हैं। छोटे शहर रतलाम में जब हम सिनेमा देखने जाते थे तो चाचा अक्सर अपने साथ चने, मूँगफली के भुने हुए दाने आदि रख लेते थे। इंटरवल में हम आराम से खाते। यहाँ दिल्ली में तो साथ खाने को कुछ नहीं ले जा सकते-पानी की बोतल भी नहीं। सब स्कैन हो जाता है।

बहरहाल, इंटरवल हुआ। मैं बाथरूम से आकर बैठ गया। देखा तो पत्नी बेटी के साथ 170 रुपए की पॉपकार्न की कागज की डोलची लेकर चली आ रही हैं। मैंने कहा-'इतने महँगे की क्या जरूरत थी?' 'पापा आप चुप रहिए। मैं अपने पैसे से लाई हूँ।' पत्नी ने कहा-120 वाला था, फिर भी यह नहीं मानी कि बड़ावाला ही लूँगी? मैंने कहा-'बेटा इतने में तो एक अच्छी किताब आ जाती या हिन्दी की तो पैपरबैक दो भी आ सकती थीं। 'किताब अपनी जगह और पॉपकार्न अपनी जगह है।' पत्नी भी उसका समर्थन करने लगी। मैं चुप हो गया वर्ना, फिल्म का मजा जाता रहता।

ये हमारी नई पीढ़ी है। बॉयफ्रैंड के बर्थडे पर 400-500 का फुटबाल दे सकती है- किताब नहीं। महँगे-महँगे मोबाइल खरीदेंगे पर किताबें नहीं। एन.बी.टी. की कुछ किताबें सौ रुपए से भी कम में आ जाती हैं, फिर भी नहीं लेंगे। पत्रिकाएँ भी नहीं लेंगे। अखबार भी नहीं पढ़ेंगे। अंग्रेजी की कुछ बेस्टसेलर जरूर खरीदकर रख लेंगे-पढ़ेंगे वो भी नहीं।

हम सब लोग कहते हैं कि पढ़ने का वक्त नहीं मिलता। जुलाई 1936 का जवाहरलाल नेहरू का एक लेख है- 'मैं कब पढ़ता हूँ।' इसमें उन्होंने लिखा है- मेरे मित्र अक्सर मुझसे पूछते हैं- भला तुम पढ़ते कब हो? सरदर्दी से भरे हुए इस राजनीति के भयंकर चक्कर में भी मैं रात के वक्त ऐसी कोई किताब पढ़ने के लिए थोड़ा-सा वक्त निकालने की कोशिश करता हूँ जो राजनीति से बिल्कुल दूर हो। लेकिन मेरा बहुत कुछ पढ़ना, इस विशाल देश का इधर से उधर सफर करते हुए रेल में ही होता है। क्या यह थोड़ा सा वक्त एक किताब के लिए हमारे पास नहीं है? क्या रेल के सफर में हम कोई किताब अपने साथ ले जाते हैं? या कन्फर्म रिजर्वेशन हो जाने पर ऊपर जाकर सो जाते हैं।

नेहरू जी अपने साथ तीसरे दर्जे की भीड़-भाड़, भयानक धूल और गर्मी में भी किताबों का एक संदूक ले जाते थे, तरह-तरह के विषयों की किताबें उसमें होती थीं। उन सबको संभवत: मैं पढ़ नहीं सकता। उन्हें चाहे पढ़ा न जाये, फिर भी अपने आसपास किताबों के मौजूद रहने से संतोष तो रहता ही है। आज हमारे घरों में किताब के लिए जगह कहाँ है। तो घरों में संतोष कहाँ है। नाम रखेंगे शांति निवास और शांति वहाँ नहीं है। नाम रखेंगे गीतांजलि पर गीतांजलि का नाम भी नहीं सुना होगा, नाम रखेंगे साकेत और गीत गोविन्द-उसकी एक भी प्रति घर में नहीं मिलेगी।

केरल की अपनी हाल की यात्रा के दौरान मैंने पाया कि यहाँ की जनता में पढ़ने-लिखने के प्रति अब भी उत्साह बना हुआ है। रेल में, बस में, मेले-ठेले में लोगों के हाथ में हमेशा कोई न कोई किताब देखी है- वह किताब चाहे कोई गम्भीर न भी हो, हल्की-फुल्की ही रही हो, पर रही जरूर है। पत्र-पत्रिकाएँ भी जरूर रहती हैं और वे बिकती भी बहुत हैं। मैं भी अपने साथ सफर में हमेशा कोई न कोई किताब रखता हूँ।

केरल की जनता यों तो साक्षर है शत-प्रतिशत-लेकिन लिखने-पढ़ने की तमीज़ केवल साक्षरता से ही नहीं आ जाती। साक्षरता कई बार मन में ऊल-जलूल तर्क-वितर्क को जन्म देने लगती है। वैज्ञानिक बुद्धि के विकास में, तर्क के मरुस्थल में सहृदयता का सोता सूख जाता है। संस्कार बहुत जरूरी हैं जो किताब जैसी पवित्र वस्तु की ओर बढ़ने को प्रेरित करते हैं। हमारे उत्तर भारत में क्या साक्षरता कम है? जगह-जगह जिस तरह वी.के. कान्वेंट, विवेकानंद का संक्षिप्त रूप खुल रहे हैं और वहाँ जिस तरह की वैज्ञानिक पढ़ाई पर जोर दिया जा रहा है। उसमें कथा, कविता, उपन्यास के लिए अवकाश कहाँ है? हमारे यहाँ अब भी कविता, उपन्यास पढ़ना समय का अपव्यय करना माना जाता है। उपन्यास पढ़ने से पहले बालक-बालिका को रोका भी जाता था-कि वे बिगड़ जाएँगे और लड़कियों में तो जुबान चलाने की आदत पड़ जाएगी। अगले घर में जाकर क्या नाम डुबाएगी?

हम नहीं चाहते कि बच्चे पाठ्यक्रम के बाहर की पुस्तकें पढ़ें। वे बस पाठ्यक्रम रटते रहें, परीक्षा पास करते रहें और कहीं थानेदार बन जाएँ। ध्यान रहे वह कवि, कलाकार न बने। हमने महाकवि निराला को फटेहाल देखा है और थानेदार को कार में घूमते देखा है।

केरल में क्या फिल्में, वीडियो, टी.वी. नहीं हैं। दक्षिण की जनता का सिनेमा से लगाव बहुत है, यहाँ तक कि लोग अपना खून बेच कर रजनीकांत की फिल्में देखते हैं, फिर भी किताबों से, लेखकों से उनका लगाव बना हुआ है। केरल में लेखकों का जो आदर है वो अन्यत्र कहाँ मिलेगा?

समाज अपने लेखकों की वजह से उन्नति करता है। समाज में जहाँ एक ओर वैज्ञानिकों की जरूरत रहती है, वहाँ ऐसे प्राणवान रचनात्मक ऊर्जा से सम्पन्न साहित्यकारों की भी जरूरत रहती है जो उसे मार्गनिर्देश देते हैं और लेखक के साथ पाठक भी तो चाहिए।

समाज अपने लिए लेखक पैदा करता है तो पाठक भी पैदा करता है। यह समाज का कर्तव्य है कि वह पाठकों में पढ़ने की हवस पैदा करें, क्योंकि उस हवस के बगैर सारा लेखन कार्य व्यर्थ है। कोई भी लेखक केवल अलमारियों की शोभा बनने के लिए, पुरस्कार-अनुदान-वृत्ति पाने के लिए नहीं लिखता है। वह पढ़े-जाने के लिए लिखता है। वह पढ़ाये जाने के लिए, रटाये जाने के लिए नहीं

लिखता है।

एक किताब कितनी दूर जा सकती है। वह बाप-दादाओं के जमाने से पोतों-परपोतों तक की यात्रा करती है। पर आज हमारे लेखकों की सबसे बड़ी समस्या यह है कि अपनी ही लिखी पुस्तकों का क्या करें? कोई मुफ्त में देने पर भी उन्हें पढ़ता नहीं। सजाकर रख देता है। आलीशान भवन बनाने के बाद, संगमरमर जड़ाने के बाद, टी.वी., वी.सी.आर., म्यूज़िक सिस्टम और काँच का फर्नीचर होने के बाद उसने सोचा अब किताबें होनी चाहिए-लिहाजा विश्व स्तर के कालजयी लेखकों की ग्रंथावलियाँ खरीद ली गईं और दीवार में ईंटों की तरह चुन दी गईं। एक नौकर उनकी झाड़पौंछ करता रहा। उन्हें किसी ने छुआ नहीं।

हिन्दी, अंग्रेजी, कन्नड़, मराठी, पंजाबी, तेलुगु और उर्दू की पुस्तकों की अपेक्षा असमिया, बंगला, गुजराती, मलयालम, ओड़िया और तमिल की पुस्तकों की कीमत कम है और यह नहीं कि गुणवत्ता के स्तर पर वे हल्की हों। यदि कुछ भारतीय भाषाओं में उचित मूल्य की पुस्तकें छापी जा सकती हैं तो अंग्रेजी और हिन्दी सहित अन्य भाषाओं की पुस्तकों की कीमतें क्यों अधिक होती हैं, जिनके पाठकों की संख्या इन भाषाओं के पाठकों से कहीं ज्यादा है।

केरल में कोट्टायम में डी.सी. बुक्स नाम के प्रकाशक हैं। वे हिन्दी के प्रकाशकों की तरह लेखकों से पुस्तकों के प्रकाशन के लिए न तो धनराशि लेते हैं न अग्रिम खरीद का आश्वासन ही, पर स्तरीय पुस्तकें लागत मूल्य पर न सही कीमतें बाजार स्तर से 25 से 30 प्रतिशत कम ही रहती हैं। कुल लाभांश का प्रतिशत कम होने के बावजूद डी.सी. बुक्स न केवल अपनी पुस्तकें बेच लेता है, बल्कि प्रकाशन जगत में दृढ़ता से प्रगति कर रहा है और अब तक केरल के प्रमुख शहरों में उसने 14 पुस्तक केन्द्र स्थापित कर लिए हैं। लाभांश कम होने पर भी, बिक्री ज्यादा होने से प्रकाशक लाभ में रहता है।

हमारे यहाँ केवल पुस्तकों के महँगी होने का रोना रोया जाता है। माना कि एक कविता संग्रह कल तक चालीस-पचास में मिलता था, आज 115 या 225 में मिलता है, पर क्या केवल किताबों की ही कीमतें बढ़ी हैं- फिर किताब ही सस्ती क्यों मिले? खिलौने और अन्य वस्तुएँ तो टूट-फूट जाती हैं, किताब तो सदा साथ चलने वाली, संकट की घड़ी में साथ देने वाली है। मूल्य में वृद्धि के बावजूद पुस्तकें अब भी खर्च किए गए धन का सबसे बेहतर मूल्य अदा करती हैं। वे कभी खत्म न होने वाली संपदा हैं।

मनोरंजन और सूचना सम्प्रेषण के साधनों में हो रहा तीव्र विकास प्रकाशकों को आगाह करते हैं कि वे पाठक समुदाय के स्तर तक उतरकर सस्ती, लोकप्रिय मगर ज्ञानवर्धक पुस्तकों का प्रकाशन सुरुचिपूर्ण ढंग से करें। बच्चों और ग्रामीण पाठकों को भी नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। खिलौनों और टी.वी. केबल से बच्चों और मोबाइल से युवाओं को विमुख करने का गुरुतर भार आज के लेखकों और प्रकाशकों पर पहले से कहीं ज्यादा है। किताबों को उपदेशात्मक नहीं, व्यावहारिक/बच्चों का दृष्टिकोण तर्क सम्मत और वैज्ञानिक बन सके-इस दिशा में प्रयत्न करना चाहिए।

किताबें सूचना दें, मनोरंजन करें और विचारों को संप्रेषित भी करें- इसके लिए किताब को बहुआयामी बनाना होगा। भागदौड़, प्रतियोगिता के इस युग में लोग जल्दी से जल्दी सूचना चाहते हैं,

हर विषय पर। अपने यहाँ विमानों, कारों और अन्य ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रों की पुस्तकें कहाँ हैं? लिहाजा अंग्रेजी के विदेशी प्रकाशकों की शरण में जाना पड़ता है। हालाँकि एन.बी.टी. इस दिशा में सराहनीय काम कर रहा है। उसने भारतीय लेखकों से भारतीय परिस्थितियों पर विज्ञान और अन्य विषयों की पुस्तकें तैयार करवाई हैं। आयातित विषयों पर, आयातित लेखकों की पुस्तकें हमेशा अच्छी ही नहीं होती हैं।

मैं जनसंचार माध्यमों से जुड़ा हुआ हूँ। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में जो नई पीढ़ी आ रही है उसे भारतीय परिस्थितियों, जलवायु, तीज-त्यौहार, रीति-रिवाज, आचार-विचार, व्यवहार, मुहावरों की जानकारी ही नहीं है। ऐसी स्थिति में उन्हें रिपोर्टिंग करने भेजा जाए तो कई बार वे अर्थ का अनर्थ कर देते हैं।

टी.वी. इंटरनेट, फेसबुक पर चिपके बच्चों को किताब की ओर मोड़ना आज सचमुच टेढ़ी खीर नजर आ रहा है। किताब के प्रति आकर्षण पैदा करने के लिए हमें सोशल मीडिया का सहारा लेना पड़ रहा है। टी.वी. पर, इंटरनेट पर, मीडिया में जो किताब हिट हो जाती है उसको खरीदने के लिए बच्चे लालायित रहते हैं। केवल खरीदने के लिए, पढ़ने के लिये नहीं, हैरी पॉटर किताबें, कितने ही बच्चों ने फैशन के आधार पर खरीदी होंगी, पढ़ा होगा किसने? पूरी तो शायद ही किसी बच्चे ने पढ़ी हो।

आज भी देश-विदेश में पंचतंत्र की, रामायण, महाभारत की किताबें लोकप्रिय हैं, लोक कथाएँ लोकप्रिय हैं, हमें अपनी इन्हीं जड़ों की ओर फिर-फिर लौटना होगा। प्रेमचंद की कहानियों और सुभद्राकुमारी चौहान की कविताओं की ओर हमें बच्चों का ध्यान आकर्षित करना होगा।

जैसे किसी पौधे के साथ मिट्टी ले जाना जरूरी होता है, जैसे किसी मछली के साथ पानी ले जाना जरूरी होता है, उसी तरह किताब भी जरूरी है। मैं उस घर में नहीं रह सकता जहाँ किताब न हो।

आज जहाँ हम बच्चों को आधुनिक विज्ञान से परिचित करा रहे हैं और उनके लिए पुस्तकें प्रकाशित कर रहे हैं, वहीं मेरा सुझाव है प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक विरासत से भी बच्चों को परिचित कराने वाली रोचक और विस्तृत जानकारी देने वाली पुस्तकें तैयार की जानी चाहिए।

बच्चों को आज हमें कुछ नया, अनजाना, अनपेक्षित, अद्‌भुत देना पड़ेगा। आज के बच्चों को हम कोरी गप्प से नहीं बहला सकते हैं। उसके तर्कशील मन को हमेशा कुछ नया, कुछ अनजाना चाहिए।

बच्चे आज प्रश्न करते हैं और उन्हें उनके उत्तर चाहिए। हवा, पानी, बादल, बरसात, छतरी, रेल, बस, पतंग, हवाई जहाज, पहाड़, नाना-नानी की कविता लिख के आज हम उन्हें बहला नहीं सकते। वे कुछ अनोखा चाहते हैं। समथिंग डिफरेंट समय की माँग है।

केवल जानकारियों का पिटारा खोल देने से काम नहीं चलेगा, उनके लिए रुचिकर पुस्तकें होनी चाहिए। हमारे लेखकों को विषय की जानकारी के साथ-साथ भाषा शैली भी रोचक होनी चाहिए। केवल सूचनाओं का अंबार लगा देने से काम नहीं चलेगा।

धर्म से बच्चा पहले सीखता था। स्वर्ग-नरक का डर भी हमें दादा-दादी दिखाते थे और सच्चाई के मार्ग पर चलने के लिए वह आवश्यक था। लेकिन आज बच्चा हर बात तर्क की कसौटी पर कसता है।

विज्ञान भी धर्म और अध्यात्म से जुड़ा है और दोनों सच के मार्ग पर ले जाते हैं। जगदीशचंद्र बसु, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और आइंस्टाइन जैसे चिंतक वैज्ञानिक सोच के साथ धर्म से भी जुड़े थे। वे तार्किक दृष्टकोण के साथ परमसत्ता के साथ भी एकाकार थे।

हम कब तक बच्चों को जो था यानी इतिहास से परिचित कराते रहेंगे, जो हैं तक का भी हमने काफी रास्ता पार कर लिया है, पर अब समय आ गया है कि अब हम उन्हें जो होगा से भी परिचित कराएँ। जो है को और कभी-कभी 'जो था' की भी हमें जरूरत है पर जो होगा यानी भविष्य की भी अब हमें जानकारी देनी जरूरी है। ऐसा हो सकता है, ऐसा होता है, ऐसा था, यानी इतिहास, वर्तमान और भविष्य की जानकारी देकर हम बच्चों का दूरदृष्टा बनाएँगे और उनमें वैज्ञानिक चेतना का विकास करेंगे।

सम्पर्क : *नोएडा (उ.प्र.)*

डॉ. मनीष काले

बच्चों में संस्कार-राष्ट्रीयता के रोपण का अनुष्ठान : देवपुत्र

बच्चों को जीवन मूल्यों का पाठ यदि राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना के मूल आधारों के साथ सिखाया जाता है तो भविष्य के विकास की ऐसी नींव रख रहे हैं, जिस पर खड़े होकर किसी भी देश और समाज को नई दिशा मिल सकती है। बच्चे ही भविष्य के कर्णधार होते हैं और यदि उनका नजरिया बदलता है तो सामाजिक व्यवस्था में ऐसा बदलाव संभव है, जो देश को विश्वगुरु बनाने के लिये कारगर साबित होंगे। उच्च जीवन मूल्यों की नींव बचपन में रख दी जानी चाहिये, जिसमें साहित्य की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। बाल साहित्य ही एक मात्र साधन है जो बच्चों को उच्च जीवन मूल्यों की तरफ ले जाने में मददगार साबित होता है। देवपुत्र एक ऐसी ही बाल पत्रिका है जो संस्कारों और राष्ट्रीयता के बीज बोने का काम कर रही है। वास्तव में देवपुत्र को एक पत्रिका की बजाए ग्रंथ कहना उचित होगा, जो उच्च गुणवत्तापूर्ण सामग्री के माध्यम से बच्चों में सांस्कृतिक, सामाजिक और राष्ट्रीयता का भाव जगा रही है। बाल पत्रिकाओं की बात करें तो देवपुत्र अपने आप में एक आदर्श प्रबंधन की केस स्टडी है। सामग्री की गुणवत्ता की तरह ही आर्थिक प्रबंधन से लेकर वितरण व्यवस्था तक में देवपुत्र एक आदर्श है। यही कारण है कि आज के समय में जब कई बाल पत्रिकाएँ बंद हो रही हैं, सबसे अधिक प्रसार संख्या का विश्व कीर्तिमान देवपुत्र के नाम है। बाल कल्याण न्यास, इंदौर 1 दिसम्बर 1985 से इसका लगातार प्रकाशन कर रहा है।

भारत से प्रकाशित बाल पत्रिकाओं पर नजर डालें तो अधिकांश बाल पत्रिकाओं की आधारभूमि व्यावसायिक रही। बड़े-बड़े घराने पत्रिकाएँ प्रकाशित करते रहे हैं। टाइम्स जैसे घराने ने बाल पत्रिकाएँ निकाली या फिर शासन ने भी निकाली। केंद्र सरकार एवं राज्य सरकारों की अपनी बाल पत्रिकाएँ निकलती रहीं। इन पत्रिकाओं के प्रकाशन के अलग-अलग आधार रहे। देवपुत्र पत्रिका का प्रारंभ शिक्षा क्षेत्र से हुआ। देवपुत्र को आरंभ करने में शिक्षा जगत से जुड़े कुछ शिक्षाविदों का योगदान रहा। शिक्षा के क्षेत्र का उस समय एक बड़ा नाम था रोशनलाल सक्सेना। पाठ्यक्रम से गायब हो रही राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना वाली सामग्री को एक पत्रिका के माध्यम से बच्चों के बीच एक बार फिर ले जाने का मूल विचार सक्सेना जी का था। उनके इस विचार को उनके ही कुछ सहयोगियों ने सराहा और सक्सेना जी का मूल विचार देवपुत्र का आधार बना। इन लोगों का मानना था कि आजादी के बाद से 1960 तक

पाठ्यक्रम में राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक चेतना का मूलभूत स्वर हुआ करता था। इस समयावधि के बाद ये सभी स्वर पाठ्यक्रम से दूर होते चले गए। शिक्षा क्षेत्र के ही लोगों को लगा कि पाठ्यक्रम से इतर हम बच्चों को ऐसी सामग्री दें, जो जीवन मूल्य को राष्ट्रीयता से जोड़े और राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक चेतना के साथ उनका विकास हो। ताकि देश के विकास में बच्चे पूरी ईमानदारी से खड़े हो सकें। बच्चों को श्रेष्ठ नागरिक बनाने की दिशा में देवपुत्र की यह ठोस सोच थी। पाठ्यक्रम में तो इस तरह के प्रमोशन कम होते जा रहे थे। ऐसे में इस विषय पर केंद्रित एक पत्रिका प्रारंभ करने की सोच ने जन्म लिया। पहले योजना बनी की एक वार्षिक पत्रिका ज्यादा पन्नों की शुरू की जाए और उसमें ऐसी सामग्री प्रकाशित की जाए जो बच्चों के साथ ही शिक्षकों को भी दिशा देने का काम करेगी। शिक्षक भी बच्चों को ज्यादा से ज्यादा इस तरह की सामग्री पढ़ाकर उन्हें दिशा दे सकें। सामग्री पूरी तरह से बच्चों पर ही केंद्रित करने का निर्णय लिया गया। शुरुआत स्मारिका के रूप में हुई, जिसने बाद में वार्षिक पत्रिका का रूप ले लिया। यह समय था 1979। समय के साथ सामग्री की माँग भी बढ़ी। शिक्षकों-बच्चों का रुझान बढ़ा तो पत्रिका को मासिक पत्रिका के रूप में स्थापित किया गया। मासिक पत्रिका हो जाने के बाद भी इसका पंजीयन नहीं हुआ था। पंजीयन 1 दिसम्बर 1985 में ग्वालियर में किया गया। तत्कालीन सम्पादक श्री विश्वनाथ मित्तल ने इसका पंजीयन करवाया।

समय के साथ इसकी संख्या बढ़ती चली गई। देवपुत्र का सम्पादन ग्वालियर से होता था और वितरण भोपाल से। 1991 में इसका काम दो हिस्सों में बाँट दिया गया। सम्पादकीय कार्यालय इंदौर रखा गया और सम्पादक का जिम्मा श्री कृष्णकुमार अष्ठाना को सौंपा गया। प्रबंधन और वितरण का काम भोपाल से किया जाने लगा और शांताराम भवालकर को इसकी जिम्मेदारी दी गयी। कुछ समय के बाद दोनों कार्यालय इंदौर से ही संचालित होने लगे। इसी के एक वर्ष बाद डॉ. विकास दवे भी पत्रिका की व्यवस्था से जुड़ गए। पूरे 26 वर्ष सम्पादन का कार्य करने के बाद वे अब म.प्र. शासन की साहित्य अकादमी के निदेशक भी हैं और 'देवपुत्र' के साथ अब 'साक्षात्कार' के भी सम्पादक हैं। आज बाल साहित्य में देवपुत्र का अपना एक मुकाम है। संस्कारों का विकास और राष्ट्रीयता का भाव इसका मूल आधार है।

विषय वस्तु-सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना जागृत करना देवपुत्र का उद्देश्य रहा है। राष्ट्र भाव के साथ अच्छा नागरिक बनने का भाव बच्चों में कूट-कूट कर भरा जाए। आज की नई शिक्षा प्रणाली में बच्चा अर्थ आधारित होता जा रहा है। इसी कारण बच्चा कॅरियर पर फोकस कर रहा है। वह केवल पैसों के बारे में ही सोच रहा है। साथ ही बाल साहित्य या बाल पत्रकारिता में विविधता आ गयी है कि सूचनाओं का बवंडर खड़ा हो रहा है। अधिकांश अखबारों में जो बाल साहित्य छप रहा है, उनमें लेखकों के नाम नहीं छापे जाते हैं या नहीं होते हैं। या यूँ कहें कि उसी कोई प्रामाणिकता नहीं होती है। कहानी छपी है, लेकिन कोई लेखक नहीं है। यानी वह इंटरनेट या कहीं अन्य से उठाकर छाप दी गयी है। बिना लेखों के सामग्री का प्रकाशन एक बड़ा अपराध है। अखबारों के साथ ही कुछ पत्रिकाएँ भी यह कर रही हैं। साथ ही कागज से टोपी बनाना, नाव बनाना जैसी विधाएँ भी इंटरनेट से उतारकर प्रकाशित किये जा रहे हैं। इससे हुआ यह कि बच्चों में सृजनात्मकता खत्म हो रही है या उन्हें मौका नहीं मिल रहा है। पहले बच्चे कहानी, कविताएँ

तैयार करते थे। चित्र पहेली तैयार करते थे, जिनसे उनका विकास होता था। आज इंटरनेट से सामग्री लेने से वह सब खत्म होता जा रहा है। देवपुत्र इससे बचता है। इंटरनेट से सामग्री लेना पड़े, तो वह भी प्रबंधन का अंतिम चयन होता है। देवपुत्र प्रबंधन का प्रयास होता है कि साहित्यकारों, चित्रकारों, कहानीकारों को कैसे आगे लाया जाए। दूसरा प्रयास यह किया जाता है कि सांस्कृतिक परिदृश्य को बच्चों तक कैसे भी पहुँचाया जाए।

देवपुत्र की हर सामग्री बच्चे को जीवन मूल्य सिखाती है। दया, करुणा, सहयोग सिखाने वाली सामग्री ही प्रकाशित की जाती है। सामग्री के माध्यम से हम बच्चों को कैसे समाज से जोड़ें इस पर भी फोकस किया जाता है। ज्ञान और सूचना के बीच एकऽअंतर स्थापित करने का काम देवपुत्र जैसी बाल पत्रिकाएँ कर रही हैं।

बच्चों को समझने में कोई परेशानी नहीं आए इसलिये भाषा का प्रयोग सरलतम रूप में किया जाता है। बड़ी-बड़ी बातों को आसानी से समझाया जाता है। एक बानगी- ''बालक शान्तिस्वरूप ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण कर कॉलेज में प्रवेश लिया। कॉलेज के प्रथम वर्ष में ही अपनी प्रतिभा एवं परिश्रम के बल पर कॉलेज में विशेष स्थान बनाया। रसायन शास्त्र के प्रोफेसर रुचिराम साहनी इस पितृविहीन होनहार बालक का विशेष ध्यान रखते थे। उन दिनों कलकत्ता विश्वविद्यालय के सर डॉ. जगदीशचन्द्र बसु देश-विदेश में अपनी नई-नई खोजों के लिये चर्चा एवं सम्मान का विषय बने हुए थे। उन्होंने जड़ पदार्थों में चेतना होने के सिद्धांत प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया था। पंजाब विश्वविद्यालय ने भी डॉ. बसु को लाहौर में सम्मानित करने का निश्चय किया।''

जीवन जीने की कला सिखाने के लिये कहानियों को माध्यम बनाया जाता है। प्रेरक प्रसंगों को भी कहानी के रूप में प्रकाशित किया जाता है। एक बानगी- ''निवेदिता एक सुसभ्य, संस्कारित, सुशिक्षित, अंग्रेज महिला थी। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर का विचार था वे उनकी छोटी पुत्री को अंग्रेजी माध्यम से शिक्षित करने हेतु उपयुक्त शिक्षिका होंगी। किन्तु निवेदिता का अभिमत सुस्पष्ट था- ''बाहर से कोई शिक्षा निगलने से क्या लाभ। जो जातिगत निपुणता एवं व्यक्तिगत विशेष क्षमता प्रत्येक मनुष्य के अन्दर है, उसे जागृत करना ही यथार्थ शिक्षा है।'' कालान्तर में यही विचार-शांति निकेतन' की स्थापना में प्रेरक बना।''

सीख देने वाली कविताओं का प्रकाशन किया जाता है। पूरी पत्रिका में कविताओं को प्रमुखता से प्रकाशित किया जाता है- ''पावन सुन्दर ध्वज अपना यह,/ लहर-लहर लहराये।/ जन-गण-मन है गान हमारा/ जन-जन भाव जगाये।''

कहानी, कविता, देव दर्शन, बाल शहीदों की गौरवगाथा, आरोग्य, बाल फिल्म परिचय, आपकी पाती, पुस्तक परिचय, हमारे राजकीय पशु, खेल-खिलाड़ी, कॅरियर, दिशा, रोचक जानकारी, पहेलियाँ, चुटकुले, वर्ग पहेली, बाल साहित्य समाचार, चित्रकला, व्यंग्य चित्र, जादुई प्रयोग, अपनी बात, लघुकथा, प्रसंग, आलेख, चित्रकथाएँ, बताओ तो जाने, मस्तिष्क का व्यायाम, कॉर्टून जैसे कई स्तंभ हैं जो बच्चों को सालों से पसंद आ रहे हैं।

प्रसार प्रबंधन - प्रसार पूरी तरह से व्यावसायिक गतिविधि मानी जाती है। देवपुत्र प्रबंधन ने इसी प्रसार योजना को पूरी तरह बदला। व्यक्तिगत ग्राहक बनाने, कमीशन देकर दुकानों से पत्रिका का वितरण

करने या फिर घर तक हॉकर के माध्यम से पहुँचाने जैसे पारम्परिक तरीकों को नकारते हुए एक नई व्यवस्था को अपनाया गया। लगभग सभी पत्रिकाएँ एक-एक बिकती थी। एक-एक कॉपी पर हॉकर को कमीशन दिया जाता था। देवपुत्र के वार्षिक या आजीवन सदस्य ही बनाए गए। साथ ही शुल्क जमा होने के बाद पत्रिका पहुँचायी जाती थी। इस तरह की योजना पर काम करने वाली देवपुत्र अपने आप में एक मात्र पत्रिका है। लोगों ने भी इसकी व्यवस्था को सहजता से स्वीकार कर लिया क्योंकि इसका मूल्य प्रति कॉपी कम था। खास बात यह रही कि देवपुत्र ने विद्यालयों को प्रसार का माध्यम बनाया। विद्यालय भी वे जो कि सामाजिक संस्थाओं द्वारा संचालित होते हैं और बच्चों के संस्कार की चिंता करते हैं। प्रबंधन ने फोकस किया कि गायत्री परिवार संस्कारों पर काम करता है। विवेकानंद केंद्र, कन्याकुमारी के पूरे पूर्वोत्तर में शैक्षणिक संस्थान चलाते थे। श्रीश्री रविशंकरजी ने रामकृष्ण मिशन, आर्य समाज द्वारा संचालित वैदिक विद्यालयों को फोकस किया। विद्या भारती एक बड़ा संगठन है, जो सांस्कृतिक दृष्टिकोण से शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहा है। ऐसी संस्थाओं को सूचीबद्ध कर उनसे सम्पर्क किया और देवपुत्र पहुँचायी। इन सभी संस्थाओं ने देवपुत्र को बाल साहित्य जगत में स्थापित कर दिया। आज स्थिति यह है कि भारत का एक भी ऐसा प्रान्त नहीं है, जहाँ देवपुत्र नहीं पहुँच रही हो। देवपुत्र पूरे भारत में प्रसारित की जाती है, जिसमें से कुछ राज्यों में प्रसार संख्या ज्यादा है। नई दिल्ली, उत्तरप्रदेश, उत्तराखंड, राजस्थान में ब्यूरो संचालित होते हैं और प्रतिनिधि भी नियुक्त किए गए हैं।

विज्ञापन प्रबंधन- देवपुत्र में कोई भी ऐसा विज्ञापन नहीं लिया जाता है, जो बच्चों पर गलत असर डालता हो। विशेषकर व्यसनों से जुड़ी सामग्री प्रकाशित नहीं की जाती है। साथ ही स्वदेशी अपनाओ पर जोर दिया जाता है। कई बहुराष्ट्रीय कंपनियों के विज्ञापन आने के बाद भी प्रकाशित नहीं किये जाते हैं। प्रबंधन नहीं चाहता है कि कोई शीतल पेय का विज्ञापन प्रकाशित किया जाए और उसे देखकर बच्चे उसे पियें और अपने स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ करें। ऐसे कई विज्ञापन आए, लेकिन उनको प्रबंधन ने प्रकाशित नहीं किया। उनके चेक आज भी प्रबंधन के पास ही पड़े हैं। कईयों को तो चेक और विज्ञापन का डिजाइन दोनों वापस भी कर दिए। भारतीय कपनियों के ही विज्ञापन लिये जाते हैं और उनमें भी वे ही जो बच्चों के लिए उपयोगी हों। जैसे कोचिंग संस्थानों के विज्ञापन। साथ ही बाल साहित्य प्रकाशित करने वाले प्रकाशनों के साथ ही पेंसिल, रबर जैसी वस्तुएँ बनाने वाली कंपनियों के विज्ञापन लिए जाते हैं। ऐसे विज्ञापन नहीं लेते हैं, जिनका उपयोग बच्चों के लिए न हो। सरकारी विज्ञापन भी आते हैं, लेकिन वह काफी कम संख्या में होते हैं। सामान्यत: राज्य और केंद्र सरकारों ने 33 प्रतिशत विज्ञापन का नियम बना रखा है, लेकिन देवपुत्र में तो मात्र 3-4 प्रतिशत ही विज्ञापन प्रकाशित किये जाते हैं।

आर्थिक प्रबंधन- अर्थ तंत्र पूरी तरह प्रसार आधारित है। विज्ञापन भी अर्थ प्रबंधन का छोटा हिस्सा है, लेकिन बड़ा हिस्सा प्रसार से ही है। खास बात यह है कि पत्रिका का पहले शुल्क जमा करवाया जाता है। देवपुत्र का उद्देश्य कम कीमत पर बच्चों को अच्छी सामग्री देना है। यही कारण है कि आज इसकी प्रसार संख्या ने विश्व रिकॉर्ड बनाया है। करीब 97 प्रतिशत आर्थिक प्रबंधन हमारा प्रसार से ही है। केवल 2-3 प्रतिशत आय ही विज्ञापन से होती है। आर्थिक योजना यह भी थी कि इसकी लागत पर कम से कम लाभ लिया जाए। आज तक इसी सिद्धांत पर न्यास काम कर रहा है। आज भी लगभग सभी बाल

पत्रिकाओं का मूल्य 30-35 रुपए मासिक के बीच है, देवपुत्र उस स्थिति में 130 रुपए में वार्षिक सदस्यता देती है। प्रबंधन खर्च निकालने के बाद एक पत्रिका पर मात्र 35 पैसे बचते हैं। प्रबंधन का उद्देश्य लाभ कमाना नहीं, बल्कि बच्चों को लागत मूल्य पर अच्छी पत्रिका उपलब्ध कराना है।

वास्तव में देखा जाए तो देवपुत्र एक बाल पत्रिका नहीं होकर एक संस्कार है। देश की नामी बाल पत्रिकाओं में शुमार इस पत्रिका की खास बात यह भी है कि इसकी सामग्री में समय के साथ कोई बड़े बदलाव नहीं किये गए हैं, लेकिन इसके बाद भी यह बच्चों की पसंद बनी हुयी है। देवपुत्र का एक-एक शब्द संस्कारों से भरा हुआ है। देशभर की पत्रिकाओं पर जहाँ बंद होने का खतरा मँडरा रहा है, ऐसे में सर्वाधिक प्रसार संख्या के साथ देवपुत्र हर रोज संस्कारों का सृजन कर रही है। देवपुत्र का यह संस्कार सृजन का मिशन लगातार जारी है। इस आलेख के लेखन से पूर्व लेखक ने पत्रिका के सम्पादक श्री विकास दवे से चर्चा की थी।

हमने पूछा था कि पत्रिका प्रारंभ करते समय बाल साहित्य का चयन ही क्यों किया गया?

वे बोले ''हमारी पूरी टीम शिक्षा के क्षेत्र में काम करती थी। हमें शिक्षा जगत में कुछ कमियाँ लगती थीं, जिसे बाल साहित्य के माध्यम से ही पूरा किया जा सकता था। ऐसी सभी की सोच थी। साथ ही हमें यह भी पता चला कि बाल साहित्य पर दुनिया के अन्य देशों में बहुत काम होता है। विशेष रूप से अंग्रेजी बाल साहित्य बहुत समृद्ध है लेकिन भारत में इस तरह का उद्देश्यपरक और योजनाबद्ध काम कम हुआ है। इसी को देखते हुए हमने बाल साहित्य के क्षेत्र का चयन किया और बच्चों के लिए पत्रिका निकालने का निर्णय लिया।''

यह पूछने पर कि, ''क्या पाठक वर्ग को देखते हुए सामग्री का चयन किया जाता है?'' वे कहते हैं- ''बाल साहित्य होने के कारण हमारा पाठक वर्ग तीन साल से लेकर 12 साल तक के बच्चे हैं। बाल साहित्य वैसे चार श्रेणियों में विभाजित है। शिशु, बाल, तरुण और किशोर अवस्था इसकी श्रेणियाँ हैं। इसी को ध्यान में रखकर सामग्री का चयन और प्रकाशन किया जाता है। शिशु अवस्था वाले बच्चों के लिए स्वर आधारित साहित्य प्रकाशित किया जाता है, तो तरुणों के लिए कॅरियर गाइडेंस जैसी सामग्री भी प्रकाशित की जाती है। सभी श्रेणियों को ध्यान में रखकर सामग्री का चयन किया जाता है। सभी श्रेणियों के लिए सामग्री का प्रतिशत तय है। हर अंक में हर श्रेणी की सामग्री का प्रकाशन किया जाता है।''

हमारी जिज्ञासा थी- प्रकाशित सामग्री का कितना प्रभाव पाठकों पर पड़ता है? इस पर उन्होंने कहा- सामग्री का काफी गहरा प्रभाव पड़ता है। पत्रिकाएँ सामान्यत: पाठकों से प्राप्त होने वाले पत्रों से इसका मूल्यांकन करती हैं। हमें तो पाठकों की प्रतिक्रियाएँ अच्छी मिलती हैं। पाठकों को पत्र लिखने का अभ्यास आज के युग में बिल्कुल समाप्त हो गया है। आज तो ई-मेल, वाट्स-अप, फेसबुक का जमाना है। मैसेज करने का युग है, लेकिन इस समय में भी हमें बच्चों के पत्र बड़ी मात्रा में मिलते हैं। विशेषकर सांस्कृतिक गौरव और जीवन मूल्य आधारित भाव को लेकर जो सामग्री प्रकाशित करते हैं, जिससे हमें सकारात्मक बदलाव के बारे में पता चला है।

मैंने पूछा- कुछ ऐसे उदाहरणों के बारे में बतायें। तो वे कहते हैं- ऐसे कई उदाहरण हैं, जिसमें सामग्री का प्रभाव बच्चों पर देखने को मिलता है। पत्रिका के माध्यम से हमने स्वदेशी अपनाने और

बहुराष्ट्रीय कंपनियों के उत्पादों का बहिष्कार करने संबंधी सामग्री प्रकाशित की थी। इसका परिणाम यह हुआ कि बच्चों ने अपने-अपने स्कूलों में स्वदेशी क्लब का गठन किया और स्वदेशी अपनाने का संदेश समाज में फैलाया। इसी तरह पौधारोपण की पहल हमने की, जिसे सकारात्मक सहयोग मिला। हजारों स्कूलों में बच्चे अपने नाम का पौधा न केवल लगा रहे हैं, बल्कि तीन साल तक उसका संरक्षण भी कर रहे हैं। कहानियों, कविताओं द्वारा ऐसे विषय हम पत्रिका के माध्यम से बच्चों तक पहुँचाते हैं। ऐसा ही एक प्रयास हिंदी भाषा को लेकर किया। आज देश के कई स्कूलों में विज्ञान प्रयोगशाला की तरह ही भाषा प्रयोगशाला स्थापित की गयी, जिससे बच्चों में हिंदी के प्रति गौरव का भाव पैदा हुआ।

पत्रकारिता का विद्यार्थी होने के कारण मैंने सहज पूछा- फीडबैक की क्या व्यवस्था है? क्या इसके आधार पर सामग्री में बदलाव किया जाता है? तो वे बोले- हम लगातार फीडबैक लेते रहते हैं। समय-समय पर पत्रिका में ही प्रश्नोत्तरी प्रकाशित की जाती है, जिसमें सामग्री से लेकर कलेवर संबंधी प्रश्न होते हैं। बच्चों की रुचि बनी रहे, इसलिए इसको प्रतियोगिता का स्वरूप दे दिया जाता है। प्राप्त प्रश्नोत्तरी में से चयन कर पुरस्कृत किया जाता है। साथ ही प्राचार्य, अभिभावकों और बच्चों से भी बातचीत कर सुझाव लिए जाते हैं। एक बड़ा माध्यम पत्र भी हैं। हमें हजारों की संख्या में पत्र मिलते हैं, जिसमें हर स्तर के सुझाव भी प्राप्त होते हैं। कई बार तो 6-7 पन्नों के पत्र भी हमें मिलते हैं, जिसमें विस्तृत सुझाव होते हैं।

लेखकों को भुगतान के प्रश्न पर वे बोले- ''साहित्यकारों को उनकी रचनाओं का पारिश्रमिक दिया जाता है। हालाँकि हम इसे पारिश्रमिक नहीं कहते हैं। हम उसे पत्र-पुष्प कहते हैं, जो न केवल वरिष्ठ साहित्यकारों को भेजा जाता है बल्कि बाल साहित्यकारों को भी भेजा जाता है। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि एक भी साहित्यकार को पत्र-पुष्प से वंचित नहीं रखा जाता है।''

नवाचार का विषय संवेदनशील होता है- सामग्री में बदलाव के लिए क्या किया जाता हैं। यह पूछने पर वे कहते हैं- ''देवपुत्र के हर अंक में कुछ नया होता है। पाठकों के सुझाव के आधार पर ही यह बदलाव किया जाता है। इसके लिए समय-समय पर सर्वेक्षण किया जाता है। इसके लिए प्राचार्य, विद्यार्थी, अभिभावकों की एक इकाई का चयन कर उनसे प्रश्नावली को भरवाया जाता है। उनके सुझावों के आधार पर पत्रिका की सामग्री में बदलाव किया जाता है।''

सम्पर्क : इंदौर (म.प्र.)

रमेश दवे

बाल विमर्श : बचपन पर संवाद

बच्चों को लेकर बौद्धिक विमर्श बहुत आसान नहीं है। बच्चों का व्यवहार किसी एक स्थान, एक काम, एक खेल और एक किताब तक स्थिर नहीं रहता। बच्चे की हर गतिविधि के लिए पूरा संवेदन तंत्र, उसका जीवन व्यवहार, उसकी प्रतिक्रियाएँ और उसका मनोविज्ञान जानना आवश्यक है। उसके संवेदन-तंत्र की हम किशोर, युवा अथवा प्रौढ़ों से तुलना नहीं कर सकते। जब वह लड़की/लड़का सालभर से भी कम उम्र का होता है तो वह जो भी क्रिया करता है, वह स्वाभाविक क्रिया होती है। वह होंठ फैलाता है तो हम समझते हैं कि वह हँस रहा है लेकिन यह उसकी स्वाभाविक क्रिया इसलिए है कि उसके होंठ, चिपके नहीं और उनका व्यायाम होता रहे। उसका हँसना, रोना, पैर-उछालना, हाथों को हिलाना, मुट्ठी में हर चीज़ बंद करना ये सब स्वाभाविक स्नायविक क्रियाएँ हैं। संवेदना के स्तर पर उसके प्रथम दो संवेदन होते हैं (1) भूख और (2) भय! भूख का मनोविज्ञान माँ जानती है और प्रथम दिन जब स्तनपान कराने लगती है तो उसका संवेदन तंत्र उसकी भूख के लिए माँ का स्तन पहचानने लगता है और सबसे पहले माँ को पहचानना शुरू करता है। जब वह आवाज, प्रकाश या किसी भी अन्य कारण से डरता है तो चमकता है, रोता है और माँ द्वारा उठाये जाने पर सुरक्षित महसूस करता है अर्थात् वह प्रथम दिन से ही माँ को अपना सुरक्षा-कवच मानता है। भूख और भय दोनों की प्रतिक्रिया की भाषा उसके पास केवल रोकर संकेत देना है। मनोविज्ञान के आधार पर यह कह सकते हैं कि रोना बालक की प्रथम भाषा है जिसके संकेत माँ जानती है और धीरे-धीरे पिता, दादी, दादा एवं परिवार के अन्य सदस्य जानने लगते हैं।

बालक-बालिका की जो संवेदनात्मक रचना है, उसमें बालक का एन्द्रिय व्यवहार, एन्द्रिय प्रतिक्रियाओं से जाना जाता है। जैसे थोड़ा बड़ा होने पर रंग देखकर खुश होना, पालतू जानवरों को देखकर उनके साथ खेलना, अपने खिलौनों को अन्य से शेयर न करना और उन पर अपना प्रभुत्व या अधिकार समझना आदि। खेल के संदर्भ में बालक सबसे बड़ा अन्वेषक है। यदि अकेले एक बालक या भाई बहन या एक दो बालकों के साथ बिना किसी खेल संसाधन के बच्चे को एक कमरे में छोड़ दिया जाए तो वह अपना खेल स्वयं खोज लेगी/लेगा/खेलना बच्चों का प्राकृतिक संवेग है। एक स्वस्थ बच्ची/बच्चा खेल से बड़ा कोई मनोरंजन नहीं स्वीकारता। इसलिए बच्चों का मनोविज्ञान सर्वप्रथम खेल मनोविज्ञान के रूप में समझना आवश्यक है जो विमर्श का आधार ही है।

बाल विमर्श क्या और क्यों : बाल विमर्श, बच्चों का, बच्चों द्वारा, बच्चों के लिए विमर्श न होकर प्रौढ़ों का अपने प्रौढ़त्व से बचपन को देखने की एक कुंठित प्रक्रिया है। बच्चों की पुस्तकों पर प्रौढ़ों की मानसिकता हावी होती है। इसलिए बच्चों के लिए लिखी गई पुस्तकें प्रौढ़ वर्चस्व और प्रौढ़ मानसिकता की रचनाएँ होती हैं। बाल विमर्श में बाल मनोविज्ञान, बाल प्रवृत्तियाँ, बाल क्रियाओं पर सामूहिक रूप से विचार तो किया जा सकता है लेकिन अधिकांश विमर्श बच्चों की स्वतंत्रता को स्वीकारते ही नहीं। प्रौढ़ मानते हैं कि बच्चे सोच नहीं सकते, बच्चे बहस में सही ढंग से तर्क करके अपने सोच को सिद्ध नहीं कर पाते, अत: बच्चों की क्रियाओं में भी प्रौढ़ों का हस्तक्षेप होना जरूरी है। इस पूर्वग्रह और दुराग्रह को गिजुभाई ने अपनी पुस्तक 'दिवास्वप्न' और अन्य लगभग 17-18 पुस्तकों के माध्यम से तोड़ा। 'माँ बाप की माथा पच्ची', 'शिक्षक हों तो', 'बच्चों के प्रश्न आदि ऐसे विषयों को गिजु भाई ने उठाया है, जो बच्चों की वैचारिक आजादी पर जोर देते हैं। इसी प्रकार 'बारबियाना के स्कूल का गुरुजी के नाम पत्र' ऐसी पुस्तक है जिसकी रचना आठ बच्चों ने एक पादरी के साथ अपने अनुभव से की है। ए.एस.नील ने अपनी पुस्तक 'समर हिल' की सारी व्यवस्था बच्चों को सौंपकर स्कूल डेमोक्रेसी (स्कूल का लोकतंत्र) अर्थात् बच्चों का बच्चों के लिए अपने विवेक से काम करने और व्यवस्था संचालन का दायित्व दिया। बाल विमर्श दो प्रकार से संभव है (1) आत्म-विमर्श अर्थात् बच्चों के बारे में स्वयं बच्चों द्वारा विचार करना और (2) सामूहिक विमर्श जिसमें बच्चे, प्रौढ़ शिक्षक एवं समाज के लोग एक साथ हिस्सेदारी करें।

बाल-विमर्श एक प्रकार से बच्चों के प्रति सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक चिंता है। यह विमर्श बच्चों के अस्तित्व उनके विकास, उनकी क्षमता और शक्ति पर सार्थक विचार है। मदाम मारिया माण्टेसरी ने जब बच्चों के मनोवैज्ञानिक व्यवहार को लेकर यह सिद्ध कर दिया कि बच्चों को न कहानी पसंद है, न गीत-संगीत, न टॉफी-चाकलेट का लालच, अगर उन्हें सर्वाधिक पसंद है तो 'खेलना' और तरह-तरह के खेल। खेल और खेलना बच्चों की जन्म-जात स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। वे अपने खिलौनों के प्रति इसी प्रकार जुड़े होते हैं, जिस प्रकार माँ की गोद में उन्हें कैसे खिलौने किस उम्र में चाहिए, ये सब बाल-विमर्श के विषय बनने चाहिए ताकि बच्चों की अभिरुचियों का पता लगाया जा सके।

बच्चों का दो वर्ष से बारह वर्ष तक विकास दो प्रकार से होता है-एक तो उनकी जिद से और दूसरा परिवार के संस्कारों से। बच्चों के विमर्श में तीन तत्वों पर ध्यान देना आवश्यक है -

(1) क्रूरता ग्रंथि या संवेग/(2) उत्सुकता या जिज्ञासा संवेग/(3) सर्जनात्मक संवेग

क्रूरता संवेग बहुत छोटी आयु में प्रदर्शित होता है। बच्चे बिना समझे आग को हाथ लगा देते हैं, लेकिन हाथ जलने के अनुभव से आग के प्रति जो उत्सुकता पैदा हुई थी, यह आग से डरने, बचने में बदल जाती है। इसी प्रकार वे कई कीड़े-मकोड़े यहाँ तक कि साँप को पकड़ लेते हैं। अगर माता-पिता की समझाइश से वे उनसे बचते हैं और कई बार उनके द्वारा चोट पहुँचाने पर बच्चे डरते हैं और उन्हें मारने पकड़ने की क्रूरता कर देते हैं बच्चे खेल-खेल में या गुस्से में अपने साथियों से मारपीट कर देते हैं। क्रूरता के संवेग की मुख्य वजह बाल सुलभ जिज्ञासा है। बच्चे सदा आश्चर्यों में जीते हैं, कौतूहल में जीते हैं और

अनुभव के द्वारा स्वयं सीखते भी जाते हैं। बच्चों की स्वाभाविक जिज्ञासा को शिक्षा से संस्कारित किया जा सकता है। परिवार के साथ अन्तरक्रियाओं से समझाया जा सकता है। इस प्रकार पशु-प्रवृत्ति से मानवीय-वृत्ति की ओर उनका विकास स्वयं या परिवार और शिक्षा द्वारा होता है और बच्चों की आत्म-केन्द्रीयता, एकाधिकार की वृत्ति समूह-वृत्ति बनकर दोस्त बनाने, उनके साथ खेलने, बात-बात में गुस्सा न करने, लड़ने-झगड़ने के बाद फिर दोस्ती कर लेने में परिवर्तित होने लगती है। उनका एकाधिकार या अपने प्रभुत्व की स्थापना का भाव सामूहिकता में बदलने लगता है। दोस्त बनाना या सामूहिक जीवन में बचपन से प्रवेश करने को 'ग्रेगेरियन स्प्रिट' अर्थात् सामूहिक मित्रता संवेग कहा जाता है। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने दो पंक्तियों में पशु से मनुष्य होने की कल्पना इस प्रकार की है -

यही पशु प्रवृत्ति है कि आप ही आप चरें/वही मनुष्य है जो मनुष्य के लिए मरे

बच्चों की क्रूरता दूर करके जिस जिज्ञासा के साथ-साथ उनकी सर्जन वृत्ति या रचनात्मकता का भी विकास तीन तत्वों के साथ होता है। वे हैं पारिवारिक परिवेश और संस्कार, मित्रता, शिक्षा और आत्म अनुभव। जैसे-जैसे बच्चों में रचनात्मकता पनपती है, वैसे-वैसे वे हिंसक कम और क्रियाशील अधिक होते हैं। जिन खिलौनों को वे तोड़ देते थे, अब उन्हें सुरक्षित रखने लगते हैं, अपनी चीज़ों को सँभालने लगते हैं, परिवार के परामर्श लेने लगते हैं और स्वस्थ रहने, स्वच्छ रहने, व्यायाम करने, पढ़ने-लिखने एवं अन्य क्रियाएँ करने लगते हैं। माँ या पिता या दोनों से एवं परिवार के बड़े लोगों से सलाह लेते हैं।

प्रवृत्ति और मनोवृत्ति : बाल विमर्श का आधार बाल मनोविज्ञान की समझ का होना है। बच्चों की बुद्धि और क्रियाएँ स्थिर और स्थाई नहीं होतीं। उनमें बहुत तेजी से परिवर्तन होता रहता है। बच्चे एक जैसे पन से बहुत जल्दी ऊबने लगते हैं। वे अपनी ऊब के विरुद्ध या तो स्वयं विकल्प की खोज करते हैं या माता-पिता से विकल्प की माँग करते हैं, उदाहरण के लिए कितना ही अच्छा, सुंदर, गतिविधिपूर्ण खिलौना उन्हें दे दीजिए, वह खिलौना उनके लिए बहुत जल्दी पुराना पड़ कर ऊब पैदा कर देता है। इसलिए वे हमेशा नए-नए खिलौनों की माँग करते हैं। अस्थिरता, अस्थायीत्व, अन्वेषण और विकल्प से चार प्रवृत्तियाँ उनमें निहित होती हैं और लगभग चार साल की उम्र में ये प्रवृत्तियाँ बाल मनोविज्ञान को समझने की चुनौती देती हैं। बाल विमर्श का प्रत्येक चरण बाल मनोविज्ञान पर आधारित होना जरूरी है। अमरीकी विचारक जॉन होल्ट ने तीन बातों के लिए शिक्षा में चुनौती देखी है। वह कहता है भय, भ्रम और ऊब इन तीनों को कैसे दूर किया जाए, इस पर विमर्श आज की जरूरत है।

दो वर्ष की उम्र से लेकर टीन एज अर्थात् तेरह वर्ष की उम्र के पहले बालक में एनिमल इंसटिंक्ट प्रिडामिनट(पशु संवेग) रहता है। इस प्रवृत्ति के कारण वे तोड़-फोड़ मारपीट और अनेक हिंसक क्रियाएँ कर सकते हैं जिसे मनोविज्ञान में क्रुअल्टी इंसटिंक्ट कहा जाता है। क्रूरता की यह प्रवृत्ति कई बार कीड़ों को पकड़ कर मसल देती है, अन्य बच्चों के साथ मारपीट करती है, अपने से छोटे बहन-भाई के साथ मारपीट, छीना-झपटी करती है, माता-पिता या अपने से बड़ों की बात नहीं मानती लेकिन धीरे-धीरे पारिवारिक संस्कारों, समझाइश और कभी-कभी दण्ड से इस प्रवृत्ति पर नियंत्रण करके बच्चों को विनम्रता की ओर ले जाया जाता है और जब बच्चों की उम्र शिक्षा प्राप्त करने की हो जाती है तो इस प्रवृत्ति में सुधार होने लगता है। इस प्रकार एनिमल इंसटिंक्ट से ह्यूमन इंसटिंक्ट में बच्चों को संस्कारित किया

जाता है इसलिए यह आवश्यक है कि बच्चों को लेकर केवल बड़े ही विमर्श न करें बल्कि बच्चों के साथ बातचीत में उनकी पसंद-नापसंद, उनके शौक, उनकी माँग, उनकी जरूरत और उनके व्यवहार के बारे में जानें। ऐसी बातचीत से ऐसे अनेक तत्व उद्घाटित हो सकते हैं जिनसे बच्चों की प्रवृत्ति और मनोवृत्ति का पता चलता है। अभी ऐसे विमर्शों की बहुत कमी है। बच्चों को नासमझ मानकर माता-पिता, शिक्षक, बड़े भाई-बहन, परिजन, मित्र आदि बच्चों से चर्चा ही नहीं करते, इस कारण बच्चों को बहुत कम समझ पाते हैं और उनके प्रति प्रौढ़ों की गलत मान्यता पैदा हो सकती है।

बाल विमर्श एक प्रकार से बाल मनोविज्ञान के आधार पर बच्चों के जन्म, विकास और बाल्यावस्था के जीवन पर सामूहिक विचार करना है। विमर्श का तात्पर्य ही यह है कि उसमें एक से अधिक अर्थात् सामूहिक रूप से समाज के प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति एवं बालक-बालिकाएँ भागीदारी करें। मनोविज्ञान ने मनुष्य के स्नायुतंत्र का दो भागों में अध्ययन किया है-

-बालक की कर्मेन्द्रिय का तंत्र और/-बालक की ज्ञानेन्द्रिय का तंत्र

बालक-बालिकाओं की कर्मेन्द्रियाँ तो स्वाभाविक क्रियाएँ करती हैं। हाथ, पैर, शौच निष्कासन, स्थान, मूत्र-त्याग की इन्द्री मेरुदण्ड आदि का स्नायुतंत्र स्वचलित शारीरिक क्रियाएँ हैं और शरीर का स्नायुतंत्र मस्तिष्क के माध्यम से किस अंग की क्या क्रिया है इसकी सूचना दे देता है। मस्तिष्क भी दो भागों में बँटा होता है, जिन्हें टाइट एवं लेमर स्फीयर कहा जाता है और जो भाषा, भौतिक ज्ञान कला एवं तत्व ज्ञान का संचालन करता है। हर मनुष्य को जन्म से ज्ञानेन्द्रियाँ मिली हैं, वे पाँच है-

1. आँख-देखने, जाँचने, परखने का स्नायिक तंत्र

2. कान-सुनने-हर प्रकार की ध्वनि चाहे वह वस्तु जगत की हो या संगीत एवं अन्य सूक्ष्म ध्वनियाँ पशु-पक्षी एवं प्राणी एवं मनुष्य जगत की।

3. जीभ-यह स्वाद का पता लगाने के लिए है। हम जिन्हें षटरस कहते हैं वे जीभ के स्वाद द्वारा ही प्राप्त होते हैं।

4. नाक यह हमारी घ्राण शक्ति अर्थात् सूँघने की क्रिया करती है जिससे सुगंध, दुर्गन्ध या अनेक प्रकार की गंध का पता चलता है, एवं

5. त्वचा यह बहुत संवेदनशील तंत्र है। स्पर्श का हर अनुभव त्वचा ही कराती है।

बाल विमर्श में यह तथ्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि इन पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को स्वस्थ रखकर हम इनसे प्राप्त अनुभव जन्य ज्ञान, शिक्षा द्वारा प्राप्त ज्ञान एवं अनेक मानवीय, पर्यावरणीय एवं वैज्ञानिक क्रियाओं का उपयोग कैसे करें यह जान सकते हैं। बाल विमर्शकारों को चाहिए कि इन इन्द्रियों के सुचारू रूप से संचालन के लिए स्वयं बच्चों, उनके माता-पिता अभिभावकों, शिक्षकों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं, चिकित्सकों एवं बच्चों से जुड़े हर मनुष्य को न केवल जानकारी दी जाए बल्कि प्रशिक्षित किया जाए। एक स्वस्थ जीवन की कल्पना स्वस्थ इन्द्रियों एवं पुष्ट स्नायुतंत्र पर निर्भर करती है।

बच्चों की प्रवृत्ति को लेकर पहले कुछ बातें कही गई हैं लेकिन कुछ ऐसी मूल प्रवृत्तियाँ हैं जिन पर विचार आवश्यक है। जैसे -

1. छोटी-छोटी बात पर जल्दी झगड़ना और जल्दी भूल जाना

2. सामूहिकता अर्थात् समूह में मित्रता
3. विपरीत, कठिन या भय की परिस्थिति में संरक्षण और शरण
4. अपनी बात को मनवाने की जिद या आत्म अहं
5. सर्जनात्मक काम चित्र बनाना तरह-तरह की मुद्राएँ बनाना
6. अनुकरण करना
7. जिज्ञासामय होना
8. खतरनाक या डरावनी स्थिति से बचना
9. खेल और खिलौने पर अपना अधिकार जताकर बँटवारा न करना
10. अपनी चीजों को एकत्रित या संग्रहीत करना एवं अधिकार जताना
11. हँसना, रोना, बात-बात पर रूठना, प्रश्न करना, जिद करना
12. नाश्ता या भोजन करते वक्त स्थिर न रहना, बार-बार उठना, दौड़ना माता-पिता को परेशान करना।
13. माता-पिता को अपना श्रेष्ठ संरक्षक समझकर उन पर भरोसा करना
14. शिक्षा के दौरान शिक्षक, शिक्षिका को ही सर्वोच्च मानना (एकमात्र अथारिटी) भले ही शिक्षक की कुछ गलती भी हो
15. किसी भी बात या वस्तु से जल्दी संतुष्ट न होना एवं हर वक्त नई वस्तु की इच्छा रखना, सजना-सँवरना, नए वस्त्र की इच्छा आदि।

इन बिन्दुओं पर विमर्श करके बच्चों के संपूर्ण संवेदन तंत्र को समझा और समझाया जा सकता है। बच्चों को लेकर गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर, गिजुभाई बधेका, ताराबाई मोडक, जे. कृष्णमूर्ति, श्री अरविंद आदि अनेक विचारकों एवं लेखकों ने जो काम किया है, उसकी प्रासंगिकता और व्यावहारिकता को लेकर भी विमर्श इसलिए आवश्यक है कि समय और परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन होते रहते हैं। कल तक जितनी महत्त्वपूर्ण पुस्तकें थीं वे कम्प्यूटर के द्वारा वेबसाइट किताबों का विकल्प रचने लगी हैं। बच्चों को पढ़ने से पृथक करने में ये तकनीकी अनुसंधान भले ही सुविधाजनक हैं, मगर बच्चों को किताबों के प्रति आकर्षित कैसे किया जाए, बाल साहित्य कैसा रचा जाए और बच्चों तक उसकी पहुँच कैसे हो, इन बिंदुओं पर विचार आवश्यक है। प्रकाशकों का भी दायित्व है कि वे बच्चों का रोचक साहित्य प्रकाशित करें।

बच्चों के समग्र विकास के अनेक घटक हैं लेकिन पाँच अवस्थाएँ ऐसी हैं जिनका क्रमशः विकास कैसे हो इस पर विचार आवश्यक हैं-

1. शैशवकाल अर्थात् जन्म से लगभग दो वर्ष तक।

2. बचपन-अर्थात् वह समय जब बच्चे समझने लगते हैं कि वे शिशु से बच्चे बन गये हैं। दो वर्ष से बारह वर्ष तक की यह उम्र अत्यंत संवेदनशील होती है और इस उम्र में परिवार, समाज और स्कूल कैसे संस्कार और शिक्षा देना है, यह बच्चों की रुचि और आदतों के आधार पर किया जा सकता है।

3. किशोरावस्था-यह अत्यंत भावुकता, जोश, साहस एवं जोखिम की उम्र है। यहाँ से बच्चे को बहुत सँभालना होता है। वह जैसे संस्कार ग्रहण करेगा वैसा ही विकसित होगा। यह उसके बिगड़ जाने की

भी उम्र है जिस पर ध्यान देना जरूरी है। जोखिम एवं साहस भरे खेल और काम इस उम्र के हैं। बच्चों की आवाज और आदत दोनों बदलती हैं।

4. यौवनकाल-जवानी का जोश, कुछ कर गुजरने, साथियों, समूहों से प्रतियोगिता करने, टीम बनाने, मित्र बनाने और जोखिम के कई काम करने की उत्तेजना से भरा यह जीवन होता है। विवाह आदि का भी यह समय है। आत्मनिर्भरता के लिए व्यवसाय चुनने, करीयर बनाने की भी यही उम्र है। लड़कियाँ इस उम्र में गंभीर होने लगती हैं।

5. प्रौढ़काल-यहाँ एकदम बहुत ही जिम्मेदारी, कर्त्तव्यबोध एवं परस्पर व्यवहार के कई तत्व आ जाते हैं। अब वे बच्चे, किशोर युवा न होकर समाज के गंभीर सदस्य और देश के नागरिक होते हैं। वे कैसे नागरिक बनें इसे अनवरत प्रशिक्षण से उन्हें सदा अपने कर्त्तव्य और काम के प्रति गंभीर बने रहने का मार्गदर्शन इस उम्र में काफी काम आता है।

बाल-विमर्श के वैसे तो कई पहलू हैं जिन पर एक पूरी पुस्तक ही लिखी जा सकती है। साहस, प्रतियोगी स्वभाव, उत्तेजना, हिंसा, स्वार्थ, आत्म-श्रेष्ठता का भाव या अहंकार इन सबसे बच्चे कैसे विकसित होते हैं इन तत्वों पर विमर्श ही बाल-विमर्श के मुख्य बिंदु होने चाहिए। विकास का अच्छा एवं खराब मार्ग समझाने का भी यह समय है।

मदाम माण्टेसरी ने बच्चों को लेकर गहन चिंतन किया था। वे बच्चों के मन को 'गृहणशील-मन' कहती थीं। बाल-विमर्श की सामाजिक, शैक्षिक मनोवैज्ञानिक और सर्जनात्मक परम्परा का अभाव ही दिखाई देता है। शिक्षा के जितने भी कार्यक्रम या सेमिनार होते हैं, उनमें बच्चों को लेकर चिंतन कम और पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक, प्रशिक्षण, परीक्षा आदि पर ही अधिक जोर दिया जाता है। माण्टेसरी ने बच्चे के कद (हाइट) आकार (शेप), उसके एन्द्रिय रूप, उसके रंग आदि को लेकर विस्तृत विचार किया है। माण्टेसरी से प्रभावित होकर भारत में गिजुभाई बधेका ने भी यही काम किया। गिजुभाई मूल रूप से तो बेरिस्टर थे और दक्षिण अफ्रीका में वकालत करते थे। गाँधी जी जब दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे तो गिजुभाई भी साथ आ गए और बापू से पूछा मैं क्या काम करूँ। गाँधी जी ने कहा आप विद्वान हैं आप शिक्षा का काम करें और बच्चों को पढ़ाएँ, उनकी समस्याओं, समझ, व्यवहार, बुद्धि, क्रियाएँ, मनोरंजन आदि को लेकर काम करें। इसलिए गिजुभाई ने गुजरात के भावनगर में बालमंदिर 'दक्षिण मूर्त्ति' की स्थापना की और बच्चों के लिए एक ऐसी क्रियात्मक पुस्तक लिखी जिसका नाम 'दिवास्वप्न' है। यदि दिवास्वप्न को लेकर ही विमर्श किया जाए तो उसके अन्तरानिहित अर्थ को समझा जा सकता है। दिन में सपने देखना मुश्किल है, उसी प्रकार बच्चों के जीवन और कार्य को भी समझना एक कठिन चुनौती है। दिवास्वप्न को आनंद का, मनोरंजन का, प्रेम का, सहयोग का, तरह तरह की क्रियाओं, खेलों का ऐसा स्वप्न गिजुभाई ने बना दिया कि प्रत्येक बच्ची-बच्चा दिन में भी आनंद, प्रेम, सहयोग और खेल का स्वप्न देखने लगा। गिजुभाई ने जिस कठिन कार्य को सरल और संभव बना दिया, वैसा ही क्या किसी शिक्षक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक कार्यकर्ता, नेता आदि ने बनाया? यदि हां तो कैसे और यदि नहीं तो क्यों नहीं? इन प्रश्नों को लेकर बाल विमर्श के अनेक तत्व तय किये जा सकते हैं। बाल-विमर्श के लिए कुछ ऐसे विचार बहस में रखे जा सकते हैं -

1. बच्ची-बच्चे की शारीरिक संरचना
2. बच्चों की मानसिक स्थिति
3. बच्चों का एन्द्रिय संवेदन-तंत्र
4. बच्चों की मूल प्रवृत्ति
5. बच्चों का बुद्धि कौशल
6. बच्चों का परिवेश, पर्यावरण एवं पारिवारिक जीवन
7. बच्चों का क्रियात्मक और रचनात्मक व्यवहार

आजकल विमर्श शब्द का फैशन है। स्त्री-विमर्श, पर्यावरण-विमर्श, संस्कृति-विमर्श, साहित्य-विमर्श, शिक्षा-विमर्श, दलित विमर्श आदि विमर्शों के साथ 'बाल-विमर्श' भी रखा जाता है। इन विमर्शों से एक लाभ यह हुआ कि समाज, सत्ता और राजनीति के स्तर पर कुछ चेतना पैदा हुई और इन सबके प्रति चिन्तन के साथ कार्यक्रम भी तैयार हुए। 'बाल-दिवस' वैसे तो भारत में पं. नेहरू के जन्म दिवस पर मनाया जाता है मगर उस दिन केवल मनोरंजन या शैक्षिक कार्यक्रमों के अलावा कोई सार्थक विमर्श नहीं होता। इतना अवश्य है कि अब ज़रा बच्चों के भरण-पोषण, विकास, शिक्षा, कार्य, व्यवहार, मनोरंजन, बाल-साहित्य, खेल को लेकर चेतना पैदा हुई और 'अंतरराष्ट्रीय बाल-दिवस' जैसा विचार पैदा हुआ। बच्चों के प्रति प्रेम सम्मान और उनकी रुचि पर विचार हुआ, उनके स्वास्थ्य के प्रति भी चेतना जागी। बाल-मृत्यु की दर कम हुई, पोलियो, चेचक, खसरा, डायरिया, निमोनिया, विकलांगता(दिव्यांगता) आदि की चिकित्सा से बच्चों को सुरक्षित और स्वस्थ रखने का मनोविज्ञान परिवारों में पैदा हुआ। बावजूद इसके अफ्रीका, भारत या एशिया के अनेक देशों में आज भी भूख एक समस्या है, स्वास्थ्य भी समस्या है, बाल-मृत्यु, बाल-शिक्षा, बच्चों का शारीरिक मानसिक, बौद्धिक विकास भी समस्याएँ हैं। इसलिए अब ज़रूरी है कि केवल विमर्श तक ही सीमित न रहा जाए बल्कि बालकों के जीवन, विकास संस्कार, व्यवहार, मनोरंजन, खेल, शिक्षा, पारिवारिक स्थिति, आर्थिक पक्ष, अवसर आदि को लेकर एक क्रमबद्ध कार्यक्रम तैयार किए जाएँ ताकि कोठारी कमीशन (शिक्षा आयोग-1964-66) जो कहा था कि ''भारत के भविष्य का निर्माण स्कूल की कक्षाओं में हो रहा है।'' यह वाक्य ही ऐसा है जिस पर विमर्श के साथ बच्चों के भविष्य की रूपरेखा या रोड-मेप तैयार किया जा सकता है।

एक महत्त्वपूर्ण यथार्थ या तथ्य ध्यान में रखना आवश्यक है। स्कूल, शिक्षा, परिवार, पर्यावरण, परिवेश ये सब विषय उनके लिए हैं जो शिक्षा को भविष्य की आर्थिक गारंटी मानते हैं और खाते-पीते या संभ्रान्त घरों के बच्चे हैं। विमर्श तो होना चाहिए गरीब से गरीबतम बच्चों के लिए। गाँधी कहते थे हमारा विकास देश के अंतिम गरीबतम, अभावग्रस्त व्यक्ति की आँख का आँसू पोंछने तक जाना चाहिए। इसी प्रकार हमारा विमर्श भी उस वंचित, शोषित, उपेक्षित, पीड़ित, भूखे, फटेहाल बच्चों के जीवन तक पहुँचना चाहिए जिनका जीवन हम सामाजिक और राजनीतिक संवेदना के साथ अच्छा बना सकें और उन्हें आत्मनिर्भर जीवन देकर स्वाभिमानी बना सकें। विमर्श केवल बातचीत का संभ्रान्त मुहावरा न बने बल्कि कार्यक्रमों को कर्म में बदलने का मार्ग भी प्रशस्त करे।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*

कमल किशोर गोयनका

हिन्दी बाल साहित्य के शिखर व्यक्तित्व

हिन्दी में बाल साहित्य के प्रति उपेक्षा का भाव है। हिन्दी के आलोचकों ने बाल साहित्य को काव्य, कथा एवं नाटक साहित्य के समान गम्भीरता के साथ नहीं लिया, यद्यपि यह सच है कि बड़े-बड़े साहित्यकारों ने बाल साहित्य के महत्त्व को समझा और बच्चों के लिए साहित्य लिखा। हिन्दी में प्रकाश मनु एक ऐसे आलोचक हैं जो बाल साहित्य के प्रेमी हैं, और उस पर महत्त्वपूर्ण कार्य करते रहे हैं। अभी उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने बाल साहित्य के विकास और समृद्धि के लिए उन्हें बाल साहित्य का दो लाख का पुरस्कार प्रदान किया है। प्रकाश मनु की दो पुस्तकें 'बाल कविता का इतिहास' तथा 'बाल साहित्य का इतिहास' के बाद उनकी तीसरी पुस्तक 'हिन्दी बाल साहित्य के शिखर व्यक्तित्व' प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण विभाग, भारत सरकार ने अभी प्रकाशित की है। इस प्रकार हिन्दी के बाल साहित्य पर निरन्तर तथा महत्त्वपूर्ण कार्य करने के कारण वे बाल साहित्य के सबसे बड़े अध्येता के रूप में प्रसिद्ध हो गये हैं।

'हिन्दी बाल साहित्य के शिखर व्यक्तित्व' में 25 शिखर बाल साहित्यकारों पर लेख हैं। इनके कवि, कथाकार तथा नाटककार आदि विधाओं के बाल साहित्यकारों को चुना गया है। इसमें आठ पृष्ठों की एक भूमिका है जो प्रकाश मनु ने लिखी है। इसका शीर्षक है- 'बाल साहित्य के शिखर व्यक्तित्व और बड़ी उपलब्धियाँ'। यह भूमिका महत्त्वपूर्ण है। इसमें बाल साहित्यकार एवं बाल साहित्य की श्रेष्ठता तथा बच्चों में उसकी लोकप्रियता तथा हिन्दी के शिखर लेखकों के बाल साहित्य का गम्भीरतापूर्ण विवेचन है। प्रकाश मनु के इन विचारों से मेरी सहमति है कि बाल साहित्य भाषा को समृद्ध तथा संवेदनाओं के संसार को विस्तृत करता है। बाल साहित्य लिखने और पढ़ने दोनों में 'जादुई सुख' है। लेखक बाल साहित्य लिखकर अपने बचपन को पुन: जीता है और बच्चों से जुड़ेकर भविष्य के साथ जुड़ता है। आज परिस्थितियाँ बदली हैं, किन्तु बच्चों को 'जादुई फंतासी' और 'परियों के संसार' से जुड़कर आज भी सुख मिलता हैं और कल्पना का संसार रूप लेता है। बच्चों के लिए कोरा यथार्थ उबाऊ होता है लेकिन वह 'मनोरम फंतासी' में ढलकर आकर्षक और अर्थपूर्ण हो जाता है। अच्छा बाल साहित्य कृत्रिम नहीं होता, उसमें प्रकृति की तरह निर्मल पवित्र और नदी की कल-कल की तरह संगीतमय और प्रवाहमान होता है।

प्रकाश मनु ने प्रेमचंद को पहला बाल साहित्यकार माना है जो उपलब्ध प्रमाणों से सत्य है।

प्रेमचंद ने सात बाल पुस्तकें लिखीं- 'महात्मा शेखसाढ़ी' (1917), 'राम चर्चा' (1928), 'जंगल की कहानियाँ' (जनवरी 1936), 'कुत्ते की कहानी' (जुलाई 1936), 'दुर्गादास' (1938) तथा दो भागों में, 'कलम, तलवार और त्याग' (1940)। इन बाल पुस्तकों को संकलित करके मैंने 'प्रेमचंद : समग्र बाल साहित्य' पुस्तक में प्रकाशित कराया और पहली बार प्रेमचंद का सम्पूर्ण बाल साहित्य पाठकों तक पहुँचा। प्रेमचंद ने पराधीनता काल में ये पुस्तकें लिखी थीं और वे चाहते थे कि बच्चों में प्रेम, सेवा, त्याग, परोपकार, उत्सर्ग, कर्मठता, क्षमा, वीरता, देश-प्रेम आदि की प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हों और वे श्रेष्ठ भारतवासी बनें। प्रकाश मनु ने प्रेमचंद के अतिरिक्त श्रीधर पाठक, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर रामनरेश त्रिपाठी, सोहनलाल द्विवेदी, विद्याभूषण विभु, सभामोहन अवधिया, सुभद्राकुमारी चौहान, महादेवी वर्मा, अमृतलाल नागर, विष्णु प्रभाकर, ठाकुर श्रीनाथ सिंह, द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी निरंकारदेव सेवक, आरसीप्रसाद सिंह, जहूरबख्श, भूपनारायण दीक्षित, शकुंतला सिरौठिया, कन्हैयालाल मत्त, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, कमलेश्वर, रेखा जैन तथा दामोदर अग्रवाल के बाल साहित्य का विवेचन करते हुए उनकी उपलब्धियों को रेखांकित किया है। प्रकाश मनु ने इस प्रकार 70-80 वर्षों के बाल साहित्य में से कुछ शिखर बाल साहित्यकारों को चुना है जो उनकी 'शिखर' की परिभाषा में आते हैं। मेरी समझ में दो-चार नाम और जोड़े जा सकते थे, लेकिन वे शिखर पर हैं या नहीं, यह तो प्रकाश मनु ही कर सकते हैं।

मेरे विचार में प्रकाश मनु की यह पुस्तक हिन्दी बाल साहित्य को साहित्य की केन्द्रीय धारा में स्थापित करेगी तथा बाल साहित्य के प्रति गम्भीरता का भाव बढ़ेगा। मैंने अमेरिका के पुस्तकालयों में देखा कि वहाँ बच्चों के लिए हजारों पुस्तकें हैं, बच्चे आते हैं और वहीं पढ़ने बैठ जाते हैं। भारत में यह स्थिति कब आयेगी, इसके लिए प्रकाश मनु तथा उनकी यह नई पुस्तक एवं ऐसे ही प्रयास बच्चों की इस दुनिया का निर्माण कर सकते हैं। प्रकाश मनु बाल साहित्य के लिए समर्पित हैं। हमें प्रत्येक भाषा में ऐसे ही प्रकाश मनुओं की आवश्यकता है। हिन्दी के युवा लेखकों को भी बाल साहित्य में आना चाहिए और बच्चों तक बाल पुस्तकें पहुँचाने का उद्योग करना चाहिए। नई पीढ़ी में किसी को तो प्रकाश मनु बनना ही होगा।

सम्पर्क : *दिल्ली*

सुषमा यदुवंशी

बाल साहित्य में वैज्ञानिकता का समावेश

साहित्य सृजन राष्ट्र की सभ्यता, संस्कृति, देश, काल, परिस्थिति की पहचान कराता है। एकता, समरसता विश्व बंधुत्व, सद्भाव की प्रेरणा देता है, साथ ही मनोरंजन का भाव भी निर्मित करता है। साहित्य के प्रति लगाव का भाव बचपन से ही जन्म ले लेता है। एक बच्चा बाल साहित्य को पढ़कर उस रचना में डूब जाता है, आनंदित होता है। बाल साहित्य, साहित्य का अभिन्न भाग है जिसे हम अनदेखा नहीं कर सकते हैं। बाल साहित्य लेखन की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। सदियों से बाल कहानियाँ, कविताएँ अपनी अमिट छाप छोड़ती रही हैं, भले ही उनका स्वरूप मौखिक रहा हो। विश्व भर के किसी भी कोने की दादी -नानी ने अपने नाती-पोतों को कहानियाँ अवश्य सुनाई होंगी और उन कहानियों का प्रभाव बाल मानस पर अवश्य ही पड़ा होगा। आज भी हम अपना बचपन याद करते हैं तो उनमें सबसे मिठास भरा अनुभव वे कहानियाँ किस्से ही हैं जो हमने दादी-नानी के मुँह से सुने हैं और उनसे कुछ न कुछ पाया ही है, चाहे वह आनंद, मनोरंजन का स्वरूप हो या शिक्षा का।

बाल कहानियाँ-कविताएँ शिक्षा तो प्रदान करती हैं साथ ही साहस, बलिदान, त्याग, परिश्रम जैसे गुणों से बाल मन को प्रभावित भी करते हैं, यथार्थ से सामना करवाते हैं, भावी जीवन के लिए पथ प्रदर्शक बनते हैं। देश के निर्माण में मनुष्य के चरित्र के निर्माण में अपना अमूल्य योगदान देते हैं। बाल मन कोमल होता है बाल रचनाओं को पढ़कर, सुनकर वह अपनी एक अनोखी दुनिया में विचरण करने लगता है। बाल रचनाओं का आनंद लेते हुए वे विचारों प्रश्नों के संसार में गोते लगाने लगते हैं। चाहे वह चांद सितारों की बातें हो या गुड़िया गुड्डे की कहानी। इन्हीं विचारों प्रश्नों के साथ सामंजस्य बिठाते हुए वह बालक एक अच्छा पाठक तो बनता ही है साथ ही वह भाषा कौशल को भी अच्छे से जानने पहचानने लगता है। उसका बौद्धिक विकास तो होता ही है साथ ही उनके मन में उठे प्रश्नों विचारों को गति मिलती है। विशेषत: जब बच्चा विज्ञान गल्प कथाएँ पढ़ता है, समझता है तो उसकी रुचि विज्ञान की तरफ आकर्षित होती है जिससे बालक के मन में विश्लेषणात्मक, तर्कसंगत बोध, ज्ञानार्जन की ललक, तार्किक क्षमता, वैज्ञानिक खोजों के प्रति उत्सुकता बढ़ती जाती है एवं मनोरंजकता भी प्राप्त होती है। बाल विज्ञान साहित्य का उद्देश्य भी यही रहता है कि बच्चों के मानस पटल पर विज्ञान का विस्तार हो, अवलोकन क्षमता बढ़े।

विज्ञान कथा या अंग्रेजी में जिसे साइंस फिक्शन कहा जाता है वह ऐसे किस्से कहानी होते हैं जो

विज्ञान के वास्तविक अथवा काल्पनिक प्रभाव से बने प्रसंग को कहने की शैली में होते हैं किंतु उनके पीछे वैज्ञानिक सिद्धांत भी होते हैं जिसे विज्ञान गल्प भी कहा जाता है। विज्ञान गल्प कहानियों काल्पनिक कहानियों का स्वरूप होता है जो काल्पनिक हो सकती हैं किंतु उसके मूल में कोई ना कोई विज्ञान का सिद्धांत या अविष्कार छुपा होता है। विज्ञान लेखन की कसौटी पर उसका मजबूत सैद्धांतिक आधार ही वैज्ञानिक तथ्यों को समझने का है बिना विज्ञान कथा या यूँ कह लें विज्ञान गल्प का सृजन हो ही नहीं सकता। यह मानव में सोचने की दिशा प्रदान करती है। विशेष बात यह देखने में आती है कि जो बच्चे विज्ञान विषय से भयभीत रहते हैं या विज्ञान को जानने को इच्छुक नहीं रहते हैं उन्हें भी यह कथाएँ आकर्षित करती हैं और उनके अंदर विज्ञान के प्रति रुचि भी होती है। वैज्ञानिक दृष्टि संपन्न रचनाकार जिसे गहरे विज्ञान का बोध होता है वह विज्ञान साहित्य लेखन के साथ न्याय करता है। वह अनेक ऐसे विषय पर अपनी लेखनी का जादू चलाता है जिसे पढ़कर बच्चे मनोरंजन के साथ अपना ज्ञान वर्धन भी करते हैं।

बाल विज्ञान साहित्य खेल-खेल में उसे आसपास की दुनिया से परिचित कराता है, उसकी सुकोमल जिज्ञासाओं को शांत करता है और उसे कल्पना के पंखों के सहारे उड़ना सिखाता है। बिना बाल साहित्य के न स्वस्थ बच्चे की कल्पना की जा सकती है और न स्वस्थ समाज की। इसीलिए विश्व की जितनी भी प्रमुख भाषाएँ हैं, उनमें बाल साहित्य को बहुत महत्त्वपूर्ण दर्जा मिला है।

बाल साहित्य पढ़ने वाले बच्चों के भीतर उच्चस्तरीय चिंतन की क्षमता का विकास होता है। साहित्य के जरिए वे कई प्रकार की विषयगत जानकारियों को भी पढ़ते हैं। उदाहरण के लिए प्रारंभिक कक्षा में विद्यार्थियों को विज्ञान या सामाजिक विज्ञान विषय नहीं पढ़ाया जाता है लेकिन कई कहानियों, कविताओं इत्यादि के माध्यम से बच्चे इन विषयों में पढ़ाई जाने वाली सामग्रियों से कुछ हद तक अवगत हो जाते हैं जो आगे की कक्षाओं में उनके पूर्वज्ञान से जुड़ते हुए किसी मुद्दे को समझने में सहायक होता है।

बाल साहित्य पढ़ते हुए बच्चे कई तरह की घटनाओं से गुजरते हुए, परिस्थितियों के अनुसार उन्हें कुछ सवालों के जवाब मिलते हैं तो कभी वे खुद उलझे हुए अपने लिए जवाब तलाशते हैं। बहुत सारे घटनाक्रमों और मोड़ों से गुजरते हुए अपना विवेक स्वयं इस्तेमाल करना सीख जाते हैं। यहीं से बच्चों के भीतर तार्किक शक्तियों का विकास होना आरम्भ हो जाता है ।

बाल साहित्य बच्चों और शिक्षकों के बीच एक अच्छा संबन्ध भी बनाता है। यदि साहित्य कक्षा में प्रवेश कर जाए तो बच्चों और शिक्षकों को कई मुद्दों पर समृद्ध और सार्थक चर्चा करने का अवसर मिलता है। जो ज्यादातर बच्चों की रुचि और शिक्षकों को पढ़ाने वाले पाठ्यक्रम से जुड़ा हुआ हो सकता है। ऐसी स्वस्थ बातचीत कक्षा के लिये एक अच्छा वातावरण का निर्माण करती है जिसका प्रभाव पूरे स्कूल पर भी पड़ता है।

बाल साहित्य में वैज्ञानिकता का समावेश हुआ और साहित्य का विकास भी वैज्ञानिक तकनीक की प्रगति और साहित्य में इसके पदार्पण से संभव हो पाया है। इस प्रकार साहित्यिक गतिविधियों पर विशेषत: विज्ञान का महत्त्वपूर्ण बाल मन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है ।

सम्पर्क : *बालाघाट (म.प्र.)*

विजयलक्ष्मी सिंह

दुनिया का अनोखा स्कूल 'हिम्मतशाला'

आठवीं कक्षा यानी महज 13-14 वर्ष की उम्र, ये वो समय होता है जब किशोर जिंदगी का ककहरा सीखना शुरू ही करते हैं। इसी अपरिपक्व उम्र में चार बालकों ने अपने सहपाठी मोनू पर स्कूल के नजदीक खेत में बीयर की टूटी बोतल से कई वार किए। मोनू सौभाग्यशाली रहा पेट में काँच के टुकड़े घुस जाने के बाद भी बच गया। किंतु इन चार किशोरों के लिए 10 सितंबर 2012 को जीवन के सारे दरवाजे बंद हो गये। पुणे की मुळशी तालुका में पिरंगुट गाँव के सरकारी स्कूल ने इस घटना के बाद इन चारों को स्कूल से निकाल दिया। दो वर्ष किशोर सुधार गृह में रहने के बाद जब वे पिरंगुट वापस लौटे तो माथे पर अपराधी का टैग लग चुका था। गाँव के लोगों से मिल रही घृणा उपेक्षा शायद उन्हें वापस उसी अपराध के दलदल में धकेल देती यदि उनका हाथ थाम कर उन्हें सही राह 'हिम्मतशाला' ने न दिखाई होती। यह अनोखा 'हिम्मत विद्यालय' पुणे की मुळशी तालुका में अंबडवेट नामक गाँव में 'राष्ट्रीय सर्वांगीण ग्राम विकास संस्थान पुणे द्वारा संचालित किया जाता है। यह विद्यालय उन ड्रॉपआउट बच्चों को पढ़ाकर दसवीं बोर्ड परीक्षा उत्तीर्ण करवाता है जो अपराध, नशा व अन्य विडम्बनाओं का शिकार होकर अपनी पढ़ाई बीच में छोड़ देते हैं। कुछ बच्चे तो 10 से 12 वर्ष के लंबे अंतराल के बाद पुन: यहाँ से दसवीं पढ़ते हैं। संघ के पश्चिम महाराष्ट्र के प्रांत सेवा प्रमुख श्री अनिल व्यास एवं स्वयंसेवक नितिन घोड़के के प्रयासों से 15 जुलाई 2012 को 8 बच्चों से शुरू हुआ यह अनोखा विद्यालय, जिसे नाम दिया गया हिम्मत शाला। इस विद्यालय में सिर्फ एक ही कक्षा पढ़ाई जाती है दसवीं। यहाँ देश भर के विभिन्न बोर्ड से आए बच्चे पढ़ते हैं। यहाँ इन्हें पढ़ाई के साथ-साथ मोबाइल रिपेयरिंग, डेयरी पालन, खेती, विद्युत चालित यंत्र मरम्मत जैसे रोजगार परक प्रक्षिक्षण भी कराये जाते हैं। यहाँ से पढ़कर इन दिनों हिंजेवाड़ी आई.टी. पार्क में केटरिंग कंपनियों को चपाती सप्लाई करने के ठेके लेने वाला मनीष आठवले (परिवर्तित नाम) वही बालक है जिसने बियर की बोतल से मोनू पर सबसे ज्यादा वार किए थे। पुणे के प्रतिष्ठित कुलकर्णी परिवार के इकलौते बेटे सुशील से अब सह्याद्रि स्कूल के प्रिंसिपल को कोई शिकायत नहीं है। वर्षों पहले सुशील ने गुस्से में आकर स्कूल पिकनिक पर सिगरेट के लाइटर से पूरी बस को आग लगा दी थी। आज वही युवक नासिक के प्रतिष्ठित कॉलेज

से अपनी इंजिनियरिंग की पढ़ाई पूरी कर रहा है। इन बच्चों में आए परिवर्तन का श्रेय जाता है - विद्यालय की योग, अनुशासन व संस्कारों से परिपूर्ण दिनचर्या व राष्ट्रभाव से परिपूर्ण शिक्षा प्रणाली को। यह कहना है स्कूल के आरंभ से ही यहाँ मराठी विषय पढ़ाने वाले प्रदीप पाटिलज का। वे बताते हैं कि यहाँ बच्चों को नियमित व्यायाम व योग के साथ खेतों में भी काम करवाया जाता है। वे कहते हैं हम किताबी पढ़ाई से अधिक बल व्यावसायिक प्रशिक्षण पर देते हैं। यह सच है कि औद्योगिक विकास जीवन में समृद्धि के द्वार खोलता है परंतु विडंबना यह है कि कभी-कभी चुपके से विनाश भी उसी रास्ते से प्रवेश कर जाता है। पुणे से 40 कि.मी. दूर स्थित मुळशी तालुका में जब बहुत सारी फैक्ट्रियाँ खुलीं तो यहाँ की जमीन के दाम आसमान छूने लगे। अपनी जमीन बेचकर नए-नए लखपति बने लोग न खुद को सँभाल पाए न अपने बच्चों को। नतीजा ये हुआ कि ये किशोर कई तरह के नशे के शिकार होकर अपराध की राह पर चल पड़े। 2011-12 में हालात इतने बिगड़े कि मुळशी तालुका किशोर अपराधों में महाराष्ट्र में पहले स्थान पर पहुँच गया। दूसरी ओर राज्य सरकार के नियमानुसार आठवीं तक किसी बच्चे को अनुत्तीर्ण न करने की नीति के चलते नौंवी में स्कूल पर बोझ बन चुके पढ़ाई में बेहद कमजोर बच्चों को स्कूल फेल करने लगे। ऐसे कुछ बच्चों का हाथ थामा हिम्मत शाला ने। शाला के संचालक योगेश कोळवणकर बताते हैं कि कुछ बच्चे यहाँ ऐसे भी आते हैं जो नौंवी कक्षा में ठीक से पढ़ना तक नहीं जानते। कुछ तो 10 साल पढ़ाई छोड़ने के बाद यहाँ आते हैं। ऐसे बच्चों को दसवीं पास करने में दो से तीन वर्ष भी लग जाते हैं। वे संतोष काकड़े का उदाहरण देते हैं जिसने 21 वर्ष की उम्र में स्कूल में एडमीशन लिया। ड्रग्स की लत के शिकार इस युवा ने दो वर्ष की मेहनत के बाद चार विषय उत्तीर्ण कर लिए। अब वह ड्रग्स नहीं लेता, अपने घर में पिता के साथ खेती कर रहा है। गत् 8 वर्षों में 160 से अधिक बच्चों के उज्जवल भविष्य की नींव रखने वाला हिम्मत विद्यालय अपने आप में देश का अनोखा विद्यालय है।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*

कु. प्रीति जायसवाल

21वीं सदी के हिंदी बाल काव्य में जल की महत्ता

'जल से जीवन, जल ही जीवन, जल जीवन का दाता है।
जल संरक्षण कर ले मानव, जल ही भविष्य निर्माता है।'

जल ही जीवन है। जल मानव के लिए अत्यंत आवश्यक है। पृथ्वी के जन्म तथा मानव सभ्यता के विकास में जल की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। जल के बिना मनुष्य तथा किसी भी प्राणी का इस संसार में जीवित रहने की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। संपूर्ण चराचर जगत की रचना पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु इन पंच तत्वों से मिलकर हुई है। इन सभी तत्वों में जल का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। दैनिक जीवन में भी जल हमारे लिए अत्यावश्यक है। जल के बिना किसी भी कार्य को करना संभव नहीं है। नहाने, कपड़े धोने, घर की साफ सफाई करने, फसलों में पानी देने आदि बहुत से कार्यों के लिए जल की महत्ता है। जीव-जंतुओं, पशु-पक्षियों, वनस्पतियों, पेड़-पौधों, फसलों इत्यादि जो इस चराचर जगत में विद्यमान हैं, जल इन सभी के लिए आवश्यक तत्व है। हमारे चारों ओर फैली हुई हरियाली, फसलें फल-फूल इन सभी में जल ही के कारण जीवंतता दिखाई देती है। हमारी भारतीय संस्कृति में किसी भी शुभ कार्य को शुरू करने से पहले जल देवता का पूजन-अर्चन किया जाता है। जल के बिना यह संपूर्ण सृष्टि अधूरी है। अत: इस संपूर्ण चराचर जगत में जल का विशेष महत्त्व है। कविवर रहीम ने ठीक ही कहा है-

'रहिमन पानी राखिए बिन पानी सब सून।
पानी गए न उबरें मोती मानुष चून।।'

हिंदी के बाल काव्य रचनाकारों ने भी अपनी रचनाओं में जल की महत्ता को बता कर अपने कर्तव्य का निर्वहन किया है। अनंत प्रसाद 'रामभरोसे' की कविता 'इस धरती को स्वर्ग बनाएँ' में जल के महत्व से अवगत कराते हुए वे कहते हैं कि जल से ही जीवन का प्रत्येक कार्य पूर्ण होता है। हमें मिलजुल कर जल को बचाना चाहिए। जिससे कि हमारी भावी पीढ़ी सुरक्षित रह सके। बाल कविता के कुछ अंश प्रस्तुत हैं-

'जल जीवन है सच्चा धन है/ इससे ही पावन तन मन है
जीवन का हर काम जरूरी/पूर्ण करें जल की है धुरी
हमको है अभियान चलाना/मिलजुल कर जल हमें बचाना
आज करें यदि जल हम रक्षित/होगी पीढ़ी नई सुरक्षित'

सुरेश चंद्र 'सर्वहारा' ने अपनी कविता 'पानी का महत्त्व' में नदियों तथा जल-स्रोतों को गंदा नहीं करने तथा पानी को व्यर्थ न बहाने की सलाह दी है। पानी व्यर्थ बहाने से धरती के बंजर होने का डर है तथा मानव को अपनी प्यास बुझाने के लिए भी जल प्राप्त नहीं होगा। इसलिए अपनी बाल कविता में बालकों को वे विशेष रूप से पानी के महत्व को बता रहे हैं। कविता की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

'पूज रही थी जिनको सदियाँ/हमने पाटी वे सब नदियाँ
जल स्रोतों को गँदला करके/भूले गंग यमुना की सुधियाँ
कैसे हो भू-चूनर धानी?/जब हम व्यर्थ बहाते पानी।।...
मुश्किल होगी प्यास बुझानी/जब हम व्यर्थ बहाते पानी।।'

डॉ. दादू दयाल गुप्ता अपनी कविता 'बासी पानी' में जल को निर्मल बताते हुए बालकों को पानी की एक-एक बूँद को सहेजने के लिए प्रेरित करते हैं। यदि हमने आज जल की एक-एक बूँद को नहीं बचाया तो हमारी भावी पीढ़ियों को जल की किल्लत उठानी पड़ेगी। कविता की पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं-

'कल का पानी निर्मल ही है/उसके सब गुणधर्म सही हैं।
गंदा पानी हो तो बदलें/कल के लक्षण आज वही हैं।...
मम्मी बोली समझ गई मैं/ पानी बंद जीवन की ख्वारी।'

डॉ. राजेश रावल 'सुशील' अपनी कविता 'जल ही जीवन है' में बालकों को बताते हैं कि मानव जीवन में जल कितना महत्त्वपूर्ण है। पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं-

'स्कूल चल दी गुड़िया रानी/भर कर के बॉटल में पानी
मौसम गर्मी का भरी दुपहरी/मिली राह में एक गिलहरी।।
पानी को पीकर के गट-गट/आया होश गिलहरी को झट
बात एक गुड़िया ने जानी/पानी की कीमत पहचानी।।'

श्रीमती कांता भारती अपनी कविता 'पानी' में जल के महत्व को इस प्रकार समझाती हैं-

'पानी से हरियाली है।/पानी से खुशहाली है।
पानी से ही रौनक है।/पानी से ही लाली है।
कहती दादी नानी हैं।/बड़ा जरूरी पानी है।
व्यर्थ ना जाए बूँद कभी/बात यही समझानी है।'

रुद्रपाल गुप्त 'सरस' की कविता 'लाओ पानी' में जल को व्यर्थ नहीं बहाने तथा दैनिक जीवन में जल की उपयोगिता को बताते हैं-

'प्यास लगी तो पानी लाओ/मंजन करना लाओपानी
हमें नहाना लाओ पानी/कपड़े गंदे लाओ पानी
अपनी क्यारी माँगे पानी/खेती-बाड़ी माँगे पानी
सीख सुहानी मन में लाओ/ कभी न पानी मुफ्त बहाओ।।'

डॉ. मधुसूदन साहा अपनी कविता 'पानी में' जल को इस धरा पर अनमोल होने की बात बता रहे हैं-

समझ न आता क्यों इस जग में/पानी है अनमोल धरा पर
बेरहमी से खेला करते/क्यों इससे सब खेल हमेशा...
शायद अब तो खुल जाएगा/पानी का कंट्रोल धरा पर।।'

गौरी शंकर वैश्य 'विनम्र' ने अपनी बाल कविता 'अनमोल है जल' में जल की महत्ता को स्वीकार करते हुए जल को व्यर्थ नहीं बहाने तथा जल की एक-एक बूँद को अमृत समान मानने की बात कही है। जल का संरक्षण तथा जिस प्रकार मानव जीवन अनमोल होता है उसी प्रकार जल भी मानव के जीवन के लिए अनमोल है। पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

'जीवन सा अनमोल है जल/बूँद बूँद को अमृत मानो
यदि न बचाया संकट जानो/संरक्षण हित करो पहल...
आज भरोसे सुखमय कल/जीवन सा अनमोल है जल।।'

गौरीशंकर वैश्य 'विनम्र' अपनी एक और बाल कविता 'प्रकृति की ओर' में पर्यावरण को साफ एवं स्वच्छ रखने का सुंदर संदेश देते हैं साथ ही कविता के माध्यम से बालकों को जल के संरक्षण के लिए प्रेरित भी करते हैं बाल कविता का अंश-

'वातावरण को स्वच्छ बनाएँ।/जीव जंतु को नहीं सताएँ।
करे न पर्यावरण प्रदूषित।/जल संरक्षण पर दें जोर
आओ चलें प्रकृति की ओर।।'

हम कह सकते हैं कि बाल साहित्यकारों ने अपनी बाल कविताओं के माध्यम से जल की महत्ता को स्वीकार किया है। जल मानव एवं अन्य प्राणियों के लिए अत्यंत आवश्यक है। हमारे प्राणों का आधार जल ही है। इस धरा की हरीतिमा को बनाए रखने के लिए जल ही महत्त्वपूर्ण साधन है। जल के बिना किसी का भी जीवित रहना संभव नहीं है। वास्तविकता यह है कि जल ही जीवन है। अत: हमें बिना समय व्यर्थ गवाएँ जल के अपव्यय के नियंत्रण के साथ-साथ उसके संरक्षण के उपाय भी करना चाहिए। यदि समय रहते जल संरक्षण की ओर ध्यान नहीं दिया गया तो इस संपूर्ण चराचर जगत पर जीवन संभव नहीं रहेगा। हमें हमारी भावी पीढ़ियों के भविष्य को सुरक्षित रखने के लिए जल की महत्ता को समझना होगा।

'जल है तो कल है।'

सम्पर्क : *इंदौर(म.प्र.)*

बद्री प्रसाद वर्मा 'अनजान'

बाल साहित्य और बाल पत्रिकाओं का इतिहास

आज बाल साहित्य को पढ़ने वालों और खरीदने वालों की संख्या दिन प्रति दिन घटती जा रही है। इसका प्रमुख कारण है अखबारों से बच्चों का पन्ना-बाल जगत का गायब हो जाना। सारे अखबार वालों ने बच्चों का फीचर बन्द कर बाल साहित्य और बाल साहित्यकारों का गला घोंट दिया। आज अखबारों में सिनेमा की तस्वीरें देख कर बड़े तो बड़े बच्चे भी बिगड़ रहे हैं। सन् 1980 से 2000 तक सारे अखबार रविवार को साप्ताहिक फीचर निकालते थे, जिसमें जानकारी भरे लेख, कहानी, गीत, कविताएँ, बाल जगत में बच्चों की कहानियाँ, कविताएँ, लेख, पहेली, चुटकुले, चित्र और फोटो सब छपते थे। साथ ही महिलाओं के लिए एक पेज भी हमेशा निश्चित रहता था। अखबार के साप्ताहिक फीचर का पाठक को हर सप्ताह बेसब्री से इंतजार रहता था। मगर आज सारे अखबार के रविवारीय फीचर में ऐसा कुछ नहीं होता है जो पढ़ने योग्य हो। गोरखपुर से आज जन संदेश दैनिक जागरण, स्वतंत्र चेतना, अमर उजाला, राष्ट्रीय सहारा, हिन्दुस्तान, स्पष्ट आवाज, सिटी टाइम्स अखबार रोज निकल रहे हैं मगर किसी अखबार के रविवारीय फीचर में बच्चों की रचनाएँ नहीं छपती हैं। सन् 2006 से 2010 तक दैनिक जागरण में बालवाणी फीचर छपता था। इसी तरह अमर उजाला ने गोरखपुर से प्रकाशन शुरू करने पर पुरवाई फीचर का प्रकाशन शुरू किया जिसमें पूरा एक पेज बाल साहित्य की रचनाओं से भरा होता था। जो पाँच साल से बन्द है।

आज चेतना जन संदेश राष्ट्रीय सहारा ने शुरू में बच्चों का पन्ना दिया मगर सन् 2008 से बन्द हो गया। राष्ट्रीय सहारा का हर बृहस्पतिवार को आजकल फीचर आता है। इसमें पहले बच्चों की एक पेज पर रचनाएँ होती थीं जो अब नहीं छपती हैं। गोरखपुर शहर आज अखबारों का गढ़ बन गया है। मगर किसी भी अखबार के संपादक को बाल साहित्य से कोई लेना-देना नहीं। यहाँ के सारे अखबारों का फीचर दिल्ली, नोएडा से छप कर आता है। यहाँ से किसी भी अखबार का साप्ताहिक फीचर नहीं छपता है। अखबार ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा बच्चों की सामग्री हर घर में आसानी से पहुँचाया जा सकता है। मगर आज बाल साहित्य अपने अस्तित्व और भविष्य पर रो रहा है। इसके आँसू पोंछने वाला कोई नजर नहीं आ रहा है। बाल साहित्य का भविष्य अखबार वालों ने बक्से में बन्द करके रख दिया है। कुछ अखबार जो दिल्ली, इंदौर, जालंधर, चंडीगढ़, भोपाल से निकलते हैं उनमें बच्चों का पन्ना होता है मगर

वह पन्ना बस उसी शहर तक सिमट जाता है, जहाँ से छपता है। दिल्ली और जालंधर, पंजाब से अजीत समाचार, पंजाब केसरी, मिलाप, वीर अर्जुन इन अखबारों में बच्चों का पन्ना होता है। भोपाल से दैनिक भास्कर, इंदौर से नई दुनिया, नई दिल्ली से नेशनल दुनिया, नवोदय टाइम्स अखबार में बच्चों की रचनाएँ छपती हैं। चंडीगढ़ से निकलने वाला अखबार ट्रिब्यून भी बच्चों का पन्ना आज भी प्रकाशित कर रहा मगर स्थानीय पाठक ही इसका लाभ उठा रहे हैं। पहले सारे अखबार वाले बाल साहित्यकारों की रचना छपने पर प्रति और पारिश्रमिक भेजते थे, तथा अस्वीकृत रचनाएँ लौटाते थे, मगर वर्तमान संपादक रचना छपने पर न प्रति भेजते हैं न पारिश्रमिक देते हैं, न रचनाएँ वापस करते हैं। सारे अखबार के संपादक बाल साहित्यकारों का खुल कर हनन कर रहे हैं। कुछ अखबार जैसे अजीत समाचार ट्रिब्यून, नव भारत टाइम्स, हिन्दुस्तान, पारिश्रमिक तो भेजते हैं मगर प्रति नहीं भेजते हैं। नागपुर से निकलने वाला अखबार लोकमत समाचार 2018 तक रचना छपने पर प्रति पारिश्रमिक और अस्वीकृत रचनाएँ लौटाता था मगर आज कुछ भी देता-लेता नहीं है। बाल साहित्यकार अखबारों के संपादकों द्वारा रचनाएँ अस्वीकृत होने पर वापस न किए जाने से दुखी हैं। वे वापसी लिफाफा भेजते हैं तब भी रचनाएँ नहीं लौटाई जाती हैं।

सन् 70-80 के दशक में बाल साहित्य का बहुत बड़ा क्षेत्र था। उन दिनों बाल पाकेट बुक की खूब भरमार थी। लखनऊ से अल्का बाल पाकेट बुक तथा ज्ञान भारती पाकेट बुक तो नई दिल्ली से मनोज बाल पाकेट बुक निकलती थी। इन प्रकाशनों से हर महीने पाँच-छ: पुस्तकें छपती थीं। जिसे पाठकों को वी.पी.पी., द्वारा डाक से भेजा जाता था। पाठक इन पुस्तकों के सदस्य बन कर हर महीने पुस्तक मँगाते थे। पहले पुस्तकें बहुत सस्ती होती थीं। दो से पाँच रुपये में मिल जाती थीं। बाल पाकेट बुक की पुस्तकें लोग बड़े चाव से पढ़ते थे। मगर 1980 के बाद बाल पाकेट पुस्तकों का प्रकाशन बन्द हो गया। सारे प्रकाशक बन्द हो गए। सन् 1960 से 1980 तक भारत में हिन्दी पाकेट बुक और स्टार पाकेट बुक की खूब भरमार थी। इन प्रकाशकों की घरेलू लाइब्रेरी योजना चलती थी, जिसका सदस्य बनने पर हर महीने पुस्तक वी.पी.पी. द्वारा डाक से घर आ जाती थी। यह योजना बहुत कारगार सिद्ध हुई, मगर समय के कुचक्र से सब बन्द हो गया। स्टार पाकेट बुक बन्द हो गयी मगर हिन्द पाकेट बुक आज भी पुस्तकें प्रकाशित कर रही है। मँहगी पुस्तकों के प्रकाशन से आम पाठक कटते जा रहे हैं। नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया से सस्ते बाल साहित्य की पुस्तकें छप रही हैं मगर पुस्तकें हर पाठक तक नहीं पहुँच पा रही हैं। न सभी को जानकारी मिल पा रही है। अगर नेशनल बुक ट्रस्ट पाठक पुस्तक योजना बना कर सदस्य बनाए और हर महीने छपने वाली पुस्तकें पाठकों को घर-घर तक पहुँचायी जा सकती हैं।

पहले सन् 1924 से 1980 तक पटना से बालक पत्रिका निकलती थी। यह भारत की पहली बाल पत्रिका थी। इस पत्रिका ने बहुत सारे बाल साहित्यकारों को जन्म दिया। इस पत्रिका के संस्थापक और प्रकाशक संपादक आचार्य रामलोचन शरण थे। इस पत्रिका में हर लेखक को स्थान मिलता था तथा संपादक महोदय लेखक की रचना में गल्ती होने पर उसे सुधार कर प्रकाशित करते थे। बालक पत्रिका के सारे चित्र रंगीन होते थे। सन् 1924 में इस पत्रिका की कीमत मात्र 25 पैसे थे। फिर 50 पैसे फिर एक रुपया फिर दो रुपया हुआ। बालक पत्रिका के कार्यालय में मैं 1970 को गया था। वहाँ हमें बहुत आदर भाव मिला। बाल पत्रिका में हमारी बहुत सारी कहानियाँ, कविताएँ छपीं तथा सब पर हमें 10 से 25 रुपया

पारिश्रमिक मिल जाता था, जेब खर्च के लिए। बालक पत्रिका 60 साल तक छपने के बाद 1984 में बन्द हो गई। बालक के बाद पराग पत्रिका बाजार में आई। इस पत्रिका ने बाल साहित्य को खूब हवा दी। और बाल साहित्यकारों को खूब मान-सम्मान दिया। एक रुपये से आठ रुपये तक इस पत्रिका की कीमत रही। यह पत्रिका लगातार 40 साल तक निकलने के बाद बन्द हो गई। इस पत्रिका ने भी नये-नये बाल साहित्यकारों को प्रकाशित किया। बच्चे इस पत्रिका के दीवाने थे। और भारत ही नहीं विदेशों में भी इसके पाठक थे।

इसके बाद कलकत्ता से मेला पाक्षिक का प्रकाशन हुआ। आनंद बाजार पत्रिका ने इसे नवम्बर 1979 से प्रकाशित करना शुरू किया। संपादक नीरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती और योगेन्द्रकुमार लल्ला ने इस पत्रिका को बाल पाठकों तक पहुँचाया। इसकी कीमत एक रुपया थी। मगर यह पत्रिका कुछ वर्षों के बाद छपनी बन्द हो गई। फिर इलाहाबाद से सन् 1980 से बच्चों की यादगार पत्रिका अच्छे भैया का प्रकाशन शुरू हुआ। इसके प्रकाशक ही संपादक थे- सतीश चन्द्र अग्रवाल। इस पत्रिका की कीमत मात्र 3 रुपया थी। पत्रिका के चित्र पूर्ण रंगीन थे। इस पत्रिका की खास बात यह थी कि इसमें हर नये-पुराने बाल साहित्यकारों की रचनाएँ छपती थीं। किसी लेखक को निराश नहीं किया जाता था। पत्रिका में रचना छपने पर प्रति और पारिश्रमिक दोनों भेजी जाती थी। मगर अच्छे भैया का प्रकाशन भी सन् 1992 से बन्द हो गया। मधुमुस्कान पाक्षिक का प्रकाशन 1928 से शुरू हुआ और 2003 में बन्द हो गया। यह पत्रिका 65 साल तक छपने के बाद बन्द हो गई। इसकी कीमत 50 पैसे से शुरू हो कर 10 रुपये तक रही। इस बाल पत्रिका की विशेष खासियत थी कि इसके संपादक किसी भी लेखक को निराश नहीं करते थे। उनकी रचनाएँ सुधार कर छापते थे। यह पत्रिका सारे भारत में मिलती थी तथा विदेशों में भी इसके खूब ग्राहक थे। यह पत्रिका गुलाब हाउस मायापुरी नई दिल्ली से निकलती थी। इसके संपादक मोहिन्द कपूर थे। बाल साहित्य को **मधुमुस्कान** ने 65 साल तक जिन्दा रखा। **मधुमुस्कान** ने लेखकों की रचना छपने पर पारिश्रमिक भी खूब दी। आज इस पत्रिका के पुराने अंक हमारी यादें ताजा कर देते हैं।

लोटपोट साप्ताहिक ने बाल साहित्य को खूब परोसा/आज **लोटपोट** साप्ताहिक से पाक्षिक हो गई है। मगर 12 साल से इस पत्रिका में लेखकों के नाम से रचनाएँ नहीं छप रही हैं। इस पत्रिका का प्रकाशन 46 साल से नियमित हो रहा है। आज लोटपोट की कीमत एक रुपया से बढ़कर 15 रुपया हो गई है। लोट-पोट पाक्षिक के उतने पाठक नहीं जो सन् 2000 के दशक में थे। इस पत्रिका ने बिना लेखक का नाम छापे रचना का प्रकाशन जब से शुरू किया तब से इसके पाठक कटते गए। आज पत्रिका के पाठकों की संख्या हजारों में रह गई है। लोटपोट पाक्षिक का प्रकाशन- 5 मायापुरी फेस 1, नई दिल्ली 110064 से हो रही है। इसके संपादक अमन बजाज हैं। अगर लोटपोट फिर से लेखकों के नाम से रचना छापने का क्रम शुरू करे तो इसके पाठकों की संख्या बढ़ सकती है। लोक सम्पर्क विभाग हरियाणा से बच्चों की प्यारी पत्रिका नन्हें तारे मासिक का प्रकाशन 1980 से शुरू हुआ। इस पत्रिका की कीमत थी मात्र एक रुपया। इस पत्रिका के संपादक थे अनिल राजदान। नन्हें तारे में हर प्रदेश के लेखकों को स्थान मिला। पत्रिका चिरपरिचित बाल साहित्यकारों तक ही सीमित रही, आम पाठकों तक पत्रिका नहीं पहुँच पाई। नन्हें तारे में छपी हर रचना पर लेखकों को पारिश्रमिक दिया जाता था। मगर अफसोस की यह पत्रिका

1990 में बन्द हो गई। सरकारी पत्रिका का बन्द होना बाल पाठकों को खूब खला। यादगार के रूप में उत्तर प्रदेश शिक्षा प्रसार विभाग से एक पत्रिका नवज्योति मासिक का प्रकाशन होता था। यह पत्रिका नि:शुल्क पाठकों और प्राइमरी मिडिल स्कूलों को भेजी जाती थी। इस पत्रिका में बाल कहानियाँ, कविताएँ और लेख खूब छपते थे। इसका प्रकाशन 1953 से शुरू हुआ और 35 साल तक छपने के बाद बन्द हो गई। बाल पत्रिकाओं में चमाचम लल्लू, पंजू, शावक, लल्लू जगधर का लखनऊ से प्रकाशन हुआ मगर सभी पत्रिकाएँ बन्द हो गईं।

एक और बाल पत्रिका शक्तिपुत्र 5335 शोरा कोठी, पहाड़गंज, नई दिल्ली से छपती थी। इस पत्रिका की कीमत मात्र दो रुपया थी। इस पत्रिका के संपादक चिरजीव शास्त्री थे। यह पत्रिका भी जुलाई 1980 से छपनी शुरू हुई और जून 1987 में बन्द हो गई। बन्द होने वाली बाल-पत्रिकाओं में **समझ झरोखा** भी शामिल है। यह पत्रिका वन्या आदिम जाति कल्याण विभाग, राजीव गाँधी भवन, 5 श्यामला हिल्स, भोपाल (म.प्र.) से छपती थी। इस पत्रिका के संपादक रामदीन त्यागी थे। यह पत्रिका सन् 2005 से छपनी शुरू हुई और जून 2011 में बन्द हो गई। मात्र 7 साल में इस पत्रिका ने भारी यश और प्रसिद्धी हासिल कर ली थी। यह पत्रिका आज की किसी भी बाल पत्रिका के मुकाबले में श्रेष्ठ पत्रिका थी। पूरा पन्ना बहुरंगी था। और रचनाएँ ऐसी कि बार-बार पढ़ने को मन करे। इस पत्रिका ने नामी-गिरामी लेखकों के साथ नये लेखकों को भी खूब छपने का अवसर दिया। पत्रिका बाल साहित्यकारों में खूब सराही गई। पत्रिका के इतने ग्राहक बने थे कि यह पत्रिका बुक स्टालों पर कम ही दिखी। आज इस पत्रिका के बारे में बताते हुए कष्ट हो रहा है कि मध्य प्रदेश सरकार ने इस पत्रिका को बन्द करा कर बाल साहित्यकारों, बाल पाठकों तथा आदिम जाति के लोगों के साथ विश्वासघात किया है। इस पत्रिका का प्रकाशन पुन: शुरू होना चाहिए। पाठकों द्वारा इसके प्रकाशन की जोरदार माँग हो रही है। समझ झरोखा की कीमत 20 रुपया थी। यह पत्रिका रचना छपने पर लेखकों का अच्छा पारिश्रमिक भी देती थी। आज समझ झरोखा एक याद बनकर रह गई है।

वर्तमान समय में प्रकाशित होने वाली बाल पत्रिकाएँ-

बाल अखबार : हमारी किलकारी-बच्चों का अखबार बाल भवन, सैदपुर, राजेन्द्र नगर, पटना बिहार से छपता है। इसके संपादक हैं शिवानी, प्रीतिरानी, आकाश, रश्मि आदि। यह अखबार बच्चों द्वारा संपादित होता है। चार पेज के इस अखबार में समाचार, जानकारियाँ, संपादकीय, कविता, कहानी, चित्र पर्यटन, स्थलों की जानकारी आदि भरपूर होती है। इसकी कीमत चार रुपया है। यह अखबार पाँच साल से छप रहा है। बाल लेखकों की रचनाएँ खूब प्रकाशित की जाती हैं। इस अखबार को मँगा कर पढ़ा जा सकता है। आज बाल किलकारी के नाम से एक मासिक पत्रिका छप रही है। इसमें अच्छी रचनाएँ पढ़ने को मिल रही हैं। पत्रिका के वर्तमान संपादक हैं शिवदयाल, पत्रिका की कीमत है 25 रुपया।

अपना बचपन मासिक : यह 12 पेज का सम्पूर्ण अखबार है। इसमें सभी छोटे-बड़े लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित की जाती हैं। इस अखबार का स्तम्भ अपना बचपन और बाल साहित्यकारों की कहानी उन्हीं की जुबानी के अन्तर्गत बाल साहित्यकारों का अच्छा खासा परिचय मिल जाता है। अखबार पूरे परिवार के पढ़ने योग्य है। इस अखबार की कीमत पाँच रुपया है। यह सात साल से लगातार छप रहा है।

पत्रिका के संपादक महेश सक्सेना जी हैं। जो एक शिक्षक रहे और बाल साहित्यकार भी हैं।

स्पेक्ट्रम : पाक्षिक नई दुनिया, नई दिल्ली से छपने वाले अखबार के साथ यह सोलह पेज की बहुरंगी पत्रिका मुफ्त दी जाती है। इस पत्रिका में बाल कहानियों, कविताओं के अलावा हास्य कथाएँ, नाटक, तेनाली राम, कार्टून, पाठकों के चित्र, आदि प्रकाशित होते हैं। यह पत्रिका ए-19 ओंकारदीप बिल्डिंग, मिडिल सर्किल, कनाटप्लेस, नई दिल्ली से निकलती है। इसके संपादक हैं आलोक मेहता। इस पत्रिका में रचना भेजने पर न छपने की सूचना दी जाती है, न लेखकीय प्रति भेजी जाती है- न रचनाएँ लौटाई जाती हैं, न पारिश्रमिक दी जाती है। यह पत्रिका सिर्फ दिल्ली के पाठकों के लिए ही प्रकाशित की जाती है।

बाल भास्कर : पाक्षिक यह पत्रिका 6 द्वारका सदन, प्रेस काम्पलेक्स, एम.पी. नगर, भोपाल (म.प्र.) से छपती है। इसकी कीमत पाँच रुपया है। इस पत्रिका के संपादक रचना सक्सेना समंदर हैं। इस बहुरंगी पत्रिका में कहानियाँ, कविताएँ, काटून, कथा, जानकारियों की बातें पाठकों के बनाए चित्र छपते हैं। इस पत्रिका में रचनाएँ भेजने पर न स्वीकृति मिलती है, न रचनाएँ लौटाई जाती हैं। हाँ रचना छपने पर पारिश्रमिक जरूर मिल जाता है। पत्रिका का सदस्य बनने पर पत्रिका पढ़ने को मिल सकती है। इस पत्रिका में ईमेल से रचनाएँ भेजने पर प्रकाशित की जा रही हैं, जो लेखक डाक से रचनाएँ भेजते हैं उन्हें नहीं प्रकाशित किया जाता है। इससे हम काफी परेशान हैं।

बाल प्रहरी : त्रैमासिक यह पत्रिका जाखनदेवी, अल्मोड़ा, उत्तराखंड, 263601 से प्रकाशित होती है। पत्रिका के संपादक उदय किरौला हैं। पत्रिका की कीमत पन्द्रह रुपया है। इस पत्रिका में भारत के सभी बाल साहित्यकारों को उचित स्थान दिया जाता है तथा इसमें स्कूली बच्चों की रचनाएँ भी खूब छपती हैं। यह पत्रिका बुक स्टालों पर कहीं नजर नहीं आएगी। इसका वार्षिक सदस्य बनने पर ही पत्रिका पढ़ने को मिल सकती है। पत्रिका में उन लेखकों की रचनाएँ खूब छपती हैं जो इसके ग्राहक हैं। यह पत्रिका न रचना की स्वीकृति भेजती है न अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई जाती हैं। न लेखकीय प्रति भेजी जाती है। न पारिश्रमिक देते हैं। न पत्रिका बाल साहित्यकारों तक पहुँच पाती है।

अभिनव बालमन : त्रैमासिक पत्रिका पंच नगरी, ससानीगेट, अलीगढ़ 202001 से प्रकाशित होती है। पत्रिका की कीमत 25 रुपया है तथा संपादक श्री निश्चल हैं। इस पत्रिका में छोटे-बड़े सभी लेखकों की रचनाएँ पढ़ने को मिल जाएँगी। पत्रिका में वह सब कुछ छपता है जो छपना चाहिए। पत्रिका के संपादक निश्चल जी लेखकों को उनकी रचना की स्वीकृति वापसी तथा रचना छपने पर लेखकीय प्रति, पारिश्रमिक कुछ भी नहीं भेजते हैं। यह पत्रिका पाँच साल से छप रही है। मगर बुक स्टालों पर कहीं नजर नहीं आती है। बस इसका वार्षिक सदस्य बनने पर ही प्राप्त किया जा सकता है। इसमें सिर्फ सदस्यों को स्थान दिया जाता है।

बाल साहित्य समीक्षा : यह साधारण सी मासिक पत्रिका 109/309, रामकृष्ण नगर, कानपुर से प्रकाशित होती है। बच्चों के जाने माने बाल साहित्यकार डॉ. राष्ट्रबन्धु प्रकाशित करते हैं। यह पत्रिका 36 वर्ष से छप रही है। मगर इस पत्रिका को खरीदने वाला आम पाठक नहीं है। न पत्रिका बुक स्टाल पर बिकने लायक है। पत्रिका में इने-गिने-चुने लेखकों की रचनाएँ छपती हैं। इसकी कीमत 15 रुपया है।

पत्रिका में चित्र वगैरह नहीं छपते हैं तथा इसे पढ़ने वाले पाठकों की संख्या बहुत कम है। पत्रिका को सरकारी और प्राइवेट हर तरह के विज्ञापन मिलते हैं जिससे पत्रिका छापने का सारा खर्च निकल आता है। पत्रिका सितम्बर 2011 के बाद हमें पढ़ने-देखने को नहीं मिली। पत्रिका में रचनाएँ भेजने पर न रचनाएँ लौटाई जाती हैं न पारिश्रमिक भेजी जाती है। 36 वर्ष से छपने के बाद भी पत्रिका को आम पाठक नहीं जानते हैं। यह पत्रिका बन्द हो गई है।

बालस्वर : यह मासिक पत्रिका विगत 21 साल से नियमित छप रही है। पत्रिका का कवर पृष्ठ रंगीन होता है तथा अन्दर रचनाओं के साथ श्वेत-श्याम चित्र छपते हैं। पत्रिका में कहानियाँ, कविताएँ, लेख चुटकुले, कार्टून, जानकारियाँ सब होती हैं। इस पत्रिका के पाठक मॉरिशस, जापान, जर्मनी, चीन, रूस में भी हैं। विदेशी पाठकों को पत्रिका अनुदान में भेजी जाती है। भारत में इस पत्रिका के बहुत सारे ग्राहक हैं। इस पत्रिका में सभी छोटे-बड़े लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित की जाती हैं। पत्रिका की आय कम होने के कारण लेखकों को उनकी रचना छपने पर पारिश्रमिक नहीं देते हैं पर लेखकीय प्रति भेजी जाती है। मगर रचनाओं की स्वीकृति-अस्वीकृति नहीं भेजी जाती। यह पत्रिका सुमेर सागर, करोड़ीमल का हाता, गोरखपुर, 273001 (उ.प्र.) से प्रकाशित होती है तथा इसकी कीमत 15 रुपया है। वार्षिक शुल्क 251 रुपया है। पत्रिका बालस्वर के नाम मनीआर्डर, ड्राफ्ट भेज कर मँगायी जा सकती है। पत्रिका के संपादक हैं राजेश कुमार श्रीवास्तव। पत्रिका को पत्र भेज कर नमूना प्रति मँगाई जा सकती है।

बाल वाटिका : यह मासिक पत्रिका नंद भवन-कावाखेड़ा पार्क, भीलवाड़ा, राजस्थान से प्रकाशित होती है। इसकी कीमत 35 रुपया है। पत्रिका के संपादक डॉ. भैरूलाल गर्ग हैं। पत्रिका में बाल युवा दोनों तरह की रचनाएँ छपती हैं। पत्रिका में सदस्यों की रचनाओं को ही ज्यादा प्राथमिकता दी जाती है। पत्रिका में गुटबंदी की तरह लेखकों को छापा जाता है। इस पत्रिका का वार्षिक चन्दा चार सौ रुपया है। पत्रिका बुक स्टालों पर नहीं मिलती है। सिर्फ सदस्यों को ही पत्रिका भेजी जाती है। पत्रिका में रचना भेजने पर न स्वीकृति भेजी जाती है न वापस लौटाई जाती है। न रचना छपने पर लेखकीय प्रति भेजी जाती है न पारिश्रमिक देते हैं। सदस्यों के बलबूते पर पत्रिका छप रही है।

देवपुत्र : यह मासिक पत्रिका 40, संवादनगर, इंदौर (म.प्र.) से छप रही है। यह विश्व की सबसे अधिक संख्या में छपने वाली पहली बाल पत्रिका है। इसके दो लाख से ज्यादा ग्राहक हैं। यह पत्रिका सम्पूर्ण बहुरंगी छप रही है। इसकी कीमत 20 रुपया है तथा वार्षिक शुल्क 180 रुपया और आजीवन 1400 सौ रुपया है। पत्रिका में देश भर के बाल साहित्यकारों की रचनाएँ प्रकाशित होती हैं। पत्रिका में कहानी, कविताओं के अलावा लेख, चुटकुले, पहेलियाँ, चित्र कथाएँ, नियमित प्रकाशित होती हैं। यह पत्रिका रेलवे बुक स्टालों पर भी मिल जाती है। इस पत्रिका में रचना छपने पर प्रति और पारिश्रमिक दोनों दी जाते हैं तथा रचना की स्वीकृति-अस्वीकृति दोनों भेजी जाती है। पत्रिका एक बार पढ़ने के बाद बार-बार पढ़ने को मन करेगा। पत्रिका के संपादक रहे श्री कृष्ण कुमार अष्ठाना तथा कार्यकारी संपादक गोपाल माहेश्वरी वर्तमान में देवपुत्र का संपादन डॉ. विकास दवे कर रहे हैं। चालीस साल से नियमित छप रही है। इस पत्रिका के पाठक विदेशों में भी हैं।

बच्चों का देश : यह मासिक पत्रिका विगत बीस वर्ष से 7 उषा कालोनी, मालवीय नगर, जयपुर

(राजस्थान) से प्रकाशित हो रही है। इस बहुरंगी पत्रिका की कीमत 30 रुपया है तथा वार्षिक शुल्क तीन सौ रुपया है। पंचवार्षिक शुल्क 1200 सौ रुपया है। पत्रिका के वर्तमान संपादक संचय जैन हैं। पत्रिका में हर तरह की बाल रचनाएँ, लेख, चुटकुले, पहेलियाँ, चित्र कथा, यात्रा वृतांत पढ़ने को मिल जाएँगे। बाल समाचार भी छपते रहते हैं। पत्रिका में नये-पुराने लेखकों की रचनाएँ बराबर छपती रहती हैं तथा लेखकों को उनकी रचना की स्वीकृति-अस्वीकृति नियमित डाक से भेजी जाती है। लेखक की रचना प्रकाशित होने पर उन्हें लेखकीय प्रति और पारिश्रमिक दोनों भेजे जाते हैं। यह पत्रिका बुक स्टालों पर भी मिल जाती है। पत्रिका में एक-दो विज्ञापन पढ़ने को मिलेंगे। बच्चों का देश पत्रिका पूरे परिवार के सदस्यों के पढ़ने योग्य है। इसमें भी ईमेल से प्राप्त रचनाओं को ज्यादा स्थान दिया जा रहा है। डाक से भेजी रचनाओं को कम स्थान दिया जा रहा है।

बालहंस पाक्षिक : यह पत्रिका राजस्थान पत्रिका समूह की ओर से 5 ई झालान, संस्थानिक क्षेत्र, जयपुर (राजस्थान) से प्रकाशित होती है। पत्रिका के संपादक मनीष कुमार चौधरी और उप संपादक किशन शर्मा हैं। इस पत्रिका की कीमत 12 रुपया है तथा वार्षिक शुल्क 240 रुपया है। यह बहुरंगी पत्रिका भारत भर के हर बुक स्टाल पर मिल जाएगी। इस समय पत्रिका में कहानी, कविताएँ, कम जानकारी वाले लेख खूब प्रकाशित हो रहे हैं। दो इनामी प्रतियोगिता भी होती हैं। चित्रकथा, चुटकुले, माथापच्ची, चित्रमय बराबर प्रकाशित हो रहे हैं। यह पत्रिका 35 साल से नियमित प्रकाशित हो रही है। इस पत्रिका में गिने-चुने लेखकों की रचनाएँ हर अंक में प्रकाशित की जाती हैं। बाकी लेखकों की रचनाएँ बार-बार लौटा दी जाती हैं। लेखकों को उनकी रचना छपने पर पारिश्रमिक और लेखकीय प्रति दोनों भेजी जाती हैं। इसमें भी ईमेल से प्राप्त रचनाओं को ज्यादा स्थान दिया जा रहा है।

छोटू मोटू पाक्षिक : यह बाल पत्रिका भी राजस्थान पत्रिका प्रकाशन की ओर से प्रकाशित की जाती है। यह पत्रिका 8 साल से बराबर प्रकाशित हो रही है। इसकी कीमत चार रुपया है तथा वार्षिक शुल्क 96 रुपया है। यह पत्रिका भी 5 ई झालान संस्थानिक क्षेत्र, जयपुर 302004 से प्रकाशित होती है। इस पत्रिका में लेखकों की रचनाएँ न वापस लौटाई जाती हैं, न रचना छपने पर प्रति भेजी जाती है। पारिश्रमिक भर भेजा जाता है। इस पत्रिका में भी इने-गिने-चुने लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित की जाती हैं। यह विश्व की एक मात्र पत्रिका है जिसके संपादक का नाम प्रकाशित नहीं किया जाता है। पत्रिका में बाल कहानियाँ, चित्र कथा, ज्ञान प्रतियोगिता, नालेज पावर प्रकाशित होते हैं। कविताएँ नहीं प्रकाशित की जाती हैं। यह पत्रिका बुक स्टाल पर आसानी से मिल जाती है। यह पूरे परिवार के सदस्यों के पढ़ने योग्य पत्रिका है।

दुलारा नन्हा आकाश : इस मासिक पत्रिका का प्रकाशन विगत आठ साल से श्री यश प्रकाशन, 23 डुप्लेक्स, श्री जी वृन्दावन कालोनी, अमलीडीह, रायपुर, (छत्तीसगढ़) से हो रहा है। पत्रिका के प्रकाशक और संपादक ओंकार सिंह मूँदड़ हैं। यह पत्रिका बुक स्टालों पर खूब नजर आती है। पत्रिका की कीमत दस रुपया है। इसे सदस्य बन कर डाक से भी मँगाया जा सकता है। इस प्यारी और दुलारी पत्रिका में हर लेखक की रचनाएँ बराबर प्रकाशित की जाती हैं। किसी लेखक को निराश नहीं किया जाता है। अस्वीकृत रचनाएँ नहीं लौटाई जाती हैं तथा लेखकों को पारिश्रमिक नहीं दिया जाता है। इस पत्रिका में ढेर सारी कहानियाँ, कविताएँ, लेख, चुटकुले, जानकारी की बातें पढ़ने को मिलती हैं। इस पत्रिका को एक

बार पढ़ने के बाद बार-बार पढ़ने को मन करेगा। इस पत्रिका में नियमित छपने वाले लेखकों को पत्रिका नियमित भेजी जाती है। इस तरह की पत्रिका कोई दूसरी कहीं पढ़ने को नहीं मिलेगी। पत्रिका का कवर पृष्ठ रंगीन तथा अन्दर के चित्र श्वेत-श्याम होते हैं। पत्रिका के पते पर पत्र लिख कर पत्रिका मँगाई जा सकती है। अब यह पत्रिका बन्द हो चुकी है।

नन्हें सम्राट : जैसा नाम वैसा काम भी है क्योंकि इस पत्रिका में उन्हीं लेखकों, चित्रकारों की रचनाएँ, चित्र कथाएँ छपती हैं जिसे पत्रिका के संपादक ने पेटेन्ट कर रखा है। दूसरे बाल साहित्यकारों की रचनाएँ नहीं प्रकाशित की जाती हैं। इस सम्राटी पत्रिका में दूसरे लेखकों की रचनाएँ न प्रकाशित होती हैं न वापस लौटाई जाती हैं। वापसी लिफाफा भी रख लिया जाता है। संपादक को बार-बार पत्र भेजने पर भी रचनाओं के प्रकाशन वापसी की कोई जानकारी नहीं दी जाती है। संपादक महोदय मौन धारण किए नजर आते हैं। पत्रिका में जो रचनाएँ छपती हैं वह जादुई, तिलिस्मी और भूत-प्रेत वाली होती हैं। वृक्ष कथा तो सबसे बकवास लगती है। मगर पत्रिका संपूर्ण बहुरंगी होने के कारण आम पाठक इसे जरूर खरीद लेते हैं। यह पत्रिका बाल पत्रिकाओं में सबसे मँहगी है। इस पत्रिका की कीमत तीस रुपया है। इस पत्रिका का प्रकाशन दीवाना पब्लिकेशन प्रा.लि...6-1 मायापुरी, फेस 1, नई दिल्ली, 110064 से होता है। वार्षिक चंदा 250 रुपया है। पत्रिका के संपादक आनंद दीवान, रोहन दीवान, तान्या दीवान हैं। पूरा दीवान परिवार ही इसका सर्वेसर्वा है। सह संपादक की कुर्सी चित्रकार सुखवंत को दी गई है। पत्रिका में शुद्ध बाल रचनाओं की कमी खटकती है। 5 से 16 साल के बच्चों के लिए उनकी मनपसंद रचनाएँ नहीं छपती हैं। पत्रिका में जब कहानी प्रतियोगिता आयोजित होती है तो बाल सुलभ रचनाएँ पढ़ने को मिल जाती हैं। पत्रिका में कविताओं की कमी खलती है। खास कर तब जब कविता प्रतियोगिता समाप्त हो जाती है। पत्रिका में एक लेखक की तीन से चार रचनाएँ हर महीने पढ़ने को मिल जाती हैं। इस पत्रिका में रंग भरो प्रतियोगिता के अलावा दूसरी कोई प्रतियोगिता नहीं आयोजित होती है। पत्रिका में जिन लेखकों की रचनाएँ छपती हैं उन्हें बहुत थोड़ा सा पारिश्रमिक दिया जाता है। नन्हें सम्राट का प्रकाशन सन् 1987 से नियमित हो रहा है। पत्रिका बड़े शहरों के पाठकों तक सीमित है। गाँवों में पत्रिका के पाठक नाम तक इसका नहीं जानते हैं। बुक स्टालों पर पत्रिका अपनी शोभा बढ़ाती नजर आती है। पत्रिका में छोटे-बड़े लेखकों को स्थान मिले तो कुछ नयापन नजर आ सकता है तथा पाठकों को अच्छी और मनपसंद रचनायें पढ़ने को मिल सकती हैं।

पाठक मंच बुलेटिन : नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेस 11, वसंतकुंज, नई दिल्ली, 110070 से यह पत्रिका प्रकाशित होती है। पाठक मंच बुलेटिन एक ऐसी पत्रिका है जो हिन्दी और अंग्रेजी में प्रकाशित होती है। इस पत्रिका में कहानियाँ, कविताएँ, लेख, जानकारी भरे लेख, प्रकाशित होते हैं। पत्रिका में लेखक को उचित स्थान दिया जाता है। इस पत्रिका में एक लेखक की एक या दो रचनाएँ एक साल में प्रकाशित होती हैं। इस पत्रिका को सदस्य बन कर प्राप्त किया जा सकता है। इस बहुरंगी चित्रों वाली पत्रिका की कीमत 10 रुपया है तथा वार्षिक शुल्क 100 रुपया है। पत्रिका के प्रधान संपादक मानस रंजन महापात्र और उप संपादक दीपक कुमार गुप्ता हैं। यह पत्रिका 20 साल से नियमित प्रकाशित हो रही है। पत्रिका में रचना छपने पर अच्छा खासा पारिश्रमिक दिया जाता है तथा

अस्वीकृत रचनाएँ समय पर लौटा दी जाती हैं। पत्रिका पूरे परिवार के लिए पढ़ने योग्य है। पत्रिका मासिक है।

बाल भारती : इस मासिक पत्रिका का प्रकाशन भारत सरकार के प्रकाशन विभाग, कमरा नं.120, प्रथम तल, सूचना भवन, सी.जी.ओ. काम्पलेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली, 110003 द्वारा किया जाता है। आज यह पत्रिका बहुरंगी छप रही है। पत्रिका की एक प्रति की कीमत 15 रुपया है तथा वार्षिक शुल्क 160 रुपया है। तीन साल का शुल्क 420 रुपया है। इस पत्रिका का ग्राहक बन कर मँगाने में भारी बचत होती है तथा घर बैठे डाक से मिल जाती है। इस पत्रिका के संपादक राजेन्द्र भट्ट, आभा गौड़, प्रियंका कुमारी हैं। पत्रिका के हर अंक में कहानियाँ-कविताएँ, लेख नियमित प्रकाशित होते हैं। लेखकों की रचना छपने पर उचित पारिश्रमिक भी भेजा जाता है। लेखकीय प्रति भी भेजी जाती है तथा समय पर अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई भी जाती हैं। बाल भारती पत्रिका समय-समय पर कोई न कोई विशेषांक जरूर प्रकाशित करता है। पत्रिका में नये-पुराने लेखकों को उचित स्थान दिया जाता है।

बालवाणी : यह द्वैमासिक पत्रिका उतर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा 6, महात्मा गाँधी मार्ग, हजरतगंज, लखनऊ (उत्तर प्रदेश) से प्रकाशित होती है। पत्रिका के संपादक उदय प्रताप सिंह, डॉ. सुधाकर अदीब अनिल मिश्र तथा अमिता दुबे हैं। यह उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित की जाती है। पत्रिका की कीमत 15 रुपया है तथा वार्षिक शुल्क 80 रुपया और आजीवन शुल्क 1000 रुपया है। पत्रिका का मुख्य पृष्ठ बहुरंगी और लुभावना होता है तथा रचना के साथ छपने वाला चित्र दोरंगा होता है। चित्र बहुत अच्छे होते हैं। पत्रिका विगत 20 साल से प्रकाशित हो रही है। पत्रिका को मासिक किए जाने की माँग हो रही है। पत्रिका में नये-पुराने सभी लेखकों को स्थान दिया जाता है। सरकारी पत्रिका होने के नाते इसमें भी एक लेखक साल में एक या दो बार स्थान पा सकता है। पत्रिका में रचनाएँ भेजने पर अस्वीकृत रचनाएँ लौटाने का नियम नहीं है। रचना का स्वीकृति पत्र भी नहीं भेजा जाता है। पत्रिका में रचना छपने पर उचित पारिश्रमिक और लेखकीय प्रति जरूर भेजी जाती है। पत्रिका बुक स्टालों पर नहीं मिलती है। पत्रिका मँगाने के लिए सदस्य बनना पड़ता है।

हँसती दुनिया : इस बहुरंगी मासिक पत्रिका का प्रकाशन संत निरंकारी मंडल, संत निरंकारी कालोनी, दिल्ली-9 से विगत 46 साल से हो रहा है। पत्रिका के संपादक उप संपादक विमलेश आहूजा और सुभाष चन्द्र हैं। पत्रिका की कीमत 15 रुपया है तथा वार्षिक शुल्क 150 रुपया है। ग्यारह साल का शुल्क 1500 सौ रुपया है। इस बहुरंगी पत्रिका के ग्राहक भारत, नेपाल, यू.के., यूरोप, अमेरिका, कनाडा में भी हैं। दुनिया में जहाँ-जहाँ संत निरंकारी काम कर रहे हैं वहाँ-वहाँ इस पत्रिका को पढ़ा जाता है। पत्रिका में कहानियाँ, कविताएँ, लेख के साथ सामान्य ज्ञान प्रश्नोत्तरी, पहेलियाँ, रंग भरो प्रतियागिता होती है। पत्रिका में कोई कार्टून चित्र कथा नहीं प्रकाशित होती है। कवर पेज बहुत आकर्षक होता है। पत्रिका के संपादक द्वारा रचनाओं की स्वीकृति-अस्वीकृति भेजी जाती थी मगर अब नहीं भेजी जाती है। रचना छपने पर लेखकीय प्रति तथा पारिश्रमिक जरूर भेजा जाता है। पत्रिका बुक स्टालों पर नहीं मिलती है। इसे पढ़ने के लिए इसका सदस्य बनना बहुत जरूरी है। पत्रिका 5 साल से 18 साल के बच्चों के पढ़ने योग्य है। वैसे पत्रिका को मम्मी-पापा, दादा-दादी सभी पढ़ सकते हैं।

चंपक : पाक्षिक, जानवरों, पशु-पक्षियों जलचरों पर कहानियों वाली यह पत्रिका सम्पूर्ण भारत में तथा दुनिया के कई देशों में पढ़ी जाती है। पत्रिका भारत के हर बुक स्टाल पर आप को मिल सकती है। यह बच्चों की जग प्रसिद्ध पत्रिका है। इसकी हर कहानी को बच्चे और बड़े चाव से पढ़ते हैं। पहले पत्रिका छोटे आकार में छपती थी अब बड़े आकार में छप रही है। इस बहुरंगी पत्रिका में छपने वाले सारे चित्र बहुत मनमोहक होते हैं। पत्रिका को गाँव, शहर, महानगर के बच्चे नियमित पढ़ते हैं। इस पत्रिका में कहानियाँ, चुटकुले, मजेदार विज्ञान, मेनका आंटी के जवाब नियमित छपते हैं। मगर कविताएँ नहीं प्रकाशित होती हैं। कविताओं और लेख की कमी खलती है। इस पत्रिका में सिर्फ पत्रिका के पेटेन्ट लेखकों की रचनाएँ ही हर अंक में प्रकाशित की जाती हैं। दूसरे लेखकों की रचनाएँ नहीं प्रकाशित की जाती हैं। पत्रिका में रचना छपने पर लेखकीय प्रति, कटिंग और पारिश्रमिक भेजा जाता है। इधर के कई साल से रचनाएँ लेखकों को नहीं लौटाई जाती हैं। इस प्यारी पत्रिका में अगर नये-पुराने सब तरह के लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित होतीं तो लेखकों की सारी शिकायत दूर हो जाती। चंपक पाक्षिक पत्रिका समय-समय पर विशेषांक भी प्रकाशित करती है। इस पत्रिका की कीमत 25 रुपया है तथा वार्षिक शुल्क 280 रुपया है। पत्रिका को गाँव के लोग सदस्य बन कर डाक द्वारा आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। इस पत्रिका का प्रकाशन ई-3, झंडेवाला एस्टेट, रानी झाँसी रोड, नई दिल्ली, 110055 से होता है। पत्रिका के संपादक परेश नाथ हैं। पत्रिका में उप संपादकों के नाम नहीं प्रकाशित किए जाते हैं। पत्रिका में छपने वाले लेखकों के नाम के साथ उनका पूरा पता, मोबाइल नम्बर नहीं प्रकाशित किया जाता है। जिसकी जरूरत महसूस हो रही है। यह पत्रिका पूर्ण व्यावसायिक है।

सुमन सौरभ : इसका प्रकाशन दिल्ली प्रेस द्वारा विगत 31 साल से हो रहा है। इसके संपादक भी परेश नाथ हैं। इस मासिक पत्रिका में भी उप संपादकों के नाम नहीं प्रकाशित होते हैं। पहले की तुलना में आज पत्रिका पूर्ण रूप से स्कूल-कॉलेज के विद्यार्थियों के लिए छप रही है। पत्रिका में मात्र तीन कहानियाँ छपती हैं तथा कविताएँ भूले-बिसरे पढ़ने को मिल जाती हैं। पत्रिका में सिर्फ पेटेन्ट लेखकों की रचनाएँ छापी जाती हैं। हाँ कभी-कभी नये लेखकों को स्थान मिल जाता है। पत्रिका में पूर्ण विराम की जगह बिन्दी का प्रयोग होता है। पत्रिका में कई तरह की प्रतियोगिताएँ होती हैं जिसमें विजेताओं को 50 रुपये की पुस्तकें भेजी जाती हैं। इस पत्रिका से लेखकों को उनकी रचनाओं की स्वीकृति-अस्वीकृति जरूर मिलती है। साथ ही रचनाएँ छपने पर पारिश्रमिक जरूर मिलता है। यह पत्रिका भी व्यावसायिक है तथा हर शहर के रेलवे, बस स्टेशनों पर आप को जरूर नजर आ जाएगी। पत्रिका की कीमत 25 रुपया है। यदि पत्रिका में कहानियों, कविताओं की संख्या 6-6 कर दी जाए तो पाठकों की नाराजगी दूर हो सकती है। कहानियाँ ऐसी होनी चाहिए कि बाल सुलभ मन को पसन्द आ जाएँ। वर्तमान में छपने वाली कहानियाँ, लेखों को आम पाठक पढ़ना पसंद नहीं कर रहा है। इसलिए इसमें भारी परिर्वतन की जरूरत है। पत्रिका को मँगाने और रचनाएँ भेजने का पता है- संपादक, सुमन सौरभ, ई-3, झंडेवाला एस्टेट, रानी झाँसी रोड, नई दिल्ली, 110055 है। सुमन सौरभ का 2018 से प्रकाशन बन्द है।

नंदन : यह मासिक पत्रिका हिन्दुस्तान टाइम्स द्वारा 50 साल से प्रकाशित हो रही है। जून 2014 में इसकी पूरे साल 50 वीं सालगिरह मनाई गई तथा पुरानी कहानियों, कविताओं का नये पाठकों को खूब

रसास्वादन कराया है। पत्रिका में परी कथाओं को बन्द करके जानवरों, पक्षियों, छोटे बच्चों पर लिखी गईं शिक्षाप्रद कहानियों से बच्चों में खुशी देखने को मिल रही है। इस पत्रिका को भारत के हर बुक स्टाल पर देखा जा सकता है। वर्तमान में इसकी एक प्रति की कीमत 30 रुपये है, सदस्य बनकर डाक से मँगाने पर इसका वार्षिक चन्दा 290 है तथा दो वर्ष का चन्दा 500 सौ रुपया है। पत्रिका का नया पता है- नंदन मासिक, आकृति बिल्डिंग, प्रथम तल, सी-164, सेक्टर 63, नोएडा, 201301 रचनाएँ भेज सकते हैं तथा सदस्य बनने के लिए सदस्यता शुल्क एच.डी. मीडिया लिमिटेड, पैसिफिक बिजनेस, पार्क फोर्थ फ्लोर, ए. 401, साहिबाबाद, इंडस्ट्रीयल, गाजियाबाद, (उ.प्र.) 201010 को भेजा जा सकता है। पत्रिका की नई संपादिका हैं जयंती रंगनाथन, प्रधान संपादक शशि शेखर हैं। सहायक संपादक विमलकांत चतुर्वेदी, अनिल कुमार जायसवाल, सुनीता तिवारी हैं। नंदन पत्रिका में बाहर के लेखकों की रचनाएँ कम संपादकीय विभाग में काम करने वाले लेखकों की रचनाएँ खूब छपती हैं। पत्रिका में नामी-गिरामी लेखकों की रचनाओं की भरमार होती है। अन्य लेखकों की रचनाएँ बार-बार लौटा दी जाती हैं। पत्रिका में कहानियों, कविताओं के अलावा पाँच प्रतियोगिताएँ भी होती हैं। नंदन पत्रिका से लेखकों को उनकी रचनाओं की स्वीकृति-अस्वीकृति की सूचना दो-तीन महीने में मिल जाती है तथा रचना छपने पर प्रति और पारिश्रमिक दोनों भेजे जाते हैं। यह पत्रिका भी पूर्ण व्यावसायिक है। पत्रिका में नये-पुराने लेखकों की रचनाएँ नियमित प्रकाशित हों तो पाठकों की नाराजगी कुछ हद तक दूर हो सकती है। पत्रिका हर उम्र के पाठक बड़े चाव से पढ़ते हैं। बच्चों की दो पत्रिकाएँ विदेश में मॉरिशस से छपती हैं। एक का नाम बाल सखा है, यह साल में एक बार छपती है। दूसरी पत्रिका रिमझिम है जो मासिक है। नंदन में भी ईमेल रचनाओं को ज्यादा स्थान दिया जा रहा है। डाक से भेजी रचनाएँ नहीं छप रही हैं।

बाल सखा : यह वार्षिक पत्रिका 12 साल से प्रकाशित हो रही है। प्रधान संपादक इंद्रमोहन भोला हैं, उप संपादक लालदेव अंचराज बिसुनदत मधु हैं। विदेश से निकलने वाली यह हिन्दी पत्रिका है। जिसकी कीमत मॉरिशस मुद्रा में दस रुपया है। इस पत्रिका में भारत सहित अनेक देशों के हिन्दी में लिखने वाले लेखकों की रचनाएँ छपती हैं। पत्रिका में रचनाएँ भेजने पर स्वीकृति-अस्वीकृति नहीं मिलती है। मगर रचना छपने पर प्रति जरूर भेज दी जाती है। छोटे आकार की यह पत्रिका चित्रों से सुसज्जित है। पत्रिका में बद्री प्रसाद वर्मा अनजान की रचनाएँ जरूर प्रकाशित होती हैं। पत्रिका अव्यावसायिक है तथा लेखकों का पारिश्रमिक नहीं दिया जाता है। पत्रिका इस पते पर पत्र लिख कर मँगा सकते हैं। संपादक बाल सखा, संपादक इन्द्रमोहन भोला इंद्रासन Bal Sakha Schoenfeld Road Riviere Duram Part Mauritius पत्रिका पूर्ण रूप से पढ़ने-पढ़ाने योग्य है।

रिमझिम-मासिक : यह पत्रिका महात्मा गाँधी संस्थान मॉरिशस से पाँच साल से नियमित छप रही। पत्रिका व्यावसायिक नहीं है। सदस्यों के बल पर पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। पत्रिका में बच्चों के लिए कहानियाँ, कविताएँ, लेख खूब होते हैं। पाठकों के पत्र भी छपते हैं। इस पत्रिका में भी भारत के बद्री प्रसाद वर्मा 'अनजान', विनोद चन्द पाण्डेय, डॉ. हुड़राज बालवाणी की रचनाएँ बराबर छपती हैं। पत्रिका में मॉरिशस सहित अनेक देशों के हिन्दी बाल साहित्यकारों की रचनाएँ भी छपती हैं। मुख्य पृष्ठ रंगीन तथा सुन्दर होता है। अन्दर के पृष्ठों पर रचनाओं के साथ श्वेत-श्याम चित्र छपते हैं। इस पत्रिका में

रचनाएँ भेजने पर लौटाई नहीं जाती हैं मगर रचना छपने पर संपादक द्वारा प्रति जरूर भेजी जाती है। पत्रिका के संपादक डॉ. हेमराज सुन्दर हैं। सहायक संपादक धनपाल राज हीरामन, राम फल हैं। पत्रिका इस पते पर पत्र भेज कर मँगा सकते हैं। रिमझिम पत्रिका का पता है–

Editor Rim Jhim- Dr. Hemraj Soonder Dept of Creative Viriting Publications Mahatma Gandhi Institute Moka Mauritius पत्रिका भारत में बिकने को नहीं आती है। विदेशी हिन्दी पत्रिका में रिमझिम का खूब नाम है। यह पत्रिका धरोहर के समान है। इसे हर उम्र के बच्चे पढ़ सकते हैं।

अक्कड़-बक्कड़ : यह मासिक पत्रिका छोटे स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों के लिए अति उपयोगी है। पत्रिका का प्रवेशांक सितम्बर 2014 को प्रकाशित हुआ। यह पत्रिका पढ़ने में कमजोर बच्चों को जरूर खरीद कर देना चाहिए। पत्रिका में छपने वाले चित्र और चित्र कथाओं से भी बच्चे भारी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। पत्रिका में छोटी कविताएँ और छोटी कहानियाँ भी शिक्षापद्र लगती हैं। तीन अंक में रचनाएँ संपादक द्वारा तैयार की गई हैं। देखना है लेखकों के नाम से रचनाएँ कब छपती हैं। बच्चों को क ख ग से लेकर ए.बी.सी. तक सारे अक्षरों से पढ़ाया जा रहा है। पत्रिका में मनमोहक लेख भी छप रहे हैं। नवम्बर 2014 के अंक में पंडित जवाहरलाल नेहरू पर आलेख छपा था। पत्रिका के मनमोहक चित्रों को देखकर इसे कोई भी खरीदने को लालाइत हो जाएगा। पत्रिका की कीमत 20 रुपया है। पत्रिका लेखकों से रचनाएँ माँग रही है। पत्रिका को रचनाएँ और सदस्यता शुल्क भेजने का पता है– संपादक, अक्कड़-बक्कड़, मासिक, एम.एम. पब्लिकेशन लिमिटेड, पोस्ट बाक्स नं. 226, कोट्टयम, केरल, भारत 686001। पत्रिका के संपादक का नाम प्रेमा मामेन माथेव है। पत्रिका हर बुक स्टाल पर मिल रही है। देखना है हमारी रचनाएँ कब छपती हैं।

कोपल : त्रैमासिक का पता है डी 68, निराला नगर, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

स्नेह : (मासिक) संपादक कमल कान्त अग्रवाल 26 बी, देश बन्धु भवन, प्रेस काम्पलेक्स, एम.पी. नगर, जोन 1 भोपाल पिन 462011 (म..प्र.)। कीमत 15 रुपया, वार्षिक 180 रुपया है।

चिरैया : (मासिक) संपादक–लता तपन भट्टाचार्य, बेला जैन, फ्लेट नं. 301, ईशान अपार्टमेंट, 13/2 स्नेहलता गंज, इन्दौर 450003 (म.प्र.)

सायकिल प्लूटो : संपादक सुशील कुमार शुक्ल, सी 404 बेसमेंट, डिफेन्स कालोनी, दिल्ली, 110024

पुस्तक संस्कृति द्वै-मासिक : नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेस 11, वसंत कुन्ज, नई दिल्ली, 110070।

उजाला मासिक : संपादक लायक राम मानव, साक्षरता निकेतन, पोस्ट मानस नगर, कानपुर रोड, लखनऊ 226023 (उ.प्र.)

इन पत्रिकाओं में भी बाल रचनाएँ प्रकाशित हो रही हैं।

सम्पर्क : गोरखपुर (उ.प्र.)

डॉ. फ़कीर चंद शुक्ला

बाल साहित्य की आवश्यकता तथा महत्त्व

बच्चों को सदैव कहानियाँ सुनने का शौक रहता है। छोटे बच्चे की इच्छा कुछ न कुछ जानने की अवश्य होती है। प्रत्येक वस्तु के बारे में जानने की प्रबल इच्छा बच्चे के मन में होती है और सदैव उसकी उत्सुकता एक प्रश्नचिन्ह बनी रहती है। कुछ भी देखते ही उसके मुँह से निकल पड़ता है-'यह क्या है?' ..और कई बार तो उसके प्रश्नों के उत्तर देना कठिन हो जाते हैं अथवा उसकी उत्सुकता का समाधान करते-करते व्यक्ति ऊब जाता है। मगर बच्चे का प्रश्न फिर भी अशोक की लाट की तरह खड़ा रहता है-'यह क्या है?'

पुराने जमाने से ही लोग बच्चों को कहानियाँ सुनाते रहे हैं। प्राय: बच्चे अपनी नानी अथवा दादी से कहानियाँ सुनते रहे हैं। इतिहास में भी कई बहादुरों का वर्णन आता है कि उनकी माताओं, दादियों तथा नानियों ने बचपन से ही उन्हें बहादुरी की कहानियाँ सुना-सुना कर निडर बना दिया था और बड़े होकर यह बच्चे महान शूरवीर योद्धा बने थे। शिवाजी की माता जीजा बाई भी उन्हें कहानियाँ सुनाया करती थीं जिनसे प्रभावित होकर शिवाजी ने बहादुरी की मिसाल कायम की थी।

कहानियाँ चाहे बहादुरी की थीं, जिन्न-प्रेत तथा पारियों की लेकिन यह बात अवश्य थी कि उनका विषय पीढ़ी दर पीढ़ी चला आता था अर्थात् बचपन में वे कहानियाँ बजुर्गों से सुनी थीं और बड़े होने पर वही कहानियाँ थोड़ा-बहुत परिवर्तन करके वैसे ही समाज में प्रचलित रहीं। उस समय न तो साइन्स इतनी विकसित हुई थी न समाचार-पत्र अथवा पत्रिकाएँ प्रकाशित होते थे तथा न ही टी.वी. व रेडियो थे जिनके माध्यम से वे नवीन जानकारी प्राप्त कर पाते। बस एक-दूसरे से सुन-सुना कर कहानियाँ अथवा बातें एक सीमित दायरे में ही घूमती रहती थीं।

जमाना बदल गया है। पहले परिवार बड़े होते थे। घर के पुरुष बाहर काम किया करते थे तथा महिलाएँ घर की चार दिवारी में ही रहती थीं। इसके अतिरिक्त बच्चों की संख्या भी अधिक होती थी। घर की महिलाएँ तो चूल्हा-चौका में ही व्यस्त रहती थीं। अन्य किसी काम के लिए उन्हें समय ही कहाँ मिलता था। इसलिए बच्चों की साहित्यिक उत्कंठा रात को दादी अथवा नानी से कहानियाँ सुन कर ही शांत होती थी।

मगर अब जमाने में परिवर्तन आ गया है। परिवार भी सिकुड़ गये हैं। महिलाएँ पुरुषों के कंधे से

कंधा मिलकर काम करती हैं। ... और जेट स्पीड की भाँति चलने वाले इस युग में रिश्ते-नाते भी जेट स्पीड की भाँति ही चलने लगे हैं। न तो माँओं के पास इतना समय होता है कि वे बच्चों को कोई कहानी सुना सकें क्योंकि अब वे भी नौकरी करती हैं तथा शाम को कार्यालय से घर लौटने के पश्चात् उन्हें गृहकार्य भी करना होता है। इसलिए वे बच्चों की ओर उस प्रकार ध्यान नहीं दे पातीं जैसा कि उनसे आशा की जाती है।

...और आजकल तो एकल परिवार हो गए हैं। दादी-नानी के पास भी बच्चे कम ही रहते हैं। आजकल बहुत कम ऐसे घर होंगे जहाँ संयुक्त परिवार जैसा माहौल होगा। इस प्रकार के वातावरण में बच्चों को साहित्यिक जानकारी के लिए पुस्तकों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। मगर बच्चों में इतनी परिपक्वता नहीं होती कि वे अपने लिए उपयोगी साहित्य का चुनाव कर सकें। इसलिए उनके लिए उचित साहित्य का चुनाव करना अभिभावकों की ही जिम्मेदारी बन जाती है।

बाल-साहित्य अर्थात् वह साहित्य जो बच्चों के लिए लिखा जाता है। लेकिन वास्तव में यह बच्चों से संवाद करना है चाहे हम उनसे बातचीत करें अथवा लिख-पढ़कर। मगर जब बच्चे छोटे होते हैं तब तो वे पढ़-लिख नहीं सकते। कहानियाँ अथवा बातें सुनाकर हम एक प्रकार से साहित्य के साथ जोड़ने का प्रयास कर रहे होते हैं। बाद में थोड़ा बड़ा होने पर रंग-बिरंगी तस्वीरों वाला साहित्य उन्हें आकर्षित करता है तथा उनके ज्ञान में वृद्धि करता है। आयु बढ़ने के साथ-साथ बाल-साहित्य का रूप तथा आवश्यकता भी बदलती रहती है। बच्चों के लिए साहित्य कैसा होना चाहिए के बारे में हम चाहे जितनी बातें कर लें, परिचर्चा कर लें, दलीलें दे दें मगर इस बात पर तो सभी को एकमत होना पड़ेगा कि बच्चों के लिए साहित्य मनोरंजन से भरपूर होना चाहिए। अगर बाल साहित्य मनोरंजन पूर्ण तथा बच्चों की इच्छानुसार होगा तभी उस साहित्य के माध्यम से हम ज्ञान-विज्ञान की कोई जानकारी उन्हें प्रदान कर सकेंगे अन्यथा हम अपने उद्देश्य में सफल नहीं होंगे। बच्चे का मन बहुत कोमल होता है, बिलकुल कच्चे घड़े की तरह...और इस मन में परिपक्वता लाने के लिए अत्यंत सूझ-बूझ तथा धैर्य की आवश्यकता होती है।

बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिए बड़े-बड़े अक्षरों में प्रकाशित तथा आकर्षित चित्रों वाला साहित्य होना चाहिए। रंग बिरंगी तस्वीरें देखकर बच्चा प्रसन्नचित हो जाता है और उसे अपने इर्द-गिर्द के बारे में जानकारी प्राप्त करने में भी सहायता मिलती है। चित्रों द्वारा पशु-पक्षियों की पहचान हो जाती है। विभिन प्रकार के रंगों के बारे में भी पता चल जाता है।

बड़ा होने पर उसकी जिज्ञासा और बढ़ने लगती है जैसे पुस्तक में कौआ अथवा मोर की तस्वीर देखकर उसके मन में यह जानने की भी इच्छा होती है कि कौआ कहाँ रहता है, मोर कैसे नाचता है। इसी प्रकार रेलगाड़ी कैसे चलती है। हवाई जहाज कैसे उड़ता है इत्यादि।

बच्चे कि आयु बढ़ने के साथ-साथ उसके मन में ज्ञान की पिटारी भी खुलने लगती है। इसमें कोई आशंका नहीं कि आजकल का बच्चा पुराने जमाने के बच्चों से कहीं अधिक सूझबूझ वाला है। बचपन में उसे परियाँ, भूत-प्रेत, राक्षस इत्यादि की कहानियाँ बहुत भाती थीं मगर बड़ा होने पर इन कहानियों की सार्थकता पर उसे शक होने लगता है क्योंकि वास्तव में न तो परियाँ होती हैं, न ही भूत-

प्रेत तथा राक्षस। इस प्रकार शनैः-शनैः बच्चों की दिलचस्पी ऐसी रचनाओं में कम होने लगती है और अगर उस दौरान उसकी रुचि की ओर विशेष ध्यान न दिया जाए तो उसकी पढ़ाई पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए माँ-बाप की जिम्मेदारी बन जाती है कि वे बच्चे की बढ़ रही आयु के अनुसार उसके लिए ऐसे साहित्य का चुनाव करें जिससे उसका मनोरंजन भी हो तथा उसको ज्ञान अथवा जानकारी भी मिल सके। दिमागी कसरत करवाने वाला साहित्य जैसे पहेलियाँ, क्रॉस-वर्ड्स इत्यादि लाभप्रद सिद्ध हो सकते हैं।

बच्चों के मानसिक विकास के लिए बाल-साहित्य की जितनी आवश्यकता है उतना ही इसे नज़रअंदाज़ किया गया है। बाल-साहित्य को बच्चों से दूर ले जाने में यह लोग अति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं-

माता-पिता : माँ को तो बच्चे की प्राथमिक पाठशाला कहा जाता है। मगर आजकल की माँएँ भी नौकरी करती हैं। ऑफिस से लौट कर उन्हें घर-गृहस्थी के काम भी करने पड़ते हैं। परिवार भी छोटे हो गए हैं। छोटे परिवारों में समय की सदैव कमी रहती है ...और जो थोड़ा बहुत खाली समय मिलता भी है तो वह टी.वी. की भेंट चढ़ जाता है। माँ-बाप को तो बच्चों की परीक्षा में अधिक से अधिक अंक प्राप्त करने की चिंता लगी रहती है और वे बच्चों पर भी मानसिक बोझ डाले रहते हैं।

अध्यापक : बच्चों के मन में बाल-साहित्य पढ़ने की ज्योति जलाने में अध्यापक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। अध्यापक चाहे तो मिट्टी को सोना बना सकता है। मगर यह तभी संभव है जब अध्यापक को स्वयं साहित्य पढ़ने की लगन हो। अगर अध्यापक स्वयं पढ़कर अपना ज्ञान बढ़ाएगा तभी वह बच्चों में साहित्य के प्रति लगाव उत्पन्न कर सकता है। मगर आजकल तो अधिकतर अध्यापकों को मात्र सिलेबस पूरा करने तक ही मतलब रह गया है। सिलेबस की पुस्तकों के अतिरिक्त उन्हें अन्य ज्ञानवर्धक पुस्तकें पढ़ने की रत्तीभर भी चाहत नहीं होती। जब इस प्रकार के अध्यापक स्वयं ही साहित्य नहीं पढ़ते तो वे बच्चों को कैसे प्रेरित कर सकते हैं!

ऑस्ट्रेलिया के अध्यापक बच्चों को पाठ्यक्रम की पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें पढ़ने के लिए भी प्रेरित करते हैं। कक्षा में बच्चों को बाल साहित्य की एक-एक पुस्तक पढ़ने के लिए दे दी जाती है... और एक सप्ताह पश्चात् प्रत्येक बच्चा अन्य सहपाठियों को बतलाता है कि उसने उस पुस्तक में क्या पढ़ा है और उस कहानी में उसे कौन-सा पात्र अच्छा लगा तथा क्यों लगा। उसे क्या पसंद नहीं आया लेकिन क्यों नहीं आया। इस प्रकार अध्यापक की उपस्थिति में बच्चे अपनी ओर से पढ़ी हुई पुस्तक के बारे में विचार-विमर्श करते हैं। अब आप स्वयं ही अंदाज़ा लगा सकते हैं कि इस प्रकार बच्चों के मन में साहित्य के प्रति लगाव पैदा करना कितना आसान हो जाता है।

लेखक : रचना पढ़ कर बच्चों को साहित्य से जुड़ना होता है। मगर अधिकतर बाल-साहित्यकार तो अपनी डुगडुगी बजाने में ही लगे रहते हैं। उनका तो यही प्रयास रहता है कि प्रत्येक समाचार-पत्र, पत्रिका में हर बार उसकी रचना ही प्रकाशित हो। लेकिन प्रभावशाली रचना लिखने में तो समय लगता है।

प्रकाशक : प्रकाशक एक प्रकार से ज़िम्मेवार भी है और नहीं भी है। प्रकाशक का काम तो

व्यापार करके पैसे कमाना है। होना तो यह चाहिए था कि प्रकाशक कम कीमत पर आकर्षक बाल-पुस्तकें प्रकाशित करें मगर होता इसके विपरीत है। प्रकाशक ने तो पैसे लेकर पुस्तक प्रकाशित कर देनी है, बेशक उसमें कुछ भी रोचक अथवा ज्ञानवर्धक न हो। इतना ही नहीं पुस्तकों का इतना मूल्य रख देते हैं कि खरीदने से पहले कई बार सोचना पड़ता है। और अगर बच्चों के लिए खरीद भी दें तो उनमें से अधिकतर में तो कुछ भी बच्चों को प्रभावित करने वाला नहीं मिलता। परिणाम यह निकलता है कि बच्चा अच्छी पुस्तकें पढ़ने से भी कन्नी काटने लगता है।

पुरस्कार : लेखक को पुरस्कार, मान-सम्मान मिलना अच्छी बात है तथा लेखकों का मान-सम्मान होना भी चाहिए। लेकिन कई बार पुरस्कार की राशि थोक के भाव लिखने के लिए विवश कर देती है। लेखक जेब से पैसे खर्च करके पुस्तकों की संख्या बढ़ाने पर लगा रहता है और फिर यह डिंडोरा पीटने लगता है कि उसकी इतनी पुस्तकें प्रकाशित हो गयी हैं इसलिए उसे वह पुरस्कार मिलना चाहिए। पंजाब सरकार शिरोमणि बाल साहित्य लेखक पुरस्कार में पाँच लाख की राशि प्रदान करती है। इस प्रकार पुरस्कार को मद्देनजर रख कर थोक के भाव लिखी पुस्तकों में पढ़ने योग्य मैटर कम ही मिलता है। यही कारण है कि आजकल बहुत से बाल साहित्य लेखक उत्पन्न हो गए हैं मगर पाठकों की संख्या पहले से भी कम हो गई है। यदि यह राशि पाँच या दस लेखकों को दी जाए तो बेहतर होगा।

तो अब क्या करें? : बालों (बच्चों)के मानसिक विकास के लिए बाल साहित्य की भी उसी प्रकार से आवश्यकता है जैसे शारीरिक विकास के लिए संतुलित आहार तथा व्यायाम की। मगर यह तभी संभव हो सकता है अगर हम शुरू से ही इस ओर ध्यान दें। छोटी आयु से ही बच्चों को बाल-साहित्य से जोड़ने के लिए प्रयास किया जाना चाहिए। अगर जामन लगाएँगे तभी दही जमेगा। शुरू से ही पाठ्यक्रम की पुस्तकों के साथ-साथ बाल-साहित्य से जुड़ने से ज्ञान में वृद्धि होना स्वाभाविक है। इस प्रकार का रुझान नवीन जानकारी प्राप्त करने के लिए उत्साहित करके ज्ञान में वृद्धि करता है। आज के प्रतियोगिता वाले युग में अगर आगे बढ़ना है तो निरंतर ज्ञान प्राप्त करते रहना आवश्यक है ...और यह लगन तभी लग सकती है जब छोटी आयु में ही साहित्य से मित्रता कर ली जाए।

1. आजकल के बच्चों का बौद्धिक अंश हमारे बचपन की तुलना में अधिक है क्योंकि उनके पास जानकारी प्राप्त करने के बेशुमार साधन हैं और कुछ नवीनतम जानने के लिए उनकी जिज्ञासा बनी रहती है। इसलिए बाल-साहित्य वैज्ञानिक कसौटी पर भी खरा उतरना चाहिए क्योंकि अब परियों, राक्षसों की कहानियों के पात्रों के अस्तित्व पर उनको विश्वास नहीं। आपकी विद्वता और रचना तभी रोचक तथा ज्ञानवर्द्धक सिद्ध होगी अगर वह सरल भाषा में दिलचस्पी बनाए रखने वाली होगी। कई बार हम बच्चों को बालिगों की भाँति शिक्षा देने लगते हैं जो उनकी उस समय की बुद्धि से मेल नहीं खाती।

बच्चों की आयु-अनुसार ही साहित्य लिखा जाना चाहिए। छोटे बच्चों के लिए तो फिर भी साहित्य मिल जाता है पर किशोरों के लिए साहित्य बहुत कम है। किशोरावस्था अर्थात् जब बच्चा जवानी में पैर रखता है, ज़िंदगी की वह नाजुक अवस्था होती है। नौजवान को अगर उचित मार्गदर्शन

मिल जाए तो वह आसमान छू सकता है मगर नज़रअंदाज़ रहने से गलत राह पकड़ कर अपने आने वाले जीवन को अंधकारमय भी बना सकता है।

2. बच्चों की आधुनिक आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर बाल-साहित्य लिखा जाना चाहिए। सरल, सरस तथा रोचक भाषा में लिखना चाहिए और सबसे विशेष बात यह कि शब्दों की बेवजह बमबार्डमेंट अर्थात् प्रहार नहीं करना चाहिए। बच्चों के स्तर पर आ कर लिखना चाहिए न कि अपनी विद्वता का दिखावा करना चाहिए।

3. यह विज्ञान का युग है। इसलिए विज्ञान के आविष्कारों के बारे में तथा उन वैज्ञानिकों की जीवनी के बारे में, जिन्होंने वे आविष्कार किए थे, समुचित जानकारी मिलनी चाहिए कि बचपन में वह विज्ञानी कैसे रहता तथा पढ़ता था, कैसे वह प्रगति करता गया तथा किस प्रकार उसने आविष्कार किए। इस प्रकार की जानकारी देने वाले साहित्य से शुरू से ही बच्चे के मन में कुछ अच्छा तथा अनोखा करने की उमंग पैदा हो जाएगी।

4. ऐसा साहित्य बच्चों को अवश्य पढ़ने के लिए देना चाहिए जिससे उसे अपने देश के बारे में जानकारी मिल सके। अपने देश के बहादुरों, देशभक्तों के बारे में, विशेषकर अपने देश के अलग-अलग प्रांतों, वहाँ के लोगों तथा संस्कृति के बारे में जानकारी मिल सके।

5. अभिभावकों तथा अध्यापकों को अपनी जिम्मेदारी का अहसास होना चाहिए। बच्चों के लिए समय अवश्य निकालना चाहिए और उन्हें बाल-साहित्य से जोड़ने का प्रयास करना चाहिए। बच्चों का मन बहुत कोमल होता है, एकदम कच्चे घड़े की तरह। और इस मन में परिपक्वता लाने के लिए बहुत ही सूझबूझ और धैर्य की आवश्यकता होती है।

6. सरकार को या तो स्वयं कम मूल्य पर बाल-पुस्तकें प्रकाशित करनी चाहिए अथवा बाल साहित्य लेखकों को समुचित ग्रांट देनी चाहिए ताकि कम कीमत पर बच्चों का मनपसंद साहित्य उपलब्ध हो सके।

सम्पर्क : *लुधियाना (पंजाब)*

आनन्द सिंघनपुरी

बाल साहित्य के हस्ताक्षर वसंत

बाल साहित्य जगत के कुशल चितेरे, राष्ट्रीय स्तर के ख्यातिलब्ध साहित्यकार श्री शंभूलाल शर्मा 'वसंत' जी का बाल साहित्य लेखन अलग तरीके का है। वे बड़ी से बड़ी बात को सरल, सहज शब्दों में आसानी से कह देते हैं। वे जिस शैली व शिल्प का प्रयोग अपने लेखन में करते हैं, वह औरों से सर्वथा भिन्न है। मेरा मानना है कि बाल साहित्य में शर्मा जी के अनुदान को पाठक निश्चय ही उनकी कविताओं को पढ़कर स्वत: अनुभव करने लगते हैं। अधिकतर बालसाहित्य उन्होंने हिन्दी की खड़ी बोली में ही लिखा है किन्तु कुछ पुस्तकें ऐसे भी हैं जो छत्तीसगढ़ी में लिखित हैं।

उनका सम्पूर्ण जीवन ग्रामीण पृष्ठभूमि की सुरम्य वादियों में व्यतीत हुआ। जहाँ का वातावरण शांत, घने वृक्ष, हरे-भरे धानों के लहराते खेतों से घिरा है तो प्रात: मुर्गे का बाँग देना, घर के आँगन में कबूतरों का आना, पक्षियों का चहचहाना, भौरों का गुनगुनाना, चौपाल में बैठ कर बातें करना आदि कहीं न कहीं प्राकृतिक दैवीय वरदान का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। इसीलिए शंभू शर्मा जी का उपनाम 'वसंत' उन पर सटीक बैठता है। नैसर्गिक व ग्राम्य परिवेश में स्थायी निवास, प्रकृति की निराली छटा, कल्पना की स्वच्छन्द उड़ान ने उनके साहित्य को उन वादियों में पहाड़ों से अधिक ऊँचाई प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

रायगढ़ शहर के जाने-माने साहित्यकार डॉ. बलदेव साव इनके बारे में लिखते हैं-'उनकी कविताएँ बच्चों से सीधे संवाद रचती हैं। थोड़े ही समय में शंभूलाल शर्मा 'वसंत' ने राष्ट्रीय स्तर की ख्याति अर्जित की है, इसके पीछे कारण है उनका अपना ग्राम्य परिवेश-प्रकृति की निराली छटा, कल्पना की स्वच्छन्द उड़ान। मात्रिक छंदों का वैविध्य एवं तारल्य संश्लिष्ट शब्दावली की जगह चित्र भाषा का वितान, जटिल विचारों की जगह सरल, तरल सौन्दर्यानुभूति कथ्य में नयापन, सधा हुआ शिल्प, यही वजह है शंभू बच्चों की ऐसी निराली दुनिया रचने में कामयाब हैं।'

वे आज भी अपना जीवन ग्राम्य परिवेश में सादगीपूर्ण व्यतीत कर रहे हैं। उनको शहरी हवा तनिक न भाई, दिखावे की जिन्दगी जीने में कभी विश्वास नहीं किया। वे धरातल पर रहते, मिट्टी की सौंधी खुश्बू को सीने से लगाकर मेहनत की कमाई में विश्वास करते हैं। भले ही ग्रामीण अंचल में रहते हों पर उनकी सोच वैश्विक स्तर की है, अनुकरणीय है। पेशे से शिक्षक होने के कारण भी बच्चों के प्रति जो स्नेह दिखलाई देता है तथा तुतलाती, दुधमुँहे बच्चों की बोली में भाषायी बोध भी परिलक्षित होता है। उनके भाषायी मनोविज्ञान को अच्छी तरह समझकर कविताओं के रूप में शब्दों में उकेरना अलग ही कला है।

एक उदाहरण देखिये-हाथी बल्ला ले मैदान में उतरा है। जिसकी बल्लेबाजी सब को चकित कर देने वाली है। इस दृश्य का सजीव चित्रण कितना मनोहारी लगता है-

ले बल्ला कैप्टन हाथी/उतरा जब मैदान में/ जोर-शोर से बजी तालियाँ/तब उसके सम्मान में/

बब्बर शेर की तेज गेंद पर/ऐसा किया प्रहार जी/ पलक झपकते गेंद जा गिरी/सात समुंदर पार जी।

बालगीत लिखना इतना सरल नहीं है, एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। वह भी जब बड़े व्यक्ति बच्चों की बात करें। बच्चों की स्मृति पटल में शीघ्र छप जाये उसके लिए रचनाकार को अपने उन बचपन की यादों में जाना पड़ता है जहाँ से गुजरे बरसों बीत चुके होते हैं। यूँ कहें स्वयं बच्चे बन अनुभव करना पड़ता है। कविता में रची काव्यवस्तु हमारे अंतर्निहित परिवेश पर अधिकतर केन्द्रित रहती है जिसे अपने भाषायी चमत्कारिक गुणों से सजा कला का प्रदर्शन मान लें अथवा विशेषता।

'वसंत' जी उन्मुक्त कंठ से सस्वर पाठ करते हैं तो सम्प्रेषणीयता और स्पष्ट हो जाती है। इससे यह बोध होता है कि जो पढ़ने से समझ में न आती हो उसे सस्वर गेय से प्रस्तुत करें तो मुद्रित शब्दों के भाव स्पष्ट हो जाते हैं, और स्वत: आकर्षित हो बच्चों को आनंद आने लगता है। एक कविता में दृश्य देखने को मिलता है कि बंदर मामा की खाँसी की उपमा देते शीघ्र उपचार कराने की बात करते हैं। सुंदर चित्रण के साथ वे कैसा भाव निरूपित करते हैं। इसका सुंदर उदाहरण देखिये -

बंदर मामा, बंदर मामा/हो कैसे वनवासी जी/ खों, खों, खों, खों हरदम करते/पाल रखे हो खाँसी जी।/ खाँसी का उपचार करा दें/देर हुई तो खैर नहीं,/ रिश्ते में मामा लगते हो/हम तो कोई गैर नहीं।

बाल साहित्य जगत की गहराइयों में झाँककर देखें तो बहुतेरे लोगों के दिमाग में 'पंचतन्त्र' या 'चंदामामा' का नाम कौंधने लगता है। बाल साहित्य मनोरंजन के साथ-साथ बच्चों के चरित्र निर्माण के लिए भी आवश्यक है। डिजिटल युग में पुरानी नीति कथाओं की तो नितांत आवश्यकता है। क्योंकि अक्सर बच्चे कहानियाँ सुनने तथा पढ़ने के बजाय मोबाइल, टीवी, कम्प्यूटर में ज्यादा समय व्यतीत करते हैं।

'वसंत' जी ने एक पायदान में कदम रख कर जीवन भर बाल साहित्य लेखन में कार्य किया। उसी के फलस्वरूप उनकी बाल कविताओं में प्रवाह और ताजगी नजर आती है। सच्चे अर्थों में यदि परखें तो उनके द्वारा बीच समन्दर से मोतियों व सीपों को चुनकर बाल शब्दों में ढाल कर सँजोना निश्चय ही श्लाघनीय कार्य है। कवि ने चंदा मामा तक को निमन्त्रण दे दिया है। इसे भाषा कौशल का चातुर्य कहें अथवा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम- चंदा मामा आना तुम/करना नहीं बहाना तुम/ शीतल किरणें बिखरा कर/अपना रंग जमाना तुम।/ कैसे रूप बदलते हो/हमें तनिक बतलाना तुम/ अपने अमृत के घट से/प्रेम-सुधा बरसाना तुम।/ चरखा काते जो बुढ़िया/उसका हाल सुनाना तुम/भू-तल पर हम भी चमकें/ऐसा मंत्र सिखाना तुम।

'वसंत' की भाषायी मिठास जीवन-दृष्टि और यथार्थ-चेतना को अभिव्यक्त कर रेखांकित करती है। इसीलिए कहा भी जाता है कवि जैसा देखता है वैसा लिखता है। तद्नुरूप समाज में घटित होने वाली प्रत्येक घटना उसके विचारों को, संवेदनाओं को, जीवन-मूल्यों को प्रभावित करती है।

जिस तरह हिंदी बालगीतों में इनकी पकड़ है वैसे ही ठेठ छत्तीसगढ़ी के प्रयोग करने में निपुण। यही कारण है कि कविता रोचक बनाने में वे कोई कसर नहीं छोड़ते। आमतौर पर छत्तीसगढ़ में छत्तीसगढ़ी भाषा का प्रयोग गिने-चुने व्यक्ति अथवा ग्रामीण अंचल वाले करते हैं। शहरी क्षेत्रों में हिंदी का ज्यादातर प्रचलन है। इससे छत्तीसगढ़ी भाषा के अनेक शब्दों को समझना आज के बच्चों के लिए मुश्किल हो जाता है जबकि यह हमारी आंचलिक भाषा है। हमें रोजमर्रा की भाषा के अनेक स्तर देखने को मिलते हैं इसी वजह से ग्रामीण स्तर के लोगों में आंचलिक शब्दावलियों का पुट रहता है।

कवि की कई रचनाओं में संवादात्मक जो स्वरूप है वह कल्पनाओं से परे है। कवि ने बिम्बधर्मिता का भरपूर पालन किया है। विषय वस्तु के विभिन्न आधार बिम्ब उनकी रचना में मिलेंगे। कुछ प्राकृतिक बिम्ब का जीवंत उदाहरण देखें कितने सजीव रूप में कहने का प्रयास किया है कि मैना पक्षी के वैवाहिक कार्यक्रम में अनगिनत पाहुन आये हुए हैं जहाँ पर भाँति-भाँति के पकवान, व्यंजन बने हुए हैं, जिसे पँडकी, कबूतर सभी उपस्थित मेहमानों को परोस रहे हैं। कोयल मधुर कंठ से वैवाहिक गीत गा कर सुना रही है। तोता पोथी पढ़ रहा और लिटिया-लिटाई पक्षी देखकर अति उत्साहित हो रहे हैं। आमों का झुंड, बागान स्वागत कर रहा है-

मैना के गउना,अब्बड़ हे पहुना/ परोसे कलेवा, पँडकी-परेवा।/ कोइली के गाना, पारत हे हाना/ बाँचत हे पोथी, सुआ येती-ओती।/ कुलकय रुक राई, लिटिया-लिटाई/ सब ल अमरईय्या, परघावय भइया।

इसके आलावा प्रतीक, मिथक और अलंकार भी प्रयुक्त हुए हैं। वहीं छंद निर्वहन में कोई कसर नहीं छोड़ी है। वे भलीभाँति जानते हैं छन्दों में बँधकर ही बाल कविता को आकार दिया जाये यह जरूरी नहीं। वे भावों को कैसे पिरोया जाये, उसे बारीकी से विश्लेषण कर कुछ न कुछ विशेष बात कहने में समर्थता रखते हैं। श्रेष्ठ कवि वही हैं जो अपने व्यक्तिगत जीवन में अधिक संवेदनशील हो और कवि होने के दिखावे से सदा दूर रहें। स्वत:स्फूर्तता और अनौपचारिकता का आधार स्रोत यही सहजता और संवेदनशीलता है। कविता का कलेवर, शैली व संप्रेषणीयता, सरलता के साथ-साथ सार्थक संक्षिप्तता किस तरह हो एक, मँजे कवि की विशेषता होती है।

हिंदी साहित्य के सुप्रसिद्ध साहित्यकार व आलोचक विजयेन्द्र जी लिखते हैं- 'कृत्रिम विचार परिदृश्य से मुक्त मनुष्य के स्वत:स्फूर्त पके हुए अनुभव को जो कविता अभिव्यक्त करेगी वही सम्प्रेषणीय होगी। केवल विचार कविता नहीं हो सकती। जब तक उसमें पकी अनुभूति न हो तब तक वह कविता व्यर्थ है। विचार और भाव अविभाज्य यानी एक-दूसरे में बिलकुल गुँथे हुए होने चाहिए। स्वत:स्फूर्तता को छोड़कर अन्य कृत्रिम विषय होते हैं।'

'वसंत' जी के बारे में जयप्रकाश मानस पुस्तक 'बगर गया वसंत' में लिखते हैं, 'जब बारीकी से इनके बारे में जानने लगता हूँ तो घोर आश्चर्य से घिरने लगता हूँ कि जिस गाँव में डाक खाने का ढोल तक न हो, फोन के जहाँ खम्भे भी न बिछे हों, बिजली कभी-कभार के लिए आती हो, तीन ओर से पहाड़, एक ओर बिना तारकोल वाली सड़क और सिर्फ खेत ही खेत हों, समाचार पत्र का नियमित और समय से पहुँचना जहाँ कपोल कल्पना हो, ऐसे में जब कोई शिक्षक न केवल बाल कविता रचता हो बल्कि साहित्य के सभी मठ स्थानों से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं में धुआँधार छपता भी हो तो क्यों कर कविता प्रेमियों के लिए आश्चर्य का विषय न बने।'

हिन्दी बाल साहित्य में निरंतर कहानी कविता व कॉमिक्स लिखने एवं विभिन्न स्तरीय पत्रिकाओं के साथ-साथ नंदन व मधुमुस्कान जैसी चर्चित पत्रिका में वसंत जी के साथ प्रकाशित होने वाले साहित्यकार श्याम नारायण श्रीवास्तव जी का कहना है कि बाल मनोविज्ञान पर शंभूलाल शर्मा जी की अच्छी पकड़ है। वे किसी भी दृश्य को बहुत सूक्ष्मता से परखते हैं। जिज्ञासा इतनी प्रबल है कि आज भी वे प्रत्येक घटना को बच्चों की भाँति देखते हैं, प्रश्न करते हैं और फिर उन्हें कविता में ढाल देते हैं। श्री श्रीवास्तव जी का कहना है कि उन्होंने शंभू शर्मा जी के लगभग सभी काव्य संग्रह पढ़े हैं। जिसमें 'मामा जी की अमराई', 'जंगल में बजा नगाड़ा', 'मेरा रोबोट', 'है न मुझे कहानी याद', 'इक्यावन नन्हें गीत', 'मेरे

प्रिय बाल गीत' और छत्तीसगढ़ी में 'बादर में मांदर', 'नोनी बर फूल', 'मैना के गउना' और 'आजा परेवा कुरु-कुरु' आदि बहुत चर्चित बाल गीत संग्रह हैं।

'वसंत' जी के बारे में यदि मैं कहूँ तो उनसे परिचय अखिल भारतीय साहित्यकार सम्मेलन - रायगढ़ में हुआ था। उस कार्यक्रम में हमारी समिति ने उनका सम्मान भी किया था और घनिष्ट जुड़ाव साहित्यकार स्व. अंजनी कुमार 'अंकुर' जी के कारण हुआ। उनके सादगीपूर्ण जीवन से सभी चिर-परिचित हैं। जब भी शर्मा जी से बात होती है, मेरे बोलने के पहले ही उनके मुख से 'जय जोहार' निकलकर मेरे पास आ जाता है। उनकी बात करने की शैली से हर कोई मंत्रमुग्ध हो जाये। इसका कारण कहीं न कहीं उनका बालमन है जिन्होंने अनेक बाल कविताएँ लिख जनमानस को प्रेरित किया है।

ऐसा उत्कृष्ट एवं भाववैविध्य के कवि का निवास स्थान करमागढ़ धन्य है, जहाँ उनका घर शिव कुटीर निश्चय ही पुण्य का धाम है, जहाँ की माटी में चन्दन की खुश्बू सी महकती है। उक्त जगह ऐसी पुण्य आत्मा बसती हो जिनके कारण आँगन में कई हस्तियाँ, ज्ञानीजन आने को लालयित हो उठते हैं।

शंभूलाल शर्मा 'वसंत' के द्वारा लिखित हर शिशुगीत पाठ्य पुस्तक में शामिल करने योग्य हैं व बाल साहित्य पर गम्भीर रुचि रखने वालों एवं शोधार्थियों के लिए कदाचित् उनकी किताब महत्त्वपूर्ण होगी। बाल-मन की कल्पना एवं विषय-वैविध्यता की दृष्टि से हर शिशुगीत संग्रह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। भाषा सहज, सरल एवं बोधगम्य है। भावचित्र के कलेवर ने प्रत्येक संग्रह की उपयोगिता को और भी बढ़ा दिया है। ऐसा लगता है जैसे जीवंत और सजीव हों।

मुझ अकिंचन द्वारा उनके शिशुगीतों का संकलन कर जनमानस तक पहुँचाने का कार्य भी किया गया है। यह परम सौभाग्य है कि इस कार्य हेतु पूजनीय वसंत जी का आभारी हूँ जो मुझ जैसे साहित्यकार को शिशुगीत सहेजने का कार्य दिया। जैसे एक पिता अपने बच्चों के प्रति दूजा व्यवहार नहीं करता वैसे ही श्रेष्ठ बाल गीतकार बच्चों की मानसिक क्षमता, प्रभावित करने वाले कारक, चित्ताकर्षक भाव भंगिमा तथा मनमोहक वस्तुओं और उनसे सम्बंधित प्रतिमानों, विश्वासों का मापन कर, परिवर्तित परिस्थितियों व संभावित स्थितियों का सम्यक ज्ञान रख सके। ऐसे दर्शन दिखाने व उपयोगी रचनाओं को परोसने का कार्य करते हैं।

उनके सारे शिशुगीत हमारे वातावरण में घटित क्रियाकलाप, आहार-विहार, कल्पना के संसार में विचरण कर उनसे बातें करना, रूठना-मनाना, घर बुलाना आदि अनेक विषयों से सुसज्जित बाल मन के करीब पहुँचने में कारगर हैं। कविताओं की हर पंक्तियाँ किसी भी सतर्क पाठक के हृदय को छूते हुए बड़ी ही सहजता से स्मृति पटल पर स्थापित हो जाएँगी। इसका मुझे पूर्णत: विश्वास है।

महाकाल अघोर पीठ, रायगढ़ द्वारा 'सृजन श्री सम्मान', हिन्दी बाल साहित्य की चर्चित पत्रिका बाल वाटिका मासिक, भीलवाड़ा (राज.) द्वारा 'बालवाटिका सृजन सम्मान', नई पीढ़ी की आवाज सम्मान' रायगढ़ द्वारा 2013 में सम्मानित, राष्ट्रीय कवि संगम छ.ग. प्रान्त इकाई द्वारा 2016 में 'राष्ट्र कवि दिनकर सम्मान' जैसे बहुत सम्मानों से सम्मानित आदरणीय 'वसंत' जी बाल साहित्य जगत के सच्चे साधक हैं। वे कभी भी सम्मान लेने के पक्षधर नहीं रहे। वे हमेशा कहते रहते हैं कि प्रत्येक साहित्यकार का असली सम्मान उसका सृजन है। सृजन सार्थक होना चाहिए।

सम्पर्क : *जिला- रायगढ़ (छ. ग.)*

भानु भारवि

बाल कथा में वन्यजीव

कहते हैं, 'कहानी वह आख्यान है, जो एक बैठक में पढ़ा जा सके और पाठक के अन्तस् पर एक समन्वित प्रभाव उत्पन्न कर सके। कहानी में जीवन संदर्भों के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रकट किया जाता है। कहानी के चरित्र, शिल्प, भाषा और उसका कथा-विन्यास आदि तत्त्व जीवन के दृष्टान्तों व मनोभावों को पुष्ट करते हैं। एक अच्छे सृजनधर्मी के लिए अध्येता होना, यायावर होना व बहुभाषाविद् होना आदि बुनियादी ज़रूरत मानी जाती है। यदि बाल साहित्य के रचनाकार के मामले में यह बात कही जाए तो इसकी उपादेयता और अधिक हो जाती है। एक बाल साहित्यकार मासूम व अबोध ज़िन्दगियों का चितेरा होता है। वह अपनी रचनाओं के माध्यम से बालमन को अनुरंजित तो करता ही है साथ ही सांसारिक परिवेश में जीवन मूल्यों से भी उसका साक्षात्कार कराता है। सही मायने में बच्चों के चरित्र निर्माण व जीवन मूल्यों से परिचित कराने में एक बाल साहित्यकार की वही भूमिका होती है जो गीली माटी को चाक पर रख कर नए-नए उपयोगी उपादान बनाने वाले शिल्पी की होती है। चूँकि बाल साहित्य का पाठक एक वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करता है अत: इस वर्ग विशेष को मूल्यपरक शिक्षा देने के लिए बाल साहित्यकार को भी तदनुरूप विशिष्ट शैली का प्रयोग करना होता है ताकि वह उस वर्ग के मनोभावों का सकारात्मक दोहन कर उसे नैतिकता के नवाचारों की ओर उन्मुख कर सके।

नि:सर्ग ने सृष्टि और समाज के हर वर्ग को अनेक सुलभ और सहजग्राह्य उपहार दिए हैं जिसने सृष्टि के चक्र व मानव जीवन को सहज, सरल व सुगम बनाया है। इन्हीं में अनेक ऐसे पदार्थ हैं जो बाल मनोविज्ञान की परिधि में हैं तथा वे बाल अनुरक्ति के केन्द्र में रहे हैं। यही उपादान बाल साहित्य के रचनाकार के सृजन-पथ की कल्पनाशीलता में रहते आए हैं। साहित्य में रोचकता, आकर्षण, एकाग्रता के लिए इन्हीं को कथापात्र के केन्द्र में रखकर एक बाल साहित्यकार स्वयं को बाल मनोविज्ञान के पारखी के रूप में प्रस्तुत करता है।

बाल कथा साहित्य के सृजन की परम्परा सहस्त्रों वर्षों से चली आ रही है- वाचिक और अभिलिखित। आरंभ में जब लिपि का विकास नहीं हुआ होगा तब वाचिक परम्परा रही होगी। उस समय बड़े-बुज़ुर्ग अपने बच्चों व अनुजों को अनुभवजन्य दृष्टान्त, घटनाएँ, गाथाएँ, आख्यान आदि मौखिक रूप से ही सुनाते रहे होंगे। इन कथानकों में कई कथानक बच्चों को अत्यन्त रोचक लगे होंगे जिन्हें वे बार-बार

सुनने की इच्छा व्यक्त करते रहे होंगे। ऐसे में वाचक के समक्ष अपने कथानकों में रोचकता बनाए रखने के लिए कथानायक व कथावस्तु के विकल्प के अवसर उपस्थित हुए होंगे और वे इसी के अनुरूप अपने नवाचारों की खोज में अवश्य सन्नद्ध रहे होंगे। इन्हीं नवाचारों की खोज के दौरान उसने अपने परिवेश के आस-पास मौजूद वन्य जीवों व पशु-पक्षियों को कथापात्रों के रूप में अपनाया होगा। आगे चल कर ये ही पात्र कहानी के नायक व प्रेरक तत्त्व बन गए।

कहानी में चरित्र-चित्रण एक अहं शास्त्रीय पहलू है। उपनिषद् काल में जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है शिक्षा की आश्रम प्रणाली के चलते गुरु-शिष्य को सामने बैठा कर शिक्षा दिया करते थे। जिसके अन्तर्गत वेद-विज्ञान, नीति, अस्त्र-शस्त्र संचालन, शौर्य, भक्ति, सदाचार, धर्म, अनुशासन प्रभृति अनेकानेक विषय हुआ करते थे। पौराणिक व उपनिषद्कालीन प्रचलित कहानियाँ मिथकों पर आधारित हुआ करती थीं अत: इनके पात्र वास्तविक हुआ करते थे या काल्पनिक, इसका निर्णय करना कठिन है, लेकिन ये कहानियाँ बच्चों के नैतिक और सामाजिक विकास में बेहतरीन भूमिका जरूर निभाती रही हैं। पौराणिक कथाएँ संस्कृति और मानवीय मूल्य दोनों से परिचय करवाती हैं। इन कहानियों की मदद से आप अपने बच्चे को नई जानकारियाँ दे सकते हैं। कभी-कभी बच्चे कहानी के किरदार को ही अपना हीरो मान लेते हैं। अपने व्यवहार में वे उन्हीं गुणों को लाने का प्रयास करते हैं, जिनकी चर्चा उन्होंने कहानियों में सुनी होती है। महान किरदारों के जीवन की घटनाएँ उनके लिए प्रेरणा स्रोत बन जाती हैं। इस काल में कई कहानियों में कुत्ते, शेर, सुग्गा, कबूतर, हंस, मछली, हिरण आदि वन्यजीवों के संदर्भ नायक-नायिका के जीवन-प्रसंगों में मिलते हैं।

हितोपदेश एवं पंचतंत्र में मक्खी, कठफोड़वा, नेवला, गधा, साँप, मगरमच्छ, चिड़िया, सुग्गा, लोमड़ी, व्याघ्र, भालू, सियार, कुत्ता, बिलाव, कौआ, कबूतर, कच्छप आदि मनुष्य की स्वभावगत प्रवृत्तियों के प्रतीक के रूप में उपयोग किये गये हैं। उदाहरणार्थ- कुत्ते को स्वामीभक्ति, कौए को चतुराई व चालाकी, लोमड़ी को कुटिलता, सियार को भीरू व अवसरवादी, नेवले को भोला किन्तु स्वामी भक्त, शेर व व्याघ्र को शक्ति व आतंक, कबूतर को संदेशवाहक, सियार को दुष्टता, सुग्गा व हंस को विरहिणी नायिका की मनोव्यथा को सुनने वाले (विश्वसनीय) आदि के प्रतीक-रूप में अपनाया गया है। इसी तरह जातक कथाओं में लालची कौआ, दैत्याकार केकड़ा, दुष्ट सियार, मूढ़ उल्लू, हिरन आदि वन्यजीवों को कथाकेन्द्र में रखा गया है।

ये वन्य जीव कहानी के केन्द्रीय पात्र के रूप में अपने-अपने चारित्रिक गुण-दोषों के आधार पर कहानी में यथार्थबोध की उत्पत्ति करते हैं। इनके द्वारा पात्रों के मानसिक अंतर्द्वंद्व एवं अन्य मनोभावों को प्रकट किया जाता है। कहानी में केवल मनोरंजन ही नहीं होता, अपितु उसका एक निश्चित उद्देश्य भी होता है। इसलिए तद् विषयक कथावस्तु को संदेशपरक बनाया जाता रहा।

परी एक मजेदार पात्र है जिसे बड़े हो या छोटे सब पसंद करते हैं जिसकी कहानी सबको अच्छी लगती है। ये कथायें आमतौर पर छोटे बच्चों को तो बहुत ही आकर्षित करती हैं क्योंकि इन्हें समझना आसान होता है और इनमे वर्णित चरित्र उन्हें दिलचस्प लगते हैं। इन कहानियों की कथावस्तु काल्पनिक ही होती है, किन्तु, बच्चों को इनके यथार्थ होने का आभास होने लगता है। ये प्राय: सुखान्त होने के कारण

बच्चों को अधिक प्रिय रही हैं। बच्चे इन्हें बड़ी तन्मयता और उत्सुकता से सुनते हैं और सुनते समय जैसे स्वयं उस आभासी लोक में विहार करने लगते हैं। इन कहानियों में परियों, पिशाच, राक्षस, जादूगर, दानव आदि के अलावा मनुष्य की वाणी में बोलने वाले पशु और पक्षियों का समावेश होता है। ये कहानियाँ विस्मयबोधी घटनाओं से सराबोर रहती हैं जो बालमन की उत्सुकता को सहज ही जागृत कर देती हैं।

इसी तरह विश्व की प्राचीनतम लिखित कहानियाँ जातक कथाएँ हैं जिसमें लगभग 600 कहानियाँ संग्रह की गयी हैं। इन कथाओं में मनोरंजन के माध्यम से नीति और धर्म को समझाने का प्रयास किया गया है। जातक की गाथाओं की प्राचीनता तो निर्विवाद है ही, उसका अधिकांश गद्य भाग भी अत्यन्त प्राचीन है। ये कथाएँ गाथाओं पर आधारित हैं। ये कथाएँ इतनी लोकप्रिय थीं कि तृतीय, द्वितीय शताब्दी ईस्वी पूर्व में इन्हें शिल्प कला का आधार बना लिया गया। इन कहानियों के पात्रों में पशु-पक्षियों की बहुलता रही है इनमें- मृग, हंस, खरगोश, वानर, मत्स्य, कौआ, हाथी, सिंह, सियार, उल्लू, नंदी, कबूतर, मुर्गा, साँप, कछुआ आदि के माध्यम से लोभ, नटखटपन, मूर्खता, न्याय, हास्य, कुटिलता, कृतघ्नता, जैसे अनेक नैतिक एवं चारित्रिक मानवीय मूल्यों को पिरोया गया है।

आधुनिक बाल कथा साहित्य में भी पशु-पक्षी व वन्यजीवों के जरिए बच्चों को ज्ञान-विज्ञान, समाज, संस्कृति, लोक-व्यवहार, जीवन मूल्यों, चरित्र निर्माण आदि का बोध कराने की यह अवधारणा यथावत अपनाई गई है। देश काल और विकास के साथ कहानी के कथ्य में अवश्य बदलाव और नयापन आया है। आधुनिक कथा साहित्य में फैन्टेसी व फौरी कल्पनाशीलता को गौण रखा गया और यथार्थवाद व सामयिकता को स्थूल।

बाल साहित्य का उद्देश्य बाल पाठकों का मनोरंजन करना ही नहीं अपितु उन्हें आज के जीवन की सच्चाइयों से परिचित कराना है। कहानियों के माध्यम से ही हम बच्चों को शिक्षा प्रदान करते हैं। बचपन में हमारी दादी, नानी हमारी माँ ही हमें कहानियाँ सुनाती थी। कहानियाँ सुनाते-सुनाते कभी तो वे हमें परीलोक की सैर करवा देती थी तो कभी सत्य जैसी यथार्थवादी बातें सिखा जाती थीं।

साहस, बलिदान, त्याग और परिश्रम ऐसे गुण हैं जिनके आधार पर एक व्यक्ति आगे बढ़ता है और ये सब गुण उन्हें कहानियों के माध्यम से ही प्राप्त होते हैं। बच्चों का मन मक्खन की तरह निर्मल होता है, कहानियों और कविताओं के माध्यम से हम उनके मन को वह प्रेरणा दे सकते हैं जो उनके मन के भीतर जाकर संस्कार, समर्पण, सद्भावना, संस्कृति के अलावा देश-दुनिया की जानकारी सहज ही दे देते हैं।

आज के बालक कल के भारत के नागरिक हैं। अत: उन्हें वैश्विक राष्ट्रीय धारा से जोड़े रखने के लिए विज्ञान, नई-नई खोजों, कम्प्यूटर, तकनीक, चिकित्सा अनुसंधान, दूर-संचार, अन्तरिक्ष विज्ञान आदि शिक्षा प्रदान करना आवश्यक होता है। बच्चों को अंधविश्वास, धर्माडम्बर आदि अंधआस्थाओं के अलावा सामाजिक बुराइयों से भी दूर रखा जाना चाहिए। इस दृष्टि से देश के आधुनिक बाल-साहित्यकारों ने अपनी रचनात्मक भूमिका निभाई है।

मानव जीवन की जटिल से जटिल समस्याओं, कुत्सित प्रवृत्तियों व अवधारणाओं को बालमन पशु-पक्षी व वन्यजीवों के जरिए सहजता से ग्रहण कर लेता है। इन चरित्रों के जरिए प्रस्तुत बात उनके दिल के करीब तो होती ही है और ऐसा करके लेखक भी अपने आपको 'पैनाल्टी जोन' से परे रख लेता

है। यही कारण रहा होगा कि पशु-पक्षियों व वन्यजीवों के मानवीकरण के माध्यम से बात कहने की यह परम्परा निरापद रही होगी। आधुनिक बाल कथा साहित्य में भी इसी अवधारणा की विशिष्टता रही है। कहीं-कहीं इन पात्रों को बिल्ली मौसी तथा बन्दर मामा आदि पारिवारिक रिश्तों में ढाल कर पाठक से गहरी घनिष्ठता कायम की गई है। कथाकारों ने वन्यजीवों को मानवीय चरित्रों में ढालकर बच्चों को समसामयिक विषयों में अद्यतन बनाने का स्तुत्य दायित्व निभाया है। इन कहानियों में रोचकता व औत्सुक्य के साथ बोधगम्य कथ्यप्रवाह संचारित होता है। कहानी की कथावस्तु यथार्थ्यवादी व संदेशपरक होती है जो बालसुलभ व सहजग्राह्य होती है।

आधुनिक बाल साहित्य के पुरोधा रचनाकारों-जिन्होंने अपने सतत् लेखन से इस क्षेत्र को समृद्ध किया है, में डॉ. हरिकृष्ण देवसरे, डॉ. श्रीप्रसाद, मस्तराम कपूर, हरीश निगम, मनोहर चमोली 'मनु', अनंत कुशवाहा, मनोहर वर्मा, भगवती प्रसाद द्विवेदी, डॉ. राष्ट्रबंधु, शिवचरण चौहान, राजा चौरसिया, डॉ. नारायण लाल परमार, शुकदेव प्रसाद, सूर्यकुमार पाण्डेय, रमेश तैलंग, सूर्यभान गुप्त, डॉ. शोभनाथ शशि, श्यामसिंह 'शशि', जगदीशचंद्र शर्मा, राजनारायण चौधरी, जहीर कुरेशी, सुरेंद्र विक्रम, शिवनारायण सिंह, तारादत्त निर्विरोध, शंभूलाल शर्मा, जयप्रकाश मानस, गिरीश पंकज, इंदरमन साहू, बाबूलाल शर्मा, सुखबीर, रामनारायण उपाध्याय, अहद प्रकाश, क्षमा शर्मा आदि का नाम गौरव के साथ लिया जा सकता है।

इनके अलावा माधुरी शास्त्री, मुरलीधर वैष्णव, ओम पुरोहित 'कागद', अरनी रोबर्ट्स, तरुण कुमार दाधीच, डॉ. आदर्श मदान, ताऊ शेखावटी, हरिकृष्ण तैलंग, ओम प्रकाश भाटिया, सुधीर सक्सेना 'सुधि', सुधा तैलंग, सुधा गोस्वामी, जीवन मेहता, गोपाल प्रसाद मुद्गल, डॉ. जमनालाल बायती, कृष्णा कुमारी, चंपा शर्मा, डॉ. देवदत्त शर्मा, जितेन्द्र शंकर बजाज, दीपचंद सुथार, जगदीश उज्ज्वल, डॉ. क्षमा चतुर्वेदी, नरेंद्र शर्मा चूरा, रामगोपाल 'राही','डॉ. मनोहर 'प्रभाकर', नीरज दइया, डॉ. प्रेमचंद गोस्वामी, पूरन सरमा, रघुनाथ सिंह यादवेंद्र, रमाकान्त 'कान्त','रमा तिवारी, डॉ. रमेश 'मयंक', डॉ. बलवीर सिंह 'करुण', 'सवाई सिंह शेखावत, सावित्री परमार, सावित्री रांका, हरफूल सुईवाल, हरिवल्लभ बोहरा 'हरि', माधव नागदा, डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', नंद चतुर्वेदी, विमला भंडारी, हरदर्शन सहगल, वेद व्यास आदि बाल साहित्यकारों के योगदान को नकारा नहीं जा सकता।

सर्वश्री सर्ववेश्वर दयाल सक्सेना, कन्हैयालाल नन्दन, लक्ष्मीचंद जैन, जयप्रकाश भारती, अनंत कुशवाहा, विश्वनाथ, हरिकृष्ण देवसरे, मनोहर वर्मा, डॉ. राष्ट्रबंधु डॉ. भैरुलाल गर्ग आदि बाल पत्रिकाओं के सम्पादकों ने बाल साहित्य के विकास व साहित्यकारों को सामने लाने में अहम् भूमिका निभाई है। इसी क्रम में कार्टूनिस्ट डॉ. पंकज गोस्वामी के सरिता में सर्वाधिक लम्बी अवधि से प्रकाशित हो रहे 'नन-मुन' कथाचित्र धारावाहिक के अवदान को भी बाल कथा साहित्य क्षेत्र में कमतर नहीं आँका जा सकता।

सम्पर्क : *जयपुर (राज.)*

सीमा मिस्त्री

बाल काव्य में हास्य रस

हर काल में बच्चों को शिक्षा से जोड़ने में हास्य कविताओं की अहम भूमिका रही है। देश के ख्यातनाम साहित्यकारों ने भी बच्चों को आनंदित करके उन्हें किसी विषय से जोड़ने की कोशिश की है। हास्य कविताओं के साथ बच्चों को गहरी बात भी बहुत सहजता से समझाई जा सकती है और इसलिए बाल साहित्य में हास्य कविताओं की हमेशा से ही महत्ता रही है। जब बच्चों को आलू या टमाटर पर केंद्रित कोई कविता सुनाई जाती है तो इस कविता का उद्देश्य उन्हें मुदित करने के साथ ही अपने आसपास की चीजों से परिचित कराने का भी होता है। बच्चे कविता से जुड़ते हैं और उसके सहारे अपने परिवेश के साथ अपने संबंध को भी मजबूत करते हैं। यही कारण है कि बाल कविताओं में हास्य रस की प्रधानता है। आजादी के पहले के दौर में तो ऐसी कई बाल कविताएँ लिखी गई हैं जो इसी पैमाने पर रची गईं। आज भी बाल साहित्य में हास्य रचनाओं की प्रधानता देखने को मिलती है। बाल साहित्य के इतिहास में हास्य कविताओं के महत्व को शिक्षक और बाल साहित्यकार दोनों समान रूप से स्वीकार करते हैं। इन दोनों का ही मानना है कि बच्चों को जिस काम में आनंद आता है, वे उससे जुड़ जाते हैं। बच्चे हास्य रस की अँगुली पकड़कर सबसे ज्यादा आनंदित होते हैं, और उसके साथ सीखने की प्रक्रिया में शामिल हो जाते हैं।

आजादी से पहले के दौर में जहाँ श्रीधर पाठक, हरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, मैथिलीशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी सहित कई बड़े साहित्यकार बाल कविता के क्षेत्र में सक्रिय थे तो आजादी के बाद के दौर में श्रीप्रसाद, सूर्यकुमार पाण्डेय, शेरजंग गर्ग, बालस्वरूप राही, प्रयाग शुक्ल, उमाकांत मालवीय सहित कई साहित्यकार निरंतर रचनारत रहे। इसके बाद के समय में यानी 1970 के बाद बाल कविताएँ बहुत लिखी गईं। खासकर इस दौर के युवा कवियों की हिस्सेदारी इसमें काफी बड़ी रही है। इस दौर में दिविक रमेश, हरीश निगम और सूर्यकुमार पाण्डेय सहित कई कवियों ने विविध विषयों पर कलम चलाई। 1900 से 2000 तक हिंदी बाल कविता में हास्य रस की अद्भुत छटा देखने को मिलती है। विभिन्न उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि हास्य कविताओं और गीतों ने बच्चों के अनुभव संसार का दायरा व्यापक किया है। बाल कविता में हास्य की इस यात्रा को हम कुछ कालखंडों में बाँटकर बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।

1. आजादी से पहले की बाल कविताओं में हास्य रस (1900 से 1947 तक) : इस कालखंड में देश के कई बड़े साहित्यकार बच्चों के लिए हास्य कविताएँ लिखते हुए मिलते हैं। इन साहित्यकारों ने जहाँ आजादी के आंदोलन में लोगों की भागीदारी को बढ़ाने वाली कविताएँ लिखीं, वहीं बच्चों की समझ को विस्तार देने के लिए हास्य कविताओं का सहारा लिया। हिंदी के ख्यात कवि रामधारी सिंह दिनकर की एक कविता 'चाँद का कुरता' ऐसी ही कविता है। इस कविता में वह लिखते हैं, 'हठ कर बैठा चाँद एक दिन माता से यों बोला/सिलवा दे माँ मुझे ऊन का मोटा एक झिंगोला।' इस पूरी कविता में दिनकर जी ने चाँद के घटने-बढ़ने को ही नहीं, बल्कि ठंड में चाँद के एकाकी सफर को भी हमारी आँखों के सामने जीवंत कर दिया है। आजादी के पहले के दौर के एक और कवि हैं मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी'। आपकी कविताओं में हास्य रस प्रकृति के साथ घुला हुआ मिलता है। आपकी एक कविता है- 'पके-पके क्या आम रसीले/ हरे लाल हैं नीले पीले/आँधी अगर कभी आ जाती/आम हजारों पीट गिराती/ इन को लेकर चलो ताल पर/वहाँ खूब पानी से धोकर/ सौ-पचास तक खाएँगे हम/आज न भोजन पाएँगे हम।'

आजादी से पहले के दौर में जिन साहित्यकारों ने हिंदी बाल कविता को रूप और रंग दिया उनमें निरंकार देव सेवक का नाम अग्रणी है। सेवक जी की कुछ कविताओं ने तो बाल साहित्य की दिशा तय करने का काम भी किया है। उनकी हास्य रस से पगी एक कविता है 'अगर मगर'। कविता की पंक्तियाँ इस तरह हैं- 'अगर मगर दो भाई थे/ लड़ते खूब लड़ाई थे/ अगर मगर से छोटा था/मगर मगर से खोटा था/ अगर मगर कुछ कहता था/ मगर नहीं चुप रहता था/ बोल बीच में पड़ता था/और अगर से लड़ता था।' इसी दौर में श्रीधर पाठक कि कुछ बेहद सधी हुई बाल कविताएँ हमें प्राप्त होती हैं और बाल मनोविज्ञान पर उनकी गहरी पकड़ भी हमारे समक्ष आती है। उनकी एक कविता है जिसमें उन्होंने बच्चे की तुतलाती जुबान को शब्द दिए हैं। यह कविता गुदगुदाती है। कविता की दो पंक्तियाँ इस तरह हैं-'बाबा आज देल छे आए/ चिज्जी-पिज्जी कुछ न लाए।'

आजादी से पहले के इस दौर में विद्याभूषण विभु की कुछ कविताओं ने भी बच्चों का अच्छा मनोरंजन किया और उन्हें अपने परिवेश से परिचित कराया। उनकी 'घूम हाथी झूम हाथी' कविता बच्चों को खासा मुदित करती है। इस कविता में एक खास लय है और मस्ती भी। सभामोहन अवधिया 'स्वर्ण सहोदर' भी बाल कविता के प्रमुख हस्ताक्षर थे। उनकी हास्य कविता- 'नटखट हम हो नटखट हम/करने निकले खटपट हम', भी बच्चों का मनोविनोद करती है। आजादी से पहले के इस दौर में कई कवि बता रहे थे कि बच्चों के साथ बात करने का तरीका और उन्हें अपने साथ जोड़ने का तरीका कैसा होना चाहिए। इस दौर के प्रमुख कवियों की कविताओं में बालसुलभ चंचलता और लयात्मकता दिखाई देती है। इसी दौर में रमापति शुक्ल की एक कविता का उल्लेख भी जरूरी है जिसमें वह कहते हैं, 'आलपिन के सिर होता पर बाल न होता उस पर एक/ कुर्सी के दो बाँहें हैं पर, गेंद नहीं सकती वह फेंक।' मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', सोहनलाल द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी, द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी और शकुंतला सिरोठिया जैसे कवियों ने बच्चों के रचना संसार को विविधता दी। इन कवियों ने जो सशक्त आधार दिया उसी पर हिंदी बाल कविता खड़ी हो सकी है। इस दौर की कविताओं में उपदेश मिलते हैं तो

बच्चों को मुस्कुराने और खेल-खेल में चीजों को सीखने का आनंद भी मिलता है।

2. आजादी के बाद की बाल कविता (1947 से 1970) : आजादी के बाद के दौर में यानी 1947 से 1970 तक के कालखंड में बच्चों के लिए कई सुंदर हास्य कविताएँ रची गईं। इस दौर में रची गई कविताओं के आधार पर वरिष्ठ बाल साहित्यकार प्रकाश मनु इस कालखंड को हिंदी बाल कविता के 'गौरव युग' की संज्ञा भी देते हैं। श्री मनु का मानना है कि आजादी के बाद का समय बाल रचनाकारों के लिए चुनौती भरा था लेकिन उनके पास नए मापदंड स्थापित करने का मौका भी था। नंदन, पराग और बाल भारती जैसी बाल पत्रिकाओं ने इस दौर में बच्चों के लिए चुनिंदा कविताओं का प्रकाशन किया। धर्मवीर भारती के संपादन में निकलने वाली पत्रिका धर्मयुग में भी बच्चों के पन्नों को पूरी गंभीरता से संयोजित किया जाता था और उसमें रचनाओं का चुनाव भी बहुत उम्दा होता था। इसी दौर में दामोदर अग्रवाल, सूर्यभानु गुप्त, डॉ. शेरजंग गर्ग, प्रयाग शुक्ल और उमाकांत मालवीय सहित कई अन्य रचनाकार अपनी कलम से बाल कविता के वितान को और ऊँचाई प्रदान कर रहे थे।

दामोदर अग्रवाल ने इसी दौर में बिजली पर एक रोचक कविता लिखी, जो इस तरह है- 'बड़ी शरम की बात है बिजली, बड़ी शरम की बात!/ जब देखो गुल हो जाती हो/ ओढ़ के कंबल सो जाती हो।' दामोदर अग्रवाल ने इस दौर में बच्चों के लिए जो भी कविताएँ लिखीं उनकी भाषा बहुत ही सरल और सहज थी। इस सरलता के साथ ही वे बच्चों के मन में जगह बनाने में कामयाब रहे। इसी दौर के एक और महत्त्वपूर्ण कवि थे सूर्यभानु गुप्त। गुप्त जी ने पुराने विषयों को भी अपने स्पर्श से नए रूप में प्रस्तुत किया। उनकी चंदा मामा पर रची यह कविता देखिए- 'चंदा मामा, चंदा मामा/मामी जी कब लाओगे/ दूध भात भांजों को अपने/बोलो कब तक खिलाओगे?/ चंदा मामा, चंदा मामा/ लगते कितने प्यारे हो/ लेकिन यह बतलाओ अब तक/ तुम क्यों भला कुँवारे हो?' इस कविता में सूर्य भानु जी बच्चों के समक्ष चंद्रमा का जो चित्र खींचते हैं, उससे वह चंद्रमा का मानवीकरण कर देते हैं।

उनकी एक अन्य कविता फोटुग्राफर भी मजेदार है। इसकी पंक्तियाँ हैं- 'लंबू, छोटू, पतलू, मोटू/ याद नहीं कितने लोगों के/ खींच चुका मैं अब तक फोटू।' इसी दौर में डॉ. शेरजंग गर्ग की एक कविता 'गाय' बहुत रोचक है। इसकी पंक्तियाँ हैं- 'कितनी अच्छी कितनी प्यारी/ सब पशुओं में न्यारी गाय/ सारा दूध हमें दे देती/ आओ इसे पिला दें चाय।' श्री गर्ग की यह कविता यूँ तो हास्य कविता है किंतु इसमें उन्होंने बड़ी ही सरलता से बच्चों का ध्यान गाय की तरफ खींचा है। इसी दौर के एक बड़े समर्थ बाल कवि हैं डॉ. श्री प्रसाद। उनकी हास्य कविताओं की यह खासियत रही कि वह अपनी कविताओं में एक पूरा किस्सा या वृत्तांत देते थे। उनकी एक कविता नानी का किस्सा की कुछ पंक्तियाँ देखिए- 'चूहे भागे, बिल्ली भागी, कुत्ते भागे डरकर/ मगर नहीं भागीं दादी जी, चल दीं घर के अंदर/ फिर आगे क्या हुआ, यहीं है शायद खत्म कहानी/ बना बनाकर ऐसे किस्से रोज सुनाती नानी।' इस दौर की महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कविता के विषयों में विविधता के दर्शन होते हैं। बच्चों की समझ पर साहित्यकार भरोसा करते हुए उन्हें तरह-तरह के विषयों से परिचित करवाने का उपक्रम करते नजर आते हैं। उनकी इस कोशिश में बच्चों की समझ के दायरे का विकास भी शामिल होता है। बच्चों के लिए सिर्फ पालतू पशुओं के इर्द-गिर्द ही कविताएँ नहीं बुनी गईं बल्कि उनके परिवेश से जुड़ाव रखने वाली चीजों पर भी कविताएँ लिखी

गईं। इस दौर में बाल्यकाल की मित्रता, परिवार के सदस्यों, प्रकृति, सामान्य काम करने वाले लोगों, मनुष्यों के हाव-भाव और जीवन के अन्य उपादानों पर भी हास्य कविता लिखी मिलती हैं। भले ही इन विषयों पर हास्य के रंग में रँगी कविताएँ लिखी गई हों लेकिन उनका उद्देश्य बच्चों को उनके प्रति अधिक संवेदनशील बनाना रहा। हास्य तो बच्चों को जोड़ने की एक तरकीब के तौर पर चुना गया। विषयों में आया यह परिवर्तन इस मायने में महत्त्वपूर्ण था कि इसने बाल कविता की दिशा को और बेहतर किया। इसने आने वाले बाल कवियों को एक नया रास्ता दिया जिस पर चलकर वे बच्चों को बोरियत से बचा सकें और उन्हें कविताओं का विविधतापूर्ण संसार सौंप सकें। इसी दौर में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना 'बतूता का जूता' कविता लिखते हैं और हिंदी बाल कविता को एक अलग ही चाल-ढाल देते हैं। इस कविता का स्वाद लीजिए- 'इब्न बतूता/ पहन के जूता/ निकल पड़े तूफान में/ थोड़ी हवा नाक में घुस गई/ घुस गई थोड़ी कान में/ कभी नाक को, कभी कान को/ मलते इब्न बतूता,/ इसी बीच में निकल पड़ा/ उनके पैरों का जूता/ उड़ते उड़ते जूता उनका/ जा पहुँचा जापान में/ इब्न बतूता खड़े रह गए/ मोची की दुकान में।' इसी दौर के बालस्वरूप राही, उमाकांत मालवीय, प्रयाग शुक्ल, योगेंद्र कुमार लल्ला, कन्हैयालाल मत्त, बालकृष्ण गर्ग, सरोजिनी अग्रवाल, हरिकृष्ण देवसरे, भारत भूषण अग्रवाल, सरस्वती कुमार दीपक, धर्मपाल शास्त्री, बालकवि बैरागी, भवानी प्रसाद मिश्र और चंद्रपाल सिंह यादव 'मयंक' भी महत्त्वपूर्ण कवि हैं। बाल साहित्य के इस कालखंड में अनेक महत्त्वपूर्ण हास्य कविताएँ रची गईं। इस दौर में रची गईं विविध हास्य कविताओं के कारण इसे हिंदी बाल कविता का सुनहरा समय माना जाता है। आगे के कालखंड में लिखी जाने वाली कविताओं का आधार भी इसी समय तैयार हुआ।

3. 1970 के बाद हिंदी बाल कविता में हास्य रस : वर्ष 1900 से 1970 तक पहुँचते-पहुँचते हिंदी बाल कविता के प्रतिमान तय हो चुके थे। ख्यात साहित्यकारों ने एक सशक्त आधार खड़ा कर दिया था। कई कवि रहे जिन्होंने आगे भी इस क्रम को जारी रखा। डॉ. श्रीप्रसाद, प्रयाग शुक्ल, सूर्यकुमार पाण्डेय, दिविक रमेश, हरीश निगम आदि कवियों ने इस दौर में सार्थक हास्य बाल कविताएँ लिखीं। यह वह कालखंड भी है जिसमें एक साथ तीन पीढ़ियों के कवि सक्रिय थे। इसी दौर में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, डॉ. शेरजंग गर्ग और दामोदर अग्रवाल की भी उपस्थिति है। इस दौर में दिविक रमेश की एक कविता है, 'जोकर मुझे बना दो जी/ मोटी तोंद लगा दो जी।' हरीश निगम ने इस दौर में लिखा, 'ओ कौए काले/ काँव-काँव वाले/ निखरेगा/ रंग तेरा/ ताल में नहा ले।' इस दौर में बच्चों के लिए अतुकांत कविताएँ भी लिखी गईं और हरीश जी की कविता उसी की एक मिसाल है। हरीश जी इस विनोदी अंदाज़ में हाथी से भी सवाल करते हैं, 'हाथी दादा! हाथी दादा!/ तुम इतने क्यों मोटे हो?/ आटा कहाँ पिसाते हो/ लंच-डिनर में हाथी-दादा/ बोलो क्या-क्या खाते हो?' इसी दौर का प्रतिनिधित्व करती सूर्य कुमार पाण्डेय की एक कविता 'एक पान का पत्ता' भी है, जिसमें बच्चों को हास्य के साथ कुछ नया भी सीखने को मिलता है, 'एक पान का पत्ता/ जा पहुँचा कलकत्ता/ पकड़े अपना मत्था/ मिला वहाँ पर कत्था/ आगे मिली सुपारी/ सबने की तैयारी/ पहुँचे फिर सब पूना/ लगा वहाँ पर चूना।' इस कविता में हास्य के साथ बच्चे पान में पड़ने वाली चीजों से भी अवगत होते हैं। दरअसल कवियों का यह प्रयास रहता है कि वे बच्चों को आनंदित करके पहले उन्हें कविता से जुड़ने का मौका दें और फिर बच्चे सीखने की तरफ बढ़ें।

हास्य कविता का उद्देश्य हास्य के जरिए सीखने की तरफ बढ़ने से है।

इसी नए दौर के एक अन्य महत्त्वपूर्ण कवि रमेश तैलंग भी हैं। उनकी एक कविता में भी हास्य रस के सहारे बच्चों के सामने घर की सुबह का दृश्य खींचा गया है। कविता की पंक्तियाँ हैं, 'अले, छुबह हो गई/ आँगन बुहाल लूँ/मम्मी के कमले की तींदें थमाल लूँ। कपले ये धूल भले/ मेले हैं यहाँ पले/ताय भी बनाना है/पानी भी लाना है/ पप्पू की छर्ट फटी, दो ताँके दाल लूँ/ मम्मी के कमले की तीदें थमाल लूँ।' इस दौर के अन्य कवियों में रोहिताश्व अस्थाना, जहीर कुरेशी, घमंडीलाल अग्रवाल और रमेशचंद्र पंत भी रहे हैं। इस दौर में हास्य रस की कविताओं के विषयों में भी पर्याप्त विविधता देखने को मिलती है। गुलजार जैसे बड़े गीतकार ने भी बच्चों के लिए गुदगुदाने वाली किन्तु कल्पना को ऊँची उड़ान देने वाली कविताएँ लिखीं। उनकी एक कविता है, 'बाबा और बाबा की छड़ी'। कविता की पंक्तियाँ इस तरह हैं, 'साथ साथ चलते हैं दोनों/ बाबा और बाबा की छड़ी/ पहले वो कहता है चल...चल बाहर चलते हैं/और उठा लेता है छड़ी को/ बिस्तर पर जो लेटी हुई थी!/ फिर वो उसका हाथ पकड़ के बाहर लाती है/ साथ-साथ चलते हैं दोनों/ बाबा और बाबा की छड़ी!' इसी दौर के लोकप्रिय गीतकार यश मालवीय ने भी बच्चों के लिए सुन्दर हास्य गीत लिखे। ऐसा ही उनका एक अच्छा गीत है यह- 'टीवी की शौकीन हमारी नानी जी/खाती हैं नमकीन हमारी नानी जी/नाना जी परतंत्र दिखाई देते हैं/रहती हैं स्वाधीन हमारी नानी जी।' इसी दौर के एक और समर्थ कवि प्रभात भी हैं। उन्होंने भी कई अर्थपूर्ण कविताएँ वर्तमान समय में लिखी हैं। इन्हीं में से एक कविता है चकरम। इसकी पंक्तियाँ इस तरह हैं, 'एक भाई अकरम/ एक भाई विकरम/तारे तकते/करते फिकरम/क्या है चकरम/कम रहती है/दूध में शकरम।'

इस दौर में बहुत सारे अन्य कवियों ने भी रोचक विषयों पर कविता लिखकर बच्चों की दुनिया में नए रंग जोड़े। हिंदी बाल कविता में हास्य रस की यह यात्रा नए रंगों के साथ आगे भी जारी रहेगी और बच्चों को बहुरंगी कविताएँ मिलती रहेंगी।

बाल कविताओं के हर दौर में हास्य कविता की जरूरत साहित्यकारों ने महसूस की है। मूल्यों की स्थापना में हास्य कविताओं ने अपनी अहम भूमिका का निर्वहन किया है। इन हास्य कविताओं में रचनात्मकता है, लयात्मकता है और बहुरंगी विषय हैं, जो बच्चों को अनेक स्तरों पर समृद्ध करती हैं। हास्य रस के बिना बाल साहित्य अधूरा सा दिखाई देगा। बच्चों को कल्पना को ऊँची उड़ान देने का काम हास्य कविताओं के बूते ही संभव हुआ। बच्चों के लिए लिखी गईं हास्य कविता सिर्फ उनका ही मनोरंजन नहीं करती हैं बल्कि यह बड़ों को भी अपने जादू से प्रभावित करने की क्षमता रखती हैं। यही इन कविताओं की खासियत और प्रभाव है। ये कविताएँ बच्चों की भाषाई समझ का दायरा बढ़ाती हैं और समझ को भी विस्तारित करती हैं। यही कारण है कि बाल साहित्य हास्य रस के बिना नीरस ही जान पड़ेगा। रस नहीं होगा तो बच्चे ऐसे साहित्य से जुड़ने में रुचि भी नहीं लेंगे और बाल साहित्य का मनोरथ ही अधूरा रह जाएगा।

सम्पर्क : *इंदौर (म.प्र.)*

डॉ. सोनाली निनामा

बालसाहित्य का पुरातन एवं आधुनिक स्वरूप

''तुम उन्हें अपना प्यार दे सकते हो, लेकिन विचार नहीं। क्योंकि उनके पास अपने विचार होते हैं। तुम उनका शरीर बंद कर सकते हो, लेकिन उनकी आत्मा नहीं, क्योंकि उनकी आत्मा आने वाले कल में निवास करती है। उसे तुम नहीं देख सकते हो, सपनों में भी नहीं देख सकते हो, तुम उनकी तरह बनने का प्रयत्न कर सकते हो, लेकिन उन्हें अपने जैसा बनाने की इच्छा मत रखना। क्योंकि जीवन पीछे की ओर नहीं जाता और न ही बीते हुए कल के साथ रुकता है।'' बाल मनोविज्ञान को उजागर करती, बच्चों में विश्वास दर्शाने वाली यह उक्ति 'खलील जिब्रान' की है। कई शताब्दियों पहले कही गई यह बात आज भी उतनी ही सच एवं महत्त्वपूर्ण है जितनी कि उस जमाने में थी। मामूली सी लगने वाली यह बात बालकों के मनोविज्ञान को पूरी तरह स्पष्ट करती है। यह उन साहित्यकारों पर एक असरकारक टिप्पणी है जो बच्चों को 'निरा बच्चा' मानते हैं। तथा उन्हें जादू-टोने या परी-कथाओं जैसी अतार्किक रचनाओं द्वारा बहलाने का प्रयास करते हैं।

ध्यातव्य है कि अन्य समाजों की तरह भारत में भी साहित्य 'श्रुति परम्परा' से आया है। जिसमें बच्चों तथा बड़ों के साहित्य के बीच विशेष विभाजन नहीं था। सबसे पहले उसका स्वरूप लोकसाहित्य का था। वही उस दौर में लोगों के मनोरंजन का साधन बना। लोकगीतों में जो सरस और सहज थे उन्हें लोरियों के रूप में बाल मनोरंजन के लिए अपना लिया गया।

बाल साहित्य के विषय में हमारा चिंतन उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में शुरू हुआ। किन्तु मौखिक परम्परा में बालसाहित्य का अस्तित्व अति प्राचीन है। माँ, दादी और नानी के द्वारा सुनाई गयी लोरी और कहानी के रूप में बालसाहित्य अक्षुण्ण है। आधुनिक बाल साहित्य उसी का विकास है। संस्कृत में श्री नारायण कृत 'हितोपदेश' एवं पं. विष्णु शर्मा कृत 'पंचतंत्र' की कथाओं में बालसाहित्य के बीज मिलते हैं। प्राचीन काल में बड़ों तथा बच्चों का साहित्य मिश्रित रूप में मिलता है। मध्यकाल में बालक की अलग पहचान बनी, उसके बाल मनोभावों और उसकी क्रीड़ाओं को महत्त्व मिला। यह महत्त्व कृष्णभक्ति काव्य में विशेष रूप से सूर के काव्य में प्राप्त हुआ है।

लगभग एक दशक के बाद बालसाहित्य लेखन में प्रगति का श्रेय बाल पत्रिका 'शिशु' एवं 'बालसखा' को दिया जाता है। इन पत्रिकाओं ने बच्चों की अभिरुचि, नैतिक विकास में योगदान दिया तथा बाल साहित्य में नये प्रयोगों को प्रोत्साहन देकर बाल साहित्य के विकास क्रम को आगे बढ़ाया।

बोधकथाओं के अतिरिक्त लोरी तथा शिशु गीतों की रचना कर रचनाकारों ने बच्चों के लिए साहित्य रचा। नाटकों में हास्य तथा व्यंग्य का रूप देखने को मिला। हिन्दी गद्य के विकास के साथ बालसाहित्य की दिशा में भी प्रगति हुई। बालसाहित्य में अनेक भाषाओं की पुस्तकों का अनुवाद हुआ। हिन्दी बालसाहित्य को उचित स्वरूप देने में भारतेन्दु जी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है तथा बाल नाटकों के उन्नयन में नई दिशा मिली। इनके द्वारा लिखित नाटक शिक्षाप्रद और उपयोगी सिद्ध हुए।

भारतेन्दु जी की प्रेरणा से अन्य लेखकों ने बालसाहित्य में लेखनी चलाई। पं. प्रतापनारायण मिश्र की प्रार्थना ''सरनागत पाल कृपाल प्रभो हमको यक आस तुम्हारी है'' आज भी बच्चों के लिए कई अर्थों में उपयोगी और प्रिय है। पं. बालकृष्ण भट्ट ने मुहावरों पर आधारित अनेक छोटे-छोटे निबंध लिखे। ये निबंध मनोरंजक एवं ज्ञानवर्द्धक भी थे।

द्विवेदी युग में बालसाहित्य की धारा को विस्तार मिला। लेखकों में बालसाहित्य के प्रति नवीन चेतना का उदय हुआ। पौराणिक, धार्मिक, राष्ट्रप्रेम, चरित्र निर्माण आदि विषयों पर बालसाहित्य प्रकाश में आया। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने देशभक्ति और उपदेशात्मक कविताएँ लिखीं। मैथिलीशरण गुप्त की एक बालोपयोगी रचना 'ओला' सरस्वती में प्रकाशित हुई। रामनरेश त्रिपाठी, हरिऔध, सुभद्राकुमारी चौहान, श्रीधर पाठक ने एक से बढ़कर एक सुन्दर बाल कविताएँ लिखीं।

स्वतंत्रता आंदोलन के समय बालसाहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया तथा बच्चों को राष्ट्रीय धारा से जोड़ा गया। महापुरुषों की जीवनी तथा उनके जीवन के प्रेरक प्रसंग बच्चों के लिए लिखे जाने लगे। गोपाल शरण सिंह, माखनलाल चतुर्वेदी, आरसी प्रसाद सिंह, ठाकुर श्रीनाथ सिंह इसी धारा के कवि रहे हैं। श्रीनाथ सिंह की काव्य पंक्तियाँ -

सत्पुरुषों के जीवन से सीखो-चरित्र निज गढ़ना।
अपने गुरु से सीखो बच्चों उत्तम विद्या पढ़ना।।

अर्थात् बच्चों में देशप्रेम, भारतीय संस्कृति, धर्म, परम्परा, त्यौहार, नीति मर्यादा के गुण भरने की प्रबल उत्कंठा तत्कालीन रचनाओं में रही। अत: इसी प्रेरणा से प्रचुर मात्रा में बालसाहित्य का प्रणयन आरंभ हुआ।

मुंशी प्रेमचंद, सुदर्शन, जहूरबख्श जैसे कहानीकारों ने बच्चों के लिए अनेक बाल कहानियाँ लिखीं। इसके अलावा बच्चों के मासिक पत्रों में भी कहानियाँ छपने लगीं। रामवृक्ष बेनीपुरी कृत 'सियार पांडे', श्रीराम शर्मा कृत 'शिकार की कहानियाँ' भी उल्लेखनीय पुस्तकें हैं।

बच्चों के नाटकों में जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द कृत 'प्रताप प्रतिज्ञा', चतुरसेन शास्त्री का 'अमरसिंह राठौर' ऐसे नाटक थे, जो बड़ी सफलता के साथ बच्चों द्वारा अभिनीत हुए हैं।

सन् 1947 के बाद हिन्दी बालसाहित्य लेखन में अभूतपूर्व प्रगति हुई। लेखकों, कवियों ने बच्चों की मनोवृत्ति के अनुरूप सरल भाषा में रोचक ढंग से पुस्तकों की रचना की और प्रकाशकों ने उन्हें आकर्षक कलेवर में प्रकाशित किया। स्वतंत्रता के बाद लिखा गया बालसाहित्य बच्चों के बौद्धिक विकास के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ। हिन्दी की व्यावसायिक पत्रिकाओं ने बालसाहित्य के लिए पृष्ठ सुरक्षित किये, इनमें 'धर्मयुग', 'हिन्दुस्तान' प्रमुख हैं।

बाल कहानी के क्षेत्र में मौलिक कहानियों की रचना होने लगी और कई नए प्रयोग हुए। पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित हुईं।

बच्चों के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् बालगीत अधिक लिखे गए। सोहनलाल द्विवेदी, निरंकारदेव सेवक, मयंक, आनंद, राष्ट्रबंधु आदि अनेक सुपरिचित कवियों ने सरस और लुभावने गीत लिखे।

सुप्रसिद्ध बालसाहित्यकार निरंकारदेव सेवक ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी बालगीत साहित्य की समालोचना' में हिन्दी बालगीतों के साथ अन्य भाषाओं में प्राप्त बालगीतों का तुलनात्मक अध्ययन किया। इसके पश्चात् डॉ. हरिकृष्ण देवसरे, डॉ. राष्ट्रबंधु, डॉ. ज्योति स्वरूप, डॉ. विजयलक्ष्मी सिन्हा, डॉ. विद्या देवी, डॉ. सुरेन्द्र विक्रम आदि साहित्यकारों ने बालसाहित्य के विभिन्न विषयों पर शोध प्रबंध लिखे। इससे बालसाहित्य के अनेक नवीन तथ्य तथा आयाम उद्घाटित हुए।

बाल साहित्य के विकास का दौर कहीं न कहीं गद्य के विकास से भी जुड़ा है। गद्य लेखन में वृद्धि और उसमें हो रहे नए-नए प्रयोगों ने पद्य के शताब्दियों से चले आ रहे वर्चस्व को सार्थक चुनौती पेश की थी। चूँकि गद्य का संसार, पद्य की अपेक्षा अधिक व्यापक और विविधतापूर्ण तो था ही उसमें विचारों की स्पष्ट एवं त्वरित अभिव्यक्ति भी संभव थी। साथ ही गद्य लेखन के लिए पद्य जैसे अनुशासन की आवश्यकता भी नहीं थी, जिसमें वैचारिक अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत व्यापक एवं सरल हुई, गवेशणात्मक लेखन और विचारों के सहज आदान-प्रदान के लिए गद्य बदले समय की जरूरत बनकर लगातार लोकप्रिय होता चला गया। जिससे नए क्षेत्रों में काम करने का मार्ग प्रशस्त हुआ। पूर्वाग्रहयुक्त होकर इसका श्रेय हम भले ही अंग्रेजी भाषा को न दें परन्तु सही मायनों में वह समय नए ज्ञान के उदय और तार्किकता के विस्तार का था। जिससे नए क्षेत्रों में काम की शुरुआत हुई। प्रकारांतर में उसका लाभ बाल साहित्य को भी मिला। उधर तेजी से सिकुड़ते जा रहे परिवारों में बच्चे निरंतर महत्त्वपूर्ण होते जा रहे थे। अत: उनमें मनोरंजन एवं मानसिक विकास के लिए ऐसे साहित्य की आवश्कता थी जो केवल उन्हीं को ध्यान में रखकर गढ़ा गया हो। इसलिए केवल बच्चों को ध्यान में रखकर लिखने और छपने के काम को बढ़ावा मिला।

जहाँ तक हिन्दी बाल साहित्य को स्वतंत्र पहचान मिलने का सवाल है उसकी शुरुआत आजादी के छठे दशक से मानी जा सकती है। इस समय बालसाहित्य की रूपरेखा तैयार करती कई गोष्ठियाँ आयोजित की गईं, समीक्षा व आलेख पत्रिकाओं में छपने लगे। राष्ट्रीय प्रशिक्षण अनुसंधान परिषद ने बालसाहित्य की समीक्षा करवाई। बालसाहित्य को दिशा देने वाली पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। 'बालहंस', 'नंदन' इस समय की प्रमुख पत्रिकाएँ थीं। सातवें दशक तक अधिकांश बालसाहित्यकारों ने बच्चों की पसंद को ध्यान में रखकर विभिन्न विधाओं में रचनाएँ कीं। 'बालक', 'सरस्वती', 'आरोग्य जीवन', 'पीयूष प्रवाह' आदि पत्रिकाओं में विविध विषयों जैसे- विज्ञान, सामान्य ज्ञान, स्वास्थ्य यात्रा से संबंधित निबंध प्रकाशित हुए। कहानी और कविता के क्षेत्र में बच्चों को ज्ञान और मनोरंजन के साथ अपनी संस्कृति से जोड़ा गया ताकि अपनी परम्पराओं, मान्यताओं के आलोक में समुचित रूप से बच्चों का व्यक्तित्व विकास हो सकें।

हिन्दी बालसाहित्य ने बच्चों की बदलती रुचि और प्रवृत्तियों को महत्त्व दिया है। आठवें दशक में बालसाहित्य रचना में नये प्रयोग हुए। औद्योगिकीकरण तथा तकनीकी विकास से शहरी और ग्रामीण जीवन मूल्यों में परिवर्तन और सामाजिक मूल्यों में बदलाव आया। बालसाहित्य ने उन गुणों और तत्वों

का समावेश कर बच्चों को सामयिक संदर्भों से जोड़कर तथा उनकी आधुनिक जीवन के प्रति मन में उभरती जिज्ञासाओं को शांत किया।

बालगीतों में परिवर्तन के साथ नये उपमानों को जोड़ा है और वे बच्चों की सहज रुचि के अनुकूल हैं। विषयों की विविधता के साथ सामयिक परिवेश और यथार्थ से जुड़ने का आग्रह है। नये वैज्ञानिक अनुसंधानों सत्यों और पारम्परिक मान्यताओं के बदलते स्वरूपों से परिचित कराने वाले गीतों के माध्यम से बच्चे समाधान खोज लेते हैं –

चंदा मामा कहो, तुम्हारी शान पुरानी कहाँ गई।

कात रही थी बैठी चरखा बुढ़िया नानी कहाँ गई।।

बच्चों को समाज और शासन तंत्र की विशेषताओं से परिचित कराने वाले बालगीत भी बालसाहित्य में प्रचुर मात्रा में लिखे गये हैं।

हिन्दी बाल कविता ने परम्परागत नीतिपरक शैली को छोड़कर नए बिम्बों और प्रतीकों को अपनाकर बालमन की पैनी दृष्टि को अभिव्यक्त किया है। डॉ. प्रभाकर माचवे ने बच्चों के खेलों में आ रहे परिवर्तन को रेखांकित करते हुए लिखा है –

अब न खेलते कोई कंचे,/उन्हें चाहिए सिर्फ तमंचे।

अब बूझो क्विज तो हम माने,/अब के बच्चे जगत टटोलें।।

आज बालसाहित्यकारों की रचनाओं में भाषा, छंद एवं प्रतीकों के प्रयोग में नवीनता आई है। उन्होंने बच्चों की मनोभावनाओं और उनकी समस्याओं को पहचानकर उन्हें जीवन के यथार्थ से जोड़ा है।

बालकथा साहित्य में कई नये प्रयोग हुए। नई परी-कथाएँ, मुहावरों पर आधारित कहानियाँ, इंटरव्यू शैली में कहानियाँ लिखी गईं। विष्णु प्रभाकर ने बच्चों के लिए आधुनिक संदर्भ में पौराणिक, नीतिपरक, शिक्षाप्रद और नए भावबोध की कहानियाँ लिखीं। श्री व्यथित हृदय ने अपनी कहानियों में राष्ट्रीयता, सच्चरित्रता, ईमानदारी, साहस, मनोवैज्ञानिक धरातल पर कहानियाँ लिखीं। डॉ. हरिकृष्ण देवसरे ने अपनी कहानियों में बच्चों को उनकी समस्याओं और परिवेश से जोड़ा।

बाल नाटक लेखन में भी प्रगति हुई। रेखा जैन के प्रयोगात्मक नाटकों के दो संग्रह प्रकाशित हुए हैं – 'खेल खिलौनों का संसार' और 'अप्सरा का तोता' इन नाटकों में काल्पनिक तथा यथार्थ जगत के तथ्यों को उजागर किया है। बाल एकांकी संकलन में गोविन्द शर्मा का 'डॉ. चुनचुन', केशव दुबे कृत 'जादूगर', इन संकलनों में विषय की विविधता, शैलीगत प्रयोग और बच्चों के लिए इनकी उपयोगिता को ध्यान में रखा गया है। हरिकृष्ण देवसरे कृत 'बाल संसद', 'बच्चों के सौ नाटक', अमृतलाल गौड़ द्वारा लिखित 'हमें बापू से शिकायत' आदि उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

बाल उपन्यासों के प्रकाशन में शकुन प्रकाशन का विशेष योगदान रहा है। बच्चों के मनोविज्ञान समस्या पर आधारित उपन्यास 'घर से भागा मटरू' एक सशक्त रचना है। डॉ. मस्तराम कपूर का उपन्यास 'नीरू और हीरू' रोचक उपन्यास है। मनहर चौहान कृत 'नाक का डॉक्टर' मनोरंजन तथा 'जादुई खटिया' चमत्कारों और जादू भरे कारनामों से युक्त उपन्यास है। बच्चों के लिए वैज्ञानिक और जासूसी उपन्यास भी लिखे गये। बाल पॉकेट बुक्स ने विषयों की विविधता के साथ बाल मनोविज्ञान के अनुकूल बालसाहित्य

के लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित कीं। इनमें 'नन्हें जासूस', 'शनिलोक', 'जाली नोट', 'हरे दानवों का देश' आदि वैज्ञानिक उपन्यास और 'चाणक्य', 'जय सोमनाथ', 'पृथ्वीराज चौहान' आदि ऐतिहासिक रचनाएँ प्रकाश में आईं।

बच्चों के लिए लिखित विज्ञान साहित्य यह स्पष्ट करता है कि बालसाहित्य लेखन में प्रगति हुई है। लेखकों ने बच्चों को साहित्य के माध्यम से वैज्ञानिक युग की अनेक बातों से परिचित कराया है।

आज का युग तकनीकी युग है। इस युग में इंटरनेट, ई-बुक्स तथा एनिमेशन के माध्यम से बच्चों के लिए काफी रचनात्मक लेखन हो रहा है। इंटरनेट पर बड़ों के साथ-साथ बच्चों के लिए ब्लॉग्स लिखे जा रहे हैं। कुछ लेखकों ने ब्लॉग्स पर अपनी रचनाओं का प्रकाशन किया है। इनमें मानसी चटर्जी कृत 'परीकथा', सिरीश महेश द्वारा लिखित 'बाल सजग', रूपचन्द्र शास्त्री कृत 'नन्हें सुमन', सीमा सचदेव द्वारा रचित 'आओ सीखें हिन्दी' तथा 'नन्हा मन', कविता वाचक्नवी का 'बालसभा', हेमन्त कुमार कृत 'फूल बगिया', जाकिर अली रजनीश द्वारा लिखित 'बालमन', रश्मि प्रभा कृत 'मीठे बोल', डॉ. रूपचन्द्र शास्त्री द्वारा रचित 'बालचर्चा मंच', आकांक्षा यादव कृत 'बाल दुनिया' जैसे प्रमुख साहित्यकारों द्वारा ब्लॉग्स के माध्यम से बच्चों के लिए बालगीत, कविता, कहानी प्रकाशित की हैं।

इंटरनेट पर उपलब्ध इन ब्लॉग्स के अलावा वर्तमान में बालसाहित्य की कुछ पत्र-पत्रिकाओं ने भी अपनी वेबसाइट का निर्माण किया है। ई-बुक अर्थात् डिजिटल पुस्तकों के माध्यम से बच्चों को नि:शुल्क कविता, कहानी, नाटक उपलब्ध करवाए जा रहे हैं।

बालसाहित्य के रूप में एनिमेशन फिल्मों (कार्टून फिल्म) का भी महत्त्व है। एनिमेशन फिल्मों के माध्यम से पौराणिक कथाओं को आधुनिक स्वरूप में अद्यतन किया है। इनमें 'बाल गणेश', 'लिटिल कृष्ण', 'बाल हनुमा', 'तेनालीराम', 'अकबर-बीरबल', 'मोगल', घटोत्कछ, महाभारत, रामायण, जैसी कई चित्रकथाएँ अब एनिमेशन फिल्मों के रूप में आ चुकी हैं, और बच्चों के बीच सफलतापूर्वक स्थापित हो रही हैं।

इस युग में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा उपलब्ध सामग्री बच्चों के ज्ञान और मनोरंजन संबंधी जरूरतों को पूरा कर रही है। बालसाहित्यकार डॉ. नागेश पांडेय ने 'बालमंदिर' नाम से एक मंच बनाया है जहाँ अधिकतर बालसाहित्यकारों की रचना एक साथ देखी जा सकती है।

इंटरनेट पर कुछ वेबसाइड उपलब्ध हैं। www.akhlesh.com इस वेबसाइट पर बच्चों के लिए हिन्दी में बाल कहानियाँ, कविता एवं देशभक्ति गीतों की पुस्तकें उपलब्ध हैं जो बच्चों के लिए अत्यन्त लाभकारी हैं।

www.arvindguptastoysbooksgallery.com इस वेबसाइट पर डॉ. अरविन्द गुप्ता ने 'विज्ञान' को बच्चों के दैनिक जीवन से जोड़कर प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार मानव संसाधन मंत्रालय के शिक्षा विभाग ने पूरे देश के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों के बालक-बालिकाओं की कुछ गतिविधियों की सीडी प्रादेशिक भाषाओं के रूप में तैयार करवाई हैं। जिसमें कविता, कहानी और अनेक गतिविधियाँ हैं। उनका उद्देश्य यही है कि बच्चे सीडी देखकर पाठ या कविता, कहानी सीखें और उनका लाभ उठा सकें।

हिन्दी के कई बाल साहित्यकार ऐसे हैं जिन्होंने बाल साहित्य को रचनात्मक जड़ता से उबारने के

लिए अपनी कलम का खूब उपयोग किया है। सृजनात्मक लेखन के साथ-साथ भरपूर समीक्षात्मक लेखन भी किया है ताकि आने वाले साहित्यकारों के लिए एक कसौटी का निर्माण हो सके, इनमें बाल साहित्यकारों के लिए सर्वश्री हरिकृष्ण देवसरे, प्रकाश मनु, जहूर बख्श, मस्तराम कपूर, स्व. राष्ट्रबन्धु, डॉ. परशुराम शुक्ल, जगदीश तोमर, डॉ. विनोदचंद्र पाण्डेय, डॉ. सेवा नंदवाल, डॉ. चक्रधर नलिन, स्व. कृष्ण शलभ, श्यामसुन्दर सुमन, शंकर सुल्तानपुरी, शकुन्तला कालरा, राजा चौरसिया, राकेश चक्र, जाकिर अली रजनीश, सुरेन्द्र विक्रम, अजय जनमजेय, शशि गोयल, डॉ. सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, बानो सरताज, सुधा भार्गव आदि बालसाहित्यकारों ने बालसाहित्य में नये प्रयोग कर नये आयाम प्रदान किये हैं। जो निश्चित ही आने वाली पीढ़ी के लिए मील का पत्थर साबित होगा।

आधुनिक बालसाहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से विविध विधाओं में जैसे लघु कहानी, कविता, काव्य नाटिका, लघु आलेख, चित्रकथा, तकनीकी विज्ञान, पर्यावरण, जिसने बच्चों को साहित्य के प्रति आकर्षित किया है। इनमें मुख्यत: मंजरी शुक्ला, इंदु राव, मधुर गंजमुरादाबादी, राजकुमार जैन 'राजन', वेदमित्र शुक्ल, गार्गी जमड़ा, राजेश गुर्जर, जया मोहन, सुषमा दुबे, अरविन्द कुमार साहू, पूर्णिमा मित्रा, मीरा जैन, संकेत गोस्वामी, देवांशु वत्स, जैसे अनेक बाल साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं को रोचक ढंग से प्रस्तुत कर बालमन को बाल साहित्य के प्रति आकर्षित किया है।

प्राचीन काल में बालसाहित्य हमें असंख्य पौराणिक नीतिपरक और लोक कथाओं के रूप में प्राप्त हुआ है। अनेक वर्षो के सतत् प्रयत्नों के बाद बालसाहित्य का स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित हुआ तथा श्रेष्ठ बाल रचनाओं का लेखन, प्रकाशन आरंभ हुआ। बालसाहित्य पर शोध कार्य और वैज्ञानिक रीति से श्रेष्ठ पुस्तकों का चयन भी हुआ है। बच्चों के आधुनिक परिवेश और उनके मानसिक स्तर के अनुकूल बालसाहित्य रचना पर बल दिया गया और सभी विधाओं में श्रेष्ठ कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं।

आज आवश्यकता है कि हिन्दी बाल साहित्य में इन्हीं परम्परा को निरंतर विस्तार दिया जाए। ताकि वर्तमान पीढ़ी जो टेलीविजन और इंटरनेट एवं अन्य संचार माध्यमों के कारण साहित्य से कट से गए हैं उन्हें वापस पुस्तकों की दुनिया में लाया जाए, यह जानते हुए कि पढ़ना एक चारित्रिक विशेषता है। जिसका अभ्यास धीरे-धीरे तथा बचपन से किया जाता है, बच्चों के लिए ज्ञान-विज्ञान और संवेदनशीलता से भरपूर मौलिक सामग्री उपलब्ध कराई जाए। इलेक्ट्रानिक मीडिया द्वारा उपलब्ध कराई जा रही सामग्री बच्चों के ज्ञान और मनोरंजन संबंधी जरूरतों को तो निश्चय ही पूरा कर रही है, किन्तु वह बच्चों को अपने समाज से काटकर उनमें एक विशेष दायरे में सीमित हो जाने की भूख भी पैदा कर रही है, वह दायरा है कामयाब उपभोक्ता का जिसमें अपने सुख-सुविधा के लिए सभी कुछ खरीद लेने का सामर्थ्य है। घटती पठनीयता पर जार-जार आँसू रोने वाले भी जानते हैं कि बालक के हाथों से पुस्तक का छूट जाना पूरी एक पीढ़ी को अपनी परम्परा तथा ज्ञान की धरोहर से वंचित हो जाने जैसी दुर्घटना है। अत: बालकों को ऐसा साहित्य उपलब्ध कराया जाए जो उन्हें परम्परा का अनुयायी बनाने की अपेक्षा उसका पोषक और अन्वेषक बनाए।

सम्पर्क : *इन्दौर (म.प्र.)*

बलदाऊ राम साहू

आज के बच्चे और बाल-साहित्य

आज का समाज बहुत बदला हुआ है। समाज बदला है, समाज की सोच बदली है। इस बदले हुए समाज में बच्चे और बच्चों की आकांक्षाएँ बदली हैं, सुविधाएँ बढ़ी हैं, संसाधन बदले हैं। इस बदलाव के युग में साहित्य और साहित्यिक दृष्टिकोण में भी बदलाव आया है, तो निश्चय ही बाल साहित्य में भी बदलाव आना स्वाभाविक है।

बाल-साहित्य कहने से मस्तिष्क में जो दृश्य उभरते हैं उनमें शामिल हैं- बच्चों की जिज्ञासा, चंचलता, कल्पना और उनका नटखटपन। बच्चे स्वभाव से सहज, सरल, निश्छल होते हैं और यही गुण बाल-साहित्य में समाहित होते हैं। बाल-साहित्य भाषायी संस्कार को विकसित करने का एक माध्यम भी है। बाल-साहित्य को अलग करके हम बच्चों की शिक्षा की परिकल्पना भी नहीं कर सकते। प्राथमिक से माध्यमिक शाला तक की पाठ्यवस्तु को बाल साहित्य से पृथक करके नहीं देख सकते। भाषा और साहित्य का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। साहित्य के माध्यम से भाषायी विकास और भाषा के माध्यम से साहित्य की समझ, ये दो पहलू हमारे समक्ष होते हैं। बाल-साहित्य को भाषायी चेतना के रूप में भी देखा जाना चाहिए। बच्चे, बाल-साहित्य के माध्यम से भाषायी संरचना को क्रमश: समझते चलते हैं, यह ही नहीं, नई भाषा भी गढ़ते हैं। बच्चे सहज रूप में अपेक्षित ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्मुख होते हैं। बच्चों में भाषायी विकास के साथ चिंतन, परिकल्पना, जिज्ञासा को प्रबल करने में बाल-साहित्य मददगार भी होता है। यह केवल परिकल्पना और जिज्ञासा पैदा नहीं करता बल्कि समाधान भी देता है।

बच्चों के लिए लिखना आमतौर से परकाया प्रवेश करना जैसा ही है। यह कहें कि बच्चा बनना है यानी बच्चा बनकर ही बाल साहित्य लिखा जा सकता है और यह चुनौतीपूर्ण कार्य है। उसमें न केवल बालमनोविज्ञान को समझने जैसी चुनौती होती है बल्कि अपने से अधिक जिज्ञासु और ऊर्जावान मस्तिष्क की अपेक्षाओं पर खरा उतरना होता है। ऐसा वही साहित्यकार कर पाते हैं जिनमें नया सोचने और उसको रोचक ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता होती है। जो अपने पूर्वाग्रहों को पीछे छोड़कर सृजनात्मकता बनाए रखते हैं वे ही आज की आवश्यकता के अनुरूप मौलिक साहित्य रच पाते हैं। आधुनिक संदर्भों को जोड़कर रखना सृजनात्मक मेधा से संभव है। विज्ञान या समाज विज्ञान

को समझ कर मौलिक अभिव्यक्ति वही दे सकता है जिन्होंने बालसाहित्य को जड़ता से मुक्त करने के लिए अपनी कलम चलाई है।

बच्चे समर्थ समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग हैं। हम बच्चों को अलग करके किसी भी समाज की परिकल्पना नहीं कर सकते। बच्चों में ही एक स्वस्थ और चेतना युक्त समाज प्रतिबिंबित होता है, इसलिए हम समाज में बच्चों की उपस्थिति को अस्वीकार भी नहीं कर सकते। इस दृष्टि से बच्चों के विकास के लिए मनोवैज्ञानिक और मनोरंजनात्मक बाल-साहित्य का होना आवश्यक है। बाल-साहित्य बच्चों का मित्र भी है और मार्गदर्शक भी, साथ ही जीवन मूल्यों को जानने और समझने का माध्यम भी। बच्चा बाल-साहित्य की कविता, कहानी, एकांकी, जीवनी या अन्य विधाओं के माध्यम से आए विचारों को अपने से जोड़कर देखता है और मनन करते हुए उनके गुण-दोषों का विश्लेषण करता है। हम यह भी कह सकते हैं कि इससे उनमें सत्य-असत्य का ज्ञान, अच्छे और बुरे में अंतर करना आदि आता है।

बहुत से विद्वान साथी बाल-साहित्य की उपादेयता पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं। उनका कहना है, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के युग में जब बच्चों के हाथ में रिमोट है, मोबाइल और अन्य नवीन संसाधन हैं तब वह राजा-रानी की कहानियों, परीकथाओं, जंगली पशु-पक्षियों से संबंधित सामग्री में अपना ध्यान क्यों लगाएँगे। यहाँ हमें यह जानने और समझने की आवश्यकता है कि इंटरनेट और मोबाइल के युग में बचपन खोता जा रहा है और चिंताएँ बढ़ती जा रही हैं। एकल परिवार में बच्चा अकेला हो गया है। कामकाजी माता-पिता और बच्चों के बीच में संवादहीनता पनप रही है। बच्चे अपने अकेलेपन से जूझ रहे हैं या एकाकीपन को दूर करने के लिए टी. वी. मोबाइल और वीडियो गेम का सहारा ले रहे हैं, आत्मघाती हो रहे हैं। संवेदनाओं का स्थान अब क्रूरता लेती जा रही है। इन परिस्थितियों में आज बाल साहित्य और बाल साहित्यकार का दायित्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। आज यह एक बड़ी चुनौती है कि बच्चों में मानवीय मूल्यों का रोपण कैसे करें? बच्चों को किस तरह दिशा प्रदान करें?

वर्तमान परिवेश में सूचनाओं का विस्फोट हो रहा है। यत्र-तत्र जानकारियाँ बिखरी हुई हैं। बच्चे एक क्लिक करके समाधान पाने की कोशिश करते हैं। आज के बच्चों में कल के बच्चों की तुलना में जानकारियों तक पहुँच अत्याधिक है। किन्तु ये सारी जानकारियाँ ज्ञान नहीं हैं।

इन जानकारियों से समझ विकसित नहीं हो पा रही है। समझ विकसित करने के लिए बच्चों को सकारात्मक चिंतन की ओर ले जाने की आवश्यकता है और यही कार्य बाल-साहित्य का है।

निश्चय ही बाल साहित्य के क्षेत्र में अनेक संस्थाएँ कार्य कर रही हैं। वे इस क्षेत्र में शोध अनुसंधान भी कर रहे हैं। परन्तु हमें आशातीत सफलताएँ नहीं मिली हैं। बाल साहित्य भी निरंतर लिखे जा रहे हैं। बहुत से प्रतिष्ठित रचनाकार अलग-अलग विधा में रचना कर बाल साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं। बच्चों के अनुकूल बाल पत्रिकाएँ भी ज्ञान और संस्कार देने में पीछे नहीं हैं। चकमक, चंपक, बाल भारती, किसलय, देवपुत्र, नंदन, लोट-पोट, बालहंस, बाल वाटिका, नन्हें सम्राट, बच्चों का देश, बाल प्रहरी आदि अनेक पत्रिकाओं के साथ-साथ कई स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर के समाचार पत्र भी बच्चों के लिए निरंतर कार्य कर रहे हैं। किन्तु बच्चों की जिज्ञासाएँ असीमित हैं, अपेक्षाएँ बढ़ीं हैं, उनमें

परिकल्पनाओं के नवीन पंख उग आये हैं, उनकी उनकी इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु बाल साहित्यकारों को और आगे आना होगा। वैसे बाल-साहित्य न कभी मौन रहा है और न रहेगा। बाल-साहित्यकारों को बाल-मनोविज्ञान को समक्ष रखकर बच्चों की आवश्यकताओं और जिज्ञासाओं के अनुरूप बाल-साहित्य रचने की आवश्यकता है। यदि हम यह कहते हैं कि सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में बच्चे को आज की आवश्यकता के अनुरूप सामग्री चाहिए, तो बाल-साहित्यकार को भी विज्ञान से जुड़ी हुई, वर्तमान समय की माँग के अनुसार कथा कहानी, कविता या अन्य सामग्री उपलब्ध कराने के आवश्यकता है। आज के बच्चे वैश्विक बाजारवाद की चपेट में आते जा रहे हैं। वे टी.वी. में प्रचारित लोक-लुभावन विज्ञापन को देखते हैं और उसी के अनुरूप सपने पालते हैं। यह समझने की आवश्यकता है कि बाल-साहित्य की कौन-सी विधा है, जो उनके सपनों के आसपास की है। इसके लिए वर्तमान में उपलब्ध बाल-साहित्य का विश्लेषण करने की आवश्यकता है और विश्लेषण के पश्चात् जो रिक्तता है, उसे भरने की भी, ताकि आज के जिज्ञासु बच्चे अपनी अपेक्षा के अनुरूप सामग्री का चयन कर सकें।

बच्चा अब बच्चा नहीं रह गया है, वह ज्ञान के क्षेत्र में प्रौढ़ है तो आज के ऐसे समर्थ बच्चे को हम क्या दें। हमें समाज की मनोदशा को समझना पड़ेगा। क्या वर्तमान समाज बच्चों को बच्चे रहने देना चाहता है? क्या वह उनमें मानवीय मूल्यों को स्थापित करना चाहता है? क्या वह बच्चों को अपने मन का कुछ करने की आजादी देना चाहता है? आज बच्चा पैदा हुआ नहीं कि उस पर जिस तरह पढ़ाई का बोझ लादा जा रहा है, वह कितना उचित है? आज के विद्यालय बच्चों को मशीन बना रहे हैं। परीक्षा के परिणाम ही बच्चों की सफलता के मानक हो गये हैं। इन परिस्थितियों में भी बाल-साहित्य की उपलब्धता और पहुँच पर विचार करने की आवश्यकता है।

बाल-साहित्यकार का उद्देश्य केवल सामग्री का निर्माण ही नहीं है, उसकी उपलब्धता और पहुँच पर भी विचार करना भी है। आज का बालक और बाल-साहित्य दोनों ही बातों पर विचार करना होगा। पहला उनकी अपेक्षा के अनुरूप साहित्य सृजन और दूसरा उस साहित्य की बच्चों तक पहुँच। तब ही हम आज के बच्चों को समाज के लिए उपयोगी नागरिक बना सकेंगे।

सम्पर्क : *दुर्ग (छ.ग.)*

राजीव नामदेव 'राना लिधौरी'

बाल साहित्य का वर्तमान परिदृश्य

आज बाल साहित्य बहुत अधिक संख्या में तो लिखा जा रहा है किन्तु स्तरीय नहीं लिखा जा रहा है जिसे हम भरतोल कह सकते हैं। अधिकांश लेखक आज दूसरों की रचनाएँ एवं साहित्य को पढ़ते ही नहीं हैं और केवल थोक के भाव में लेखन करने में लगे रहते हैं। आश्चर्य की बात है कि वे पत्र-पत्रिकाओं में खूब छप भी रहे हैं। भले ही उनकी रचनाएँ स्तरीय न हों। कुछ साहित्यिकार जिन्हें छपास का रोग है वे अपनी रचनाओं को एकसाथ अनेक पत्र-पत्रिकाओं में छपने को भेज देते हैं। अब तो ईमेल का जमाना है कापी, पेस्ट किया और तुरंत दूसरे के पास पहुँचा दी। ऐसे में उनका साहित्यक स्तर गिरना स्वाभाविक है।

बच्चों की सबसे लोकप्रिय बाल पत्रिका 'नंदन' को आर्थिक संकट के कारण बंद होना पड़ा, प्रसिद्ध 'पराग' बहुत पहले ही बंद हो चुकी है। मध्यप्रदेश में कुछ बाल पत्रिकाएँ निकलती हैं जो कि बहुत प्रसिद्ध रहीं उनमें प्रमुख रूप से चकमक, समझ-झरोखा (भोपाल), देवपुत्र (इंदौर) अपना बचपन(भोपाल) और स्नेह (भोपाल) आदि प्रमुख हैं।

कुछ बाल पत्रिकाएँ 'बालहंस' (जयपुर), बालप्रहरी (अल्मोड़ा), आदि पत्रिकाएँ जरूर अभी भी दम बाँधे हुए हैं लेकिन वे भी कहीं न कहीं आर्थिक संकट का सामना कर रही हैं और रही सही कसर इस कोरोना महामारी ने पूरी कर दी। देश में सैकड़ों पत्र-पत्रिकाओं ने दम तोड़ दिया है। इन सबके लिए कहीं न कहीं हम स्वयं भी जिम्मेदार हैं। पाठक वर्ग पुस्तकें मोबाइल पर पी.डी.एफ. फाइल में घर में बैठे-बैठे मुफ्त में ही पढ़ लेता है। वह पैसे देकर अब पत्रिकाएँ पढ़ना पसंद नहीं करता और युवा पीढ़ी का तो और भी बुरा हाल है। क्रिकेट और फिल्में तो दिनभर देख सकती है लेकिन पुस्तकें पढ़ने में बिलकुल भी रुचि नहीं लेती हैं। बच्चे बालसाहित्य न पढ़कर मोबाइल पर दिनभर गेम खेलते रहते हैं। उसमें भी मारपीट वाले हिंसक खेल खेलते हैं। यही भावना उन्हें बाद में बड़ा अपराधी बनाने में सहायक होती है, लेकिन अफसोस कि उनके माता-पिता भी उन्हें रोकते नहीं हैं।

'बाल साहित्य' वर्तमान में दम तोड़ता नज़र आ रहा है। यही हाल रहा तो आगे की पीढ़ी बाल साहित्य और भी दूर हो जायेगी। एक दौर था जब बच्चे तो क्या बड़े भी कॉमिक्स बहुत चाव से पढ़ा करते थे। शासन को भी ऐसे कारगार कदम उठाने चाहिए जिससे बच्चों में बाल साहित्य के प्रति रुचि पैदा हो, वे उसे पढ़ें। कुछ प्रतियोगिताएँ बाल साहित्य पर केन्द्रित होनी चाहिए ताकि वे उसमें भाग ले सकें। स्कूलों

में पाठ्यक्रम के अतिरिक्त भी बाल साहित्य के लिए प्रोजेक्ट कार्य दिये जाने चाहिए। बालसभाएँ सप्ताह में कम से कम एक बार जरूर होनी चाहिए। क्षेत्रीय, प्रसिद्ध कवियों और साहित्यकारों की जयंती पर भी कार्यक्रम होने चाहिए। जो उस क्षेत्र के जीवित बाल साहित्यकार हैं उन्हें स्कूल में बुलाकर उनका परिचय बच्चों से कराना चाहिए, तभी बच्चों में बाल साहित्य के प्रति रुचि पैदा होगी।

पूर्व के बाल साहित्यकारों में परीकथाओं को बच्चों के लिए लिखा फिर 'अलिफ-लैला', 'गुलिवर' की रोमांचक कहानियाँ, ग्रिम बंधुओं की लोककथाओं और हेंस एंडरसन की परीकथा भारत के पाठकों को पढ़ने को मिलीं, तभी 'बालसखा', 'वानर' और 'शिशु' आदि बाल पत्रिकाओं का उदय हुआ। जिसके परिणाम स्वरूप मुशी प्रेमचंद ने अनेक बाल कहानियाँ बच्चों पर केन्द्रित लिखीं, जिसमें प्रमुख रूप से ईदगाह, पंच परमेश्वर, गुल्ली-डंडा, बड़े भाई साहब, पुरस्कार और आत्माराम आदि बाल कहानियाँ लिखी गयीं जो कि बालमनोविज्ञान का सटीक चित्रण करती हैं। उन्होंने बाल साहित्य को एक नई दिशा दी। वहीं 'पंचतंत्र की कहानियाँ' जीवन मूल्य की शिक्षा प्रदान करती हैं। 'हितोपदेश' आदि अनेक साहित्यिक धरोहर हैं। वर्तमान में शिशु गीत बहुत लिखे जा रहे हैं जो कि बाल गीत जैसे ही हैं।

हिंदी बाल साहित्य को स्वतंत्र पहचान पाँचवें और छटवें दशक में मानी जा सकती है। इसका मुख्य कारण था कि प्रकाशन की सुविधा सुलभ हो गयी थी। शिक्षा का व्यापक रूप से प्रसार होने लगा। इसी के साथ-साथ वैज्ञानिक चेतना भी आ गयी। जिसके परिणामस्वरूप प्रचुर मात्रा में बाल साहित्य लिखा जाने लगा। एक अच्छी बात यह थी कि उस समय ऐसे अनेक बाल साहित्यकार थे जो बाल साहित्य लेखन के साथ-साथ समीक्षात्मक लेखन भी करने लगे थे जिससे बाल साहित्य का उचित और सही मूल्यांकन हो सके। आने वाली पीढ़ी एवं शोधार्थियों को सुविधा हो सके। इनमें प्रमुख रूप से हरिकृष्ण तैलंग, हरिशंकर परसाई, हरिकृष्ण देवसरे, भूपनारायण दीक्षित, जहूरबख्श, डॉ. प्रकाश मनु, रमेश तैलंग, शेरजंग गर्ग, मस्तराम कपूर 'उर्मिल,' मनहर चौहान, डॉ. राकेश चक्र, अंजीम अजुम आदि प्रमुख हैं।

वर्तमान में मध्यप्रदेश से डॉ. कृष्णकुमार अष्ठाना, महेश सक्सेना, देवेन्द्र दीपक, परशुराम शुक्ल, नयन कुमार राठी, बटुक चतुर्वेदी, रमेशचन्द्र शाह, ललितकुमार उपाध्याय, लक्ष्मीनारायण पयोधि, अशोक आनंद, रामबल्लभ आचार्य, ऊषा जायसवाल, जगदीश तोमर, आशा शर्मा, डॉ. प्रीति प्रवीण खरे आदि अनेक उल्लेखनीय नाम हैं जो बाल साहित्य को ऊँचाइयाँ प्रदान कर रहे हैं। श्री महेश सक्सेना जी 'बाल शोध केन्द्र', भोपाल में अनेक सालों से सफलतापूर्वक संचालित कर रहे हैं।

''सन् 1893 में 'साधना' में श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने लिखा था कि-''बच्चों को ऐसी पुस्तकों की जरूरत है, हमारी सभी बाल पुस्तकें कक्षा में पढ़ाने के लिए होती हैं। उनमें कोमलता या सुंदरता का कोई निशान नहीं होता। बाल साहित्य के नाम पर एक अरसे तक 'बालक के लिए साहित्य' लिखा जाता रहा है जबकि आज 'बालक का साहित्य' लिखा जा रहा है। पिछले कुछ सालों में यह समझ बहुत शिद्दत से आई है कि बालक के लिए नहीं बल्कि बालक का बाल साहित्य लिखा जाना चाहिए।'' (जनसत्ता)

सन् 1850 से 1900 के बीच का समय हिन्दी साहित्य का 'भारतेंदु काल' कहा जाता है। इस समय पर फिर से बाल साहित्य को एक नई दिशा मिली थी जब 'अंधेर नगरी चौपट राजा' एवं ''राजा हरिशचन्द्र' जैसी कालजयी रचनाएँ रची गयी थीं। उसी समय श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी

सिंह दिनकर, अयोध्या प्रसाद उपाध्याय, बालमुकुंद गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, हरिवंशराय बच्चन, प्रेमचन्द, रामनरेश पाठक, सियारामशरण गुप्त आदि साहित्यकारों ने बाल साहित्य में श्रीवृद्धि की।

सन् 1990 के बाद का समय प्रयोगवादी काल माना जाता है। इस समय में अनेक नये-नये प्रयोग किए गये तथा नया लिखने का प्रयास सभी ने किया जिसमें प्रमुख रूप से विनोद कुमार शुक्ल, प्रयाग शुक्ल ने बहुत अच्छा सृजन किया। सन् 1990 के बाद ही से अनेक प्रकाशकों ने भी बाल साहित्य को बहुत प्रोत्साहन दिया। प्रमुख रूप से नेशनल बुक ट्रस्ट, चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट, हिन्दी संस्थान एवं साहित्य अकादमी ने बाल सहित्य के लिए अनेक उल्लेखनीय कार्य किये हैं।

वर्तमान के मोबाइल, टेलीविजन, इंटरनेट, कम्प्यूटर, लेपटॉप और अभी कोरोना महामारी ने बच्चों को एक कमरे में कैद करके रख दिया है। आज ऑनलाइन पढ़ाई होने लगी है। जिससे बच्चों को प्रेक्टीकली ज्ञान नहीं हो पा रहा है। उनमें भावनाएँ नहीं उत्पन्न हो पा रही हैं। वर्तमान में बाल साहित्य का पूरा स्वरूप एक नये ढाँचे में बदलने जा रहा है।

स्मरणीय बाल साहित्यकारों की कुछ रचनाएँ दृष्टव्य हैं:-

श्री मैथिलीशरण जी गुप्त की 'सरकस' बाल कविता-

होकर कौतूहल के बस में, गया एक दिन मैं सरकस में।/ भय-विस्मय के खेल अनोखे, देखे बहु व्यायाम अनोखे।/ एक बड़ा सा बंदर आया, उसने झटपट लैंप जलाया।।

श्रीमती सुभद्रा कुमारी जी चौहान की यह बाल रचना उल्लेखनीय है-

मैं बचपन को बुला रही थी, बोल उठी बिटिया मेरी।/ नंदन-वन-सी फूल उठी वह, छोटी-सी कुटिया मेरी।।/ माँ ओ कहकर बुला रही थी, मिट्टी खाकर आई थी।/ कुछ मुँह में कुछ लिए, हाथ में, मुझे खिलाने लाई थी।।

श्री हरिकृष्ण देवसरे जी की यह रचना-

कविवर तोंदूराम बुझक्कड़ कभी-कभी आ जाते हैं। /खड़ी निरंतर रहती चोटी, आँखें धँसी मिचमिची छोटी।। (म.प्र.संदेश भोपाल)

श्री दिविक रमेश जी की यह बाल रचना देखें-

अगर पेड़ भी चलते होते, कितने मजे हमारे होते।/बाँध तने में उसके रस्सी/चाहे जहाँ कहीं ले जाते।

श्री रामधारी सिंह दिनकर जी की ये बाल कविता बहुत प्रसिद्ध रही-

चूहे ने यह कहा कि चुहिया छाता और घड़ी दो।/लाया था जो बड़े सेठ के घर से वह पगड़ी दो।....

आजादी का जश्न देखने मैं जाता हूँ दिल्ली/चूँ-चूँ-चूँ-चूँ-चूँ-चूँ-चूँ-चूँ-

श्री रमेशचन्द्र जी पंत तो रोबोट से होमवर्क करने को कह रहे हैं-

भैया रोबोट करोगे, मेरा भी कुछ काम।/होमवर्क सब लिख दूँ अपना, आज आपके नाम।।

श्री ठाकुरगोपाल शरण सिंह जी ने लिखा-

सुंदर सजीला चटकीला वायुयान एक,/ भैया हरे कागज का आज मैं बनाऊँगा।
चढ़ के उसी पै सैर नभ की करूँगा,/ बादल के साथ-साथ उसको उड़ाऊँगा।।

श्री रमेश तैलंग जी की यह बाल रचना-

ऐसा हो स्कूल हमारा ऐसा हो स्कूल।/ जैसे है अपना घर प्यारा ऐसा हो स्कूल।।

नन्हीं जेबों में हम भर लें सूरज चाँद सितारे।/ चटपट हमेशा याद हो जाएँ गिनती और पहाड़े।।

श्री उदय किरौला जी लिख रहे हैं कि-

सीमा पर बमबारी खबर जब भी आती/ पूछो यदि सच कहूँ, नींद नहीं आती।/ युद्ध के चक्कर में माँ-बच्चे सब रोते।।

श्री मुकेश तिवारी जी लिखते हैं कि-

ओरी प्यारी गौरैया, तू मेरे पास चली आ री।/ थोड़ा दाना पानी पा, कुछ मैं गाऊँ कुछ तू गा री।।

श्री दामोदर अग्रवाल जी की यह बाल कविता बिजली पर व्यंग्य करती हुई-

जब देखो गुल हो जाती हो।/ओढ़ के कंबल सो जाती हो।

नहीं देखती हो यह दिन है।/या यह काली रात है।

बिजली बड़ी शरम की बात।। (गद्य कोष)

डॉ. राकेश चक्र जी की बाल कविता देखें-

मौसम थोड़ा हुआ सुहाना, हुए रात-दिन एक।/ चंदा जी की खिली चाँदनी, तारे दिखे अनेक।। ('खुश्बू मेरे देश की' अक्टूबर 2020)

श्री अजीम अंजुम जी की 'तोते' पर केन्द्रित बहुत बढ़िया बाल कविता-

घर आँगन में उगे नीम पर, हमने ही नोते।/ लाल चोंच वाले मनभावन, हरे-हरे तोते।।

लालटमाटर हरी मिर्च, इनके मन को भाती।/ फली मटर की और निबोरी, इनको ललचाती।। ('खुश्बू मेरे देश की' अक्टूबर 2020)

बाल साहित्य पर केन्द्रित कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं जो कि बाल साहित्य पर शोध कार्य हेतु बहुत उपयोगी और पठनीय हैं। उनमें प्रमुख रूप से 'बाल साहित्य 21वीं सदी में' (जयप्रकाश भारती), 'बाल साहित्य : मेरा चिंतन'-(सं.-डॉ. हरिकृष्ण देवसरे), 'बाल साहित्य : रचना और समीक्षा-(सं.-डॉ. हरिकृष्ण देवसरे), बाल कल्याण में बाल साहित्य की भूमिका- (सं.-डॉ. रमाकांत श्रीवास्तव), 'भारतीय बाल साहित्य का इतिहास' (जयप्रकाश भारती), बाल साहित्य के प्रतिमान (डॉ. नागेश पांडेय संजय) बाल कल्याण के प्रमुख प्रणेता (अमिताभ पाण्डेय) आदि प्रमुख बाल साहित्य हैं और भी अनेक बाल साहित्यकार हैं जो निरंतर बाल साहित्य सृजन में लगे हुए हैं।

सम्पर्क : *टीकमगढ़ (म.प्र.)*

ज्योति नाहर पाटीदार

बाल साहित्य में आत्मकथा लेखन

जीवन चरित्र लेखन के दो रूप हैं-आत्मकथा और परकथा अर्थात् दूसरे की कथा-किसी असाधारण व्यक्तित्व की जीवन-कथा। उसे जीवनी भी कहा जाता है। जब साहित्य में व्यक्ति स्वयं की जीवन कथा रचना के माध्यम से प्रस्तुत करता है, तो उसे आत्मकथा कहा जाता है। साहित्य में आत्मकथा किसी लेखक द्वारा अपने ही जीवन का वर्णन करने वाली कथा को कहते हैं। यह संस्मरण से मिलती-जुलती पर भिन्न है। जहाँ संस्मरण में लेखक अपने आसपास के समाज, परिस्थितियों व अन्य घटनाओं के बारे में लिखता है वहीं आत्मकथा के केन्द्र में लेखक स्वयं होता है। आत्मकथा हमेशा व्यक्तिपरक होती है यानी वह लेखक के दृष्टिकोण से लिखी जाती है, परन्तु लेखक निरपेक्ष एवं तटस्थ दृष्टिकोण का भी ध्यान रखता है। अपने सारे गुण-दोषों को सच्चाई के साथ व्यक्त करना होता है। यही कारण भी है कि आत्मकथाएँ कम ही लिखी जाती हैं। एक ओर आत्मकथा से व्यक्ति के जीवन और परिस्थितियों के बारे में पढ़कर पाठकों को जानकारी और मनोरंजन मिलता है, साथ ही जीवन को समझने का एक नया दृष्टिकोण मिलता है। आत्मकथाकार के जीवन की कई परिस्थितियाँ एवं समस्याएँ पाठक को अपने जीवन में दृष्टिगोचर होता है और उसे उनके समाधान में मदद मिलती है।

बाल साहित्य का शाब्दिक अर्थ बालक का साहित्य है, परन्तु व्यापक अर्थ में बाल साहित्य के कई अर्थ मिलते हैं। सामान्य रूप में बालमन के अनुरूप रचित रचनाओं को ही बाल साहित्य कहा जाता है। जिसका केन्द्र बिन्दु बालक एवं उनका बचपन होता है।

दूसरे अर्थ में बालक द्वारा रचित रचनाओं का जो उसके अनुभव का प्रस्तुतकर्ता होता है। उसकी सोच एवं समझ के द्वारा जब वह बचपन का वर्णन करता है, बाल साहित्य की सच्ची रचना बनती है जो यथार्थ पर आधारित होती है।

बाल साहित्य की वह रचना जो विशेष रूप में बच्चों के लिए नहीं लिखी जाती है परन्तु वह आज भी बच्चों को प्रिय है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वह साहित्य जिसकी रचना बालकों के लिये या बालकों को दृष्टि में रखकर नहीं की गयी पर जिसे बाद में बालकों ने अपना लिया, बाल साहित्य ही है। जैसे-पंचतंत्र, विक्रम वेताल, जातक कथाएँ आदि।

इस प्रकार बालक के लिए रचित रचना, उसके द्वारा रचित रचनाएँ और उसे केन्द्र में रखकर रचित

रचनाओं को बाल साहित्य कहते हैं। हिन्दी बाल साहित्य में साहित्य की विभिन्न विधाओं में रचनाएँ की जाती हैं। बाल-साहित्य बालमन के अनुसार रचित रचनाओं का साहित्य है। इसमें लेखक स्वयं को बालक मानकर रचनाएँ करता है। बाल-साहित्य में भी आत्मकथात्मक शैली की रचनाएँ तो देखने को मिलती हैं। लेकिन विशुद्ध रूप से आत्मकथा लेखन का अभाव है।

बालकों के लिए राय निरंजन शर्मा 'ठिमाऊँ' ने वृक्षों तथा पशु-पक्षियों की आत्मकथाएँ रोचक शैली में प्रस्तुत की हैं। प्रमोद जोशी का 'बस्ता बोला', देवेन्द्र मेवाड़ी की 'फसलें कहें कहानी' आदि रचनाएँ इसी शैली की हैं।

बड़ों के साहित्य में आत्मकथा के क्षेत्र में कुछ नये प्रयोग हुए हैं। 'गर्दिश के दिन' शीर्षक से कमलेश्वर के सम्पादकत्व में हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के बारह रचनाकारों के आत्मकथ्यों का संकलन, सम्पादन और प्रस्तुतीकरण एक प्रयोग ही है। इस तरह का प्रयोग बाल साहित्य में भी प्रारम्भ हुआ है। साहित्यकारों की आत्मकथात्मक जीवनी का निरन्तर प्रकाशन महेश सक्सेना, मासिक पत्र 'अपना बचपन' (भोपाल) में कर रहे हैं। यह पुस्तकाकार में भी प्रकाशित हुआ। जिसमें बाल साहित्यकारों का व्यक्तित्व-कृतित्व आत्मकथात्मक शैली में वर्णित है, जिसे पढ़कर बालक और किशोर वही आनन्दानुभूति करेंगे, जो अपने प्रिय लेखकों से मिलने पर प्राप्त करते हैं। साहित्यकारों की भाँति वैज्ञानिक, शिक्षक, कलाकार, संगीतकार, क्रिकेट-फुटबॉल आदि के खिलाड़ियों की कहानी भी उनकी जुबानी पढ़ने को मिले तो बालक उन्हें उत्साहपूर्वक पढ़ेंगे।

इसी तरह का एक प्रयोग ललित कुमार 'उन्मुक्त' ने भी किया था। उन्होंने 'बाल मनोकथाएँ' शीर्षक से एक संग्रह-ग्रन्थ का सम्पादन किया था, जिसमें विद्यालय के 32 छात्रों की आत्मकथाएँ हैं। इसमें उनके बचपन की शैतानियाँ, कमजोरियाँ, अच्छाइयाँ-बुराइयाँ सभी का सच-सच वर्णन है।

बाल आत्मकथा में लेखक के बाल जीवन का वर्णन उसका अनिवार्य तत्व है। आत्मकथा में केवल अपने बारे में ही नहीं लेखक प्रसंगानुसार दूसरों के बारे में भी लिख सकता है पर यहाँ भी उसके बाल प्रसंग ही दिये जायें तो अच्छा होगा। आत्मकथा में यदि कहानी जैसी रोचकता हो तो इसमें बालकों की रुचि और अधिक बढ़ेगी।

मासिक पत्रिका 'नंदन' ने इस दिशा में एक सार्थक प्रयास किया है। इसमें समय-समय पर अलग-अलग क्षेत्रों की प्रसिद्ध विभूतियों ने बाल पाठकों के लिए अपने जीवन के कुछ प्रसंग आत्मकथा-रूप में प्रस्तुत किये हैं। भूतपूर्व राष्ट्रपति वराह वेंकटगिरि के 'मेरी पसंद की मिठाई है जलेबी', संगीतकार रवि शंकर के 'सितार बजाना, टाफी-चाकलेट खाना' और प्रसिद्ध गायिका लता मंगेशकर के 'खोटी दुअन्नी चल गयी' शीर्षकों से उनके जीवन-प्रसंग प्रकाशित हुए हैं। इस तरह के प्रसंगों को एकत्र कर और कुछ अन्य प्रसिद्ध विभूतियों से लिखवाकर एक संग्रह-ग्रन्थ सम्पादित किया जा सकता है, जो निश्चय ही बालकों और किशोरों के लिए बहुत प्रेरणादायक सिद्ध होगा।

बाल साहित्य की अन्य विधाओं की तरह इसमें भी विकास के कई अवसर मौजूद हैं।

सम्पर्क : *उज्जैन (म.प्र.)*

अनिता बिरला

राष्ट्र निर्माण में बाल साहित्य की रचनात्मक भूमिका

बच्चे राष्ट्र की सम्पत्ति हैं। किसी भी राष्ट्र का भविष्य उस राष्ट्र के बच्चों की उचित शिक्षा-दीक्षा, भरण-पोषण व सही मार्गदर्शन पर निर्भर करना है। बाल साहित्य के माध्यम से एक प्रबुद्ध पीढ़ी के निर्माण का कार्य किया जा सकता है। आज की बाल पीढ़ी ही कल वयस्क पीढ़ी के रूप में परिणित होगी और इसी पीढ़ी के ऊपर राष्ट्र के विकास का दायित्व होगा, इसलिए बाल पीढ़ी को शिक्षित व संस्कारित कर, सुदृढ़ भावी राष्ट्र का निर्माण किया जा सकता है। बाल साहित्य में बालक के चरित्र व व्यक्तित्व निर्माण की अद्भुत क्षमता है। बच्चों में आत्मज्ञान व स्वनिर्माण का सबसे अच्छा स्रोत बाल साहित्य है। स्वस्थ बाल साहित्य जहाँ एक ओर बच्चों को आदर्श नागरिक बनाता है, वहीं उनमें अच्छे संस्कार डालकर उनके भविष्य की नींव भी मजबूत करता है। बाल साहित्य न केवल बालक के मस्तिष्क का विस्तार करता है, वरन् वह बालक की अन्तःशक्तियों का भी विकास करता है। बच्चों के बहुमुखी और सर्वांगीण विकास में बाल साहित्य विशेष भूमिका निभाता है। बाल साहित्य के माध्यम से बालक में जीवन मूल्यों का विकास होता है। विष्णुकान्त पाण्डेय लिखते हैं- ''बच्चों में स्वस्थ मनोरंजन के साथ उनके भावी जीवन के लिए उन्हें स्वयं तैयार कर देने की परोक्ष उत्प्रेरणा देने वाला साहित्य ही सच्चा बाल साहित्य है।''(बाल साहित्य परम्परा और जयप्रकाश भारती का बाल साहित्य, देवेश कुमार त्यागी)

भारतीय समाज में प्राचीन मनीषीयों ने बालक के सर्वांगीण विकास व व्यक्तित्व निर्माण के लिए एक ओर तो विभिन्न संस्कारों की उद्भावना की वहीं दूसरी ओर ऐसे साहित्य का सर्जन किया, जो लोरियों व कथाओं के माध्यम से बालक को अंधकार से प्रकाश, असत्य से सत्य व मृत्यु से अमरत्व की दिशा में अग्रसर करने के लिए प्रेरित कर सकें। बाल साहित्य का प्रमुख स्वर रहा है, जीवन के प्रति नयी चेतना जगाना, बालक को सहृदय एवं संवेदनशील बनाना, भावी जीवन में आने वाली समस्याओं का सामना करने के लिए तैयार करना। बालक में साहस, आस्था और विश्वास के दीप को जलाए रखना। बाल साहित्य बच्चों के लिए, बच्चों की भाषा में उनके मानसिक स्तर पर उनके मन और मनोभावों को परखकर, उनकी रुचि व कल्पना का ध्यान रखकर सृजित साहित्य है। जिसका प्रत्यक्ष उद्देश्य तो केवल मनोरंजन होता है, जबकि अप्रत्यक्ष उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना है। प्रसिद्ध बाल साहित्यकार श्री भगवती प्रसाद द्विवेदी बाल साहित्य के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं ''सच्चा बाल

साहित्य न तो कोरा उपदेश थोपता है, न आँकड़ों के माया जाल में उलझाता है। सही मायने में बाल साहित्य बाल मन की गुत्थियों को सुलझाने और उसे जीवन मूल्यों से जोड़ने का एक नायाब जरिया है, उनके अनुसार आदर्श बाल साहित्य वह है जो बच्चों के अन्तर्मन के कौतूहल और जिज्ञासाओं को तर्कपूर्ण, सरस, मनोरंजक ढंग से शान्त कर ऐसी लौ प्रज्ज्वलित करें ताकि स्वविवेक से वे अच्छाई और बुराई, अंधकार व प्रकाश के प्रति अपनी समझ विकसित कर सकें। बच्चों की मनोदशाएँ, उनकी ज्वलंत समस्याएँ भी बाल साहित्य का हिस्सा होना चाहिए। कुल मिलाकर, बाल साहित्य यानी आनंददायक शिक्षा अर्थात् बच्चे का सच्चा साथी।''2 ('हिन्दी बाल साहित्य विमर्श' साहित्यिक साक्षात्कार, डॉ. शकुन्तला कालरा)

बालक के शारीरिक विकास के लिए जिस प्रकार जल, वायु और उत्तम भोजन आवश्यक है। उसी प्रकार बालक के बौद्धिक व चारित्रिक विकास के लिए उत्तम बाल साहित्य नितान्त आवश्यक है। डॉ. हरिकृष्ण देवसरे बाल साहित्य के महत्व को स्वीकार करते हुए कहते हैं- ''स्कूली साहित्य जहाँ बच्चों को एक-एक सीढ़ी चढ़ना सिखाता है, उनकी अँगुली पकड़कर आगे ले जाता है, वहीं बाल साहित्य ज्ञान के असीम भण्डार को बच्चों के सामने प्रस्तुत करता है और बच्चे उसमें से अपनी इच्छानुसार अपनी जिज्ञासाओं तथा ज्ञान की तुष्टि के लिए ग्रहण कर लेते हैं।''3 (बाल साहित्य मेरा चिन्तन, डॉ. हरिकृष्ण देवसरे)

दादी-दादी एवं नाना-नानी की कहानियों के रूप में बाल साहित्य मौखिक स्वरूप में आदिकाल से प्रचलन में रहा है। इन कहानियों का उद्देश्य बच्चों का मनोरंजन करने के साथ ही उन्हें नैतिकता व मानवता का पाठ पढ़ाना था, जिससे बच्चे बड़े होकर राष्ट्र के एक सफल नागरिक बनें और जीवन में आनेवाली कठिनाइयों को हल करने में सक्षम बनें। भारतीय साहित्य में अनेक ऐसी कृतियाँ मिलती हैं, जो सैकड़ों वर्षों से न केवल बालकों का मनोरंजन कर रही हैं बल्कि उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से जीवनोपयोगी शिक्षा भी प्रदान कर रही हैं। 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश', 'कथा सरित्सागर', 'सिंहासन बत्तीसी' आदि ऐसी ही कथा कृतियाँ हैं जो आज भी बाल मन को आकर्षित करती हैं। पंचतंत्रकार ने बालकों का न केवल मनोरंजन किया बल्कि सामाजिक जीवन में सदैव विद्यमान रहने वाले मूल्यों से भी अवगत कराया। पंचतंत्र नामक कृति आज भी न सिर्फ भारत बल्कि विश्व के अनेक देशों के बच्चों के मनोरंजन के साथ ही उन्हें सही दिशा प्रदान करती है। मित्रता, पड़ोसी धर्म, सहयोग, एकता के लाभ, अनावश्यक वाद-विवाद की हानियाँ आदि ऐसे विषय हैं जो समाज से सीधे जुड़े होने के कारण बालक को प्रभावित करते हैं। आज पंचतंत्र का विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ है, मिस्र, यूनान, ईरान और अनेक यूरोपीय देशों में पंचतंत्र की नीतिकथाएँ स्वीकृत हुईं।

बच्चों को सीधे-सीधे नीति और सिद्धान्त की बातें बतायी जाएँ तो वे उन्हें नीरस व उबाऊ लगेंगी। वे कभी भी इन बातों को ग्रहण नहीं करेंगे। इसीलिए पौराणिक काल से ही उपदेश की बातों को सीधी भाषा में न बताकर कथाओं के माध्यम से कहने की परम्परा रही है। समस्त संसार के बाल साहित्य में यह गुण दिखायी देता है। यद्यपि आज बाल साहित्य मौखिक, लिखित, श्रव्य, दृश्य रूप में साहित्य की विभिन्न विधाओं बाल कहानी, बाल कविता, बाल उपन्यास, बाल एकांकी आदि से प्राप्त होता है परन्तु आज भी

इसका उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास ही है। बच्चों को समाज के सिद्धान्त, आदर्श, नीतियाँ और जीवनानुभव बताने का यही सरल और रोचक माध्यम रहा है।

पण्डित विष्णु शर्मा का पंचतंत्र हो या नारायण पंडित का हितोपदेश या फिर पाश्चात्य जगत में प्रचलित गुलिवर की कहानियाँ, रूबिन्सन क्रूसो, एलिस इन द वंडरलैंड, रोबिनहुड, सोहराब और रुस्तम, ग्रिस की परीकथाओं का खजाना, एंडरसन की परीकथाएँ, ईसप की कहानियाँ आदि बाल साहित्य की अमूल्य धरोहर बन गईं।

बाल साहित्य का महत्व स्वीकार करते हुए महावीर प्रसाद ने बाल सखा में कहा- ''उन्नत भाषाओं में बाल साहित्य को विशेष स्थान प्राप्त है, यह अटल नियम है कि बालक-बालिकाओं को प्रारंभ से जैसी शिक्षा दी जाती है, आगे चलकर वे वैसे ही होते हैं। जो आज किशोर हैं, वही कल प्रौढ़ हो जायेंगे और उनके तन के साथ उनके मन की भली-बुरी भावनाओं की भी उन्नति या अवनति अवश्य होगी।''4(संपादक पं. बदरीनाथ भट्ट : बाल सखा, प्रथम अंक)

डॉ. ओमप्रकाश सिंहल ने किस प्रकार चींटी जैसे छोटे जीव पर कविता लिखकर उसे बाल प्रेरणा का केन्द्र बनाया है। चींटी के माध्यम से वे बाल पीढ़ी को मेहनत करने, मिल-जुलकर रहने व निरंतर प्रयत्न करने की प्रेरणा देते हैं-

''नन्हीं सी चींटी देखो/कितनी मेहनत करती है
जगह सूँघती फिरती है/सदा मेल से रहती है
मुँह से दाना ले जाती/अपने बिल में रख आती
गर्मीभर यह करती काम/वर्षा में करती आराम''5 (समकालीन हिन्दी बाल साहित्य, शुचिता सेठ)

आज विश्व के लगभग सभी देशों में इस बात पर विशेष रूप से जोर दिया जा रहा है कि बाल साहित्य के माध्यम से बच्चों के मन में अपने समाज, व्यक्तियों और राष्ट्र के प्रति रुचि व सम्मान का भाव पैदा कर उन्हें सही दिशा दें। समाज के प्रति अपने दायित्वों को समझना और उन्हें पूरा करने योग्य बनाना, समाजीकरण की बुनियादी माँग है। वास्तव में जब तक बच्चों का सही समाजीकरण नहीं किया जाता, कोई समाज और कोई भी राष्ट्र सही दिशा में विकास नहीं कर सकता।

बच्चे राष्ट्र की सम्पूर्ण सम्भावना शक्ति हैं, इसी तथ्य को ध्यान में रखकर राष्ट्र निर्माण में बाल साहित्य की भूमिका को समझते हुए विश्व के विभिन्न राष्ट्रों ने उसे एक निश्चित विचारधारा के अनुरूप तैयार किया है। इग्लैंड का बाल साहित्य बच्चों में क्रियात्मक भावना का संचार करते हुए उन्हें अपने राष्ट्र के प्रति पूर्णतया समर्पित होने की प्रेरणा देता है तो अमेरिकी बाल साहित्य द्वारा बच्चों में समानता की भावना जाग्रत करने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। वहाँ वर्ग संघर्ष, रंगभेद नीति और पूँजीवादी दृष्टिकोण भी समाज के अविभाज्य अंग बन गए हैं। भावी पीढ़ी को इन सामाजिक विषों से बचाने का निरन्तर प्रयास किया जा रहा है। प्रजातंत्र और मानवता के प्रति प्रेम करना सिखाया जाता है। बाल विकास के लिए बाल साहित्य की कौन-कौनसी पुस्तकें उपयोगी हैं और उन्हें किस अनुपात में दिया जाए, जिससे कि बाल पीढ़ी देश के सिद्धान्तों के अनुरूप सही दिशा पा सके। रूस में हुई 'अक्टूबर क्रान्ति' के बाद बच्चों के विकास और उनके जीवन मूल्यों पर विशेष ध्यान दिया जाता है किन्तु अब माता-पिता इस दायित्व को

पूरा करते हैं। रूस में बाल साहित्य सृजन का उद्देश्य है – आज की बाल पीढ़ी में अपनी कल्पनाओं का मार्गदर्शन करने की क्षमता उत्पन्न करना, उसे सही दिशा में अग्रसर करना तथा अपनी मातृभूमि का साम्यवादी रूप में बदलने के लिए मौलिक शक्ति का उपयोग करना। फ्रांस का बाल साहित्य बच्चों को ऐसा नागरिक बनने की प्रेरणा देता है कि वे जीवन की परिस्थितियों से संघर्ष करके उन्हें अनुकूल बना सकें।

भारत में भी स्वतंत्रता पूर्व बाल पीढ़ी में राष्ट्रीय चेतना व स्वदेश की भावना जागृत करने के लिए बाल साहित्य सृजन की आवश्यकता महसूस की गयी। बच्चों को राष्ट्रीय धारा से जोड़ने के लिए सिर्फ अपने देश ही नहीं, दूसरे देशों के महापुरुषों की जीवनियों तथा उनके जीवन के प्रेरक प्रसंग बच्चों के लिए लिखे जाने लगे। मैथिलीशरण गुप्त, कामताप्रसाद गुरु, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', गोपाल शरण सिंह, आर.पी.सिंह, माखनलाल चतुर्वेदी, स्वर्ण सहोदर आदि ने यह कार्य किया।

बच्चों में देश प्रेम, नीति और मर्यादा के गुण भरने की प्रबल उत्कंठा तत्कालीन बाल साहित्य की रचनाओं में देखी जा सकती है।

हर देश का बाल साहित्य अपनी बाल पीढ़ी को सही दिशा देकर अपने भविष्य का निर्माण कर सकता है। आज साईबर युग में बच्चा या तो दिनभर कार्टून देखता है, कम्प्यूटर पर वीडियो गेम खेलता है अथवा मनोरंजन के नाम पर कुछ भी ऊल-जलूल देखता है। परिणामस्वरूप बाल पीढ़ी तेजी से एक अनचाही दिशा की ओर बढ़ रही है, उसमें जीवन मूल्यों का ह्रास हो रहा है। अत: राष्ट्र निर्माण में बाल पीढ़ी एक सकारात्मक भूमिका निभा सके, वह संस्कारों से परिपूर्ण होकर राष्ट्र की उन्नति में भागीदार बन सके इसलिए बालक के शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं चारित्रिक विकास के लिए सिर्फ किताबी ज्ञान पर्याप्त नहीं। इस बात को समझकर माता-पिता और शिक्षकों द्वारा उत्तम बाल साहित्य बाल पीढ़ी को प्रदान करना होगा। बाल साहित्य बालक के मनोविज्ञान को समझते हुए न केवल उसका मनोरंजन करता है बल्कि उसका शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक विकास सही दिशा में हो सके इसका अथक् प्रयास करता है। बाल साहित्य बालक को राष्ट्र का सुयोग्य नागरिक बनाता है व राष्ट्रनिर्माण में बाल साहित्य रचनात्मक भूमिका निभाता है।

सम्पर्क : *हरदा (म.प्र.)*

दिनेश प्रताप सिंह 'चित्रेश'

लोककथा बनाम बाल कहानी

पिछले दशकों के बीच बच्चों के लिए जो कथा साहित्य लिखा गया है, उसका बहुलांश मौलिक सृजन न होकर मात्र पुनर्लेखन है। इसमें विभिन्न धर्म ग्रन्थों की अन्तर्कथाएँ और मिथकीय प्रसंग तो हैं ही! संस्कृत, पालि, प्राकृत साहित्य का भी इस संदर्भ में खूब दोहन हुआ है। संत-महात्मा, धर्मगुरु और ऋषि-मुनियों के जीवनवृत से सामग्री लेकर भी कहानियाँ गढ़ी गई हैं। इसके अलावा बालकथा साहित्य के भंडार में हजारों रचनाएँ देश-विदेश की लोककथाओं पर आधारित प्रस्तुतियाँ हैं।

इस लेख का मंतव्य लोककथा के उद्भव और विकास के साथ-साथ इसके कथ्य, शिल्प व संरचना पर दृष्टि डालना है। मानव आदिम हो या सभ्य, ग्रामीण हो या नगरीय उसके मस्तिष्क में सहस्त्रों कल्पनाएँ उठा करती हैं, वह बहुत कुछ सोचता और कल्पना की ऊँची-ऊँची उड़ाने भरता है। इन्हीं कल्पनाओं से अनेक आविष्कारों, उपन्यासों, महाकाव्यों, कहानियों और दंत कथाओं की सृष्टि हुई है। लोककथाएँ भी मानव मस्तिष्क की कल्पना की उड़ान का प्रतिफल हैं।

'नंदन' पत्रिका के पूर्व सम्पादक जयप्रकाश भारती का मत है-''मानव ने जब से भाषा द्वारा अपने भाव व्यक्त करने की क्षमता विकसित की तभी से वह कहानी कहने लगा।'' इस क्रम को आगे बढ़ाते हुए वे संसार की पहली कहानी के सम्बन्ध में लिखते हैं-''कोई मनुष्य जंगल में चला जा रहा होगा। अचानक किसी जंगली जानवर ने उस पर हमला कर दिया। आदिम युग के उस मानव ने आत्मरक्षा के लिए संघर्ष किया। उस जंगली पशु का वधकर साँझ को अपने निवास पर लौटकर उसने इस घटना का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया। भय, कौतूहल, अतिरंजन और मनोरंजन जैसे तत्वों के कारण यह छोटी-सी घटना कहानी बन गई। एक ने दूसरे से, और उसने तीसरे को, चौथे को यह कहानी सुनाई। इसी तरह मौखिक रूप में कहानी की शुरुआत हुई।''

जयप्रकाश भारती की यह अवधारणा भी कल्पना की उड़ान है। मगर जैसे कि वास्तविकता से दूर होते हुए भी लोककथाओं में वास्तविक जीवन की अनुभूतियों व संवेदनाओं का पुट कम नहीं होता, उसी तरह उपर्युक्त अवधारणा भी वस्तुस्थिति से दूर नहीं है। घटना कोई भी रही हो, किन्तु कहानी की सृष्टि कुछ इसी तरह आपस में अनुभवों के आदान-प्रदान के बीच सम्पन्न हुई होगी। आगे चलकर आदमी की कल्पना की उड़ानें ऊँची हुईं। सोचने की सीमा और तार्किकता का विकास हुआ। अभिव्यक्ति में

कलात्मकता का पुट आने लगा। उसकी कहानियों का आकार बढ़ने लगा। एक कहानी में कई-कई मोड़ आने लगे। एक कहानी से दूसरी, फिर तीसरी कहानी निकालने का शिल्प विकसित हुआ। बड़ी-बड़ी गाथाओं का जन्म हुआ। गोपीचन्द, भर्तृहरी, ढोला-मारू, विजयमल-सोरठी, लीला-चनेसर, पूतबुलाकी आदि इसी काल की देन हैं। फलत: कहानियों की मौखिक परम्परा विकसित होकर लोककथा के रूप में सामूहिक जीवन की धरोहर बन गई।

लोककथा का कल्पना तत्व उसकी रोचकता बढ़ाता है और मानवीय संवेदनाएँ उसकी सार्वभौमिकता सुनिश्चित करती हैं। अपने इन दो गुणों के कारण यह सामाजिक विरासत के रूप में पीढ़ी-दर पीढ़ी हस्तांतरित होती आई है। एक समय था, जब बच्चों के ही नहीं, बल्कि सयानों के मनोरंजन में भी लोककथाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। बाकायदे किस्से कहने-सुनने की बैठकें होती थीं, जिसमें सयानों के साथ बेरोक-टोक बच्चे भी शामिल होते थे। दरअसल इन कथा-गोष्ठियों का मूल आशय मनोरंजन हुआ करता था। इसलिए इसमें प्रौढ़ और बाल श्रोता एक साथ अपनी-अपनी समझ के अनुसार मनोरंजन प्राप्त करते थे।

घर-परिवार में दादा-दादी, नाना-नानी भी बच्चों को पारम्परिक कथाएँ सुनाते थे। इन कहानियों में तत्काल जिज्ञासा जगाकर पाठकीय चेतना को अपनी तरफ खींच लेने की अद्भुत क्षमता होती है। सहज प्रस्तुति, घटनाओं का बाहुल्य और सीधा-सादा शिल्प-यही होता है लोककथा का ढाँचा! इसमें घटना को अधिक महत्व दिया जाता है। वर्णन की अपेक्षा चरित्र अथवा स्थिति की हल्की झलक भर दी जाती है, जिसे श्रोता अथवा पाठक अपनी रुचि, वृत्ति, संस्कार और क्षमता के अनुसार मन ही मन दृश्यांवित करते हुए पूर्ण करता है। इस प्रकार लोककथा का श्रोता या पाठक मात्र श्रोता या पाठक न रहकर पूरे कथाक्रम के बीच संवेदनाओं के उतार-चढ़ाव में अपनी स्पष्ट भागीदारी अर्जित कर लेता है।

लोककथा का आरंभ चुनौतीपूर्ण संघर्ष के साथ होता है। मसलन राजकुमार शिकार खेलकर लौटा है। महल के अन्दर आकर वह भाभी से झटपट पानी लाने को कहता है। राजकुमार की अधिकारपूर्ण बुलाहट से भाभी चिढ़ जाती है। ताना मारते हुए कहती है-''ऐसे हुकुम लगा रहे हो, जैसे मेरी ममेरी बहन को हड़पीस राक्षस के चंगुल से आजाद कराके लौटे हो।'' राजकुमार को बात लग जाती है। वह उल्टे पैरों बाहर आता है और घोड़े पर सवार होकर भाभी की ममेरी बहन को आजाद करने निकल पड़ता है। इन चार-छ: लाइनों के बीच कथा नायक और पाठक/श्रोता के बीच गहरा जुड़ाव बन जाता है। राजकुमार की कठिनाइयों, हर्ष-विषाद, आशा-निराशा के बीच पाठक की संवेदना निरन्तर कथानायक के पक्ष में घनीभूत होती जाती है। राजकुमार भाभी की ममेरी बहन को जब राक्षस की कैद से निकाल लेता है तो श्रोता या पाठक जिन्दगी का बड़ा दाँव जीत लेने जैसी खुशी हासिल करता है।

लोककथा का नायक कभी हारता नहीं। हर मुसीबत का वह धैर्य और विवेक से सामना करता है। चमत्कारिक रूप से उसे किसी साधु-बुढ़िया वगैरह से मदद भी मिल जाया करती है। यह समस्त विशिष्टताएँ बाल-पाठकों पर सकारात्मक प्रभाव छोड़ती हैं। वह इन कहानियों से संघर्ष की प्रेरणा, विजय हासिल करने के आस्था और आशावादी संस्कार प्राप्त करता है। लोककथाएँ उद्देश्यपूर्ण होती हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि यह उद्देश्य सम्पूर्ण लोककथा में दूध में शक्कर की तरह घुला होता है, अलग से

नहीं दिखाई पड़ता।

बच्चों के साहित्य का इतिहास मात्र सवा सौ साल पुराना है। सन् 1882 में पहली बार बच्चों के लिए 'बाल दर्पण' मासिक का प्रकाशन हुआ। भारतेन्दु युग की इस साहित्यिक देन का मात्र इतना महत्व है कि इसके साथ बाल साहित्य की स्वतंत्र अवधारणा का जन्म हुआ। सन् 1891 में लखनऊ से 'बाल हितकर' का प्रकाशन हुआ। इन्हीं दिनों 'विद्या प्रकाश' निकला। किशोरी लाल गोस्वामी ने बनारस से 'बाल प्रभाकर' आरंभ किया। 'छात्र हितैषी' और 'मानीटर' नामक बाल मासिक प्रकाशित हुए। इन प्रकाशनों से बाल साहित्य की स्वतन्त्र अवधारणा को बल मिला। ये सभी पत्रिकाएँ अपने अंकों में कहानी के रूप में अधिकांश लोककथाओं को ही प्रकाशित करती थीं।

सन् 1914 में 'विद्यार्थी' का प्रकाशन हुआ। इसके सम्पादक मंडल का स्पष्ट मत था कि बच्चों के कथा साहित्य-जो लोककथा, पंचतंत्र, ईसप और एंडरसन की परीकथा, जातक कथा, जीवनी, धर्म ग्रन्थों के प्रसंग, संस्मरणों और नीतिकथा आदि तक सीमित हैं, उनका दायरा बढ़ाया जाना जरूरी है। बच्चों के लिए नए ढंग के कथा साहित्य की संरचना की जरूरत को रेखांकित करते हुए इस पत्रिका के सम्पादकों ने अपने लेखकों से कहा था- ''बच्चे कहानियों में बहुत रुचि लेते हैं। कहानी के प्रति उनके इस अनुराग का हम उन्हीं के शैक्षिक, सामाजिक और चारित्रिक उन्नयन में लाभ ले सकते हैं। बशर्ते हम आयुवर्ग को ध्यान में रखकर वास्तविकता पर आधारित, रोचक व मौलिक कहानियाँ, साइंस फिक्शन आदि तैयार करके बच्चों तक पहुँचाएँ।''

सन् 1917 में इंडियन प्रेस, प्रयाग से बच्चों की महत्त्वपूर्ण पत्रिका 'बालसखा' का प्रकाशन हुआ। इस पत्रिका का भी मत था कि 'बच्चों को एक बड़ी आवश्यकता उस साहित्य की है, जिसे वे अपना समझें। जिसमें उनके मन की बात हो, जिसके माध्यम से वे अपने को अपने आसपास के संसार से जोड़ सकें। क्योंकि बच्चों में अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के निर्माण तथा विकास की विशेष ललक होती है।'

सन् 1926 में बाल मनोविज्ञान के मर्मज्ञ आचार्य रामलोचन शरण के सम्पादक में 'बालक' 1927 में 'खिलौना' और 1931 में पं. रामनरेश त्रिपाठी के सम्पादन में 'वानर' का प्रकाशन हुआ। यह पत्रिकाएँ भी नए भाववोध, नए शिल्प और नई संरचना की पक्षधरता के संकल्प के साथ सामने आई थी। मगर बाल कहानी के क्षेत्र में लोककथा के पारंपरिक दबदबे को खत्म न कर सकी। यहाँ तक कि सन् 1963 में आनन्दप्रकाश जैन, कन्हैयालाल नन्दन, डॉ. हरिकृष्ण देवसरे, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना और शारदा मिश्र ने लोककथा के एक घटक 'परीकथा' के विरोध में बाकायदे आन्दोलन चलाया था, सन् 1975 में ऐसा ही अभियान 'राजा-रानी' विषयक कहानियों के विरोध में चलाया गया था। इन अभियानों के प्रभाव के फलस्वरूप बाल कथाएँ परम्परागत लीक से हटकर मौलिक और आधुनिक परिवेश की सर्जनात्मकता की ओर अग्रसर हुईं और वे बाल पाठकों के संसार और समस्याओं से सीधे जुड़ने में समर्थ सिद्ध हुईं।

आधुनिकतावादी समीक्षकों का मत है कि बच्चों के लिए केवल वही कहानियाँ उपयोगी होती हैं, जिनके पात्र बच्चे हों अथवा जिनका कथानक वैज्ञानिक तथ्यों के ताने-बाने से बुना गया हो। इनके मतानुसार, बच्चों के लिए सही कहानियाँ वही हैं, जिसमें बच्चा खुद को व्यक्त होता हुआ पाए। यह वर्ग पारम्परिक कहानियों का धुर विरोधी है। जबकि जयप्रकाश भारती का मत है-''आधुनिकता के नाम पर

देवी-देवताओं, राजा-रानी, परी कथाओं और लोककथाओं को बाल साहित्य से निकाल देना नासमझी होगी... बच्चों को ऐसी कहानियाँ दी जानी चाहिए जो उनकी कल्पना को कुंठित न करें, बल्कि नया आकाश दे सकें। उनका रागात्मक सम्बन्ध सृष्टि के साथ, ग्रह-नक्षत्रों के साथ, फूलों-फलों के साथ समान स्तर पर हो।''

यथार्थ की भावभूमि पर रची जाने वाली कहानी के विषय में उनका स्पष्ट मत है- ''बच्चा यथार्थ में तो जी ही रहा है और इस वातावरण में निम्न वृत्तियाँ विकास पा रही हैं। यानी यथार्थ जीवन में जो द्वेष, क्षोभ, ईर्ष्या, हिंसा है-उन्हीं के बीच बालक पल रहा है। उन समस्याओं में यदि हम उसे अधिक उलझा देंगे तो उसकी रागात्मक वृत्तियों और भावनाओं को विस्तार नहीं मिलेगा। अत: मेरे विचार से पुरानी कथाएँ आज के परिवेश में भी उतनी ही उपयुक्त हैं, जितनी पहले थीं।''

दरअसल पुराने ढर्रे की जिन कहानियों को हम आउट ऑफ डेट मानने की मानसिकता बना चुके हैं-वह बड़े काम की चीज है। इन्हें अगर आधुनिक मूल्यों व परिस्थितियों से गूँथा जाए तो यह नवीन आकर्षण से लैस होकर बाल पाठकों के लिए अत्यन्त रुचिकर और उपयोगी हो सकती हैं। बच्चे आज भी दुष्ट के मारे जाने और राक्षस के चंगुल से राजकुमारी की मुक्ति पर प्रसन्न होते हैं। यानी मानवीय मूल्य वही है, सिर्फ परिवेश बदला है। उसे कहानियों में समायोजित करना असंभव भी नहीं है। राक्षस का स्थानापन्न फिरौती के लिए अपहरण करने वाला बदमाश हो सकता है और राजकुमारी की जगह अपहृत पियूष या शुभम्। इस प्रकार तमाम कहानियाँ पुनर्व्यवस्थित की जा सकती हैं। इस प्रकार की नई प्रस्तुति से न तो मानवीयता का पक्ष दुर्बल होता है और न रोचकता ही घटती है। यह कार्य कठिन हो सकता है, लेकिन असंभव नहीं है। सजग बाल साहित्यकारों को इसे एक चुनौती के रूप में लेना चाहिए और लोककथाओं के पुनर्लेखन से बचते हुए पुनर्व्यवस्था पर ध्यान देना चाहिए।

लोककथाओं में कई कथारूढ़ियाँ मिलती हैं। मसलन एक राजा सात रानियाँ, जिसमें छोटी या बड़ी रानी की धृष्टतावृत्ति, सौतेले पुत्र पर अत्याचार, पशु-पक्षी की स्वामीभक्ति, साधु-संन्यासी द्वारा शाप देना, जादुई चमत्कार और करिश्मे, लोमड़ी की धूर्तता, राजकुमार और लकड़हारे की मित्रता, दैत्य, दानव व शैतान की जान किसी पक्षी में होना... यद्यपि लोककथा के विद्वान अध्येताओं ने इसके तार्किक और अर्थपूर्ण निहितार्थ प्रस्तुत किए हैं। मगर बच्चों के लिए लोककथाएँ प्रस्तुत करते हुए इन कथारूढ़ियों को अवश्य ही पुनर्व्यवस्थित कर लेना चाहिए। क्योंकि एक जैसी कथारूढ़ि की आवृत्ति बाल पाठकों को कहानी के पुरानी होने का अहसास कराती है। जैसे ही वह पढ़ना शुरू करता है कि एक राजा का लड़का था। उसकी एक लकड़हारे से दोस्ती थी... इतना पढ़ते ही पहले पढ़ी गई राजकुमार और लकड़हारे की मित्रता वाली कहानी उसके मस्तिष्क में कौंध जाती है। इस तरह उसका बिदका हुआ मन कहानी से गहरा तादात्म्य नहीं स्थापित कर पाता है। भले ही इस कहानी का फैलाव नई घटनाओं के साथ अलग दिशा में क्यों न हुआ हो? तादात्म्य के अभाव में कथानायक के साथ पाठक की आत्मीयता नहीं हो पाती है। आत्मीयता से आस्था और आस्था से संवेदना की सृष्टि होती है। यही संवेदना रचना में निहित उद्देश्य को संस्कार से जोड़ने का कार्य करती है। मगर उपर्युक्त मामले में आरंभ में ही पाठक के समक्ष अभ्यंतरीकरण का संकट आ जाता है, इसलिए पाठक के मन पर कहानी का उद्देश्य अपना कोई प्रभाव नहीं डाल पाता है।

कहानी उद्देश्य छोड़ने के स्तर पर निष्फल न हो, इसका एक मात्र समाधान पुनर्व्यवस्था में ही संभव है।

कुछ लोककथाओं में हिंसा का पुट होता है। खासकर जिसमें राक्षस की जान किसी तोते वगैरह में रहती है। इस तोते को एकमुश्त खत्म करके राजकुमार राक्षस को नहीं मारता, बल्कि पहले तोते की एक अँगुली तोड़ता है, फिर दूसरी और तीसरी इसके बाद एक टाँग तोड़ता है... राक्षस पीड़ा से तड़पता है। बाल पाठक पीड़ा से तड़पते राक्षस की दशा में आनंदानुभूति करते हैं, यह कई दृष्टियों से खतरनाक है। हिंसा में मजा लेने की प्रवृत्ति आगे चलकर आक्रामक व्यवहार का रूप धारण कर सकती है। इसका सबसे दूरगामी परिणाम यह भी होता है कि बच्चे हिंसा के प्रति संवेदन शून्य हो जाते हैं और धीरे-धीरे समाज में हिंसा को सहज स्वीकृति मिल जाती है।

ढेर सारी लोककथाएँ बीरबल, तेनालीराम, गोनू झा, गोपाल भाड़, आफंती, मुल्ला दो पियादा, बिंजाड़ो, मुल्ला नसीरुद्दीन वगैरह से सम्बन्धित हैं। इनमें गजब की तार्किकता, विलक्षण अर्थधर्मी सांकेतिकता, वाक् चातुर्य और शिष्ट हास्य का पुट होता है। 8 से 12 वय वर्ग के बच्चों को उपलब्ध कराई जाने लायक यह आदर्श लोककथाएँ हैं।

लोककथाओं को बच्चों के लिए दोषपूर्ण मानने वाले समीक्षक इसमें निहित कल्पना की अजीबोगरीब उड़ान, असंभाव्य घटनाओं की भरमार, घटनाक्रम में पूर्ण संगति का अभाव जैसे मुद्दों पर अँगुली उठाते हैं। अति काल्पनिकता की पक्षधरता का कोई प्रश्न न होते हुए भी यह नहीं भूलना चाहिए कि बच्चा अपने आप में अत्यन्त कल्पनाशील प्राणी होता है। उसकी कल्पना का संसार असीम और बहुरंगी होता है, जो लोककथा की परी के साथ उड़कर एक मुकाम पाता है। कहानी पढ़ते हुए बाल-पाठक तथ्यों से जुड़ता है, घटनाओं की तार्किकता की खोज में उसकी रुचि नहीं होती। लोककथाएँ हमेशा अनहोनी घटनाओं पर आधारित होती हों, ऐसा नहीं है। फिर भी घटनाओं को तर्कपूर्ण और संभाव्य बनाने के लिए रचनाकार के पास चरित्र और परिवेश चित्रण से लेकर पुनर्व्यवस्था तक के अधिकार सुरक्षित हैं। वह आवश्यकता के अनुसार इनका प्रयोग कर सकता है। एक समीक्षक का कथन है-''यदि किसी ऐसी कथा की कल्पना की जा सकती है, जो वक्ता के बिना स्वत: अपनी कथा कहे, तो ऐसी कथा लोककथा ही हो सकती है।'' मेरी समझ से कृत्रिमता से मुक्त ये कहानियाँ उपेक्षा की नहीं, बल्कि संशोधनों के साथ पूर्ण बालोपयोगी बनाकर बाल साहित्य में ससम्मान स्वीकृति की अधिकारी हैं।

सम्पर्क : *सुलतानपुर (उ.प्र.)*

डॉ. दिनेश पाठक 'शशि'

दायित्व

सामान्यत: यह माना जाता है कि बच्चों के लिए लिखा गया साहित्य, बाल साहित्य है। बच्चों के लिए लिखना इतना सहज और सरल नहीं होता जितना बड़ों के लिए लिखना। बच्चों के लिए लिखते समय उनकी आयु का विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता होती है यानी आयु के अनुसार उनके मनोविज्ञान, उनकी भावनाओं, उनके मनोरंजन व गुणों की ग्राह्य क्षमता और उनकी अपेक्षाओं आदि को ध्यान में रखकर ही बाल-साहित्य की रचना की जानी चाहिए। आयु की दृष्टि से बाल-साहित्य को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है। पहला तीन से पाँच वर्ष के बच्चों के लिए लिखा गया साहित्य, दूसरा पाँच से आठ वर्ष के बच्चों के लिए लिखा गया तथा तीसरा आठ से बारह वर्ष तक के बच्चों के लिए लिखा गया साहित्य। चूँकि तीन से पाँच वर्ष के बच्चों का भाषा-ज्ञान बहुत ही कम होता है अत: उनके लिए लिखे गये साहित्य में ध्वन्यात्मकता एवं चित्रों का विशेष महत्व होता है।

पाँच से आठ वर्ष के बच्चों में जिज्ञासा बहुत प्रबल होती है। वे तरह-तरह की कल्पना करने लगते हैं। तरह-तरह के प्रश्न उनके मस्तिष्क में कुलबुलाने लगते हैं। ऐसे बच्चों को उन्हीं की भाषा में बोलने वाले पशु-पक्षियों की रचनाएँ, लोक कथाएँ और परियों की कहानियाँ अच्छी लगती है। उसके बाद आठ से बारह वर्ष की वय में आते ही बच्चों का मनोविज्ञान बदलने लगता है। उन्हें अब ज्ञान-विज्ञान की, यथार्थ जगत की घटनाओं की तथा खेल-कूद व तर्क संगत रचनाएँ पसंद आने लगती हैं।

आज के अति भौतिकतावादी और आपा-धापी के युग में जहाँ संयुक्त परिवारों की परिपाटी खत्म होकर एकल परिवारों की संख्या बढ़ती जा रही है ऐसे में नन्हें-मुन्नों को- ''उठो लाल अब आँखें खोलो, पानी लाई हूँ, मुँह धोलो'' (श्री द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी) जैसी लोरी या राजा-रानी व परियों की कहानियाँ या अपने पूर्वजों के बारे में जानकारी देते हुए या फिर रामचरित मानस के प्रसंगों पर बच्चे का ध्यान आकृष्ट करते हुए अच्छी-अच्छी बातें सुनाकर सुलाने के लिए और प्रभाती सुनाकर जगाने के लिए उनके पास न दादी हैं न बाबा हैं और न नाना-नानी ही हैं। माता-पिता भी जीवन की आपा-धापी में ऐसे व्यस्त हैं कि उन्हें भी अपने जिगर के टुकड़ों को पालनाघर या आया के भरोसे छोड़कर अपने कार्य स्थलों पर जाना पड़ता है और इसी प्रकार बचपन जो बच्चे के जीवन की पहली सीढ़ी होता है, बचपन जो व्यक्तित्व निर्माण में या जीवन-यात्रा में नींव का कार्य करता है, वही बचपन उन्हें 'आया' या 'पालनाघर' में बिताना

पड़ता है।

आज अधिकांश बच्चों का बचपन बहुत ही त्रासद स्थितियों से गुजर रहा है। उनके माता-पिता जिन चीजों को और जिन सफलताओं को अपने जीवन में हासिल न कर सके, उनकी अपेक्षा अपने लाड़लों से करने लगते हैं। जो बच्चों के मानस पर बहुत ही प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। वे चाहते हैं कि उनका बालक पूरे स्कूल में सर्वाधिक अंक हासिल करे। वे चाहते हैं कि उनका बच्चा बड़ा होकर उनकी अपेक्षाओं पर खरा उतरे। वे अपने बच्चों से जो अपेक्षाएँ करते हैं उन अपेक्षाओं की संपूर्ति में जिस ईंधन की, जिस तपस्या की आवश्यकता होती है, उस बारे में सोचने की भी उनके पास फुर्सत नहीं होती। उदाहरण स्वरूप वे अपने बालक को पुस्तक में लिखे अनुसार "प्रात: भ्रमण" पर निबन्ध रटाना तो चाहते हैं पर स्वयं प्रात: जल्दी बिस्तर छोड़कर, अपने साथ अपने बच्चे को भी "प्रात: भ्रमण" पर ले जाकर, उसे व्यावहारिक ज्ञान नहीं देना चाहते। बाग-बगीचा, पेड़-पौधे, चहचहाती चिड़िया, कूकते मोर, पीहू-पीहू करता पपीहा और कूकती कोयल को प्रात: भ्रमण के समय बच्चे को दिखाकर जो व्यावहारिक ज्ञान उन्हें दिया जा सकता है और बच्चा उसे बिना रट्टा पेले सहज ही हृदयंगम कर सकता है। वह पुस्तक में लिखे हुए को रटकर नहीं कर सकता। स्वयं टी.वी. चैनलों से चिपके रहकर बच्चे को दूसरे कमरे में जाकर पढ़ने का उपदेश देते हुए भी बहुत से अभिभावक देखे जा सकते हैं। या फिर स्वयं वाट्सअप और फेसबुक या सोशल मीडिया के उपयोग के समय यह भी भूल जाते हैं कि उनका बच्चा भी अपनी पुस्तक में मुँह छुपाकर उन्हीं की ओर कान और ध्यान लगाये हुए है।

बाल-मनोवैज्ञानिकों का ऐसा मानना है कि स्वस्थ बाल-साहित्य पढ़ने से बच्चों का विकास अधिक तीव्रता से होता है क्योंकि पढ़ना केवल भौतिक अनुभव ही नहीं बल्कि उसके द्वारा भावनात्मक अनुभव भी प्राप्त होता है। इसलिए बाल-साहित्य बच्चों की रुचि, उत्सुकता तथा महत्वाकांक्षा को परिष्कृत रूप प्रदान करता है। अच्छा बाल साहित्य उन्हें देश-प्रेम, एकता, त्याग, शौर्य, स्वाभिमान व मानव मूल्यों के प्रति प्रेरित कर नैतिकता की ओर अग्रसर करता है उन्हें स्वावलम्बी बनाता है।

बाल-साहित्य कई विधाओं में रचा जा रहा है यथा- बाल-काव्य (गीत, कविता) बाल-नाटक, बाल-एकांकी, बाल-प्रहसन, चित्र-कथा, बाल-पहेली, बाल-उपन्यास और बाल-कथा आदि। यदि हम बाल-कथा की बात करें तो बाल-कथा का लेखन बहुत ही प्राचीन काल से हो रहा है। समय-समय पर इसके रूपों में समयानुकूल परिवर्तन होते रहे हैं। उपनिषद, रामायण, महाभारत एवं श्रीमद्भागवत आदि धर्मग्रन्थों की कहानियाँ, जैन और बौद्धों की जातक कथाएँ एवं बोध-कथाएँ तथा हितोपदेश, पंचतंत्र आदि की कहानियों के बाद मध्यकाल में इसका रूप परिवर्तित हुआ और नया रूप आल्हा-ऊदल के रूप में, अमीर-खुसरो की पहेलियों के रूप में और फिर बालकृष्ण-बलराम व सखाओं की क्रीड़ाओं के रूप में लिखा गया।

उसके और बाद में फिर सिंहासन बत्तीसी, बेताल पच्चीसी जैसी रचनाएँ हुईं जिनमें कथा-तत्व प्रमुख रूप से रहा। इसके भी बाद यानी आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी युग में जो बाल साहित्य आया उसमें बाल रामायण और बाल भागवत जैसी पुस्तकें रची गईं जिनसे प्रेरित होकर बहुत से साहित्यकारों ने लीक से हटते हुए पेड़-पौधों एवं पशु-पक्षियों को कहानी का पात्र बनाकर उनपर आधारित कहानियाँ

लिखीं। स्वतंत्रता काल में अनेक बाल पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुआ फलतः बाल साहित्य में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समावेश हुआ।

स्वतंत्रता के बाद बाल कहानियों के लेखन में एक विशेष परिवर्तन हुआ। अब बाल कहानियों में बाल-अनुभूति पर आधारित कहानियाँ लिखी जाने लगीं। इनमें यथार्थपरकता की अधिकता होने लगी। साथ ही वैज्ञानिक कथा साहित्य के लेखन में भी वृद्धि हुई और भूत-प्रेत तथा राजा-रानी की कहानियाँ पीछे छूटने लगीं।

आज का परिवेश अति आधुनिक तकनीकी से बच्चों को अवगत करा रहा है। आज तीन से पाँच वर्ष की आयु वर्ग का बालक भी टेलीविजन के रिमोट को ऑपरेट करके अपना मनपसंद सीरियल डोरीमान, मोटू-पतलू और निंजा जैसे सीरियल देख लेता है। इतना ही नहीं वह टच स्क्रीन वाले मोबाइल पर भी अपनी अँगुलियों व अँगूठे के स्पर्श से कार रेस जैसे गेम बखूबी खेल लेता है। वह लैपटॉप और कम्प्यूटर पर भी अपनी बुद्धि अनुसार माउस का प्रयोग करना जानता है। ऐसे समय में और ऐसे तीव्र बुद्धि वाले बच्चों के लिए लिखना आज के समय में बाल साहित्यकार के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य है। आज बच्चों को किसी भी विधा द्वारा सीधे-सीधे उपदेश नहीं दिया जा सकता बल्कि बाल साहित्यकार को अपनी बाल कथाओं में ऐसा शिल्प पैदा करना होगा कि बालक स्वयं ही उस कहानी में छुपी हुई सीख को ढूँढ़े और उस रचना के प्रति खुद-ब-खुद उसमें उत्सुकता उत्पन्न हो।

आज के अतिभौतिकतावादी युग में अधिकांश अभिभावक, बाल मनोविज्ञान को समझे बिना, बच्चे की भावनाओं को आहत करते हुए तथा उनपर चीखते-चिल्लाते हुए देखे जा सकते हैं। बच्चे को मारते-पीटते हुए वे अनजाने में ही अपने बच्चे के अन्दर झूठ और चोरी जैसे कुसंस्कारों का बीज बो देते हैं। ऐसे में बाल-कथाकारों और बाल पत्र-पत्रिकाओं का दायित्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि बालकों का मन सुकोमल और कोरे कागज सरीखा होता है। उनके बाल मन पर जो भी इबारत लिख दी जाये, ताउम्र वे उसमें ढल जाते हैं। अच्छे बाल-कथा साहित्य की रचना वही रचनाकार कर सकता है जिसके हृदय में बालोचित क्रीड़ाओं की स्मृतियाँ जीवित हों और जिनमें बाल-भावनाओं की सरिता प्रवहमान हो। आज बहुत से बाल-साहित्यकार हैं जो बाल-मनोविज्ञान को समझते हुए, स्वयं बच्चा बनकर, समयानुकूल बहुत अच्छी बाल-रचनाएँ लिख रहे हैं।

सम्पर्क : *मथुरा (उ.प्र.)*

डॉ. दिनेश प्रसाद साहू

नयी सदी और बालसाहित्य-लेखन

पहले हमारे यहाँ संयुक्त परिवार प्रथा थी। बच्चे दादा-दादी, चाचा-चाची, ताई, बुआ आदि से नाना प्रकार की कथा-कहानियाँ सुनते थे। पशु पक्षी के संबंध में, चाँद-तारों की सैर के संबंध में उनकी ऊँची उड़ान कुलाँचें भरने लगती थीं। परन्तु आज 21 वीं सदी में संयुक्त परिवार के टूटने की स्थिति और न्यूक्लीयर पारिवारिक व्यवस्था में बच्चा अपने आपको नितान्त अकेला महसूस करने लगा है। डॉ. मधु पंत लिखती हैं आज ''उसके पास न तो दादा-दादी के आश्वासन की थपकियाँ हैं और न बड़ों की छत्र-छाया का संरक्षण। बड़े-बूढ़ों का लाड़-दुलार तो दूर की बात है, वह तो माता-पिता के प्यार के लिए तरस कर रहा गया है। आधुनिक सामाजिक व्यवस्था में मूल्यों में आये आमूल परिवर्तन ने व्यक्ति को मात्र अर्थ-प्रवण बना दिया है...।'' (त्रिपदा-संपादक मधु पंत- राष्ट्रीय बालभवन प्रकाशन, नई दिल्ली- 2, प्रकाशन 1997, पृ सं.- 8)

फलस्वरूप आज का बालक भावना शून्य होकर अपनी परंपरा, संस्कार, नैतिक मूल्य, संस्कृति सब कुछ भूलता जा रहा है। उसके पास कुंठा, उपेक्षा और क्षुब्ध होने के अलावे और कोई रास्ता ही नहीं बचा है। ऐसे घटाटोप अंधकार के मध्य बालकों के पथ-प्रदर्शन के लिए बालसाहित्य की महत्ता अत्यधिक बढ़ जाती है। पंचतंत्र, हितोपदेश, जातक कथाएँ इत्यादि की महत्ता आज भी है, परन्तु आज के संचार क्रांति के युग में बच्चों का तेजी से विकास हो रहा है। पहले 16 वर्ष की आयु में भी बच्चे की बुद्धि कम विकसित दिखाई पड़ती थी किन्तु आज कल 7-8 वर्ष के उम्र में ही बच्चे सयाने हो जाते हैं। 3 वर्ष के बच्चे मोबाइल चला रहे हैं, टी.वी. देख रहे हैं। तात्पर्य यह कि मीडिया का बच्चों पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ा है। वे कम उम्र में ही सयाने और सचेत हो गये हैं, बड़ों की तरह वे बातें करते हैं। इसलिए बीसवीं सदी के छठे दशक में जिस प्रकार की बाल रचनाएँ होती थीं, आज वैसी बाल रचनाओं की आवश्यकता नहीं है। बच्चों की बुद्धि, उसकी जानकारी, उसकी आवश्यकता को ध्यान में रखकर ही आज की बाल रचनाओं का प्रणयन हो तो उत्तम है।

कुछ लोग बालसाहित्य को मात्र खेल और मनोरंजन का सूचक मानने की भूल करते रहे हैं। यहाँ तक कि कुछ अभिभावक और शिक्षक को भी यह भ्रम था कि पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य विषयों पर साहित्यिक सामग्री का पठन मात्र समय का अपव्यय है, जबकि बालसाहित्य की एक अलग ही महत्ता और उपयोगिता है। ''संसार के अनेक विकसित देश बालसाहित्य के प्रकाशन को राष्ट्रीय महत्त्व देते हैं।

स्वस्थ बालसाहित्य में उन्हें अपने देश का भविष्य झाँकता दिखाई देता है।'' (त्रिपदा-संपादक मधु पंत-राष्ट्रीय बालभवन प्रकाशन, नई दिल्ली- 2, प्रकाशन 1997, पृ सं.- 63)

इस बात की अहमीयत हमारे हिन्दी साहित्य के कुछ बड़े साहित्यकारों ने बताई और उन्होंने हिन्दी बालसाहित्य की सर्जना की, पर इनकी संख्या अपेक्षा से कम है। ऐसे साहित्यकारों में राष्ट्रकवि दिनकर, मैथिलीशरण गुप्त, आचार्य शिवपूजन सहाय, सुमित्रानन्दन पंत, रामवृक्ष बेनीपुरी, नागार्जुन इत्यादि प्रथम पंक्तेय हैं। बांग्ला में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने विपुल मात्रा में बालसाहित्य लिखा है जो रवीन्द्र रचनावली में प्रकाशित है। उन्होंने कहानी, कविता, निबंध, नाटक इत्यादि सारी विधाओं में लिखा। 'ताशेर देश' में उन्होंने बच्चों के लिए खेले जाने वाले नाटकों का भी प्रणयन किया। प्रख्यात साहित्यकार भगवती प्रसाद द्विवेदी कहते हैं- ''वस्तुत: बालसाहित्य स्तरीय लेखन का मानक है और बाँग्ला तथा अन्य कई भारतीय भाषाओं में रचनाकार को तब तक साहित्य में प्रतिष्ठा व मान्यता नहीं मिलती जब तक गुण व परिमाण-दोनों ही दृष्टि से वह संतोषजनक तथा प्रामाणिक बालसाहित्य का सृजन नहीं कर लेता। मगर दुर्भाग्यवश हिन्दी में ऐसी स्थिति नहीं है। बड़ों के लिए लिखने वाले लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार बच्चों के प्रति अपने फर्ज व उत्तरदायित्व को बिल्कुल भूल जाते हैं और यदि प्रकाशक की फरमाइश पर वे लिखते हैं तो महज चलताऊ ढंग से।'' (बिहार का हिन्दी बालसाहित्य- सीमायें और संभावनाएँ, डॉ. दिनेश प्रसाद साहू, शब्द प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2018, पृ.सं.- 11)

अत: भूल यहीं हो जाती है कि बालसाहित्य लिखना जितना कठिन है उतना ही आसान मान लिया जाता है। बालसाहित्य प्रणयनकर्त्ता यह भूल जाते हैं कि उनके लेखन का बच्चे के कोमल हृदय और मस्तिष्क पर क्या असर पड़ेगा। बच्चों के लिए लिखना कठिन है और उससे भी कठिन है बच्चों की भाषा में लिखना। बच्चों के लिए लिखने से पहले लेखक को स्वयं बालक बनना पड़ता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहा करते थे सीधी रेखा खींचना बड़ा टेढ़ा काम है। बाल लेखकों को बच्चों की रुचियों और आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर लेखन कार्य करना चाहिए। लिखते समय उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि वे किन बच्चों के लिए लिख रहे हैं- बच्चों की छवि जो आपके समक्ष आ रही है वह शहर में रहने वाले संपन्न परिवार के बच्चे की है, पब्लिक स्कूल में जाने वाले बच्चे की है, झुग्गी झोपड़ी में रहने वाले बच्चे की है या ग्रामीण परिवेश के उन बच्चों की जिसके पास तन ढकने का भी वस्त्र नहीं है या पुनर्वास क्षेत्र में रहने वाले उस बच्चे की जिसके माता-पिता को अभी-अभी भारतीय नागरिकता प्राप्त हुई है। इसके साथ ही यह ध्यान रखा जाये कि आप लड़कों के लिए लिख रहे हैं या लड़की के लिए। 'बच्चा' से सामान्य तौर पर अर्थ 'मेल चाइल्ड' से ही लगता है।

बच्चों के वय को ध्यान में रखकर लिखना बहुत आवश्यक है। क्योंकि उनकी आयु के अनुसार उनका मानसिक विकास क्रम अलग-अलग होता है। उनकी रुचि, उनकी योग्यता, उनका भाषा ज्ञान और उनकी मानसिक प्रवृत्ति और आकांक्षा अलग-अलग होती है। अतएव जो लेखक अपने लेखन के पूर्व वय वर्ग सुनिश्चित कर लेंगे उन्हें अपने लेखन में अधिक सफलता मिलेगी। वय की दृष्टि से बालसाहित्य लेखन हेतु चार वर्ग किये जा सकते हैं-

1. 3 से 5 वर्ष का वय वर्ग
2. 6 से 8 वर्ष का वय वर्ग
3. 9 से 12 वर्ष का वय वर्ग
4. 13 से 15 वर्ष का वय वर्ग

प्रत्येक वय वर्ग के बच्चों की सोचने, समझने और बालने की क्षमता अलग-अलग होती है। भाषा के प्रयोग और व्यवहार में भी अंतर होता है।

बालसाहित्य लेखकों को एक और महत्त्वपूर्ण बात की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। वह है उनकी भाषा का। सामान्य तौर पर पढ़ने वाले हिन्दू-मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी आदि सभी होंगे। अत: वे जिस भाषा में लिखें किसी विशेष वर्ग के लिए नहीं। डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं- ''हिन्दी साहित्य लिखते समय यह न समझें कि हम केवल हिन्दू बच्चों के लिए ही लिख रहे हैं। बच्चों को यह अहसास नहीं कराना चाहिए कि उसका मजहब क्या है। उसे केवल यह अहसास करायें कि हम तुम्हारे लिए लिख रहे हैं। यह बात उसी क्षण हमें अलग खड़ा कर देती है।'' (त्रिपदा- संपादक मधु पंत- राष्ट्रीय बालभवन प्रकाशन, नई दिल्ली-2, पृ सं.- 5)

अत: यह अहसास कि बिना बताये हम सब बच्चों को एक कर रहे हैं- चुनौती का काम है। साहित्य उपदेशपरक हो पर लिखकर उपदेश देना रचना को निम्न बनाता है। अतएव बालसाहित्य सोद्देश्य, बाल मनोविज्ञान पर आधारित एवं नई सदी की अपेक्षाओं के अनुरूप होना चाहिए। बालसाहित्य की अभिवृद्धि कोरे उपदेश और कल्पना से नहीं हो पायेगी। अब परियों एवं वेतालों के स्थान पर यंत्र मानव को पात्र बनाना होगा। बालसाहित्य के माध्यम से बच्चों के समक्ष ऐसे आदर्श प्रस्तुत करने होंगे जिससे उनमें नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था, राष्ट्र के प्रति प्रेम एवं देश के लिए कुछ कर गुजरने की प्रेरणा जागृत हो सके।

एक बहुत बड़ी चुनौती का काम है, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की बाल पुस्तकों के जैसे बाल साहित्य की पुस्तकों का प्रकाशन करना। अंग्रेजी आदि अन्य विदेशी भाषाओं की पुस्तकें हमारे लिए चुनौती हैं। हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में छपी पुस्तकों की गुणवत्ता अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में अच्छी होनी चाहिए। छपाई अच्छी होनी चाहिए, साज सज्जा ऐसी हो कि बच्चे देखते ही उसे हाथ में उठा लेने के लिए ललच उठें। पढ़ने की बात तो बाद में। अत: यह कार्य प्रकाशन संस्थानों के लिए अत्यधिक चुनौती भरा है कि वे मात्र अपने अर्थ लाभ से प्रेरित न होकर कम मूल्य पर रोचक, उपयोगी और आकर्षक पुस्तकों को प्रकाशित करें। चित्रकार से अपेक्षा है कि वह विषय संदर्भित आकर्षक और सुरुचिपूर्ण चित्रों को चित्रित करें, जितने छोटे आयु वर्ग के लिए पुस्तक होगी, चित्रकार का दायित्व उतना ही बढ़ता जायेगा। पुस्तक वितरक का भी दायित्व बनता है कि बाल रचनाओं को बाल पाठकों तक उपलब्ध करवायें। शिक्षा नीतिकारों से भी अपेक्षा है कि बच्चों के बस्ते का बोझ कम करते हुए अतिरिक्त पठन के अन्तर्गत बाल-साहित्य के पठन-पाठन पर पर्याप्त बल देने की व्यवस्था करें। अभिभावकों का भी महत्त्वपूर्ण दायित्व हो जाता है कि वे अपने बच्चों को मात्र विद्यालयी शिक्षा तक ही सीमित व केन्द्रित न करते हुए बच्चों को बालसाहित्य व पत्र-पत्रिकाएँ खरीद कर दें एवं पढ़ने के लिए प्रेरित करें क्योंकि ''बालसाहित्य बालकों को नई सोच

और स्वस्थ दिशा प्रदान करता है। इसके माध्यम से बालकों में नैतिकता, सद्भावना, पारस्परिक प्रेम और एकता के मानवीय अंकुर उपजते हैं। वे राष्ट्र की संस्कृति, उसकी अस्मिता और प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए सजग प्रहरी के रूप में तैयार होते हैं।'' (बाल वाटिका- अक्टूबर- 2019, समकालीन बाल कहानियों में मूल्यपरक शिक्षा, डॉ. नागेश पांडेय संजय, पृ.सं.- 10)

अत: आज इस नयी सदी में बालसाहित्यकारों के समक्ष अनेकानेक चुनौतियाँ हैं। हमारी नई संतति, जो नैतिक मूल्यों के प्रति निरंतर उदासीन होती जा रही है, यह पीढ़ी हमसे अधिक जानकार और समझदार भी हो गयी है, उसमें दुनियादारी भी आ गयी है, पर इनमें आदर्श का अभाव बढ़ता जा रहा है, ये श्रम से पलायन करते दिख रहे हैं, सरल अध्ययन संबंधी ग्रथों का सुगमता से पाठ करके अधिकाधिक अंक प्राप्त करना चाहते हैं, पढ़ने व अभ्यास में रुचि न लेकर कैलकुलेटर, कम्प्यूटर और मोबाइल पर आश्रित रहने लगे हैं- ऐसी स्थिति से उबारकर उन्हें देश का एक सभ्य, सदाचारी एवं सुसंस्कृत नागरिक बनाने का दायित्व बालसाहित्यकारों का है।

यह संतोष की बात है कि कुछ साहित्यिक संस्थान और कुछ समर्पित बालसाहित्यकार इस दिशा में अहर्निश प्रयासरत हैं। इसमें 'राष्ट्रीय बालभवन' (दिल्ली), 'किलकारी' (पटना) और 'विज्ञान प्रसार' (दिल्ली) जैसी संस्थाएँ निरंतर कार्यरत हैं। इनके कार्यक्रमों में केवल वैज्ञानिक चेतना का विकास ही नहीं, बल्कि बच्चों की रचनात्मकता का भी विकास सम्मिलित होता है। नई सदी की, नई पीढ़ी के लिए किए जा रहे ये प्रयत्न न केवल उल्लेखनीय हैं, बल्कि अनुकरणीय भी हैं। कुछ व्यक्ति जैसे 'बाल प्रहरी' के संपादक उदय किरोला के द्वारा बालसाहित्य एवं बालक-बालिका के उन्नयन और संवर्द्धन के लिए किया जा रहा कार्य अत्यन्त महनीय है। वर्ष का शायद ही ऐसा कोई दिन होता होगा जिस दिन यह एकनिष्ठ व्यक्ति अपने कार्य से विरत हो- वह कार्य चाहे बच्चों की कार्यशाला हो, संगोष्ठी हो, सम्मेलन हो या सम्मान समारोह हो अथवा बच्चों से जुड़ी हुई कोई भी गतिविधि। इसके अतिरिक्त महेश सक्सेना (भोपाल) के द्वारा भी बालकों के प्रोत्साहन के लिए किया जाने वाला कार्य सराहनीय है। अभी भी साहित्य के बहुत से ऐसे पुरोधा हैं जो बालक एवं बालसाहित्य के संवर्द्धन में लगे हैं, वे प्रणम्य हैं।

आज हमारे बालकों के मनोमस्तिष्क पर सूचना यांत्रिकी के उपादानों द्वारा ऐसे घात-प्रतिघात किए जा रहे हैं कि एक तरफ वे अपनी शाश्वत संस्कृति और परंपरा से विच्छिन्न तो हो ही रहे हैं, दूसरी तरफ उन्हें जो मिल रहा है, वह भाव-भाषा अथवा साहित्य के रूप में जो भी हो ऐसा तो नहीं ही है कि उनको संस्कारित और सुविचारित कर सके। बाजारवाद ने ऐसी समाजवाद की आँधी चलायी है कि सबकुछ बिन्दास और मारक हो गया है। टी.वी., रेडियो, मीडिया के समस्त उपकरण उनके मनोरंजन के रूप में ऐसी मनमोहक किन्तु सड़ी-गली चीजें परोस रहे हैं जिन्हें खाकर उनका मस्तिष्क पुष्ट होने की जगह दुष्ट होता चला जा रहा है। ऐसी स्थिति में बालसाहित्य-लेखन के प्रति सावधानी और सतर्कता सच्ची देशभक्ति और राष्ट्रचिन्तन होगा।

__सम्पर्क :__ दरभंगा (बिहार)

डॉ. जगदीश व्योम

हिन्दी बाल-साहित्य और निरंकार देव सेवक

यह विडम्बना ही है कि हिन्दी के बाल साहित्य को जो स्थान हिन्दी साहित्य में मिलना चाहिए था, वह उसे नहीं मिला। हिन्दी साहित्य के इतिहास में बाल साहित्य की उपेक्षा, निश्चित रूप से एक बड़ी भूल ही कही जा सकती है। यह भूल जानबूझ कर की गई या अनजाने में हुई लेकिन यह सच है कि भूल तो हुई है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में बाल-साहित्य के लिए एक-दो पृष्ठ भी नहीं दिये यही स्थिति कमोवेश आगे भी बनी रही। इस भूल की भरपाई आगे चलकर तब होती दिखाई देती है जब प्रकाश मनु हिन्दी बाल कविता का इतिहास लिखते हैं। वर्ष 2003 में मेधा बुक्स से प्रकाशित 'हिन्दी बाल कविता का इतिहास' पुस्तक के समर्पण में प्रकाश मनु जी ने लिखा है-

''हिन्दी बाल कविता के श्लाका पुरुष और सहृदय व्याख्याकार निरंकार देव सेवक को जिनसे यह इतिहास लिखने की प्रेरणा मिली।''

इस समर्पण वाक्य से आभास हो जाता है कि हिन्दी बाल-साहित्य के महत्त्वपूर्ण रचनाकारों में स्व. निरंकार देव सेवक का बड़ा और सम्मानजनक स्थान है। इसका कारण है कि बाल-साहित्य के प्रति उनमें अलग तरह की गम्भीरता दिखाई देती है। वे बाल मनोविज्ञान के पारखी हैं। बच्चों के लिए लिखी जाने वाली कविताओं को वे बच्चों का खेल समझकर कुछ भी लिख देने के पक्ष में कतई नहीं हैं। उनकी दृष्टि में बाल कविता लिखने के लिए रचनाकार को बालक के स्तर तक पहुँचने का कठिन अभ्यास करना होता है। इसके साथ ही बाल कविता के कथ्य और उसकी भाषा पर बहुत मेहनत करनी होती है, लय और प्रवाह का विशेष ध्यान रखकर उसे साधना होता है, तब कहीं जाकर कोई अच्छी बाल कविता लिख पाता है। बाल कविता के प्रति उनकी यही गम्भीरता उन्हें अपने समकालीन अन्य रचनाकारों की तुलना में अलग खड़ा कर देती है।

18 जनवरी 1919 ई. को जन्मे निरंकार देव सेवक जी का 2019 शताब्दी वर्ष के रूप में मनाया गया। साहित्य अकादमी ने सेवक जी को केन्द्र में रखकर हिन्दी बाल साहित्य को सम्मान दिया।

निरंकार देव सेवक जी की रचनाधर्मिता की बात करें तो उनकी प्रारम्भिक वर्षों की बाल

कविताओं के संग्रह-स्वस्तिका, कलरव एवं चिनगारी नाम से प्रकाशित हुए हैं। बाल साहित्य के विषय में निरंकार देव सेवक जी की दृष्टि औरों से कुछ हटकर है। उनकी दृष्टि बाल मनोविज्ञान के अधिक निकट है। वर्ष 1954 में वीणा पत्रिका में प्रकाशित अपने एक लेख- ''बाल साहित्य क्या है?'' में वे लिखते हैं-

''बच्चों का संसार बड़ों के संसार से सर्वथा भिन्न होता है। उनके विचार, उनका रहन-सहन, उनकी भावनाएँ, आकांक्षाएँ, इच्छाएँ तथा किसी चीज को देखने की उनकी दृष्टि बड़ों से भिन्न होती है। जिस प्रकार का कौतूहल बाल-मन में किसी चीज को देखकर पैदा होता है, वैसा बड़ों में नहीं होता। बच्चों की भावनाओं पर राष्ट्रीयता और नैतिकता के नाम पर भी कोई आरोपण नहीं होना चाहिए। बच्चों को अबोध या कमजोर समझकर उन पर बड़ों द्वारा अपनी भावनाएँ आरोपित करना अनुचित है।''

वे आगे बड़ी महत्त्वपूर्ण बात लिखते हैं कि-

''बच्चों के लिए उपयोगी मानकर लिखा गया साहित्य 'बालोपयोगी साहित्य' तो हो सकता है, लेकिन कोई आवश्यक नहीं कि वह 'बाल-साहित्य' भी हो।''

बाल-साहित्य कैसा होना चाहिए, इस सम्बंध में वे कहते हैं-

''वस्तुत: बाल-साहित्य तो वह है, जो बच्चों की भावनाओं को पूर्ण अभिव्यक्ति देता है। वह उनकी भावनाओं के अनुकूल मनोरंजक होना चाहिए, भले ही वह हमारी दृष्टि में उपयोगी न हो।''

-साक्षात्कार, पृष्ठ 97 (कमलेश भट्ट कमल द्वारा निरंकार देव सेवक से लिया गया साक्षात्कार, ग्रंथलोक प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2001)

बाल कविता के जिस आदर्श मॉडल की वकालत निरंकार देव सेवक जी करते हैं, उनकी बाल कविताओं में उसे देखा जा सकता है। उनकी बहुत प्रसिद्ध बाल कविता तितली न जाने किस दूर देश से उड़कर आई और हमारे मन में इतनी अतल गहराई तक समा गई है कि आज भी इसके सहारे पल दो पल के लिए हम अपने बचपन के दिनों को जी ही लेते हैं, इसकी लय में बचपन के एक टुकड़े को हम आज भी अपने मन के किसी कोने में सुरक्षित बचाये हुए हैं। इस बाल कविता का शब्द चयन, शब्द मैत्री, दृश्यानुकूल भाषा, बाल सुलभ कल्पना, सधी हुई लय, बहते हुए जल की लहरियों-सा प्रवाह सब मिलकर इसे एक ऐसा कालजयी बालगीत बना देते हैं जो करोड़ों बालकों के मन पर छा जाती है, उन्हें पूरी उम्र भर अपने अन्दर के बालक को जीवित रखकर उससे जब तब साक्षात्कार करने कराने का माध्यम बन जाती है। यही एक अच्छी बाल कविता की कसौटी है-

दूर देश से आई तितली/चंचल पंख हिलाती
फूल-फूल पर, कली-कली पर/इतराती, इठलाती
बच्चों के भी पर होते तो,/साथ-साथ उड़ जाते
और हवा में उड़ते-उड़ते,/दूर देश हो आते।

उनकी एक और बाल कविता है जिसमें एक ऐसे बालक के मन की अभिव्यक्ति है जो दिन

रात किताबों को ही पढ़ना नहीं चाहता है बल्कि खुले मैदानों में, बागों में, खेतों में खलिहानों में धमाचौकड़ी मचाना चाहता है और खुली प्रकृति के साथ उछलना-कूदना चाहता है। बच्चों के मन का यह सौ प्रतिशत सच भी है। बाल मन के इस छोर को पकड़ कर लिखी गई ऐसी अद्भुत बाल कविता शायद ही और कहीं मिले। इसीलिए निरंकार देव सेवक अपनी तरह के एक अलग और अनोखे बाल साहित्यकार हैं। कितने आत्मविश्वास से भरकर एक खिलंदड़ और बाल मस्ती में जीने वाले बच्चे की मनोभावनाओं को सेवक जी ने इस बाल कविता में प्रस्तुत किया है-

तुम बनो किताबों के कीड़े,/हम खेल रहे मैदानों में
तुम घुसे रहो घर के अंदर,/तुमको है पंडित जी का डर
तुम लिए किताबों का बोझा,/हम उछल-कूद खाते गोझा,
तुममें-हममें है भेद वही,/जो मूर्खों में, विद्वानों में
तुम बनो किताबों के कीड़े ....

दुनिया के तमाम देशों के नन्हें-मुन्ने बच्चे एक शिशुगीत को बड़े चाव से संगीत के साथ सुन सुनकर बड़े हो रहे हैं, अनेकानेक वेबसाइटों और यू-ट्यूब चैनलों पर यह शिशुगीत बहुचर्चित है परन्तु उनमें रचनाकार का नाम प्राय: नहीं होता है, यह विडम्बना ही है। बहुत कम लोगों को ही यह पता है कि करोड़ों बच्चों के मन की धड़कन बना यह शिशु गीत निरंकार देव सेवक जी का है-

हाथी राजा, कहाँ चले?/सूँड़ हिलाते कहाँ चले?
पूँछ हिलाते कहाँ चले?/मेरे घर आ जाओ ना,
हलुआ-पूरी खाओ ना!/आओ, बैठो कुर्सी पर,
कुर्सी बोली चर-चर-चर ! ....

सेवक जी का एक और बाल गीत बिल्कुल अलग अन्दाज़ का है जिसमें एक बच्चा पूरी मस्ती के साथ अपनी कल्पना को गाता गुनगुनाता है। एक मस्तमौला बच्चे की सहज कल्पना के जिस ताने-बाने को इस बालगीत में बुनकर उसे विशेष लय और अन्दाज़ की जिस मस्ती में प्रस्तुत किया गया है, उसे केवल और केवल महसूस किया जा सकता है। ऐसे बालगीत का सृजन करने के लिए रचनाकार को कितनी कठिन साधना करनी पड़ी होगी, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। बच्चे के पास पैसे नहीं हैं लेकिन वह पैसा होने की कल्पना कर लेता है और पैसे से वह क्या-क्या खरीद कर लाना चाहता है? उसकी बाल कल्पना का पूरा परिदृश्य सेवक जी उपस्थित कर देते हैं-

पैसा पास होता तो चार चने लाते,/चार में से एक चना तोते को खिलाते!
तोते को खिलाते तो टाँय-टाँय गाता,/टाँय-टाँय गाता तो बड़ा मजा आता!

सेवक जी ने कल्पना के पंखों पर उड़ान भर भरकर बालमन के किन-किन छोरों का छुआ है इसे उनकी बाल रचनाओं में देखा जा सकता है। एक चींटी रास्ता भूल जाती है तो एक बच्चा उसकी हर तरह से सहायता करने की बात कहते-कहते अन्त में बड़े प्यारे अन्दाज़ में उसके साथ खेलने का प्रस्ताव रख देता है-

चींटी भूल गई रस्ता,/आ जा तू मेरे घर आ
खाने को दूँगा रोटी,/बेसन की मोटी-मोटी
पानी दूँगा पीने को,/फिर खेलेंगे हम दोनों

उनका एक और शिशुगीत है जो बच्चे-बच्चे की जुबान पर चढ़ा हुआ है, बच्चा बनकर इसका आनन्द लिया जा सकता है-

एक शहर है टिंबक-टू,/लोग वहाँ के हैं बुद्धू!
बिना बात के ही-ही-ही,/बिना बात के हू-हू-हू!

निरंकार देव सेवक के बाल रचना संसार में बहुत विविधता है या यूँ कहिए कि सेवक जी ने बाल मन के कोने-कोने में अपनी सहज बाल कल्पनाओं के माध्यम से पहुँचने की कोशिश की है। उन्होंने न केवल बाल रचनाओं का सृजन किया है अपितु हिन्दी बाल कविता को एक आदर्श दिशा भी दी है। आज हिन्दी का बाल-साहित्य एक सम्मानजनक स्थिति में पहुँच सका है तो इसकी नींव में सेवक जी की कठोर साधना का ईंट-गारा लगा हुआ है। सेवक जी आज हमारे बीच शरीर से भले ही नहीं हैं परन्तु अपनी बाल रचनाओं के रूप में वे करोड़ों बच्चों के मन में और करोड़ों लोगों के मन में एक मस्तमौला बच्चे के रूप में जीवित हैं और इस धरती पर जब तक बचपन है तब तक वे बच्चों की मुस्कुराहट बनकर जिन्दा रहेंगे।

सम्पर्क : *नोएडा (उ.प्र.)*

डॉ. लोकेन्द्र सिंह कोट

बच्चों को हारना सिखाना है, जीतना तो इनबिल्ट है

हर वर्ष की तरह हाई स्कूल, हायर सेकण्डरी के परिणाम आए हैं। परिणामों की चर्चा हो रही है। कौन कितने नम्बर लाया, फलाँ मेरिट में आया, लड़कियों ने लड़कों को पीछे छोड़ा, कौन से स्कूल ने कितना दम भरा आदि आदि। हमारी इन चर्चाओं में कुछ भी गलत नहीं है बल्कि सब कुछ स्वाभाविक है। अस्वाभाविक तो यह बात करना है कि हमने एक पीढ़ी को और आगे की तरफ भेज तो दिया है परंतु भय इस बात का है कि नम्बरों, प्रतिशतों के मायाजाल में हम यह भूल चुके हैं कि इनसे इतर भी कुछ है। हमें अभी भी लगता है कि जो जश्न हम मना रहे होते हैं वह हमारी नई पीढ़ी की श्रेष्ठता का है लेकिन इस जश्न में भारी लोचा है, यह समझने में थोड़ी मेहनत करना पड़ेगी।

हम क्या कर रहे हैं अपनी नई पीढ़ी के साथ कि उन्हें गमलों में उगा रहे हैं और बोन्साई बना रहे हैं। उन्हे जीवन मंत्र यह दे रहे हैं कि तुझे नम्बर वन आना है, नब्बे प्रतिशत लाना है। यदि लाए तो जश्न वर्ना उसे कोसने में भी देर नहीं करते हैं। यही अप्रत्याशित दबाव कई बार पंखों पर, नदी तालाब या किसी जहर की शीशी में दिखाई देता है। हम बच्चों को उनके स्वाभाविक स्वरूप में रहने ही नहीं देते हैं। उन्हें सब कुछ थोपा हुआ देते हैं। एक ऐसा 'मिस मैनेजमेंट' तैयार करते हैं जिससे किसी का भला नहीं होता है। जिसके अंदर किसी खेल का टैलेंट है वह बेचारा पढ़ाई के दबाव में दब ही जाता है, किसी के अंदर संगीत है तो पढ़ाई और होमवर्क में कहाँ कुछ हो पाता है। सब कुछ किताबों तक केन्द्रित है। हाँ, इससे स्टेटस की प्रतिपूर्ति अवश्य हो जाती है। एक कक्षा में यदि 40 विद्यार्थी हैं तो टॉप टेन में तो दस या पंद्रह बच्चे ही होंगे ना। फिर उन पच्चीस बच्चों का क्या? वे सिर्फ मोहरे हैं हमारे लिए। कहने को पढ़ने में अच्छे नहीं हैं मतलब बेकार हैं। इनमें से कई तो अवसाद में ही जीवन गुजार देते हैं कि वे पढ़ाई में कुछ खास नहीं हैं। इस अवांछित ग्लानि को लेकर जीने वालों की संख्या ज्यादा है। फिर टॉप टेन वाले बच्चों में से भी कुछ प्रतिस्पर्धी परीक्षाओं के आगे दम तोड़ देते हैं या तो आत्महत्या या फिर फ्रस्ट्रेशन का शिकार होते हैं कुछ ही कथित रूप से आगे जा पाते हैं और सामाजिक परिभाषा में सफल कहलाते हैं। उनका पैकेज, विदेश गए हैं या नहीं इसी से सफलता का मानक निर्धारण हो पाता है।

हमारी सफलता की परिभाषाएँ इतनी घातक हैं कि वे उन शेष 25 बच्चों पर भारी पड़ती हैं। ऐसे कितने बच्चे हर वर्ष हमारे देश में उत्पन्न हो रहे हैं, इनके लिए हमारे पास कोई ठोस योजनाएँ नहीं हैं।

कौशल विकास एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ काफी कुछ किया जा सकता है लेकिन हमारे यहाँ वह भी सर्टीफिकेट कबाड़ने भर का साधन बना दिया गया है। शिक्षा का अर्थ सर्वांगीण विकास से न निकालने का परिणाम हम उथले और डिग्रियों से लदे-फदे लोगों के रूप में मिल रहा है। तनाव, विचलन, भ्रांति से निपटने और स्पष्टता, सरलता, सहजता पाने के बगैर कोई मानवता पूर्ण नहीं होती लेकिन हमारे पाठ्यक्रम इनसे बहुत दूर ही नहीं इन्हें कुछ मानते भी नहीं हैं। इसलिए हमारा दिन में दो-चार बार किसी न किसी विद्रोही युवा से पाला पड़ ही जाता है। सड़क पर बेसब्री, लगातार हार्न बजाना, ऊँचे स्वर में संगीत सुनते युवाओं को हम पाते हैं जिनमें धेर्य है ही नहीं। क्या ऐसे युवा अभिभावक बनेंगे तो एक नई पीढ़ी को सशक्त बना पाएँगे? उत्तर है नहीं। उथली पीढ़ी एक और उथली पीढ़ी को जन्म देगी।

शिक्षा के व्यावसायीकरण ने हमारी रही सही कसर पूर्ण कर दी है। नव धनाड्यों की गुलाम हमारी शिक्षा उनकी योग्यता, अयोग्यता नहीं वरन् धन पर आधारित होगी तो समझ लीजिए कैसे डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेशनल्स पैदा करेंगे यह समझ से बाहर है।

हमने अपनी संतानों को कभी जमीन नहीं छूने दी, उन्हें हथेलियों में रखा, उन्हें गिरकर उठने का मौका ही नहीं दिया, मुँह में उनकी पसंद के पिज्जा, बर्गर खिलाते रहे और हम उम्मीद कर रहे हैं कि बच्चा आत्महत्या क्यों कर रहा है, डिप्रेशन का शिकार क्यों हो रहा है, विद्रोही क्यों हो रहा है, बीमार क्यों हो रहा है। उत्तर सबके पास है लेकिन सुनना कोई नहीं चाहता है। हमें बच्चों को जीतना नहीं हारना सिखाना है, उसे कैसे पचाया जाता है इसका प्रशिक्षण देना है न कि जीतने का। जीतना तो हर बच्चे में इनबिल्ट है उसे हार कर जीतना नहीं आता है। अंतर यही महत्त्वपूर्ण है।

सम्पर्क : रतलाम (म.प्र.)

माया बदेका

बाल साहित्य और हमारा दायित्व

पुरातन काल से बाल साहित्य लिखा जा रहा है। नैतिक, धार्मिक, आर्थिक, चारित्रिक आदि शिक्षा बच्चों को बाल साहित्य से दी गई है। विश्व की सभी भाषाओं में अपना-अपना बाल साहित्य है। हमारे भारत देश में तो हर प्रांत और प्रांत के छोटे-छोटे आंचलिक स्थानों का भी अपनी बोली में बाल साहित्य है।

हमारे देश में जबसे अंग्रेजी का प्रभाव पड़ा, हमारे अपने देश की भाषा बोली के बाल साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा है। हम अपने देश की स्थिति और संस्कृति के अनुसार बच्चों को जो संदेश देते आये वह अंग्रेजी के पाठ्यक्रम के कारण बहुत अलग हो गया है। हमारे बच्चे केवल टीवी और अन्य ऐसे ही माध्यम से वह सब सीख रहे हैं जो हमारी संस्कृति के अनुरूप नहीं है। इस बात से आशय यह नहीं की बच्चों में गलत शिक्षा प्रसार हो रही।

सरल शब्दों में हम यहाँ यह समझने की कोशिश करे की जब हम महाराणा प्रताप का चरित्र साहित्य, वीर शिवाजी का चरित्र साहित्य, भगतसिंह आजाद का चरित्र साहित्य बच्चों को बालमन को अपनी बोली में बतायेंगे, गाकर लोरी रूप में सुनायेंगे तो बच्चा उसी को ग्रहण करेगा। इन सब प्रेरक चरित्रों का वर्णन हर पीढ़ी के बच्चों को देना बहुत जरूरी है वरना कुछ वर्षों में हमारे बच्चे मोगली और ढिशुम-ढिशुम अथवा डिस्को की तर्ज के अलावा कुछ नहीं सीख पायेंगे।

हमारा सिनेमा जगत जो परोस रहा है, और हम छोटे से बच्चे को टीवी के सामने लिटा कर अपने काम में व्यस्त हो जाते हैं उसका असर अभी ही बहुत दिखता है। हम किसी भी सभ्यता या संस्कृति के विरोध में नहीं है, लेकिन जो हमें अनुरूप नहीं है वह हम बच्चों को क्यों सिखायें। हमारे देश के कत्थक, भरतनाट्यम, ओडिसी नृत्य, सभी और भारतवर्ष के प्रभावशाली नृत्य नाटिकाओं को अन्य देशों की जनता प्रभावित होकर अपना रही है लेकिन हम आधी रात को अंग्रेजी धुन पर नाच रहे और वह भी ऐसा जिसका कोई सार्थक संदेश नहीं।

इसमें सबसे ज्यादा योगदान माताएँ दे सकती हैं। अपने काँधों पर अपने बच्चों को थपकियाँ देकर सुलाते हुए अगर राग छेड़ें....

मेरा नन्हा राजकुमार बनेगा भारत का रखवाला।

अथवा

चिड़ियाँ आई चूँ चूँ करती/ दाना लाई दाना लाई/ देखो कितनी मेहनत करती।

प्रकृति, पक्षी, देश बहुत माध्यम है जो आज भी हमारे बच्चों को बहुत सुंदर शिक्षा दे सकते हैं।

हम अपने बच्चों को भविष्य का जिम्मेदार नागरिक बनाना चाहते हैं तो हमें आज की सामयिक परिस्थितियों को देखकर बाल साहित्य का एक नया इतिहास रचना होगा। भाषा का अनुवाद हो सकता है। वह अंग्रेजी माध्यम में पढ़ें पर हमारा साहित्य हो। हमारी लोकबोली में, मातृभाषा में, राष्ट्र भाषा में बहुत सारा बाल साहित्य है और अभी भी आना चाहिए।

अगर भारतीय परम्परा को अक्षुण्ण रखना है तो, साहित्यकारों का भी कर्त्तव्य बन जाता है कि नौनिहालों के लिए ऐसा बाल सृजन करें की बालमन से ही उनमें देशप्रेम, समर्पण, सद्भाव का चरित्र निर्माण हो जायें। ऐसा साहित्य जो बच्चे पढ़ें और गुनें, ऐसा साहित्य जो अभिभावक अपने बच्चों को सुनायें। ऐसा बाल साहित्य की बच्चा बचपन से ही, कर्मठ सुसंस्कारी बने।

अभी हाल की घटनाएँ जो घटी हैं, हमारे देश में स्त्री के साथ अमानवीय कृत्य, यह किस मानसिकता का परिचायक है। यहाँ पर एक-दो अपराधी हों तो मानसिक विकृति का नाम दे सकते हैं लेकिन हजारों की संख्या में ऐसे अपराध को क्या कहें। यह कैसे संस्कार के अंतर्गत आता है। माता के बाद गुरु का बहुत महत्व है।

बाल साहित्य नहीं बाल मन को सुघढ़, सुंदर बनाने के लिए पढ़ने से ज्यादा बोलकर, गाकर, समझाकर नैतिक संदेश बाल-साहित्य रूप में जाना चाहिए। माता और गुरु के सान्निध्य में बच्चों का विकास ज्यादा होता है। इसलिए यह बच्चों को बहुत अच्छी से अच्छी शिक्षा बाल मन के अनुसार प्रदान कर सकते हैं। कुछ उम्र बड़ी होने पर बच्चे स्वयं पढ़ने लगते हैं, समझने लगते हैं तब उनके हाथ में समृद्ध, वैभवशाली बाल साहित्य वाचन रूप में, गायन रूप में आना चाहिए न कि-

''जलेबी बाई मुन्नी बाई'' जैसे गायन और बोल।

इन सबका असर भी हमारे भारत वर्ष की संस्कृति पर बहुत पड़ रहा है।

'नन्हा मुन्ना राही हूँ, देश का सिपाही हूँ'-

लिखने वाले फिर लौटें और बच्चों को देशभक्त चरित्रवान बनायें।

गुरु का कर्त्तव्य है शिक्षा केवल धनोपार्जन अथवा विदेश की नौकरी या ऊँचे पद के लिए देने के साथ बच्चों को नैतिक संस्कार भी बतायें। अभिभावकों का भी कर्त्तव्य है कि इंजीनियरिंग, चिकित्सक आदि शिक्षा दिलाने के साथ बच्चों को बचपन से अपनी सभ्यता संस्कृति सिखायें।

बाल-साहित्य लिखने वाले ऐसा साहित्य रचें कि बच्चों का समग्र विकास हो। हमारी पाठशाला में संदेशात्मक और प्रेरणादायक साहित्य का अध्ययन आवश्यक किया जाये जो बचपन से गहरे मन में बैठ जाये।

बोली में एक लोरी...

नाना रे म्हारा लाड़कला तू बड़ों हुई के देश की सेवा करवा जाजे।
मूँ भी थारी माँ ने पेली माँ थारी भारत माता
तू माता ने जगमग राखजे।

सम्पर्क : *उज्जैन (म.प्र.)*

मीरा जैन

बालमन और भावी जीवन

स्वस्थ समाज की संरचना में प्रत्येक वय के मनुष्यों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। हर व्यक्ति की विभिन्न भूमिकाओं के निर्वहन से ही सुंदर व सशक्त समाज का निर्माण होता है और यही सशक्तता व्यक्ति के सुख की कारक है। इसके अभाव में समाज में अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न होना स्वाभाविक है। परिणामत: दुख, कष्ट, परेशानी आदि की उत्पत्ति। अत: स्वस्थ, समृद्ध समाज हेतु व्यवस्थित दिनचर्या के अतिरिक्त श्रेष्ठ आचरण की भी महती भूमिका है। समाज निर्माण में बालक, युवा एवं बुजुर्ग इन तीनों श्रेणियों में किसी के भी अस्तित्व को कमतर नहीं आँका जा सकता है।

उक्त तीनों श्रेणियों में यदि बच्चों की भूमिका पर प्रकाश डाला जाए तो प्रथम दृष्टया वे समाज के एक सामान्य अंग ही नजर आएँगे। अधिकांश अपेक्षाएँ युवाओं पर ही केंद्रित होती हैं किंतु इस विषय पर गंभीरता से चिंतन किया जाए तो यह तथ्य स्पष्ट रूप से उभर कर आएगा कि बालक ही सुदृढ़ समाज की मजबूत नींव हैं, क्योंकि आज का बालक कल युवा होगा। वर्तमान परिदृश्य पर यदि दृष्टिपात किया जाए तो पाएँगे कि पिछले कुछ दशकों में सामाजिक परिवेश अत्यंत तेजी से परिवर्तित हुआ है। अन्य क्षेत्रों के अतिरिक्त बच्चों की ज्ञान ग्रंथी भी तेजी से विकसित हुई है। इलेक्ट्रॉनिक्स युग ने उनके सीखने की प्रवृत्ति को अतीत की अपेक्षा कई गुना विस्तृत कर दिया है। यह अकाट्य सत्य की आज का बालक कल का समाज सारथी ही नहीं नव निर्माता भी है। जिनके कंधों पर भावी समाज और देश की बागडोर है फिर क्यों न उन पर विशेष ध्यान देते हुए उनकी मनो:स्थिति का सूक्ष्मता से अध्ययन कर प्राप्त परिणामों के अनुरूप क्रियान्वयन किया जाए।

वर्तमान दौर में उत्तमता के साथ नि:कृष्टता भी समानांतर अपने पाँव पसार रही है। निर्धनता, अराजकता, असमानता इत्यादि का कुप्रभाव बचपन तो निगल ही रहा है, उनके उज्जवल भविष्य पर भी प्रश्नचिन्ह लगा रहा है इस पर अंकुश लगाने हेतु विभिन्न पहलुओं पर ध्यान देना अति अत्यावश्यक है।

नौनिहालों के प्रति ममत्व के चलते सामान्यत: उनकी हर बाल सुलभ क्रियाओं का, बोलने की शैली इत्यादि को हँसते हुए मनोरंजक मानते हुए बड़े हल्के से लिया जाता है, वह तुतला कर चाहे जो कहे, चाहे जो करे सब मंजूर, आखिर वह बच्चा ही तो है। लेकिन पालक गण की इस प्रवृत्ति को बालक के श्रेष्ठ लालन-पालन के मार्ग पर न्यून सा रोड़ा कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। एक शोध के अनुसार पाँच

वर्ष की आयु पूर्ण होते तक बालक जीवन का 80 प्रतिशत आचरण, व्यवहार आदि सीख चुका होता है फिर जीवन में 20 प्रतिशत ही सीखने के लिए शेष रहता है। अत: प्रत्येक माता-पिता एवं पालकों को चाहिए कि जब बच्चा समझने लगे तभी से उस पर विशेष ध्यान देते हुए कदम-कदम पर सीख देने की प्रक्रिया जारी रखें। उसे इस चीज का भान कराएँ कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है। उसे क्या करना है और क्या नहीं करना है आदि। इसका आशय यह नहीं कि बालक की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाया जाये। स्वतंत्रता शारीरिक तथा मानसिक विकास के लिए बेहद जरूरी है यह पालक पर निर्भर है कि वह किस तरह बच्चे को सही दिशा की ओर अग्रसर करें। कुछ बच्चे अति चंचल होते हैं। उन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। ऐसा नहीं कि जरा सी शैतानी पर उठाकर चाँटा मार दिया। मारने तथा आवश्यकता से अधिक डाँटने पर बच्चे जिद्दी वह ढीट हो जाते हैं। इसके लिए पहले बच्चे के स्वभाव को परख उसी के अनुरूप समझाया जाये तो वे शीघ्र ही समझ जाते हैं। बच्चों के लिए कहा भी गया है कि वे 'कच्ची मिट्टी हैं- जैसा ढालोगे वैसे ढल जाएँगे' खेल-खेल में, कहानियों में छोटे-मोटे नाटकों के माध्यम से उनके आचरण में हर वह चीज समाहित की जा सकती है, जो हम चाहते हैं। पहले आप उनके जैसे बन जाइये फिर उन्हें आपके जैसे बनते देर नहीं लगेगी। अनेक विद्वानों से कहते सुना है कि बहुत परेशान हैं। बच्चा हमारी बात ही नहीं मानता है। इसमें गलती बच्चे की नहीं बल्कि माता-पिता की है, जिन्होंने बचपन में उसे संस्कार देने की कोशिश ही नहीं की। बच्चा जब किशोरवय में पहुँचने की कगार पर होता है, तब हम उस पर संस्कारों का लबादा लादने की भरपूर कोशिश करते हैं किंतु परिणाम आशा अनुरूप नहीं आते। अत: पालक और बालक दोनों ही स्वयं को असहज महसूस करते हैं। दोनों पक्षों की अनावश्यक शक्ति जाया होती है सो अलग। ऐसी अनेक क्लिष्टताएँ उपस्थित हो सकती हैं जिनसे निजात पाना शनै:-शनै: मुश्किल लगने लगता है।

बच्चे की परवरिश में चंद बातों का यदि ध्यान रखा जाये तो निश्चित ही अनुकूल व सार्थक परिणाम हमारे समक्ष होंगे,

1. बच्चों पर अनावश्यक दबाव न बनाएँ।
2. भौतिक संसाधनों की अपेक्षा स्नेह, ममत्व व संस्कारों से पोषित करें।
3. जहाँ तक संभव हो क्रेच व नौकरों के भरोसे न छोड़ें।
4. उसे जो कुछ भी बतायें वह सत्य ही हो, आधी-अधूरी जानकारी न दें।
5. कई बार ऐसे मौके आते हैं जब अपने आवश्यक कार्य छोड़कर उनके अनावश्यक कार्य भी करना पड़े तो करें।
6. अध्यात्म का बीजारोपण बाल्यकाल से ही प्रारंभ कर दें।
7. कम से कम 3 वर्ष की आयु से पूर्व शाला न भेजें।
8. गर्भावस्था तथा स्तनपान के वक्त शिशु पर माँ के विचारों का गहरा प्रभाव पड़ता है, अत: विचारों में सकारात्मकता रखें।
9. बच्चों में उत्तम आचरण शिक्षा की प्रथम सीढ़ी है। परिजनों का आचरण बच्चा जैसा देखता है वैसा ही सीखता है।

10. गला काट प्रतियोगिताओं, स्पर्धाओं से बच्चों को दूर रखें।
11. बुजुर्गों की छाँव भी बच्चों की परवरिश में चार चाँद लगाती है।
12. बच्चों में संस्कार रोपित करने का सर्वोत्तम माध्यम हैं कहानियाँ। प्रतिदिन सोने से पूर्व एक अच्छी कहानी सुनाएँ।
13. बच्चों की रुचि का पूरा ध्यान रखें किंतु उनकी अनावश्यक माँग की पूर्ति कतई न करें।
14. समर्थ हैं तो निर्धन और निराश्रित बच्चों को समाज की मुख्यधारा में जोड़ने का प्रयास करें।
15. बच्चों को धूल-मिट्टी में खेलने दें, प्रतिरोधक क्षमता बढ़ेगी।
16. जहाँ तक संभव हो मोबाइल से दूर रखें।
17. स्वस्थ समाज हेतु हर बच्चे का संस्कारित होना अति आवश्यक है अत: समर्थ व्यक्तियों को चाहिए कि वह कमजोर तबके के बच्चों पर भी ध्यान दें।

इस तरह बाल्यकाल से ही बालकों पर थोड़ा ध्यान दिया जाए तो स्वयं व्यक्ति का, बालक का एवं समाज का हित की कामना सार्थक हो स्वमेव ही सार्थक हो जायेगी।

'जहाँ-जहाँ संस्कारों का अभाव होगा, वहाँ-वहाँ अराजकता का प्रभाव होगा'

सम्पर्क : *उज्जैन (म.प्र.)*

आचार्य नीरज शास्त्री

हिंदी भाषा और बाल साहित्य

हिंदी भाषा आज एक अंतर्राष्ट्रीय भाषा है। विश्व के अनेक देशों में हिंदी भाषा का लेखन, वाचन एवं संचार होता है और अध्ययन होता है। अनेक देशों के छात्र हिंदी के अध्ययन हेतु भारतवर्ष के महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में प्रवेश लेकर भारत की पतित पावनी भूमि पर रहते हुए अपने जीवन को धन्य करते हैं। यहाँ आकर वे उस साहित्य का अध्ययन करते हैं जो पूरे विश्व की मानव जाति के लिए दिशा बोधक एवं पथदर्शक है।

हिंदी भाषा में साहित्य लेखन की परंपरा जितनी लंबी है, उतनी ही लंबी परंपरा बाल साहित्य लेखन की भी है। यह बात अलग है कि समय के साथ-साथ भाषा में परिवर्तन होता रहा है। बाल साहित्य का शुभारंभ हिंदी भाषा में अमीर खुसरो की मुकरियों और पहेलियों के साथ ही हो गया था। भक्ति काल में कबीर, रहीम तथा तुलसीदास के बालबोधपरक दोहे भी बाल साहित्य की कोटि में ही आएँगे। यथा-

वृक्ष कबहुँ नहिं फल भखै, नदी न संचे नीर।
परमारथ के कारने, साधुन धरा शरीर।। (कबीर)
जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग।। (रहीम)
मुखिया मुख सो चाहिए, खान-पान को एक।
पालइ-पोषइ सकल अंग, तुलसी सहित विवेक।। (तुलसीदास)

इस प्रकार अनेक दोहे लिखे जा सकते हैं, क्योंकि बाल साहित्य का उद्देश्य बालकों को सिखाना और संस्कारित करना होता है। इसलिए भक्ति काल के कवियों की रचनाएँ भी बाल साहित्य की कोटि में आती हैं। आधुनिक काल में भारतेंदु युग से ही बाल साहित्य के अनेक उदाहरण दिखाई देते हैं। स्वयं भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा प्रणीत नाटक 'अंधेर नगरी' तथा हास्य कृति 'बंदर सभा' बाल साहित्य की कोटि में ही आती हैं। इसी युग में राधाकृष्ण दास ने रहीम के दोहों पर कुंडलियों की रचना की।

द्विवेदी युग में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं में प्रमुखत: 'नर हो न निराश करो

मन को', 'माँ कह एक कहानी', 'बालबोध', 'निर्बल के बल राम', आदि रचनाएँ बाल साहित्य ही हैं। इनमें बालमन को आकर्षित करने की प्रबल क्षमता है। इतना ही नहीं ये रचनाएँ बालकों में जिज्ञासा उत्पन्न कर उन्हें कुछ विशेष करने की प्रेरणा देती हैं। यथा–

'माँ कह एक कहानी।/ तू है हठी मानधन मेरे,
उठ उपवन में बड़े सवेरे,/तात भ्रमण करते थे तेरे,
जहाँ सुरभि मनमानी!/ हाँ, माँ यही कहानी।
अथवा
'वह बालबोध था मेरा।
निराकार निर्लेप भाव में
भानू हुआ जब तेरा।'
अथवा
'नर हो न निराश करो मन को।
कुछ काम करो, कुछ काम करो। जग में रहकर कुछ नाम करो।

इनके अतिरिक्त द्विवेदी युग के बाल साहित्यकारों में श्रीधर पाठक, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, लाला भगवानदीन, रामचरित उपाध्याय, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं। मुंशी प्रेमचंद एवं ऐतिहासिक गौरव के कथाकार जयशंकर प्रसाद अपने समय के सुविख्यात कथाकार थे। इन दोनों ही महान व्यक्तित्वों ने बालमन के अनुरूप कहानी लिखकर बाल साहित्य में कहानी लेखन की परंपरा को विकसित किया। प्रेमचंद की बाल कहानियों में कुछ कहानियाँ आज भी बाल साहित्य को दिशा देती हैं। उनके बाल साहित्य में 'महात्मा शेख सादी', 'राम चर्चा', 'जंगल की कहानियाँ', 'कुत्ते की कहानी', 'दुर्गादास और कलम', 'तलवार और त्याग' आदि प्रमुख हैं।

'जंगल की कहानियाँ' कृति के अंतर्गत 'शेर और लड़का', 'गुब्बारे का चीता', 'पागल हाथी', 'साँप की मणि', 'मिट्ठू', 'बाघ की खाल', 'मगर का शिकार' आदि बाल मन को मोहने में पूर्ण सफल और बाल साहित्य को दिशा देती बाल कहानियाँ हैं।

जयशंकर प्रसाद की 'छोटा जादूगर' बाल कहानी भी बाल साहित्य की उत्कृष्ट निधि है। प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद के बाद निराला की बाल कहानियाँ और बाल कविताएँ महादेवी वर्मा की बाल कविताओं के संग्रह– 'ठाकुर जी भोले हैं' तथा 'आज खरीदेंगे हम ज्वाला' अपने समय का सुप्रसिद्ध बाल साहित्य है। सुभद्रा कुमारी चौहान की कहानियाँ तथा बाल कविता–'बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी' सुप्रसिद्ध बाल साहित्य हैं।

अमृतलाल नागर ने विपुल बाल साहित्य की रचना की। उनकी रचनाओं में 'नटखट चाची', 'निंदिया आजा', 'बजरंगी नौरंगी', 'बजरंगी पहलवान', 'बाल महाभारत', 'इतिहास झरोखे', 'हमारे युग निर्माता', 'छः युग निर्माता', 'अकल बड़ी या भैंस', 'हवेली का मालिक', 'फूलों की घाटी', 'बाल दिवस की रेल', 'इकलौता लाल', 'सात भाई चंपा' आदि प्रमुख बाल साहित्य की कृतियाँ हैं।

पंडित सोहन लाल द्विवेदी अपने समय के प्रखर बाल साहित्यकार थे। द्विवेदी जी ने 'दूध बताशा', 'शिशु भारती', 'बाल भारती', 'बिगुल', 'बाँसुरी' आदि बाल कविता संग्रहों की रचना की। ये सभी बाल संग्रह आज भी बाल साहित्य से जुड़े लोगों के जेहन में रचे बसे हैं।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' के योगदान को भी बाल साहित्य के लिए वरदान मानना होगा। राष्ट्रकवि दिनकर जहाँ राष्ट्रधर्मिता की दुंदुभी बजा रहे थे, राष्ट्रीय चेतना एवं क्रांति का संचरण कर रहे थे; वहीं वे उत्कृष्ट बाल साहित्य की रचना कर अपने युग के बच्चों को स्वस्थ मनोरंजन एवं उत्तम बौद्धिक चिंतन प्रदान कर रहे थे तथा अपने युग के कवि-लेखकों को बाल साहित्य सर्जना हेतु प्रेरित कर रहे थे। उन्होंने बाल साहित्य में कविता और कहानी के समन्वय का कार्य किया। बाल साहित्य की दृष्टि से यह प्रयास अत्यंत सराहनीय है। उन्होंने बाल साहित्य में पद्य कथा नामक नवीन विधा आरंभ की। उन्होंने अपनी समस्त बाल साहित्य की रचनाएँ पद्य कथाओं के रूप में ही सृजित की हैं।

कविश्रेष्ठ दिनकर जी ने तीन पद्य कथा संग्रह बाल साहित्य के रूप में प्रस्तुत किए। ये संग्रह हैं- 'सूरज का ब्याह', 'मिर्च का मजा', तथा 'धूप-छाँव'।

इन संग्रहों की कविताएँ उस युग की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं यथा-'चुन्नू-मुन्नू', 'बालक' तथा 'मनमोहन' में प्रकाशित हुई थीं। इन पद्य कथाओं ने बाल मन पर जादू का असर किया था।

'सूरज का ब्याह' संग्रह की एक कविता 'चाँद का कुर्ता' देश के कई शिक्षा बोर्डों ने अपने पाठ्यक्रम में शामिल की थीं। यह पद्य कथा इतनी प्रसिद्ध हुई कि बच्चे-बच्चे की जुबान पर चढ़ गई। आज भी अधिकांश लोगों को यह कविता याद है। कविता देखें-

'हठ कर बैठा चाँद एक दिन
माता से यह बोला।
सिलवा दो माँ मुझे ऊन का
मोटा एक झिंगोला।।...
अब तू ही यह बता
नाप तेरा किस रोज लिवाएँ।
सीं दें एक झिंगोला
जो हर रोज बदन में आए।।' (साभार नंदन दिसंबर 1996)

उपरोक्त सभी महान साहित्यकारों का बाल साहित्य सृजन में विशिष्ट योगदान सर्वत्र दृष्टव्य है। इनके बाद विष्णु प्रभाकर, कृष्णा सोबती, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी, मृणाल पांडे, चित्रा मुद्गल, नासिरा शर्मा, डॉ. राष्ट्रबंधु, हरे कृष्ण देवसरे आदि भी बाल साहित्य को दिशा देने वाले युग पुरुषों के नाम हैं। 'संघर्ष के बाद', 'धरती और भी घूम रही है', 'मेरा वतन', 'खिलौने' तथा 'आदि और अंत' विष्णु प्रभाकर के सुप्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। चित्रा मुद्गल ने हिंदी साहित्य को तीन बाल उपन्यास 'जीवक', 'माधवी कन्नागी', 'मणि मेख' तथा चार बाल कहानी संग्रह जिनमें 'दूर के ढोल', 'सूझ-बूझ', 'देश-देश की लोक कथाएँ' बहुत प्रसिद्ध हुए। नासिरा शर्मा ने

‘अपनी-अपनी दुनिया’ तथा ‘एक थी सुल्ताना’ दो बाल साहित्य की रचनाएँ प्रदान कीं।

द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी ने छब्बीस बाल साहित्य की पुस्तकों की रचना की। इतना ही नहीं बाल साहित्य के क्षेत्र में एक नवीन युग स्थापित कर दिया। माहेश्वरी जी के बाल साहित्य में बाल मनोभावों की परख बालमन के प्रति आकर्षण एवं सरसता व सहजता का अपरिमित समन्वय है। उनकी बाल साहित्य की रचनाएँ, कालजई रचनाएँ हैं। उनकी बाल कविताएँ देश के विभिन्न शिक्षा पाठ्यक्रमों में शामिल की गईं। इनमें से कुछ रचनाओं के अंश दृष्टव्य हैं-

1. मैं सुमन हूँ

व्योम के नीचे खुला आवास मेरा; ग्रीष्म वर्षा, शीत का अभ्यास मेरा;
झेलता हूँ मार मारुत की निरंतर, खेलता यों जिंदगी का खेल हँसकर।
शूल का दिन-रात मेरा साथ/किंतु प्रसन्न मन हूँ।
मैं सुमन हूँ।।’

2. वीर तुम बढ़े चलो

वीर तुम बढ़े चलो!/धीर तुम बढ़े चलो!!
हाथ में ध्वजा रहे।/बाल दल सजा रहे।।
तुम निडर डरो नहीं।/तुम निडर डटो वहीं।।
वीर तुम बढ़े चलो!/धीर तुम बढ़े चलो!!

3. उठो धरा के अमर सपूतो

उठो धरा के अमर सपूतो/पुनः नया निर्माण करो।
जन-जन के जीवन में फिर से/नई स्फूर्ति, नव प्राण भरो।

4. इतने ऊँचे उठो कि जितना उठा गगन है

इतने ऊँचे उठो कि जितना उठा गगन है।
देखो इस सारी दुनिया को एक दृष्टि से।

5. हम सब सुमन एक उपवन के

हम सब सुमन एक उपवन के। एक हमारी धरती सबकी
जिसकी मिट्टी में जन्मे हम। मिली एक ही धूप हमें है

6. यदि होता किन्नर नरेश मैं

यदि होता किन्नर नरेश मैं/राज महल में रहता।
सोने का सिंहासन होता/सिर पर मुकुट चमकता।

इसी तरह बच्चों के गाँधी स्वर्गीय द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी की अन्य रचनाएँ देश के बच्चों की जुबान पर आज भी हैं। द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी जी के बाद हिंदी बाल साहित्य के दूसरे सर्वाधिक महत्वपूर्ण युग उन्नायक साहित्यकार हैं- डॉ. राष्ट्रबंधु जी।

राष्ट्रबंधु जी ने पूरे जीवन बालसाहित्य की अथक साधना की। इसका प्रमाण यह है कि बाल साहित्य के पितामह डॉ. राष्ट्रबंधु जी का निधन भी एक बाल साहित्य के कार्यक्रम से लौटते समय ट्रेन में हृदय गति रुकने से हुआ था। उन्होंने 'बाल साहित्य समीक्षा' नामक पत्रिका का प्रकाशन व संपादन करते हुए बाल साहित्य को नवीन दिशा और गति दी। उनकी प्रमुख रचनाओं में-'तपती रेत', जयंतिया पर्व दिवस', 'जादूघर से लगते बादल', 'बावन गाँव इनाम में' तथा 'बाल भूषण' प्रमुख हैं। राष्ट्रबंधु जी का योगदान हिंदी साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है। इसी तरह बाल साहित्य की दिशा बोधकों में एक और महत्त्वपूर्ण नाम है-साहित्यकार 'प्रकाश मनु' का। श्री प्रकाश मनु बाल साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर हैं। उन्होंने विपुल बाल साहित्य हिंदी को दिया है। 'एक था ठुनठुनिया', 'गोलू भागा घर से', (बाल उपन्यास), 'भुलक्कड़ पापा', 'मैं जीत गया पापा', 'तेनालीराम के चतुराई के किस्से', 'लो चला पेड़ आकाश में', 'इक्यावन बाल कहानियाँ', 'चिन-चिन चूँ', 'हाथी का जूता, 'इक्यावन बाल कविताएँ, 'बच्चों की एक सौ एक कविताएँ आदि उनकी प्रमुख बाल साहित्य की कृतियाँ हैं। उन्होंने 'बाल कविता का इतिहास' तथा 'बाल साहित्य का इतिहास' नामक दो बाल साहित्य के इतिहास का बोध कराने वाले ग्रंथों की भी रचना की है। इन दो इतिहास ग्रंथों की रचना के कारण उनका महत्व और भी बढ़ जाता है। पिछले पच्चीस वर्षों की लोकप्रिय पत्रिका 'नंदन' के संपादन से भी वे जुड़े रहे। उनकी एक कविता का अंश देखें-

'सादतपुर की इन गलियों में हमने बाबा को देखा है।
कभी चमकती सी आँखों से गुपचुप कुछ कहते बतियाते
कभी खीजते कभी झिड़कते कभी तुनककर गुस्सा खाते....।'

अहद प्रकाश भी बाल साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि रहे। उनके द्वारा भी बाल साहित्य के भंडार में वृद्धि की गई। उन्होंने अपनी अनेक सरस रचनाओं के द्वारा बाल पीढ़ी का मनोरंजन, मार्गदर्शन और उनमें संस्कार उत्पन्न करने का शुभ कार्य किया है। उनकी दो प्रसिद्ध कविता 'छुपम छुपैया' तथा 'सरल गिलहरी' के अंश देखिए-

'ताक धिना-धिन मारे मैया जाड़े में।
चट कर भागी दूध बिलैया जाड़े में।
सरल गिलहरी 'नीम की छैया ता-ता थैया
आई गिलहरी देखो भैया,

इसी तरह हरे कृष्ण देवसरे हिंदी भाषा के प्रतिष्ठित बाल साहित्यकार थे। वे 'पराग' पत्रिका के सजग और सहृदय संपादक थे। उन्होंने भी हिंदी भाषा को बाल साहित्य की अनुपम कृतियाँ भेंट कीं। उनकी कृतियों में 'डाकू का बेटा', 'आल्हा-ऊदल', 'शोहराब-रुस्तम', 'महात्मा गाँधी', 'भगत सिंह', 'मील के पहले पत्थर', 'प्रथम दीपस्तंभ', 'दूसरे ग्रहों के गुप्तचर', 'मंगल ग्रह में

राजू', 'उड़ती तश्तरियाँ', 'आओ चंदा के देश चलें', 'स्वान यात्रा', 'लावनी', 'खेल बच्चे का', आदि प्रमुख हैं।

उन्होंने बाल साहित्य की लगभग तीन सौ कृतियों की रचना की। इसी प्रकार श्री कृष्ण शलभ ने 'ओ मेरी मछली', 'टिली-लिली-झर्र', 'सूरज की चिट्ठी', 'इक्यावन बाल कविताएँ', 'चीं-चीं चिड़ियाँ', 'बचपन एक समंदर' आदि श्रेष्ठ बाल साहित्य की कृतियाँ प्रदान की। हिंदी भाषा में बाल साहित्य का सफर यहीं नहीं रुकता। आज भी पूरे भारतवर्ष में शताधिक बाल साहित्यकार बाल साहित्य का सृजन कर बाल पीढ़ी को संस्कारित करने और उनके मानसिक, हार्दिक व बौद्धिक पक्ष के साथ-साथ आत्मिक पक्ष को भी विकसित करने का शुभ कार्य कर रहे हैं। इनमें प्रमुख हैं -डॉ. आद्याप्रसाद सिंह 'प्रदीप', डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, डॉ. नागेश पांडेय 'संजय', डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, सुरेंद्र विक्रम, संजीव जायसवाल 'संजय', डॉ. अमिता दुबे, अखिलेश श्रीवास्तव 'चमन', डॉ. उषा यादव, कामना सिंह, घमंडी लाल अग्रवाल, डॉ. रामनिवास 'मानव', गोविंद भारद्वाज, श्रीमती विमला भंडारी, भेरूलाल गर्ग, दिविक रमेश, गोविंद शर्मा संगरिया, दिनेश प्रताप सिंह 'चित्रेश', रामभरोसे, लायकराम मानव, पवन कुमार सिंह, डॉ. आर.पी. सारस्वत, डॉ. चक्रधर शुक्ल, श्रीमती कीर्ति श्रीवास्तव, स्व. मदन मोहन 'उपेंद्र', डॉ. मंजरी शुक्ला, श्रीमती करुणा, डॉ. राकेश चक्र, श्रीमती संगीता सेठी, श्रीमती मीना शर्मा, डॉ. अजीम अंजुम, डॉ. राजेन्द्र मिलन, राजकुमार सचान, श्रीमती लता, श्री आशीष शुक्ला, श्रीमती रेणु सिरोया, डॉ. शेषपाल सिंह 'शेष', श्रीमती रेखा लोढ़ा 'स्मित', राजकुमार जैन 'राजन', अनिल अग्रवाल, महेश सक्सेना, शशांक मिश्र 'भारती', पंकज वीरवाल 'किशोर', संतोष कुमार सिंह, कुशलेंद्र श्रीवास्तव, किशोर श्रीवास्तव, श्रीमती शकुंतला कालरा, देशबंधु शाहजहाँपुरी, महावीर रवांल्टा, उदय किरोला आदि। अन्य अनेक नाम ऐसे भी हैं, जिनका उल्लेख हम यहाँ नहीं कर पाए हैं। ये सभी बाल साहित्यकार प्रणम्य हैं।

बाल साहित्य का सफर यहीं नहीं रुकता। यह निरंतर चलता रहेगा। बाल साहित्यकारों की अनेक पीढ़ियाँ बाल साहित्य का सृजन करती रहेंगी। बाल साहित्य फलता फूलता रहेगा और देश की भावी पीढ़ी निरंतर संस्कारित होती रहेगी; ऐसा मेरा विश्वास है।

सम्पर्क : *मथुरा (उ.प्र.)*

आइवर यूशिएल

बाल-विज्ञान लोकप्रियकरण : सहयोग अपेक्षित

विज्ञान केवल विषय ही नहीं है, यह हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग भी है। हमारा अपना शरीर ही जब विज्ञान के विभिन्न सिद्धांतों, क्रियाओं और उपकरणों का एक जीता-जागता, चलता-फिरता उदाहरण है तो फिर हम अपने जीवन के इतने महत्त्वपूर्ण पक्ष को भला अनदेखा कैसे कर सकते हैं? हम न भी चाहें तब भी आज विज्ञान पर आधारित जीवन जीना हमारी विवशता हो गई है और विगत में इसी विवशता से उपजी उत्सुकता और कालान्तर में उत्सुकता से उपजी रुचि ने ही तो मानव सभ्यता की दौड़ को इतनी गति दी कि हम तेज़ी के साथ प्रगति के पथ पर बढ़ते हुए दिन पर दिन अपने लिए सुविधाएँ और साधन एकत्र कर आज एक ऐसे युग में आ पहुँचे हैं जिसे विज्ञान का युग कहना ही पूरी तरह उपयुक्त होगा।

जब पूरा परिवेश ही विज्ञानमय हो और हमारे जीवन से जुड़ने वाली सारी भौतिक सुख-सुविधाएँ इस पर ही आधारित हो गई हों तो विज्ञान को सिर्फ़ विषय बनाए रखकर इसे पाठ्य-पुस्तकों कक्षाओं के सीमित घेरे में बाँधे रखना हमारे संकुचित मस्तिष्क की सोच के दिवालियेपन का एक उदाहरण है। समय रहते यदि हमने शीघ्र ही नहीं सुधारा तो विश्व स्तर पर अच्छे डॉक्टर, इंजीनियर तथा तकनीशियन पैदा करने के बावजूद हमारा देश न सिर्फ़ प्रगति की दौड़ में पिछड़ जाएगा और हम पश्चिमी देशों के तकनीकी ज्ञान पर ही आश्रित बने रहेंगे बल्कि हमारी अगली पीढ़ियाँ भी हमारी अदूरदर्शिता के लिए कभी माफ़ नहीं करेगी।

पिछली पीढ़ी की तुलना में आज की पीढ़ी का मस्तिष्क कहीं अधिक विकसित अवस्था में हैं, इस तथ्य को भला कौन नकार सकता है? शायद यह इलेक्ट्रॉनिक युग का प्रभाव है। जिधर भी नज़र डालें छोटे से छोटे बच्चे के व्यवहार में झलकती उसकी मानसिक सामर्थ्य का हमें कायल होना पड़ेगा। दूसरी ओर आज भी हम अपने उन्हीं पुरातन पंथी विचारों से ग्रस्त हैं जिसके अंतर्गत ज्ञान को आयु का समानुपाती माना जाता रहा है। यानी आयु बढ़ने पर ज्ञान बढ़ता है, ऐसा हम मानते आये हैं और इसी के आधार पर यह अवधारणा हमारे समाज में सर्वमान्य है कि छोटों की अपेक्षा बड़ों में हमेशा अधिक समझ होती है जबकि वास्तविकता का इससे कोई सीधा सरोकार नहीं है। राजा जनक के दरबार में पहुँचकर वहाँ उपस्थिति विद्व सभासदों को अपने ज्ञान से अचम्भित कर

देने वाले अष्टावक्र जैसे प्रकांड पंडित के उदाहरण को बहुत पुराना मान भी लें तब भी अल्पायु में गणित में महारत हासिल कर लेने वाले रामानुजन सरीखी प्रतिभाओं जैसे दूसरे अनेक उदाहरण हमारे अपने ही समाज में मिल जायेंगे। उन्होंने आयु और ज्ञान के उपरोक्त फ़ॉर्मूले को पूरी तरह ग़लत सिद्ध कर दिया और यह जता दिया कि यदि लगन और ललक हो तो ज्ञान अर्जित करने के लिए कोई विशेष आयु-सीमा निर्धारित नहीं होती।

ज्ञान चाहे आध्यात्मिक हो या भौतिक, संत ज्ञानेश्वर या एडिसन की तरह इसे प्रयास व प्रयोग द्वारा कम आयु में भी प्राप्त किया जा सकता है। हमारी धार्मिक मान्यताओं के तहत तो यहाँ तक स्वीकारा गया है कि एक जन्म में अर्जित ज्ञान अगले जन्म में संस्कारों के रूप में साथ रहता है। इस आधुनिक युग में तर्क के स्तर पर इस धारणा को खंडित किया जा सके, ऐसा कोई वैज्ञानिक आधार अभी तक तो नहीं मिला है। विज्ञानियों के पास इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि एक ही माता-पिता की दो संतानें बिलकुल एक जैसी सुविधाएँ पानें और बिलकुल एक से परिवेश में पाले जाने के बावजूद प्रायः स्वभाव, समझ और शैक्षिक मामले में दो विपरीत स्तरों पर क्यों पहुँच जाती हैं?

पूर्व जन्म की धारणा जैसे धार्मिक विश्वासों का जहाँ तार्किक तरीके से खंडन नहीं किया जा सका है, वहीं हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे देश, समाज में अवलोकन और प्रयोग की मिली-जुली प्रक्रिया की प्रवृत्ति के अभाव में इसे पूरी तरह तर्कसंगत भी सिद्ध नहीं किया है। हम लकीर के फ़कीर बने आँख बंद कर उन्हीं मान्यताओं, धारणाओं और विश्वासों पर पलते रहे हैं जो हमें पिछली पीढ़ी से मिली हैं। हमारी पिछली पीढ़ी ने धरोहर के रूप में अपने अनुभव और ज्ञान सौंपते समय इनके सामयिक महत्त्व को देश, काल और परिस्थितियों के अनुरूप जाँचने या ढालने के लिये हमें कभी प्रोत्साहित नहीं किया। उल्टे इस विरासत को बिना कोई प्रश्न चिह्न लगाए, पूरी निष्ठा से स्वीकारने का ही हमारे ऊपर सदैव दबाव बनाया गया और यही मूलभूत कारण रहा हमारा ज्ञान-विज्ञान से दूर होते जाने का। वास्तव में यह दूरी ज्ञान-विज्ञान से नहीं थी बल्कि यह दूरी थी सोचने-समझने की प्रवृत्ति से। दूरी के बढ़ते जाने का परिणाम हुआ हमारे अंदर बढ़ता रचनात्मकता का अभाव।

दूसरों से फ़ॉर्मूलों के रूप में मिले अनुभवों के आधार पर हम अपने जीवन के समीकरणों को किसी तरह हल कर जीवन तो जीते रहे पर परिस्थितिजन्य पैदा हुए नए समीकरणों को हल करने के लिए हमें न तो कभी प्रोत्साहित किया गया और न ही हमने कभी इसकी ज़रूरत महसूस की। धीरे-धीरे इसी तरह जीने की हमारी मनोवृत्ति बन गयी और ऐसे परंपरागत परिवेश में जब कभी किसी प्रतिभा ने नई सोच प्रस्तुत करने का प्रयास किया भी तो उसे यहाँ पूरी तरह हतोत्साहित होना पड़ा। जगदीशचंद्र बसु जैसी न जाने हमारे देश की कितनी प्रतिभाएँ इसी संकीर्ण विचारधारा और नासमझी की भेंट चढ़ गयीं। उपयुक्त अवसरों की तलाश में अपने उद्वेलित होते विचारों को साकार रूप देने के लिए हमारे समाज से हरगोविन्द खुराना और कल्पना चावला सरीखी प्रतिभाओं को पश्चिम की ओर रुख करना पड़ा। वहाँ जब इन्हें अपनी योग्यता, निपुणता

व दक्षता के आधार पर अपेक्षित सफलता मिल गयी तो इन्हें यहाँ सुविधाएँ न दे पाने के कारण लज्जा से गड़ जाने की जगह हमने इनके भारतीय होने पर गर्व का अनुभव कर विश्वभर में एकतरह से अपनी असफलता के ढिंढोरे पीटने में भी कोई कसर नहीं छोड़ी।

अपने दुखते अतीत को दोहराना यहाँ विषय की मजबूरी है और वैसे भी जो समय-समय पर अपने अतीत के पन्ने पलटकर उसकी खामियों-ख़राबियों से कुछ सीखने की कोशिश नहीं करता वह चाहे कितने ही ऊँचे स्वर में कितनी बार ही 'हम होंगे क़ामयाब' दोहरा ले परन्तु केवल इस विश्वास के बल पर उसे 'एक दिन' सफलता मिल जायेगी, यह सोचना महज़ एक हास्यास्पद स्थिति की रचना करना भर है। अत: समय रहते यदि हमने इस दिशा में कुछ ठोस क़दम नहीं उठाये तो यह निश्चित है कि आने वाले समय में भी हमें इसी तरह आयातित विदेशी तकनीक पर ही निर्भर रहना होगा और तब भी हम इस क्षेत्र में अपना मौलिक कह सकने लायक शायद कुछ भी प्रस्तुत नहीं कर पायेंगे। इसलिये सबसे पहली ज़रूरत तो यह है कि हम अपनी नई पीढ़ी की ओर विशेष ध्यान दें। विज्ञान के प्रति इस पीढ़ी के मन में यदि वास्तव में जागरूकता पैदा की जा सके तो सही अर्थों में निकट भविष्य में ही सुखद संभावनाओं के द्वार खुल सकते हैं।

सुझाव या सलाह देना और बड़ी-बड़ी योजनायें बना लेना जितना आसान होता है, उनका क्रियान्वयन उतना ही मुश्किल। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही योजनायें बनाने में हमारा देश कभी पीछे नहीं रहा। नित नई योजनाओं से अवगत होते-होते अब हमारे देश की जनता उदासीनता की हद तक जा पहुँची है क्योंकि ऐसी योजनाओं के निर्माण और इनके क्रियान्वयन के बीच कोई तालमेल कभी नज़र ही नहीं आया। योजनाओं के लिए स्वीकृत विपुल राशि का केवल उतना ही भाग हमेशा अपने लक्ष्य तक पहुँच पाता है जो भूखे नेताओं और भ्रष्ट अधिकारियों के हाथों से, और न समेट पाने की मजबूरी में फिसल जाता है। यदि ऐसा न होता तो प्रौढ़ शिक्षा के नाम पर पानी की तरह बहाया गया धन एक सार्थक परिणाम लेकर आता और देश भर में अशिक्षा की बदहाल स्थिति में सुधार का ग्राफ बहुत बेहतर हो जाता। 'ऑपरेशन ब्लेक बोर्ड' जैसी न जाने कितनी असफल योजनायें समय-समय पर भ्रष्टाचार का ग्रास बनकर दम तोड़ चुकी हैं। इस दिशा में वास्तविकता से जनता इतनी परिचित हो चुकी है कि बड़े-से-बड़े घोटाले की ख़बर भी उसे अब चौंका नहीं पाती।

इसलिए यह तो निश्चित है कि सरकार की ओर से बड़े कारगर कदम की उम्मीद नहीं रखनी चाहिए। वैसे भी शिक्षा के क्षेत्र में सरकार की रुचि जनता को भ्रमित करने के लिए एक छलाव मात्र है और उसी का प्रभाव हमारे पूरे शिक्षा तंत्र पर पड़ा हुआ है तो फिर विद्यालय ही इससे अछूते कैसे रह सकते हैं। विगत आधी शताब्दी में विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा की स्थिति में जिस तरह गिरावट आयी है वह किसी से छिपी नहीं है। आज विद्यालय विद्या का घर नहीं रहे, बल्कि व्यापारियों का गढ़ बन गए हैं और शिक्षा क्षेत्र का व्यावसायीकरण हो चुका है। वैसे भी लॉर्ड मैकाले के मस्तिष्क की उपज वाली जिस शिक्षा प्रणाली को हमने स्वाधीनता के बाद जैसे का तैसा अपना लिया, उसके आधार पर शिक्षित हुए युवावर्ग से बाबू बनने के अतिरिक्त यदि

कोई रचनात्मक उपलब्धि हासिल करने की अपेक्षा की जाए तो इसमें दोष उस वर्ग का नहीं बल्कि हमारा ही है। वास्तविकता यह है कि आज शिक्षा का उद्देश्य नौकरी के लिए महज़ एक डिग्री प्राप्त करना भर रह गया है और जब नकली दवाइयों और नकली नोटों की तरह ये डिग्रियाँ भी बड़े सहज रूप में गली-गली उपलब्ध हों तो ज्ञान का शिक्षा से क्या संबंध बचेगा।

जहाँ शिक्षा का पूरा ढाँचा ही जंग खाया हुआ हो, वहाँ विज्ञान और गणित जैसे विषयों पर अलग से चर्चा का औचित्य मात्र इसलिए बचता है क्योंकि हमारे स्वतंत्र भारत के नीति निर्धारकों और शिक्षा शास्त्रियों ने प्रारंभिक एवं माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर इन विषयों के रोचक पहलू की पूरी तरह अवहेलना कर यदि इन्हें शुष्क विषयों के रूप में न प्रस्तुत किया होता तो आज हमें विज्ञान के लोकप्रियकरण के लिए इतने प्रयासों की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। खेल-खेल में सीखे और समझे जा सकने वाले ये विषय आम विद्यार्थी के सामने जटिल रूप में न आकर एक लाभकारी मित्र की भूमिका निभाते नज़र आते।

दो दशक से अधिक समय पूर्व बाज़ार में आयी '101 साइंस गेम्स' नामक पुस्तक ने कुछ ही समय में किस तरह देशभर के हज़ारों बाल-पाठकों की विज्ञान के साथ दोस्ती कराकर इसे उनकी रुचि का विषय बना दिया, इसकी चर्चा का मात्र उद्देश्य यह है कि विषय का प्रस्तुतीकरण एक बेहद महत्त्वपूर्ण कार्य है। पाठ्य पुस्तकों को तैयार करते समय संबंधित छात्रों की आयु वर्ग को ध्यान में रखते हुए इस पक्ष के प्रति पूर्ण सजगता को अच्छे परिणाम की गारंटी माना जा सकता है। विगत में इस ओर बरती गई उपेक्षा का यह खामियाजा ही है जो हम अभी तक भुगत रहे हैं और इस उपेक्षा ने स्थिति को इतना जटिल कर दिया है कि बच्चों के अंदर एक ऐसे क्षेत्र के प्रति जागरूगता जगाना जिसने विषय का रूप धरकर उन्हें पहले से डराया हुआ है, अब बच्चों का खेल नहीं रह गया है।

संक्षेप में कहा जाए तो आज जरूरत इस बात की है कि हमारे समाज के विभिन्न वर्ग इस जटिल समस्या का मिल-जुलकर कोई हल निकालें और साथ ही मीडिया की भी यह ज़िम्मेदारी बनती है कि वह इसे अपना नैतिक दायित्व समझते हुए आमजन तक पहुँचाने वाले हरेक क़दम को प्रमुखता और प्राथमिकता दे तभी इस दिशा में आगे चलकर कुछ बेहतर परिणामों की आशा की जा सकती है।

साभार : *समयान्तर-फरवरी 2004*

प्रो. उषा यादव

परशुराम शुक्ल : लीक से हटकर लेखन

हिन्दी बालसाहित्य में परशुराम शुक्ल का नाम किसी परिचय का मोहताज नहीं है। उन्होंने बच्चों के लिए विविध विधाओं में सशक्त लेखन करके अपनी अलग पहचान बनाई है।

परिवार बच्चे की प्राथमिक पाठशाला है और यहीं से मिले संस्कार आजीवन उसके जीवन-निर्माण की दिशाएँ निर्दिष्ट करते हैं। डॉ. परशुराम शुक्ल का जन्म 6 जून 1947 को कानपुर जिले के सैबसू गाँव में ननिहाल में हुआ और बचपन कानपुर के गड़रिया मुहाल में व्यतीत हुआ। घर के पास स्थित सदर बाजार जूनियर हाई स्कूल में उनकी आरंभ से लेकर कक्षा आठ तक की शिक्षा हुई। टाट पट्टी पर बैठकर तख्ती पर खड़िया-कलम से लिखना सीखा और परिवार में अम्मा-दादा (माता-पिता) के साहचर्य में रहकर श्रेष्ठ संस्कारों का पाठ पढ़ा। जीवन में निरंतर संघर्षशील रहने वाले दादा से उन्होंने संघर्ष करना सीखा। जुझारूपन सीखने के बावजूद पिता से शान-शौकत भरी जिंदगी जीना नहीं सीख सके। नेक, सरल और धर्मपरायण अम्मा से परम्परा-प्रेम और स्वाभिमान जैसे गुण अर्जित किये। इन्हीं गुणों ने उन्हें एक सफल बालसाहित्यकार बनाया और आज हिंदी बालसाहित्य के क्षेत्र में बालसाहित्यकारों की प्रथम पंक्ति में समासीन किया है।

डॉ. परशुराम शुक्ल के बालसाहित्य का काव्य और कथापरक मूल्यांकन-

काव्य-कला-बच्चों के लिए सुंदर-मनभावन कविताएँ लिखने वाली कलम जिस बालकवि के पास होगी, वह उतना अधिक बच्चों का हृदय-सम्राट बन सकेगा। नि:संदेह यह कलम परशुराम शुक्ल के पास है। उन्होंने बच्चों के लिए जो विपुल मात्रा में कविताएँ लिखीं, वे तीन भागों में बाँटी जा सकती हैं - शिशुगीत, बालकविता तथा किशोर कविता। बच्चों के लिए चार पंक्तियों के सुंदर शिशुगीतों से लेकर चालीस पंक्तियों की लंबी बाल कविताएँ उन्होंने लिखी हैं। कुछ शिशुगीत -

(क)

'हे प्रभु मैं छोटा-सा बच्चा/भोला-भाला, सीधा-सच्चा
मेरी बस इतनी-सी इच्छा/बन जाऊँ मैं सबसे अच्छा।'

(ख)

'मम्मी, पापा, भैया, दीदी/रहते साथ हमारे।

खाते-पीते और खेलते/मिल-जुलकर हम सारे।'

(ग)

'दादाजी ने पेड़ लगाया/पापा देते पानी।
मीठे-मीठे फल खाती है/उनकी बिटिया रानी।'

(घ)

'शेर और गीदड़ में देखी/ऐसी एक लड़ाई।
मारा थप्पड़ गीदड़ जी ने/भागे शेरू भाई।'

इन शिशुगीतों की खूबसूरती इनके वर्ण्य-विषय और प्रस्तुतिकरण में है। पहला शिशुगीत बाल-मन का चित्र है, जिसमें एक नन्हा बालक अच्छा बनने की चाहत रखता है। इस छोटी-सी कामना में लोककल्याण की कितनी बड़ी आकांक्षा छिपी है, सहज ही समझा जा सकता है। एक-एक करके यदि सभी बच्चे अच्छे बन जायेंगे, तो राष्ट्र को आगे बढ़ने से कौन रोक सकेगा? इसी तरह दूसरे शिशुगीत में बच्चा अपने छोटे-से परिवार के प्रति आत्मीय भाव जतला रहा है। परिवार ही बच्चे की प्राथमिक पाठशाला है। घर में माता-पिता, भाई-बहन को प्यार से रहता देखकर वह प्रेम और सहयोग का जो पाठ पढ़ेगा, वही भाव उसके बड़ा होने पर अनंत विस्तार पाकर विश्व-बंधुत्व के भाव में क्यों न परिणत हो जायेगा? तीसरा शिशुगीत पर्यावरणपरक है। दादाजी ने जो वृक्षारोपण किया, पिता ने जिस पेड़ को पानी दिया, उसका मीठा फल तीसरी पीढ़ी में बिटिया रानी को खाने को मिला। यानी वृक्षारोपण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिससे जुड़कर हम आने वाली पीढ़ियों का जीवन माधुर्ययुक्त बना सकते हैं। इसी क्रम में चौथे शिशुगीत में वह मनोरंजन तत्व है, जो एक शिशु के निश्छल अधरों पर स्मित-रेखा बिखेरे बिना नहीं रहेगा। स्पष्ट है कि डॉ. परशुराम शुक्ल के शिशुगीतों के विषय इतने बोधगम्य है कि शिशु की जानकारी के अंतर्गत आते हैं और उनकी भाषा इतनी सरल-सुबोध है कि सरलता से एक शिशु कंठस्थ कर सकता है।

जो बच्चा शैशव की देहरी छोड़कर बचपन की सीमा-रेखा में प्रविष्ट हो चुका है, उसके लिए भी मनोरंजक कविताओं की पिटारी शुक्ल जी की बालकाव्य-मंजूषा में सहेजकर धरी हुई है। आठ पंक्तियों की 'खेलो-कूदो' में बच्चों के भीतर नैतिक गुणों के विकास से लेकर पढ़ाई के प्रति रुचि जगाने और खेल-कूद की दुनिया से जोड़ने तक का व्यापक समाहार है। सचमुच एक बच्चे के जीवन-निर्माण के लिए इससे ज्यादा और क्या चाहिए? ईश-स्मरण, विद्यालय और क्रीड़ा-जगत के मनभावन छोरों से यह कविता उन्हें जोड़ती है-

'प्रतिदिन सबसे पहले उठकर/प्रभु के सम्मुख शीश झुकाओ
स्वच्छ-साफ हो बस्ता लेकर/फिर विद्यालय पढ़ने जाओ।
विद्यालय से लौट शाम को/पहले होमवर्क निपटाओ।
इसके बाद करो जो मन हो/खेलो, कूदो, मौज उड़ाओ।'

परशुराम शुक्ल की बाल कविताओं के प्रमुख गुण हैं- चित्रमयता, ध्वन्यात्मकता और सरलता। कविता के शब्द कानों में पड़ते ही वर्ण्य-विषय का जो दृश्य बिम्ब हमारे मानस में साकार हो उठता है, उसकी खूबी उसकी सजीवता में है। रेखाओं और रंगों से संयुक्त उस चित्र को देखकर बच्चे भावविभोर

हुए बिना नहीं रह सकते। 'जागो प्यारे' में इसे देखा जा सकता है -

'भोर हुई सूरज ने लाली/जग में चारों ओर बिछाई।
चिड़ियाँ चहक उठीं पेड़ों पर/मुर्गे ने भी बाँग लगाई।
तभी परी सपनों में आकर/पहले धीरे से मुस्काई।
फिर बोली वह हाथ पकड़कर/जागो प्यारे कृष्ण कन्हाई।।'

अब इस कविता का सौंदर्य देखिए- पहले चरण में सुंदर दृश्य-विधान है, जहाँ सूरज की लाली के संसार में बिछ जाने की बात कही गई है। दूसरे चरण में श्रव्य बिम्ब की सुंदर योजना है। चिड़ियों की चहचहाहट और मुर्गे की बाँग को साफ सुना जा सकता है। तीसरे चरण में परी का सपनों में आकर धीरे से मुस्कुराना एक ऐसा सुखद मोड़ है, जो कविता को आत्मीयता की सुवास से भर देता है। परियाँ बच्चों को स्वप्न-लोक में ले जाकर न जाने कितने मनोहारी दृश्य दिखाती हैं। पर अब तो भोर हो चुकी है न! इसलिए यह परी बच्चे का हाथ पकड़कर उसे जगाने का आह्वान करती हुई जागरण की जो शंखध्वनि सुनाती है, उसकी स्वर-लहरियाँ देर तक बालक के हृदय को अनुरंजित किये रहती हैं। यही परशुराम शुक्ल की बालकविताओं का सौंदर्य है। कविता की अनुभूति-अभिव्यक्ति पक्ष के संश्लिष्ट कौशल का निदर्शक है।

पशु-पक्षियों के विस्तीर्ण संसार से बच्चों का गहरा नाता कौन नहीं जानता? विशेषकर बंदर मामा से उनका गहरा लगाव होता है। इसीलिए बंदर मामा पर हिंदी में एक बड़ी संख्या में बाल कविताएँ लिखी गई हैं। यही बंदर मामा जब ससुराल पहुँचते हैं और भारी स्वागत-सत्कार पाते हैं तो उनका क्या हश्र होता है, इसका मनोरंजक चित्र परशुराम शुक्ल की निम्न बालकविता में देखिए -

'बंदर मामा पहन पजामा/जा पहुँचे ससुराल।
सर पर पगड़ी नीली-पीली/कुर्ता पूरा लाल।
हलुआ-पूड़ी, दूध-मलाई/छककर खाया माल।
गुब्बारे-सा पेट हुआ तब/हुए हाल बेहाल।'

इस कविता में रंग-संयोजन के साथ अत्यंत प्रशंसनीय रेखांकन है। बच्चे लाल, नीले, पीले रंगों को पहचानते हैं और माँ की रसोई के व्यंजनों से भी उनका प्रगाढ़ परिचय होता है। इसलिए बंदर मामा की नीली-पीली पगड़ी और लाल कुर्ता उनके नेत्रों में त्वरित गति से साकार हो उठेगा। इसके बाद बंदर मामा का हलुआ, पूड़ी, दूध, मलाई जैसे खाद्य पदार्थों का जमकर भोग लगाना भी उन्हें कम आनंदित नहीं करेगा। और फिर असली मजा तब आयेगा, जब सज-धज कर ससुराल जाने वाले और किसी लोलुप बुभुक्ष की भाँति व्यंजनों पर टूट पड़ने वाले बंदर मामा अपना गुब्बारे-सा फूला पेट पकड़कर बेहाल होते नजर आयेंगे। निश्चय ही इस मनोरंजक कविता का हर रंग, हर स्वाद बाल-मन को मोहने में समर्थ है।

बच्चों की नूतनताप्रेमी दुनिया में पशु-पक्षी जगत के साथ ही प्रकृति-सौंदर्य भी समाहित है। और बात जब प्रकृति-प्रेम की आती है, तो फूलों का साहचर्य उन्हें सबसे अधिक लुभाता है। डाली पर हँसते-मुस्कुराते फूल हाथ बढ़ाकर तोड़ लिये जाने पर कष्टित होते हैं, उदासी का अनुभव करते हैं, यह बतलाना भी उन्हें जरूरी है। यह काम एक सजग बालसाहित्यकार होने के नाते 'फूल' नामक कविता में परशुराम शुक्ल ने बड़ी खुबसूरती से किया है -

'नीले, पीले, लाल, गुलाबी/रंग-बिरंगे प्यारे फूल।
बागों में खुश्बू फैलाते/सारे जग से न्यारे फूल।
बेला और गुलाब-चमेली/हँसते-गाते सारे फूल।
किंतु तोड़ने पर डाली से/मुरझाते बेचारे फूल।'

कविता के अंत तक पहुँचते-पहुँचते बालक का कोमल हृदय पुष्प की उस पीड़ा की अनुभूति से निश्चय ही द्रवित हो उठेगा, जो शाखा पर हँसते-गाते फूल को वह अकारण तोड़कर, अँगुलियों से मसलकर, धरती पर फेंककर, सिर्फ नादानी के चलते दे देता है। जाहिर है, इसके बाद बच्चा किसी मुस्कुराते फूल तक हाथ बढ़ाने से पहले एक बार सोचेगा जरूर। यही पथ-प्रदर्शन तो सच्ची बालकविता का अभिप्रेत है। कवि ने यदि उपदेशात्मक शैली में 'फूल मत तोड़ो' कहा होता, तो वह अदबदाकर फूल तोड़ने को हाथ बढ़ाता। यह बाल स्वभाव है। जिस काम को मना किया जाये, बच्चा उसे करने के लिए हठधर्मी पर तुल जाता है। किंतु बाल मनोविज्ञान के पारखी परशुराम शुक्ल जब उससे पुष्प की बेचारगी और उदासी की बात कहते हैं तो उसका संवेदनशील मन पुष्प न तोड़ने के लिए दृढ़ता से सोच लेता है। यही परशुराम शुक्ल की बालकविता का कौशल, सौंदर्य और विशिष्ट तेवर है।

अब हम कवि की बारह पंक्तियों वाली कविताओं की बात करें। बच्चा जैसे-जैसे बड़ा हो रहा है, अपने आस-पास के परिवेश के प्रति अधिकाधिक गंभीर हो रहा है। वह किसी वस्तु के गुण-दोषों का विवेचन करने में भी समर्थ हो गया है। उसमें भले-बुरे के बीच अंतर करने का विवेक जाग चुका है। ऐसे में जब वह ग्राम्य जीवन के सुखों की बात सोचता है, तो 'गाँव की ओर' शीर्षक कविता उसे विस्मित-उल्लसित करने के लिए मौजूद है -

'अब तो मेरे मन में आता/जोडूँ अपने घर से नाता।
खेत और खलिहान बुलाते/गेहूँ, सरसों, धान बुलाते।

यह बालकविता ग्राम्य जीवन के सौंदर्य का ऐसा रमणीय रूप-विधान करती है कि बच्चा उस ओर आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकता। गाँव से जुड़ा हर पक्ष मौजूद है यहाँ? खेत, खलिहान, गेहूँ, सरसों, धान, आम, नदी, नाव और घाट सभी कुछ तो विद्यमान हैं। दादी-नानी के गाँव के लिए बच्चे का मन अकुला उठेगा। आम का मीठा-रसीला स्वाद उसे अपनी ओर खींचेगा। नदी की कलकलाती-छलछलाती धारा उसे संकेतों से बुलायेगी। नानी-दादी की पूजा-आरती के स्वर उसके कानों में गूँज उठेंगे। ग्राम्य-जीवन के इन सुखों के आस्वाद के लिए वह लालायित हो उठेगा। शहर की कृत्रिम जिंदगी की चकाचौंध से भ्रमित बच्चों के गाँव की निश्छल-सरल संवेदना से जोड़ने में इस कविता की महत्त्वपूर्ण भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता है।

परशुराम शुक्ल के मनोहारी बाल कविताओं के खजाने में कहीं 'आइसक्रीम' की ठंडी-मीठी सुवास है, तो कहीं 'गुल्ली-डंडा' का सर्वसुलभ खेल है। कहीं 'वर्षा आई' में बारिश की बूँदों का संगीत है तो कहीं 'गर्मी आई' में ग्रीष्म ॠतु की प्रचंड दाहकता का चित्र है। कहीं 'होली का त्योहार' में पर्व मनाने का आनंद है, तो कहीं 'मन करता है' में बच्चे की रंगारंग कल्पनाओं का इंद्रधनुषी वैभव है -

'मन करता है पंख लगाकर/पक्षी-सा उड़ जाऊँ।

मस्त पवन के संग में डोलूँ/नभ में गोता खाऊँ।

बच्चे की कल्पनाशीलता, प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण में संचरण करने की अभिलाषा और जिंदगी के नाना सुखों के बूँद-बूँद स्वाद के आस्वाद की अभीप्सा ने इस बाल कविता को एक अलग और विशिष्ट रंग दे दिया है।

इसी क्रम में 'गौरैया', 'मकड़ी', 'ऊदबिलाव', 'कोतवाल' जैसे विषयों पर लिखी गई सूचनात्मक बालकविताएँ बच्चों का ज्ञानवर्धन करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। 'कोतवाल' कविता में कोतवाल नामक पक्षी के बारे में यह जानकारी निश्चय ही बच्चों को नई और अनूठी प्रतीत होगी -

'आओ बच्चो आज तुम्हें हम/कोतवाल से मिलवाएँ।

जंगल में रहने वाले सब/पक्षी इसके गुण गाएँ।

'पुस्तक', 'कम्प्यूटर जी', 'टेलीविजन', 'रोबो' जैसी कविताएँ बच्चों को ज्ञान- विज्ञान की दुनिया से जोड़ती हैं। सबका अपना रूप-रंग है, अलग गुण-स्वाद है, पर सबमें एक सामान्य गुण हैं - बाल-मन से सम्पृक्त हैं। इसी क्रम में सोलह पंक्तियों की 'महापुरुष' इसलिए विशिष्ट है क्योंकि उसमें मानवता का सच्चा अर्थ बताया गया है -

'महापुरुष वह व्यक्ति नहीं जो/प्रतिदिन मंदिर जाता।

गंगा-यमुना के संगम पर/डुबकी मार नहाता।...

'रक्षा करते' और 'शीश झुकाते' में राष्ट्रीय भावों का सुंदर उद्रेक है, तो 'हिंदी अपनाएँ' का यह हिंदीमय हो जाना कितना सुखद और स्पृहणीय है, 'हिंदीमय हो जायें हम सब, हिंदी हिंदी गायें।' 'पर्यावरण बचाओ' की यह संवेदना भी आधुनिकता- बोध की परिचायक है, 'आज समय की माँग यही है पर्यावरण बचाओ।'

निश्चय ही विषय-वैविध्य की दृष्टि से परशुराम शुक्ल की कविताएँ अन्यतम हैं। राष्ट्रीय प्रतीकों को लेकर भी उन्होंने सुंदर बाल कविताएँ लिखी हैं। भारत के राष्ट्रीय वृक्ष बरगद पर लिखी गई बीस पंक्तियों की कविता की कुछ पंक्तियाँ-

'शाखाओं से निकल जटाएँ,/धरती तक आ जातीं।

और सहारा देतीं इसको,/इसका बोझ उठातीं।।...

बच्चों के लिए कविताएँ लिखते समय कोई बालोपयोगी विषय परशुराम शुक्ल की दृष्टि से ओझल नहीं हो सका है। बात गणतंत्र दिवस की हो, विश्व जल दिवस की हो, खेल दिवस की हो या अन्तर्राष्ट्रीय बालिका दिवस की हो, हर विषय पर उन्होंने श्रेष्ठ बालकविता लिखी है। मात्र पारम्परिक विषयों तक सीमित रहने वाले बाल कवियों के लिए यह एक स्वस्थ दिशा-संकेत है कि उन्हें सामयिक संदर्भों से जुड़ना चाहिए और निरंतर नये विषयों पर कविताएँ लिखकर हिंदी बालसाहित्य को समृद्ध करना चाहिए।

चर्चा अब परशुराम शुक्ल की 'बाल सतसई' की। 'बाल सतसई' के इन दोहों में बालजीवन, बालसंसार और बालमन के साथ-साथ बाल विमर्श के अभिनव रंग भी हैं। बच्चे की मूल्यवत्ता को सिद्ध करने वाला यह दोहा -

'बच्चों की किलकारियों में इतना आनंद।

इनके सम्मुख हो गया फीका ब्रह्मानंद।।'

बाल अधिकार की मीमांसा करने वाला यह दोहा भी दृष्टव्य है –

'बच्चों के स्कूल पर बच्चों का अधिकार।

मार-डाँट सब बंद कर, इन्हें दीजिये प्यार।।'

बच्चे का ज्ञानवर्धन कीजिये, उसे पढ़ाइये, पर विद्यालय में शारीरिक हिंसा के लिए कहीं कोई जगह नहीं है। इस बात को कवि ने बड़े सहज रूप में समझाया है-

'बच्चा पढ़ता ध्यान से, खेल-कूद के साथ।

भूल करे समझाइये, बिना लगाये हाथ।।'

तथा –'मारपीट से टूटता बच्चों का विश्वास।'

जाहिर है, संकटग्रस्त बचपन को बचाने की चाहत यहाँ पर्याप्त मात्रा में है। न तो शिक्षा-जगत के दोष कवि की दृष्टि से छिपे हैं और न उन्हें दूर करने के उपाय ही उसके लिए अज्ञात हैं। यानी यहाँ निराशा का अंधकार नहीं, आशा का प्रकाश है और उस प्रकाश में कवि देखता है –

'बच्चों को पहचानना काम नहीं आसान।

पहले पढ़ना चाहिए बाल-मनोविज्ञान।।'

बात सच है। अपने बीते हुए बचपन को तो हम बड़ी ललक के साथ याद करते हैं, पर क्या आज के बचपन को सँवारने के लिए भी उतने ही गंभीर हैं? निश्चित रूप से, 'नहीं।' इसीलिए बाल-विमर्श से जुड़े इन दोहों में कवि ने बड़ी संजीदगी से माता-पिता को बच्चों के पालन-पोषण की सही दिशाएँ निर्दिष्ट की हैं और संकटग्रस्त बचपन को बचाने का पूरे मनोयोग से उद्योग किया है। कुछ उदाहरण-

(क)'बच्चों के आहार में सदा मिलाएँ प्यार।

बिना प्यार आहार सब, हो जाता बेकार।।'

(ख)'बच्चों की उपलब्धियाँ कौन सकेगा माप।

देखें-समझें ध्यान से और सराहें आप।।'

(ग)'बच्चों में गुण बहुत हैं छू सकते आकाश।

नैतिक शिक्षा से करें इनका स्वस्थ विकास।।'

निश्चय ही डॉ. परशुराम शुक्ल के पास एक ऐसा सच्चा-गंभीर कवि-हृदय है, जो बाल-मन को पहचानता है, उनका सुख-दुख महसूसता है और उसके निवारण के उपाय भी जानता है। तभी वह कह सके हैं –

'बुके नहीं बुक दीजिए बच्चों को उपहार।

हम मानेंगे आपका बहुत बड़ा उपकार।।'

बाल-विमर्श आज बालसाहित्य का अत्यंत विचारोत्तेजक मुद्दा बन चुका है। इसे लेकर परशुराम शुक्ल की संजीदगी सराहनीय है। वर्तमान समय में बच्चे की दुरावस्था देखकर वह खिन्न हैं, तभी कह सके हैं –

(क)'कचरे में ये ढूँढ़ते हैं अपनी तकदीर।

हृदयहीन सरकार के होत न मन में पीर।।'

(ख)'बच्चे कच्चे मोम से सिद्ध हो चुका आज।

अगर करें अपराध ये, जिम्मेदार समाज।।'

सचमुच समाज यदि सहृदय होकर बच्चों की समस्याओं का निवारण करे, तो कोई बच्चा अपराधी क्यों होगा? वह जन्मजात अपराधी नहीं होता है। उसका परिवेश, उसके हालात ही उसे अपराधी बनाते हैं। समाज को जागरूक करने में साहित्यकार की भूमिका के निर्वहन में परशुराम शुक्ल कहीं पीछे नहीं रहे हैं। बेटियों के महत्व को भी वह समझते हैं, तभी एक बेटी के हृदय की संवेदनाओं को पकड़ सके हैं -

'बेटे से में कम नहीं, बेटी का उद्घोष।

यदि मुझको अवसर मिले देखो मेरा जोश।।'

बच्चे देश का भविष्य हैं। उनपर थोड़ा-सा ध्यान देने से वे मानवता के अग्रदूत बनकर दिखा देंगे -

'बच्चों को दिखलाइये, धरा और आकाश।

भर देंगे ये विश्व में पावन-दिव्य प्रकाश।।'

काव्येतर बालसाहित्य - डॉ. परशुराम शुक्ल ने बच्चों के लिए कविता के अतिरिक्त अन्य विधाओं में भी प्रभूत मात्रा में साहित्य-सृजन किया है। बाल नाटक कम लिखे हैं। इस बारे में स्वयं उनका कहना है 'बाल नाटकों में मेरी रुचि कभी नहीं रही। मैंने पाँच बाल एकांकी लिखे हैं - 'स्वर्ग की अदालत', 'तीन मूर्ख', 'हवाई महल', 'रानी गिडालू' और 'अक्षर ज्ञान'। 'अक्षर ज्ञान' एक नुक्कड़ नाटक है। 'तीन मूर्ख' सी.बी.टी. द्वारा पुरस्कृत व प्रकाशित है।' (साक्षात्कार, पृष्ठ 28 से)

जहाँ तक बाल कहानी की बात है, परशुराम शुक्ल ने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। विषय की दृष्टि से उनकी बाल कहानियाँ अनेक भागों में बाँटी जा सकती हैं- शिक्षाप्रद बाल कहानियाँ, प्राचीन ग्रंथों की कहानियाँ, परियों की कहानियाँ, जंगल की कहानियाँ, लोक कथाओं पर आधृत कहानियाँ तथा परी कथाएँ।

शिक्षाप्रद बालकहानियाँ वे कहानियाँ हैं, जो बच्चों का जीवन-निर्माण हेतु मार्ग दर्शन करती हैं। यद्यपि बालसाहित्य का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन है, पर सिर्फ मनोरंजन से उनका चरित्र-निर्माण नहीं हो सकता। इसलिए मनोरंजक कहानी में शिक्षाप्रद बातें बताना भी साहित्यकार का दायित्व है। डॉ. परशुराम शुक्ल ने ऐसी बालकहानियाँ पर्याप्त मात्रा में लिखी हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं, 'सफलता का रहस्य', 'दुगने का चक्कर', 'सच्चे सपूत', 'अकाट्य तर्क', 'साहस का फल', 'ममता की जीत', 'विद्यावती बदल गई', 'धमाका' तथा 'अनोखी प्रतियोगिता।' ये कहानियाँ बच्चों का जीवन गढ़ने की दिशा में अपना विशिष्ट महत्व रखती हैं। इनमें कहीं सफलता का रहस्य बताया गया है, कहीं सत्संगति का महत्व है। कहीं मेहनत का फल और वहीं साहस, शौर्य, श्रम की भी बात कही गई है।

प्राचीन ग्रंथों की बालकहानियाँ वे कहानियाँ हैं, जिनमें परशुराम शुक्ल ने रामायण-महाभारतकालीन संस्कृति के विविध पृष्ठों से प्रेरक अंश लिये हैं और इन कालजयी ग्रंथों के आधार पर गढ़ा है। भारतीय संस्कृति में रामायण, महाभारत जैसे धार्मिक ग्रथों का महत्व सर्वविदित है। इनके आधार पर लिखी गई परशुराम शुक्ल की कहानियाँ हैं, 'सूर्य का सारथी', 'विष्णु का वाहन', 'दधीचि का त्याग', 'नृसिंहावतार', 'सागर-मंथन', 'भस्मासुर वध', 'रामभक्त हनुमान', 'सोने का हिरन' आदि। इन कहानियों के बारे में

लेखकीय वक्तव्य दृष्टव्य है, 'ये कथाएँ केवल फंतासी नहीं हैं। इन कथाओं में भारत की संस्कृति है, अध्यात्म है, भारतीय मूल्यों की व्याख्या है, और भी बहुत कुछ है। इन दोनों ग्रंथों को समझकर भारत और भारत की आत्मा को समझा जा सकता है।' (अपनी बात प्राचीन ग्रंथों की बालकहानियाँ, विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, अपनी बात)

लोककथाओं पर आधृत बालकहानियाँ लिखकर भी डॉ. परशुराम शुक्ल ने हिंदी बालकहानी के भंडार को भरा है। वह लोककथाओं की उपयोगिता तीन रूपों में मानते हैं- मनोरंजन, नैतिक शिक्षा तथा न्याय व्यवस्था में योगदान। उनकी कहानियाँ इस कसौटी पर खरी उतरी हैं। कुछ महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं, 'स्वर्ग के महारथी', 'देवी का विश्वास', 'हुलुंग, तांत्रिक और भैरवी', 'इच्छाधारी नाग', 'नागदेवता का क्रोध', 'भैरवी और तांत्रिक की टक्कर' तथा 'ब्रह्मदत्त का हृदय परिवर्तन है।' ये सभी कहानियाँ अत्यंत रोचक हैं। मनोरंजन और नैतिक शिक्षा तो इनका प्रयोजन है ही, लेखक ने इन्हें न्याय व्यवस्था में योगदान देने वाला मानकर एक नये विचार बिंदु से भी जोड़ा है। भारत में ऐसी अनेक जनजातियाँ हैं, जहाँ साधारण चोरी से लेकर हत्या तक के विवाद का फैसला पंचायत में होता है। ये कहानियाँ लेखक ने इन जनजातियों के बीच संवाद स्थापित करके प्राप्त की हैं, इसलिए इनका महत्त्व असंदिग्ध है।

परशुराम शुक्ल की जंगल की कहानियों का उद्देश्य बच्चों को वन्य पशुओं के बारे में जानकारी देना है। इससे एक ओर इन वन्य पशुओं के प्रति बच्चों की जिज्ञासा का शमन होता है, दूसरी ओर इनके प्रति बच्चों का प्रेम एवं सद्भाव बढ़ता है। ये कहानियाँ पूर्व अपराधी जनजातियों के माध्यम से गृहीत हैं, इसलिए यथार्थ बोध से संयुक्त होने के कारण मौलिकता इनका गुण है। किसी छपी हुई किताब से पढ़कर अपने शब्दों में इन्हें नहीं लिखा गया है। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं, 'कानपुर का नरभक्षी मगर', 'अनोखा शिकारी', 'भयानक टक्कर' तथा 'आदमखोर बाघ का अंत।'

परशुराम शुक्ल ने परियों की सुंदर कहानियाँ भी लिखी हैं, जो पारम्परिक परी कथाओं से भिन्न हैं। हमारे यहाँ सुंदर पंखों वाली परियों की कल्पना है, जो पंख लगाकर स्वर्ग से धरती पर उतरती हैं। कभी-कभी वे मुसीबत में फँस जाती हैं, तो धरती का कोई प्राणी उन्हें बचाता है। इसके विपरीत विदेशी परी कथाओं में देव, दानव, राक्षसों आदि की भी परी कथाएँ शामिल हैं। परशुराम शुक्ल ने दोनों कोटि की परी कथाएँ लिखी हैं। कुछ कहानियाँ हैं, 'सुनहरी परी और राजकुमार', 'दानवी का बदला', 'साधु का शाप', 'युवा राक्षस और चमत्कारी साधु' तथा 'ब्रह्मा जी का वरदान।'

परशुराम शुक्ल ने अनेक शोधकार्य किये, जिनसे बालसाहित्यपरक अनेक रोचक तथ्य प्रकाश में आये। उदाहरण के लिए, यूरोप और अफ्रीका की परीकक्षाओं में परियाँ होती ही नहीं है। महिला, पुरुष या बच्चे परियाँ होते हैं। ये परीकथाएँ लोककथाओं जैसी होती हैं। सचमुच परियों के अस्तित्व को लेकर साहित्य-जगत में नाना विचारधाराएँ प्रचलित हैं। परियों को सुंदर, संवेदनशील, स्नेहमयी तथा संकट में फँसे प्राणी की सहायता करने वाली उड़न सुंदरी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ये परीलोक से आती हैं और अनेक जादुई शक्तियों की स्वामिनी होती हैं। इसके विपरीत भारत की अधिकांश पूर्व अपराधी जनजातियों नट, कंजर, कबूतर, कालबेलिया, कुचबंदिया, मोघिया आदि में परियाँ जंगलों तथा वीरान स्थानों पर रहती हैं तथा चुड़ैलों और प्रेतिनियों के समान खतरनाक होती हैं। ये व्यक्तियों को, विशेष रूप

से पुरुषों को अकेला पाकर उन्हें भारी नुकसान पहुँचा सकती हैं। मोघिया जनजाति के पुरुष इनसे अपना बचाव करने के लिए गुदना गुदवाते हैं। परी कथाओं को लेकर ये नई जानकारियाँ परशुराम शुक्ल की बाल कहानियों को एक नई द्युति से आवेष्टित कर देती हैं। स्पष्ट है कि उनका अन्वेषी मन सदा कुछ नये की तलाश में रहा है और जहाँ कुछ नया पाया है, उसे साहित्य में ढालकर बच्चों के सामने परोसने के लिए आग्रही रहा है। तभी उनकी परीकथाओं में एक नये किस्म की खूबसूरती है।

यही खूबसूरती परशुराम शुक्ल की वृक्ष कथाओं में परिलक्षित होती है। उन्होंने स्वयं 'साक्षात्कार' पत्रिका के साक्षात्कार में इसका उल्लेख किया है। विस्तार से बताया है कि बच्चों की पत्रिका 'नन्हें सम्राट' में एक स्थायी धारावाहिक 'वृक्ष कथा' छपता था, जिसका आरम्भ जावेद आलम ने किया था। पर वह इसे ज्यादा आगे नहीं बढ़ा सके फिर इसे सूरज कानपुरी तथा कुछ अन्य बाल कथाकारों ने संरक्षण दिया, वह अधिक प्रभावी न हो सका। पत्रिका के संपादक सुखवंत कलसी के आग्रह पर परशुराम शुक्ल ने इस काम को आगे बढ़ाने का बीड़ा उठाया, तथा असाधारण सफलता प्राप्त की। उनकी वृक्षकथाएँ अपार लोकप्रिय हुईं। इसके बाद थोड़े-बहुत अंतराल के साथ वह नियमित रूप से 'नन्हें सम्राट' में वृक्ष कथाएँ लिखते रहे और प्रसिद्धि पाते रहे। बच्चों ने इन्हें बहुत पसंद किया। रहस्य-रोमांच और रोचकता से संयुक्त ये वृक्षकथाएँ पत्रिका में अभी भी स्थान पा रही हैं। लेखक के मानस में अंतिम वृक्षकथा का प्रारूप है, जिसे समय ही सामने लायेगा। उन्हें विश्वास है कि वृक्षकथा का यह अंतिम परिच्छेद सर्वाधिक रोचक एवं अविस्मरणीय होगा। निश्चय ही अपनी इन परी कथाओं और वृक्ष कथाओं के द्वारा परशुराम शुक्ल ने बाल-मन के भीतर गहरी पैठ पाई है।

कितना कुछ जादुई खजाना शुक्ल जी के बालसाहित्य रचना-संसार में छिपा है, जिसे पढ़कर ही जाना जा सकता है। प्रकृति के प्रति बचपन से ही जो अनुराग भावना उनके भीतर रही, वह इस दिशा में अधिकाधिक शोध एवं अनुसंधान के रूप में आगे चलकर और तीव्रता से प्रकट हुई। इसीलिए वृक्षों और पुष्पों की उत्पत्ति को लेकर भी उन्होंने बहुत सी ज्ञानवर्धक बाल कहानियाँ लिखी हैं। एकदम अलग किस्म का, लीक से हटकर किया गया यह लेखन उनके बालसाहित्य को वैशिष्ट्य प्रदान करता है। उनका मानना है कि परी कथाएँ, वृक्ष कथाएँ तथा पुष्प कथाएँ एक ऐसा संसार है, जो बच्चों को कल्पना-लोक में ले जाकर नई-नई अनूठी कल्पनाएँ करने के लिए प्रेरित करता है। इससे बच्चों के व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास भी होता है।

परशुराम शुक्ल का मानना है कि यथार्थ और कल्पना के संतुलित संयोजन से स्तरीय बालसाहित्य का सृजन किया जा सकता है। अनेक ख्यातिलब्ध बालसाहित्यकार भी यह संतुलन बनाये रखने में कहीं न कहीं चूक गये हैं। इसके फलस्वरूप अनेक भ्रामक धाराओं का जन्म हुआ। एक उदाहरण से वह अपनी बात की पुष्टि करते हैं। कोयल कुहू कुहू की मीठी बोली सुनाती है, यह भ्रामक तथ्य है। मादा कोयल की आवाज बड़ी कर्कश होती है। समागम काल में मादा को आकृष्ट करने के लिए नर कोयल कुहू कुहू की मीठी आवाज निकालता है। इस प्रकार के भ्रामक तथ्य समाज में तथा साहित्य की दुनिया में इतनी गहरी जड़ें जमा चुके हैं, जिनका आसानी से मूलोच्छेदन नहीं किया जा सकता।

परशुराम शुक्ल ने बड़ी गंभीरता से हिंदी बालसाहित्य के उपवन के काँटों को एक-एक करके

चुनने की जो श्रमसाध्य चेष्टा की है, वह सराहनीय है। उनकी यह पहल हिंदी बालसाहित्यकारों को रास भी आई है। तभी वह कह सके हैं कि हिंदी के आधुनिक बालसाहित्यकारों ने इस ओर ध्यान देना शुरू कर दिया है। ये लोग सामान्य साहित्य के साथ ही अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, प्रावीविज्ञान आदि की स्तरीय पुस्तकें पढ़ते हैं और उससे प्राप्त ज्ञान का बच्चों के लिए साहित्य लिखते समय उपयोग करते हैं। सचमुच यह श्रमसाध्य कोशिश ही बालसाहित्य को 'बचकाना साहित्य' कहने वाले आलोचकों का मुँह बंद कर सकेगी। बालसाहित्य में यथार्थ और कल्पना का मणि-कांचन संयोग ही उसे एक नई ऊँचाई दे सकने में समर्थ होगा।

परशुराम शुक्ल यह जानते हैं कि बच्चों को आज भी फंतासी सर्वाधिक लोकप्रिय है। यह फंतासी कल्पना प्रधान होती है। संतोष की बात है कि बाल फंतासी में धीरे-धीरे वैज्ञानिक यथार्थ बढ़ रहा है। भविष्य में विज्ञान फंतासी तेजी से बढ़ेगी। मानवीय संवेदना, कल्पनाशीलता तथा यथार्थ बोध से समन्वित बालसाहित्य नई ऊँचाइयों को छुयेगा। इस प्रकार की स्तरीय रचनाएँ हिंदी बालसाहित्य की गरिमा में चार चाँद लगाएँगी।

सचमुच बहुत व्यापक है परशुराम शुक्ल के बालसाहित्य का आयाम। उनकी दृष्टि भारतीय वीरांगनाओं तक पहुँची है। तभी वह अपनी पुस्तक 'भारतीय वीरांगनाएँ' की भूमिका में लिख सके हैं, 'वीरता पर केवल पुरुषों का अधिकार कभी नहीं रहा। वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक का इतिहास इस बात का साक्षी है कि विकास के सभी कालों में, प्रत्येक क्षेत्र में नारी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।... 'भारतीय वीरांगनाएँ' का उद्देश्य बच्चों को भारत की नारी-शक्ति का वास्तविक परिचय देना है।' पुस्तक में चित्रित कुछ देदीप्यमान वीरांगनाएँ हैं - 'वीरांगना पद्मा', 'वीरांगना सूर्य कुमारी', 'वीरांगना लाल बाई', 'वीरांगना कृष्णा', 'वीरांगना पन्ना', 'वीरांगना दुर्गावती, 'वीरांगना अवन्ती बाई', 'वीरांगना कनकलता', 'वीरांगना इंदिरा गाँधी'। निश्चय ही पुस्तक बच्चों के लिए महत मूल्यवत्ता रखती है। 'वीरांगना पन्ना' की अंतिम पंक्तियाँ उदाहरण स्वरूप दृष्टव्य हैं, 'आज न पन्ना है न उदय सिंह। किंतु एक वीरांगना के रूप में आज भी मेवाड़वासी पन्ना को याद करते हैं। वीरांगना पन्ना का नाम आते ही मेवाड़ वासियों के मस्तक उसके प्रति श्रद्धा से झुक जाते हैं।' (भारतीय वीरांगनाएँ, पृ. 55)

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है परशुराम शुक्ल का लीक से हटकर बालसाहित्य लेखन हिंदी बालसाहित्य को न सिर्फ सशक्त बनाता है, अपितु नवोदित बाल साहित्यकारों के लिए प्रेरक भी बन जाता है। हिंदी बालसाहित्य में विश्वकोशों के अभाव को भी गंभीरता से लेना उनकी इसी मौलिक सूझ का प्रमाण है। मार्जार कोश, जलचर कोश, मत्स्य कोश, क्रस्टेशिया कोश, उभयचर कोश, जलीय स्तनपाई कोश आदि पर कार्यरत रहना उनके श्रम साध्य रूप का निदर्शक है। मार्जार कोश और जलचर कोश तो छप भी चुके हैं। बच्चों के ज्ञानवर्धन के लिए इनकी उपयोगिता सर्वविदित है। हमें परशुराम शुक्ल के निरंतर कार्यरत रहने से भविष्य के लिए अभी बहुत सी अपेक्षाएँ हैं।

सम्पर्क : *आगरा (उ.प्र.)*

कर्नल प्रवीण त्रिपाठी

भारत में बाल साहित्य

अपने इस आलेख का आरंभ एक ऐसे प्रश्न से कर रहा हूँ जिसका उत्तर सबके पास होगा, वह भी हाँ में। प्रश्न यह है कि क्या आपने बचपन में अपने माँ-पिता, दादा-दादी या नाना-नानी से कहानियाँ या लोरियाँ सुनी हैं। तो इसका उत्तर सर्वसम्मति से हाँ में ही होगा। भारत ही क्या विश्व भर में शायद ही कोई ऐसा बच्चा हो जिसने कभी बचपन या लड़कपन और किशोरावस्था में भी कहानियाँ, लोरी, गीत या कविताएँ न सुनी या पढ़ी हों। यह तथ्य ही बाल साहित्य की प्रासंगिकता एवं उपयोगिता को सिद्ध करता है।

हम सब बचपन से ही पढ़ते व सुनते आए हैं कि अभिमन्यु ने माँ के पेट में चक्रव्यूह भेदन सीख लिया था जो कि अर्जुन ने सुभद्रा को बताया था। हम जिस भी महापुरुष में की बात करें हम यही पाएँगे कि उनको बचपन से किस्से-कहानियों को सुनकर प्रेरणा मिली, अच्छे संस्कार रोपित हुए। आरंभ में सुनकर तथा साक्षर होने के बाद पढ़कर बहुत कुछ सीखा व समझा जाता है। बच्चों का कोमल मन बहुत ही संवेदनशील तथा चुस्त (agile) होता है, अत: वे अपने परिवेश तथा पुस्तकों आदि से बहुत कुछ ग्रहण करते हैं इसलिए यह आवश्यक है कि उनके पढ़ने या सुनने की सामग्री सरल, सहज, सरस संतुलित हो। तभी वे इसे सही ढंग से ग्रहण कर पाएँगे और अपने जीवन में उतार सकेंगे। इस संबंध में ब्रैसी सैंड्रारस ने कहा है कि 'कोई काम इतना कठिन नहीं है जितना बच्चों के लिये लिखना।'

इस मूल बात को ध्यान में रखें तो यह पाएँगे की बाल साहित्यकारों का उत्तरदायित्व और बढ़ जाता है ताकि उनके हाथों में बेहतरीन सामग्री पहुँचे। भारत के प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करें तो पाएँगे कि प्राचीनकाल से ही भारत में प्रचुर मात्रा में बाल साहित्य उपलब्ध रहा है। पौराणिक काल के पात्रों यथा राम, कृष्ण, ध्रुव, प्रह्लाद या भरत के बारे में मनोरम, रोचक एवं शिक्षाप्रद साहित्य की रचना सूर, तुलसी जैसे समर्थ विद्वानों ने की थी। आचार्य विष्णु शर्मा द्वारा लिखी पंचतन्त्र की कहानियाँ हों, बौद्धकालीन जातक कथाएँ हों या हितोपदेश की कहानियाँ, ये सब आज भी प्रासंगिक हैं। पौराणिक काल से लेकर वर्तमान समय तक साहित्य के साथ-साथ बाल साहित्य ने भी अपना स्वरूप बदला है, जो कि समयानुकूल होने के साथ-साथ अपनी उपयोगिता हर

कालखण्ड में रेखांकित करता रहा है।

यदि हम बाल साहित्य के मूल तत्वों के बारे में चर्चा करें तो पायेंगे कि ऐसा साहित्य बच्चों में रचनाशीलता को अंकुरित करता और समय के साथ निखारता है। यह न केवल उनमें नये ढंग से सोचने और अपनी सोच को पैना करने तथा भावों को प्रकट करने के अवसर प्रदान करता है अपितु बच्चों के व्यक्तित्व निर्माण में भी मदद करता है। इन सबसे ऊपर यह तथ्य कि बालसाहित्य हमारी साहित्यिक और सांस्कृतिक विरासत को बच्चों तक पहुँचाने में सहायक होता है इसकी उपयोगिता को रेखांकित करता है। बाल साहित्य की भाषा क्लिष्ट एवं बोझिल न हो कर सीधी, सरल एवं स्पष्ट हो ताकि संप्रेषण के उद्देश्य की पूर्ति हो सके। इसके अंतर्गत जो भी विषय चुना जाये वह यथार्थथता को परिलक्षित करता हो। जीवन के प्रति दृष्टिकोण को व्यापक बनाने वाले विषय बाल साहित्य के लिए सर्वथा उपयुक्त होते हैं क्योंकि मज़बूत नींव पर ही सुदृढ़ व्यक्तित्व का निर्माण हो सकता है। बाल साहित्य इतना प्रभावी हो कि उसे पढ़कर बच्चा कुछ ग्रहण कर सके तथा अपना लक्ष्य निश्चित कर सके।

बाल साहित्य समय के संग-संग चले तभी यह सर्वग्राही एवं लोकप्रिय हो सकेगा। शब्दों का चयन तथा उसमें सन्निहित सामग्री ऐसी हो जो जिस वर्ग के बच्चों के लिए लिखी जा रही हो उस तक पहुँचे। किशोरों के लिए रचा साहित्य शिशुओं के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता और इसके ठीक उलट शिशुओं या छोटी उम्र के बच्चों के लिखा गया साहित्य किशोरों के किसी काम का नहीं हो सकता। बच्चों से चित्रों के माध्यम से बेहतर ढंग से संप्रेषण किया जा सकता है अस्तु उनके लिए सामग्री तैयार करते समय इस मूल बात को केंद्र में रखना होगा। बाल साहित्यकारों को बच्चों के मनोविज्ञान की जानकारी होनी आवश्यक है। हर उम्र के बालक या बालिका क्या सोचते एवं क्या चाहते हैं इसका पूरा आभास साहित्यकारों को होना चाहिए तभी उनका रचा साहित्य अपने उद्देश्यों की पूर्ति करने में सक्षम होगा।

कालांतर में विभिन्न सामाजिक एवं वैज्ञानिक-तकनीकी परिवर्तनों के साथ ही बच्चों के लिए उपलब्ध साहित्य तथा उसके प्रस्तुतीकरण में व्यापक बदलाव की आवश्यकता है। आज के स्मार्टफोन टैबलेट्स, आई पॉड्स एवं लैपटॉप की दुनिया में क्या बच्चे, क्या बड़े, सभी इनमें खोये नज़र आते हैं। इस प्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ बाल पत्रिकाएँ धीरे-धीरे समाज से गायब होने लगी हैं। लोटपोट, पराग, चंदामामा जैसी पत्रिकाएँ लुप्तप्राय हो गईं और इस कड़ी में ताजा उदाहरण है लोकप्रिय बाल पत्रिका 'नंदन'। जिसके हाल ही में बंद होने पर सोशल मीडिया पर देशव्यापी प्रतिक्रिया देखने को मिली।

जब ऐनिमेटेड सामग्री कम मूल्य पर उपलब्ध हो तो भला पाठकों को खरोद कर पढ़ने में रुचि क्यों होगी। इसने पढ़ने की प्रवृत्ति को काफी हद तक समाप्त कर दिया है। इसकी क्षतिपूर्ति करने तथा पाठकों विशेषतौर बाल पाठकों को साहित्य की ओर आकर्षित करने के लिए अधिक सजग रहते हुए इसमें व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है तथा मुद्रित पुस्तकें व पत्रिकाएँ न सिर्फ रंगबिरंगी एवं आकर्षक हों अपितु इन्हें अब दृश्य-श्रव्य माध्यम से इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के लिए

भी तैयार करना होगा। यू ट्यूब पर तथा अनेक ऐप्स पर बच्चों के लिये प्रचुर सामग्री उपलब्ध है। इन प्लेटफॉर्म्स पर जो भी सामग्री या कंटेंट हैं उनके प्रति गम्भीर रूप से ध्यान रखना होगा, क्योंकि एक गलत सामग्री पलक झपकते सर्वव्यापी होकर उनके मनमस्तिष्क पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है। अत: डिजिटल प्लेटफॉर्म्स पर उपलब्ध सामग्री की सतत् निगरानी की भी आवश्यकता होगी।

बच्चे डिजिटल प्लेटफॉर्म्स पर उपलब्ध सामग्री या इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स के आदी न हो जायें इसके लिए माता-पिता और इनके निर्माताओं को प्रयास करना होगा। हमने स्वयं देखा है कि आज के वर्किंग कपल्स बच्चों की देखभाल में असमर्थ होने के कारण बच्चों को इनका आदी बना देते हैं जो कि सरासर गलत है और इस ट्रेंड पर त्वरित प्रभाव से रोक लगाने की आवश्यकता है। साथ ही ऐसे समग्र प्रयास करने की आवश्यकता कि बच्चे वापस पुस्तकों एवं बाल पत्रिकाओं की ओर आकर्षित हो सकें। इस दिशा में चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट एवं नेशनल बुक ट्रस्ट तथा भारतीय साहित्य अकादमी की महती भूमिका है। ये संस्थाएँ बाल साहित्य के क्षेत्र में देश भर में चल रही गतिविधियों पर पैनी नज़र रखें तथा स्तरीय बाल साहित्यकारों को प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन देकर सुपाठ्य, सुग्राह्य तथा सस्ती पुस्तकें एवं पत्रिकाएँ सुलभ कराएँ।

सम्पर्क : *नोएडा (उ.प्र.)*

डॉ. प्रीति प्रवीण खरे

हिंदी बाल साहित्य में प्रयुक्त विविध शैलियाँ : एक अवलोकन

बचपन कभी तितलियों की थिरकन सा नर्तन करता मालूम होता है तो कभी शिशिर की शबनमी बूँदों सा शीतल जान पड़ता है। बचपन सीपियों से मोती चुराने का स्वर्णिम समय है। बचपन आकाश को मुट्ठी में भर लेने का जज़्बा है। अनगढ़ बचपन को सुगढ़ बनाने के लिए बाल साहित्य भूमि तैयार करता है। कोमल और निष्पाप बचपन को देश के भावी कर्णधार, जितनी कुशलता से बाल साहित्यकार बना सकता है, शायद उतनी प्रवीणता से अन्य कोई साहित्य की विधा नहीं कर सकती।

बाल साहित्य की रचना के मूलाधार में वे ही तत्व तथा मनोवैज्ञानिक नियम हैं जो, बच्चों को स्वस्थ मानसिक विचारधारा वाला व्यक्ति बनाने के लिए आवश्यक हैं। बाल साहित्य बच्चों के उन अंकुरों को पुष्ट करता है, जो बड़े होकर उन्हें जीवन के सत्य को पहचानने में सहायता करते हैं।

बाल साहित्य बच्चे के उन तन्तुओं को पुष्ट करता है, जो बड़े होकर उसके जीवन के सत्य को पहचानने में सहायता करते हैं। शैशवावस्था में बालकों की वृद्धि बहुत तीव्र गति होती है और इसी अवस्था में वे आवश्यक वस्तुओं के बारे में ज्ञान प्राप्त कर अपनी जिज्ञासाओं को अस्पष्ट भाषा में अभिव्यक्त करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। बच्चों का संसार सर्वथा अलग होता है। वे नैतिकता, नियम और शासन के बंधनों से अपने को अलग-विलग मानते हैं। उनके लिए कोई विशिष्ट नहीं होता। इस भावना को केंद्रित करते हुए बाल साहित्य का लेखक बालक के वातावरण को समझने का समुचित प्रयास करता है। बालक अपने परिवार, समाज, पास-पड़ोस की वस्तुओं से अपना नाता जोड़ने वाली लगता है और अपने मन में उठने वाले कौतूहलों को शांत करता रहता है। ये सब तत्व बाल साहित्यकार की मानसिकता में भी आना आवश्यक है।

आज का बाल साहित्यकार इस बात का प्रयास कर रहा है कि वह कुछ नया लिखे। उसे सृजनरत रहते हुए कथ्य और शिल्प पे विशेष ध्यान देना चाहिए ।उसकी शैली बच्चों के अनुरूप हो ऐसा हर संभव प्रयास आवश्यक है। बाल साहित्य में शैली का विशेष महत्व है। अभिव्यक्ति पद्धति शैली कहलाती है। कवि अपने विचारों को विभिन्न शैलियों में अभिव्यक्त कर सकता है। कविताओं में शैली के विविध रूप परिलक्षित होते हैं। इन्हें हम निम्न शीर्षकों में देख सकते हैं-

1. गीत शैली-गीत शैली की कविताओं में संक्षिप्तता के प्रति विशेष आग्रह होता है। इसका विशेष

गुण संगीतात्मक होता है। तीव्र भाव व्यंजना गीत का प्राण है। राष्ट्रबंधु जी ने अपनी बहुत सी कविताएँ गीत शैली में लिखी हैं'- तीस तितलियाँ' रचना के सभी गीत इसी शैली में लिखे गए हैं। शिशु गीतों की भाषा सरल और बोधगम्य है। संक्षिप्तता इसका विशेष गुण है। छोटे बच्चे इनकी रचनाओं को सहज ही कंठस्थ कर लेते हैं। शिशु गीत-

'कोयल की आवाज़ टेप कर, कौए जी हर्षाए।
उससे बोले 'मम्मी' हम तो/तुमसे सब कुछ पाते।।'

2. कथा शैली-कविताओं को लिखने के लिए कथा शैली का भी प्रयोग किया जाता है। इसमें कविताएँ अपने अंदर कथा तत्व समाहित किए रहती हैं। डॉ.राष्ट्रबंधु जी ने 'उपेक्षित बच्चे' रचना की कई कविताएँ कथा शैली में लिखी हैं। इनमें संवाद भी रहते हैं। जिनसे नाटकीयता का पुट आ जाता है। कथा शैली की पद्ध कथाओं में जिज्ञासा आदि अंत तक बनी रहती है। प्रत्येक पंक्ति आगे पढ़ने के लिए प्रेरित करती है।

3. गीत कथा शैली-गीत एवं कथा शैली का सुंदर विनियोग गीत कथा कहलाता है। इन कविताओं में संवाद भी रहते हैं, जिससे बच्चों को याद करने में सुविधा रहती है। बंदर और बंदरिया दोनों गंगा स्नान के लिए जाते हैं, लेकिन वहाँ पर सभी लोगों के द्वारा वह भगाए जाते हैं। तब बंदर बंदरिया को सांत्वना देते हुए कहता है कि घर पर लौट चलते हैं। 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' वाली कहावत बताता है। उसका सुंदर वर्णन है-

'बंदर और बंदरिया दोनों,/दौड़ भाग कर आए
किंतु घाट पर सबके द्वारा,/दोनों गए भगाए।।
बंदर बोला, चलो लौटकर,/यहाँ मचा है दंगा।
मन चंगा तो भरी कठौती/कहलाती है गंगा।।'

4. पत्र शैली-के काव्य में पत्र का प्रयोग भी मिलता है। इस शैली में लिखी एक कविता 'बाल पंचायत' में बच्चों द्वारा राष्ट्रपति महात्मा गाँधी के पत्र के कुछ अंश-

'पूज्य बापू,
हम सब छोटे बच्चों का बापू प्रमाण स्वीकार करो।
यहाँ सब कुशल है किंतु आपका पत्र नहीं कोई आया।
कैसे आप वहाँ रहते हैं, हल नहीं कोई पाया।।

5. उद्धरण शैली-भावों को प्रभावशाली बनाने के लिए गद्ध या पद्ध में उद्धरण शैली को भी अपनाया है। अंगरक्षक नामक कहानी में संयम राय की वीरता का वर्णन करते समय लेखक ने प्रभाव दृष्टि के लिए उनकी बलिदान बेला पर आल्हा के इस उद्धरण का अत्यंत सटीक प्रयोग किया है-

'थोड़ी दूर पर कोई सैनिक आलाप भरता गा रहा था,
पुरजा-पुरजा कटि मरें, तऊ न छाँड़े खेत।।'

6. जीवन शैली-राष्ट्रबंधु जी ने इस शैली का प्रयोग महापुरुषों की जीवनी लिखने में किया है। 'देश प्रेम के गीत' में संग्रहित महात्मा गाँधी, जवाहर लाल नेहरू, विनोबा भावे आदि की जीवनियों का वर्णन

इसी शैली में किया गया है। संत विनोबा भावे के व्यक्तित्व की विशेषता बताते हुए कवि लिखते हैं-

'मन के बहुत अंचल हैं वे,/मुस्काने में चंचल हैं वे।

मूँछों वाली लंबी दाढ़ी,/दूध पियें तो लटके साढ़ी।।'

शैली की इसी विविधता के कारण कविता में रोचकता, नाटकीयता, बोधगम्यता, चित्रोपमता, ध्वन्यात्मकता के पुट समाहित होकर रचना को सुंदरता से गढ़ते हैं।

बाल साहित्य में प्रयुक्त विविध शैलियों का अवलोकन करें तो पाते हैं, मुख्य रूप से चार प्रकार की शैलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। वे इस प्रकार हैं-अभिधात्मक, व्यंग्यात्मक, उपदेशात्मक एवं हास्यप्रधान।

(1) अभिधात्मक-शैलीगत विवेचन के अंतर्गत जो बीज भारतेन्दु बाबू ने बोये थे और जिनके अंकुर भी फूट चले थे, वे प्रतापनारायण मिश्र के शैली-क्षेत्र में विभिन्न शाखाओं में फैलने लगे। गद्य के साथ-साथ पद्य-शैलियों का भी प्रसार हुआ- यह इनकी विशेषता है। मिश्र जी के विषय विभिन्न रूप लिखे हुए हैं। इन विषयों का सहजपन ही प्रधान गुण है। तदनुरूप शैली में भी सहजता है। आचार्य शुक्ल जी के शब्दों में - 'प्रतापनारायण मिश्र यद्यपि लोककला में भारतेन्दु को ही आदर्श मानते थे, पर उनकी शैली में भारतेन्दु की शैली से बहुत कुछ भिन्नता भी लक्षित होती है।'

'बफन' के अनुसार 'शैली ही मनुष्य है'- में व्यक्ति-तत्त्व की प्रधानता है। शैली का जन्म ही 'शील'- स्वभाव से हुआ है। कुन्तनक जैसे भारतीय और पाश्चात्य काव्य-चिन्तकों ने भी स्वभाव और व्यक्तित्व को ही प्रधानता दी है। व्यक्तित्व का निर्माण बहुत कुछ स्वभाव पर ही होता है। भिन्न स्वभावों से भिन्न व्यक्तियों का निर्माण होता है।

पं. प्रतापनारायण मिश्र के निबन्धों में उनका व्यक्तित्व मुखरित हुआ है। ''प्रसाद'' उनकी निबन्ध शैली का प्रधान गुण है। गम्भीर विषयों पर भी उनकी लेखनी चली है, परन्तु वहाँ भी शैली की सहजता विषय की अनुगामिनी रही। गम्भीर विषयों को भी मिश्र जी इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं, मानों लेखक स्वयं प्रत्यक्ष बैठकर पढ़ रहा हो। उनकी शैली की सबसे बड़ी विशेषता है- रसात्मकता, रोचकता और सहृदयता।

पं. प्रतापनारायण मिश्र का गद्य के क्षेत्र में विशेष रूप से उभरा। इनकी शैली का आकलन प्रमुख दो रूपों में किया जा सकता है- प्रथम गद्य-शैली और द्वितीय निबन्धों की शैली। गद्य-शैली में उनका निबन्धकार का रूप विशेष हैं।

निबन्धकार के रूप में शैलियों का वर्गीकरण -

अभिधात्मक (आत्मव्यंजक-शैली)

मिश्र जी के निबन्धों में आत्म-तत्त्व की छाप परिलक्षित है। आत्म-व्यंजकता ही निबन्धों में विशिष्टता से उभरकर आई है। इस प्रसंग में- ''भारतेन्दु-युगीन - निबन्ध'' के लेखक श्री शिवनाथ का कथन है- वे (प्रतापनारायण मिश्र) भारतेन्दु-युग के ही नहीं, वरन् हिन्दी-साहित्य के आत्मव्यंजक निबन्धकारों के प्रतिनिधि हैं। साहित्य के प्रत्येक युग की अपनी-अपनी विशिष्ट देनों से सुशोभित किया है, उनमें आत्मव्यंजक निबन्ध भी एक है।

मिश्र जी के निबन्धों के नामकरण के अनुरूप ही विभिन्न शैलियाँ अभिहित हुई हैं। इन निबन्धों में

इतिवृत्तात्मकता की अधिकता है। इनमें विचार की अपेक्षा सामान्य परिचय का स्थान प्रमुख है। ऐसे निबन्धों में वर्णनात्मकता को जीवित रखने के लिए कल्पना-शक्ति का विशेष सहारा लिया गया है। विषय सरल होने पर भी लेखक वर्णन कर कल्पना के आवरण का पुट देकर उन्हें रोचक बनाए रखता है। इस लेखन-प्रणाली में मिश्र जी बिना किसी भूमिका का आश्रय लिए सीधे विषय का वर्णय करते हैं। वर्णन की सजीवता अनैसर्गिकता को नहीं लाने देती। उक्त प्रणाली के अन्तर्गत वे विषय को रोचक बनाने के लिए अन्य शैलियों का भीसहारा लेते हैं, जैसे-व्यास, उद्धरण, उपदेशात्मक, चित्रात्मक और काव्यात्मक शैली आदि।

इस शैली-कोटि के निबन्ध बुद्धि प्रधान होते हैं। इनका संबंध मस्तिष्क से विशेष होता है। विचार-प्रधान होने के कारण इन निबन्धों की भाषा का कुछ क्लिष्ट होना स्वाभाविक है। विचारों के प्रतिादन के लिए मिश्र जी इस शैली में खण्डन-मण्डन का भी सहारा लेते हैं। थोड़े में बहुत कहने की प्रवृत्ति इस निबन्ध-शैली की विशेषता है। विवेच्य लेखक के अध्ययन, मनन और चिन्तन की दिशा ठोस दृष्टिगत होती है। इस शैली का विकास प्रतिभा पर निर्भर है।

विचारात्मक निबंध-शैली की पूर्णता निम्नांकित शैलियों में हुई है- 1.समास-शैली, 2. व्यास-शैली, 3. उद्धरण-शैली, 4. काव्यात्मक-शैली और तर्क-प्रधान-शैली। इस शैली का सीधा सम्बन्ध हृदय से हैं। भावों का उद्गम हृदयस्थल होने से भावाभिव्यंजना और रागात्मकता का प्रधान्य होना स्वाभाविक है। भावाधिक्य के कारण भाषा और भावों की क्रम शृंखला सन्तुलित नहीं रह पाती। लेखक काव्य-मार्ग का आश्रय लेकर भावों की अभिव्यंजना करता है। इस शैली में तर्क-अस्तित्व शून्य-सा रहता हैं गहन अनुभूतियों का विमल प्रकाश नही भावात्मक-निबन्धों में प्राण का संचार करता है।

बाल-साहित्य के सृजन में वयस्कों के लिए लिखे जाने वाले साहित्य की अपेक्षा कुछ विशेष बातों का ध्यान रखते हुए चलना आवश्यक होता है। उनमें एक प्रमुख बात शिल्प भी है। वयस्क साहित्य के शिल्प-विधान में यदि कुछ काठिन्य आ जाये तो कोई बात नहीं। यहाँ तक देखा जाता है कि कुछेक वयस्कों के लिए लिखने वाले लेखक तो जान-बूझकर उसे कठिन बनाते हैं। सरल-सपाट साहित्य लिखकर कुछ साहित्यकारों की तृप्ति ही नहीं होती। सीधा-सीधा, सरल और सरस साहित्य उनकी दृष्टि में साहित्य ही नहीं है। जब तक उसे समझने में अच्छी-खासी मानसिक कसरत न करनी पड़े, तब तक वे उसे अच्छे साहित्य की कोटि में नहीं रखते-जबकि सरलता, सरसता और मधुरता सभी प्रकार के साहित्य की एक विशेषता है। कुछ साहित्कारों ने इस तथ्य को समझा है और उन्होंने कठिन और दुरूह साहित्य लिखने वालों से बाजी मार ली है। वे अपने क्षेत्र में सरलता और मधुरता के कारण ही लोकप्रिय हुए हैं।

बाल साहित्य में तो इसकी विशेष रूप से आवश्यकता है। बच्चों के मानसिक स्तर और उनकी सीमाओं को देखते हुए सरल ओर सुमधुर बाल-साहित्य लिखने वाले बाल-साहित्कार अपने क्षेत्र में अधिक सफल सिद्ध होते हैं। बच्चों का संसार बड़ों के संसार से बिल्कुल भिन्न होता है। बच्चे प्रत्येक चीज को अपनी दृष्टि से देखते हैं। बड़ों के पास वह दृष्टि है ही नहीं। बड़ा जब बच्चा था तब उसके पास वह दृष्टि थी, लेकिन बड़ा होने पर वह विस्मृत हो गई। इस तथ्य को जो समझते हैं, वे जानते हैं कि बाल-साहित्य लिखना कितना कठिन कार्य है। जो जितना अधिक बच्चों वाली उस दृष्टि को ले आने में सक्षम

है, वह उतना ही सफल बाल-साहित्यकार है।

समय, वातावरण और परिस्थितियों को समझना बाल-साहित्य लेखन के लिए आवश्यक है। बालक जिस युग में जी रहा है, जिन परिस्थितियों का वह मुकावला कर रहा है, वहां से उसे खींचकर अन्य परिस्थितियों में ले जाना बाल-साहित्यकार की बहुत बड़ी भूल है। इस प्रकार का बाल-साहित्य पढ़कर बालक भ्रमित न होगा तो और क्या होगा। आज के यांत्रिक एवं वैज्ञानिक युग में यदि हम अपने बाल-साहित्य में घोर अवैज्ञानिक तथ्य प्रस्तुत करें और अठारहवीं शताब्दी की परिस्थितियों में चले जाएँ तो बालक उसे पचा नहीं पायेगा।

डॉ. रोहिताश्व अस्थाना का बाल-साहित्य इस दृष्टि से सफल बाल-साहित्य कहा जायेगा। उन्होंने अपनी बाल-कविता एवं बाल-गीतों, कहानियों तथा उपन्यासों में कहीं भी अवैज्ञानिकता, रूढ़िवाद एवं अंधविश्वास नहीं आने दिया है। युगबोध एवं सामयिकता उनके साहित्य में सर्वत्र देखी जा सकती है। इस दृष्टि से उनके बाल-गीतों एवं बाल-कविताओं के कुछ उदाहरण-

1. ''समय नहीं बरबाद करें हम/घड़ी-घड़ी है घड़ी बताती।

2. 'पापा जी ने फोन किया है।/शाम को जल्दी आयेंगे।

गरम पकौड़ी चाय और/ताजा हलवा हम खायेंगे।

डॉ. अस्थाना के बाल-साहित्य में कथ्य, कहानी, उपन्यास आदि सभी विधाओं में विषय-वस्तु भाषा-शैली और शिल्प बच्चों के मन के अनुकूल एवं उन्हीं के वातावरण में ढला हुआ है। उनकी कहानियों में आकर्षक शिल्प-सौष्ठव निहित है। बच्चों को पशु-पक्षियों की कहानियाँ बहुत अच्छी लगती हैं। कारण यह है कि ऐसी कहानियों में पशु-पक्षी बच्चों जैसा व्यवहार करते दिखाए जाते हैं। इस प्रकार कहानियों या उपन्यासों के ये पशु-पक्षी पात्र बच्चों के जीवन से सीधे जुड़ जाते हैं। एक उदाहरण-

''तभी सामने से खोजी खरगोश आ निकला। उससे न रहा गया। उसने कहा- 'मेंढक मामा, आप यह क्या कर रहे हैं? महात्मा बुद्ध ने कहा था कि सब जीवों पर दया करनी चाहिए और आप चीटों को गटक रहे हैं।''

(2) व्यंग्यात्मक शैली- व्यंग्य सामाजिक-कुरीतियों के निवारणार्थ काफी उपयोगी सिद्ध हुए हैं। लेखक कुरीतियों पर पैने वाणों की वर्षा करता हैं व्यंग्य के माध्यम से निबंधकार अनेक कटूक्तियों का सहारा लेकर बहुत बड़ी बात कह जाता हैं। मिश्र जी के व्यंग्यपरक निबन्धों की शैली के आधार धार्मिक और सामाजिक कुरीतियाँ हैं। व्यंग्यपरक-शैली के दर्शन उनके निम्न-निबन्धों में बखूबी होते हैं- 'किस पर्व में किसकी बन आती है', 'समझदार की मौत', 'घूरे के लत बिनै कनात का डोल बाँधे', 'खुशामद', 'स्वतंत्रता और उपाधि' आदि।

कभी-कभी बालगीतों में हल्की व्यंग्यात्मक धार भी ले आते हैं शेरजंग गर्ग। ऐसे गीतों में उनका स्वभाव खूब खुला है। अगर कोई 'अँगूठा टेक कबूतर' इम्तिहान में बैठे तो जो दिलचस्प स्थितियाँ पैदा होंगी, वे इस कविता में गुँथ गई हैं-

इम्तिहान में एक कबूतर,/बना अँगूठा टेक कबूतर।

नंबर पाए बहुत-बहुत कम,/फेल हो गया मगर न था गम,

'पढ़े-लिखों' पर व्यंग्य करता हुआ यह कबूतर जिस जीवन-मर्म को समझा है, वह तो यह है कि 'ज्ञान बढ़ाना बड़ी बात है/इज्जत पाना बड़ी बात है' और कविता का अंत बड़े ही मजेदार ढंग से हुआ है- ''तब से मेरा यार कबूतर/रोज पालथी मार कबूतर/पढ़ता है अखबार कबूतर।'' शेरजंग गर्ग का यह अंदाज ईंट जैसी मामूली चीज को लेकर भी एक मुकम्मल बाल कविता की इमारत खड़ी कर सकता है-

ईंट नहीं लड़ने की चीज,/यह है कुछ गढ़ने की चीज।

पहले भू पर रक्खो ईंट,/ईंट के ऊपर रक्खो ईंट।

हालाँकि डॉ. गर्ग की सभी बाल कविताओं में इतनी ताजगी और जीवंतता दिखाई नहीं देती। और उनकी कुछ बाल कविताएँ तो 'गुणवत्ता' की चिंता करते-करते उपदेश के भार से दब गई हैं-

गुणवत्ता का गुण अपनाना/बड़ी बात है, बड़ा काम है,

जिसने गुणवत्ता अपनाई/उसका ही सर्वत्र नाम है।

एक और कविता में अमर आदमी की परिभाषा है-बड़े ही सपाट अंदाज में-''जो व्यक्ति निराशा के क्षण में/ले आता आशा जीवन में/करता विश्वास समर्पण में/वह व्यक्ति अमर हो जाता है।'' लेकिन खुशी की बात यह है कि इन्हीं सपाट अभिव्यक्तियों के बीच देश के 'मर्म' की थाह लेने और उससे करीबी तौर से पहचाने जाने वाली यह जानदार कविता भी मिलती है-

''ग्राम, नगर या कुछ लोगों का नाम नहीं होता है देश,

संसद, सड़कों, आयोगों का नाम नहीं होता है देश।

चुस्त-दुरुस्त गीत में शेरजंग गर्ग अपनी यह 'मौलिक उद्भावना' पेश करते हैं कि 'उल्लू-चुल्लू भर महान है!' यह पूरा गीत प्रस्तुत करना जरूरी लग रहा है-

जो थोड़ा सा अक्लमंद है,/वह उल्लू सबको पसंद है,

देखे सब कुछ किंतु न बोले/सुने सभी, पर भेद न खोले।

बाल कविता में भी कैसा सधा हुआ, आक्रामक व्यंग्य आ सकता है, यह कविता इसकी एक मिसाल है लेकिन डॉ. शेरजंग गर्ग हमेशा इसी मूड में नहीं रहते। कभी-कभी वे हल्की-फुल्की हास्य-व्यंग्य की लकीरों से भी मजा उत्पन्न कर देते हैं। शायद इसीलिए चश्मा लगाकर गुड्डे को पढ़ाती उनकी यह 'टीचर गुड़िया' भी कोई कम आकर्षक नहीं है-

चश्मा लगा के गुड़िया,/लगती जवान बुढ़िया!

कुछ बड़बड़ा रही है,/किसको पढ़ा रही है?

सचमुच छोटे और चुस्त-दुरुस्त शिशुगीत लिखने में डॉ. शेरजंग गर्ग का कोई जवाब नहीं है। इसकी तुलना में दामोदर अग्रवाल के गीतों में 'धूप खिले दिन' का-सा बड़ा ही मोहक विस्तार है। उनके गीतों में मानो कोई जादू की-सी लय है और शब्द उनकी अँगुलियों पर नाचते-फिरते हैं। उनकी 'बाँकी-बाँकी धूप' में जिंदगी का अनकहा उल्लास जैसे फूट पड़ा है-

''खिड़की ज्यों ही खुली कि आकर/अंदर झाँकी धूप,

आकर बैठ गई सोफे पर/बाँक-बाँकी धूप।

दुर्भाग्य से दामोदर अग्रवाल की इधर ज्यादा कविताएँ पढ़ने को नहीं मिल रही हैं और उनका कोई

ढंग का संग्रह भी नहीं छपा। उन जैसे बड़े कवि का यूँ मौन हो जाना किसी बड़ी त्रासदी से कम नहीं लगता।

''हिरन कहे' कविता में यश मालवीय हिरन की बगल में हाथी और गैंडे को खड़ा करके बातों-बातों में हिरन की फुर्ती का एक 'फुर्तीला' चित्र आँकते हैं-

हिरन कहे हाथी से भैया/सुबह लगाओ दौड़,
दुबले होकर पहुँचो छिन में/दिल्ली से चित्तौड़!

यश मालवीय के कहने में एक बाँकपन है और ''बुद्धि नहीं मोटी, फिर भी यह मोटापन कैसा!'' जैसे कटाक्षों से वे हाथी को जैसे शरमा देते हैं।''

योगेंद्रदत्त शर्मा का चार पंक्तियों का एक छोटा-सा शिशुगीत उस दुकानदार की पोल खोलता है जो यों तो ग्रहाकों से मीठा बोलता है, पर अवसर पड़े तो बेईमानी करने से नहीं चूकता:

मैंने अपनी जेब टटोली
तूने अपनी गाँठी खोली,
बातों में मिसरी सी घोली
पर तूने चीनी कम तोली।

इसी तरह योगेंद्रदत्त शर्मा के एक और शिशुगीत में गुड्डे और गुड़िया की अनबन का प्यारा सा चित्र है। इस अनबन की वजह यह है कि ''गुड्डा खाता बिस्कुट-टॉफी, गुड़िया को भाती है कॉफी।''

(3) उपदेशात्मक शैली-इस प्रकार की रचनायें वह होती है जो जीवन के सत्यों के प्रति उपदेश देती हैं। 'यह करो' 'वह न करो' ही इनकी मूलभावना होती है। कई बार कई कहानियाँ उद्देश्य की पूर्ति के लिए निर्मित होती हैं और कई बार इनके कथानक द्वारा ध्वनिक निर्णय, कहानी के अन्त में सूत्र बनकर प्रकट हो जाते हैं। 'जातक कथाएँ' 'पंचतंत्र' तथा 'हितोपदेश' ऐसी कहानियों के मूल स्त्रोत हैं। उदाहरण के लिए 'पंचतंत्र' की यह उपदेश कथा-

''एक गाँव के पास, जंगल की सीमा पर, मन्दिर बन रहा था। वहाँ के कारीगर दोपहर के समय भोजन के लिए गाँव में आ जाते थे।

एक दिन जब वे गाँव में आए हुए थे तो बन्दरों का एक दल इधर-उधर घूमता हुआ वहीं आ गया, जहाँ कारीगरों का काम चल रहा था। कारीगर उस समय वहाँ नहीं थे। बन्दरों ने इधर-उधर उछलना और खेलना शुरू कर दिया।

वहीं एक कारीगर शहतीर को चीरने के बाद उसमें कील फँसाकर गया था। एक बन्दर को यह कौतूहल हुआ कि यह कील यहाँ क्यों फँसी है, तब आधे चिरे हुए शहतीर पर बैठकर वह अपने दोनों हाथों से कील को बाहर निकालने लगा। कील बहुत मज़बूती से वहाँ गड़ी थी-इसलिए बाहर नहीं निकली। लेकिन बन्दर भी हठी था। वह पूरे बल से कील निकालने में जूझ गया। अन्त में भारी झटके के साथ वह कील बाहर निकल आई किन्तु उसके निकलते ही बन्दर का निचला भाग शहतीर के चिरे हुए दो भागों के बीच में आकर पिचक गया। अभागा बन्दर वहीं तड़प-तड़प कर मर गया।''

हिन्दी बाल कहानियों के आरंभ में ऐसी ही पुस्तकें अधिक लिखी गईं, लेकिन ये एकल अनुवाद

थी। पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कुछ पौराणिक आख्यान महाभारत, रामायण आदि ग्रन्थों से लेकर मौलिक ढंग से लिखा था। अन्य जो कहानियाँ उपदेश देने की मंशा से लिखी गईं, उनका भी मूल आधार ये ही ग्रन्थ थे। प्रमुख उपदेशात्मक कहानियों में-राजबहादुर सिंह कृत भगवान की कथा कहानियाँ, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नीति और कथायें-'नीति के बोल', 'आदर्श देवियाँ', नानाभाई भट्ट की महाभारत पात्र माला के संग्रह में प्रकाशित 'सूतपुत्र कर्ण', 'पांचाली द्रोपदी', 'दुर्योधन', 'महावीर भीमसेन' आदि शिवनाथ सिंह की रोचक कहानियाँ आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

बाल-साहित्य में बाल-जीवनी साहित्य का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। बच्चे श्रेष्ठ जीवनियाँ पढ़कर स्वयं को उनके स्वरूप ढालने का प्रयास करते हैं। महापुरुषों की जीवनियाँ निश्चित रूप से उनके कोमल मन को प्रभावित करती है। शिवाजी को वीर, साहसी और सच्चरित बनाने में उनकी माता जीजाबाई द्वारा सुनाई गई महापुरुषों एवं बहादुरों की कहानियों का योग इतिहास प्रसिद्ध है। गाँधी जी के जीवन पर 'सत्य हरिशचन्द्र' नाटक का प्रभाव सर्वज्ञात है।

''अतीत में जो भी महान पुरुष हुए हैं उनके जीवन पर किसी न किसी महापुरुष का प्रभाव अवश्य पड़ा है। जिन महापुरुषों ने त्याग एवं बलिदान किया वे निश्चित रूप से सबको प्रेरणा देते हैं, बालक उनसे और भी अधिक प्रभावित होते हैं। अत: बाल साहित्यकारों को श्रेष्ठ जीवनी साहित्य लिखकर उसमें बालकों की रुचि बढ़ानी चाहिए। जीवनी साहित्य से बालकों की जानकारी का क्षेत्र बढ़ता है तथा उनके चरित्र का विकास एवं निर्माण होता है।

बाल-जीवनी को पढ़ते समय बच्चों के मन में यह रहता है कि वास्तव में ऐसा हुआ है। अत: उनकी जिज्ञासा इसमें अधिक तीव्र हो उठती है तथा उसके मन में आस्था एवं विश्वास जाग्रत होता है। बाल-साहित्यकारों को इस विधा के लेखन में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि बाल-जीवनी उपदेशात्मक न हो- महापुरुषों के आदर्शों को थोपा न गया हो।''

''रमेश तैलंग ने शिशुगीत भी लिखे हैं। इधर वह बाल कविताओं को लेकर तमाम तरह के प्रयोग कर रहे हैं। उनकी प्रतिनिधि बाल कविताओं के संग्रह, 'इक्यावन बालगीत' में 'पापा की तनखा में', 'घर है छोटा देश हमारा', 'चक्की चले', ' दिल्ली की बस', 'एक चपाती', 'निक्का पैसा' जैसी कई खूबसूरत और जिंदादिली से छलछलाती बाल कविताएँ हैं जो हिंदी बाल कविता के इतिहास में बहुत कुछ नया, अपूर्व और मूल्यवान जोड़ती हैं। इनमें 'निक्का पैसा' तो अद्भुत है- नाटकीयता, गति और रोमांच से लबालब-

निक्का पैसा कहाँ चला?/कहाँ चला जी, कहाँ चला?

पहले रहा हथेली पर/फिर जा गुड़ की भेली पर-

रमेश तैलंग कहीं-कहीं उपदेशात्मकता के प्रभाव से घिरे भी नजर आते हैं। पर उनके यहाँ अच्छी कविताएँ इतनी हैं कि उनकी कमजोर कविताओं को बहुत आराम से छोड़ा जा सकता है।''

(4) हास्यप्रधान शैली-इस शैली में लिखे गए निबंधों का प्रमुख उद्देश्य देश तथा समाज का सुधार करना है। हास्य-शैली, मनोरंजन तथा व्यंग्य-परक शैली देश और समाज के सुधार का विधान प्रस्तुत करती हैं। असंगत अस्वाभाविक और विद्रूप वस्तुओं का वर्णन कर पाठक के मन को स्वस्थता

प्रदान करना तथा नवीन स्फूर्ति का संचार करना ही हास्यपरक शैली का मुख्य लक्ष्य रहता है।

बरसात के दो गीतों में शब्द चित्र का दृश्य देखते ही बनता है। खेल-खेल में मनोरंजन और ज्ञानार्जन दोनों ही होता है। वर्षा ऋतु में जब बच्चे बरसते पानी में भीगने निकलते हैं और कीचड़ में खेलने लगते हैं इसका एक शब्द चित्र-

'बरसा पानी गच्चे गच्चे,/मस्ती में कूदे सब बच्चे।

काम धाम सब छोड़ के भागे,/नाच उठे घर अच्छे अच्छे।।'

छोटे-छोटे बच्चों के लिए हास्य रस की कविता भरपूर मनोरंजन कराती है। डॉ. परशुराम शुक्ल ने शिशु और बालगीत संग्रहों में हास्य रस के अनेक गीत दिए हैं। उदाहरण-

'चूहे ने गुस्से में आकर,/मारे थप्पड़ चार।

जोश देखकर चूहे जी का,/मौसी हुई बीमार।।'

बच्चों को नैतिक मूल्यों की शिक्षा अप्रत्यक्ष रूप से मनोरंजन पूर्ण साहित्य के माध्यम से दी जानी चाहिए। उदाहरण के लिए खेलों को लिया जा सकता है। बच्चे खेलों के द्वारा अनुशासन, एकता, सहानुभूति, भाईचारा आदि गुण सीखते हैं। खेलों से मनोरंजन भी होता है और मानवीय गुणों का विकास भी। इसी प्रकार मनोरंजन पूर्ण बाल साहित्यक के द्वारा बच्चों में शाश्वत नैतिक मूल्यों का विकास संभव हो सकता है। डॉ. शुक्ल की एक बाल कविता में इस भावना को देखा जा सकता है-

'चींटी रानी बड़ी सयानी,/करती दिनभर काम।

बोली मुझसे रानी बिटिया,/है आराम हराम।।'

बाल मनोरंजन बाल साहित्य का प्रमुख तत्व और उसकी आवश्यक विशेषता है। डॉ. परशुराम शुक्ल की बाल कविताओं, बाल कहानियों, धारावाहिकों, बाल उपन्यासों से मनोरंजन तत्व का विधान किया गया है। श्री राजेन्द्रकुमार शर्मा ने इस बारे में लिखा है-"मनोरंजन में आकर्षण होता है। यह आकर्षण बच्चों को पढ़ने-लिखने की प्रेरणा देता है।

'सर्कस का जोकर' शिशुगीत बहुत मनोरंजक है। सर्कस के खेल में जोकर सबको हँसाता है। डॉ. शुक्ल ने 'सर्कस का जोकर' शिशुगीत छोटे बच्चों के मनोरंजन के लिए ही लिखा है-

'मैं सर्कस का जोकर हूँ।/हँसता और हँसाता हूँ।

छोटे-छोटे सब बच्चों को,/नए खेल दिखलाता हूँ।।'

"बिल्ली मौसी" नामक कविता में भी कवि ने उन लोगों पर व्यंग्य किया है जो लोग पढ़े-लिखे नहीं होते हैं लेकिन ऊपरी टीम-टाम से लोगों को दिखाने की कोशिश में लगे रहते हैं। कवि ने हास्य रस के माध्यम से बिल्ली को केंद्रित करके सुन्दर व्यंग्य किया है-

'बिल्ली मौसी पढ़ी नहीं थी,/रहती अपटूडेट।

पढ़े-लिखे के कान काटती,/खाती मक्खन केक।'

राष्ट्रबन्धु जी की कविताओं में आदि से अन्त तक रोचकता का गुण विद्यमान है। 'तीस तितलियाँ', 'नाचो गाओ', 'जादूगर से लगते बादल' रचनाओं में रोचकता पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। बिल्ली का बनारसी साड़ी पहनना, और रिक्शे पर चढ़कर बाजार जाना बच्चों के मन को आनन्दित करता है-

'बिल्ली को बनारसी साड़ी में/सजने का शौक।
इसीलिए आकर वह पहुँची/चढ़ रिक्शे पर चौक।।'

मनोरंजन से भरपूर 'जादूगर से लगते बादल' नामक कविता बच्चों में समाहित होने वाली रचना है। ऐसी कवितायें बच्चे बार-बार पढ़कर सहस ही कंठस्थ कर लेते हैं। बादलों के टुकड़े कई रंगों में जब आकाश में उमड़-उमड़ कर छाते हैं तो बच्चों के लिए वह जादूगर के समान प्रतीत होते हैं।

'काला भूरा नीला पीला/गीला और रसीला गाउन
पहिने हुये निकलते बादल/वेश बदल फिरते हैं बादल...
दल के दल घिरते हैं बादल/जब दहाड़तें हैं पहाड़ से
जादूगर से लगते बादल।'

आज का युग ही संक्रमण युग अथवा अग्रगामी युग है। ऐसे में बच्चों को पीछे नहीं धकेला जा सकता। बाल कवियों में यह चेतना है तथा वे बच्चों से जुड़े नवीन प्रसंगों को उन्हीं की भाषा और शैली में कहने की दिमागी कसरत में जुटे हैं। उनकी संवेदना, मानसिकता और विचार के साथ तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास हो रहा है। नये छंद-विधान, कथ्य, शैली शब्द-समायोजन तथा अधिकाधिक बाल-मनोविज्ञान की पकड़ करके बच्चों की विविध समस्याओं को रेखांकित करते हुए उनका समाधान अपनी कविताओं में देने के कारण वर्तमान में बाल-कविताओं का स्वरूप और शिल्प नवीनता लेकर निखरा है। उदाहरणार्थ श्यामसुन्दर श्रीवास्तव की बाल-कविता 'सूरज भैया' की निम्नलिखित पंक्तियों में कथ्य और शिल्प देखने योग्य है:-

'मेरा स्वेटर फटा-पुराना/कैसे करूँ गुजारा।
हुए तीन दिन सूरज भैया/सूरत नहीं दिखाई।...'

नये-नये विषयों बिम्बों और प्रतीकों वाली कविताओं से बालक जुड़ते हैं और अपने मन की बात उनमें पाते हैं तो वे उन्हें झूम-झूमकर गाते हैं। कवि डॉ. हरीश निगम की एक कविता 'बहुत हुआ अब' की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

'बिजली रानी बहुत हुआ अब/छोड़ो आना-जाना
सोचो, सर पर इम्तिहान है।/गर्मी करती परेशान है।...'

इस प्रकार बाल कविताओं का स्वरूप और शिल्प अपने परम्परागत रूप को त्याग रहा है। नये परिवेश में बाल-कविताओं के स्वरूप और शिल्प में आशाजनक एवं संभावनापूर्ण प्रगति हुई है। इस क्रम में अनेक प्रकार के बाल-गीत तथा बाल-कविताओं का परिवर्तित शिल्प के साथ एक नया स्वरूप निर्धारित हुआ है। उदाहरणार्थ-शिशु-गीत एवं लोरियाँ, जागरण-गीत, प्रयाण-गीत, पर्व एवं त्यौहार गीत-कथा-गीत, पशु-पक्षी गीत, वैज्ञानिक उपकरणों एवं तत्सम्बन्धी विषयों के गीत आदि।

स्फुट बालोपयोगी लेखन में चुटकुले, पहेलियाँ, बाल निबन्ध, यात्रा वर्णन, वैज्ञानिक बाल-साहित्य, बाल पॉकेट बुक्स एवं कॉमिक्स को लिया जा सकता है।

चुटकुले और लतीफे बड़ों को भी आकर्षित करते हैं, किन्तु बच्चों को इनमें अत्यधिक चाव होता है। बड़े जब बच्चों को चुटकुले सुनाते हैं तो बच्चे तन्मयता से उन्हें सुनते हैं और इनके हास्यमय होने के

कारण वे इन्हें सुनकर खिलखिलाकर हँसते हैं। डॉ. विजयलक्ष्मी सिन्हा ने लिखा है- 'बच्चों को मनोरंजन प्रदान करने वाली विधाओं में चुटकुलों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। चुटकुलों को बच्चे बहुत पसंद करते हैं, क्योंकि वह उन्हें हँसाते हैं, गुदगुदाते हैं तथा उनका मनोरंजन भी करते हैं। साथ ही वह बच्चों में व्युत्पन्नमति के गुण को भी विकसित करते हैं।'

बाल-पत्रिकाओं, दैनिक-पत्रों तथा बड़ों की मासिक एवं पाक्षिक-पत्रिकाओं के बाल-सतम्भों में प्रायः चुटकुले देखे जा सकते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक लिखा गया बाल-साहित्य स्वतंत्र बाल-साहित्य लेखकों की चेतना जाग्रत न कर सका। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में लिखे गये बाल-साहित्य ने इसके अस्तित्व की प्रेरणा दी। इस कड़ी का प्रथम नाम पं. श्रीधर पाठक का है। इन्हें हिन्दी का प्रथम बाल कवि माना जाता है। निरंकार देव सेवक ने लिखा है- ''प्राप्त जानकारी के अनुसार उन्होंने (पं. श्रीधर पाठक) ही सबसे पहले स्वतंत्र रूप से मनोरंजक बालगीत लिखे। इसलिए उन्हें ही हिन्दी का पहला बाल गीतकार कवि माना जा सकता है।''

इसी कालावधि में बालमुकुन्द गुप्त भी बच्चों के लिए लिख रहे थे। इस संदर्भ में भी निरंकार देव सेवक ने लिखा है-'पं. श्रीधर पाठक और बालमुकुन्द गुप्त ने सबसे पहले लगभग एक ही समय में बच्चों के लिए भी कविताएँ लिखना प्रारम्भ किया था।'

कवि बालमुकुन्द गुप्त ने सन् 1904 में एक सुन्दर कविता लिखी जिसका शीर्षक था 'रेलगाड़ी'। इस कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

''हिसहिस हिसहिस हिसहिस करती, रेल धड़-धड़ जाती है।
जिन जंजीरों से जकड़ी है, उन्हें खूब खड़काती है।...''

शिशुओं को सरल-सरल एवं बोधगम्य भाषा में छोटे-छोटे गीत बहुत आनंद प्रदान करते हैं। विष्णुकान्त पाण्डेय का एक शिशु गीत यहाँ प्रस्तुत है -

''फोन उठाकर कुत्ता बोला, सुनिए थानेदार।
घर में चोर घुसे हैं, बाहर सोया पहरेदार।
घर वाले सब डर के मारे पड़े हुए चुपचाप।
मुझको भी अब डर लगता है, जल्दी आयें आप।''

हास्य में तो भरपूर मनोरंजन रहता ही है। इस प्रकार की बाल-हास्यकथाएँ भी इस काल खण्ड में प्रकाशित हुईं।'चार दिन की चाँदनी' (1960) आनंद कुमार तथा इन्हीं की हास्य-कथा 'गुरु जी बुरे फँसे' (1960) हास्यपूर्ण अच्छी प्रस्तुतियाँ हैं। इसी युग में वीरतापूर्ण कथाओं के भी उदाहरण हैं। शिवमूर्ति सिंह वत्स की कहानी 'पिट-पिट' (1959) वीरतापूर्ण तथा समझ-बूझ से कदम बढ़ाने की सीख देने वाली कहानी है। इसके अलावा इस दशक में वैज्ञानिक कथा-साहित्य ने भी अपनी जड़ें गहरी कीं। पशु-पक्षी कथाएँ तथा महापुरुषों की जीवनियाँ भी पर्याप्त मात्रा में इस दशक की देन हैं।

इस समय बाल-साहित्य में जो विधाएँ पूर्व में ही जन्म ले चुकी थीं उनके विकास का मार्ग खुला तथा कुछ नवीन विधाओं का श्रीगणेश भी इस काल खण्ड में हुआ। शिकार-कथा तथा पद्य-कथाओं का

प्रारम्भ तथा कहावतों एवं मुहावरों पर आधारित कहानियाँ इस समयावधि में लिखी गईं। आत्मकथा के रूप में कहानी लिखने का प्रारम्भ भी इसी युग में हुआ। निर्जीव वस्तुओं के द्वारा अपने मुँह से अपनी कथा सुनाने का प्रयोग बच्चों को मनोरंजक लगा। इस समय की राधेश्याम झींगन की कहानी 'भालू वाला' (1960) बच्चों को पर्याप्त रुचिकर लगी। इसमें भालू अपने जन्म से लेकर चिड़ियाघर पहुँचने तक की कहानी अपने मुँह से सुनाता है।

हास्य कविताएँ बच्चों के मनोरंजन के लिए आवश्यक हैं। डॉ. अस्थाना ने भी कतिपय हास्य कविताएँ लिखी हैं। उनकी हास्य कविताओं के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

1. लालाजी ने खायी चाट।/घर आकर फिर खाई डाँट।
खड़े-खड़े ठेले के पास,/खाते रहे बिना मिल-बाँट।
आया नहीं पेट का ध्यान,/घर आते ही पकड़ी खाट।

2. चली लोमड़ी लहँगा पहने,/आ पहुँची बाजार।
अंगूरों का गुच्छा लेकर,/झटपट गई डकार।

3. मैं हूँ मिस्टर पेटू-राम।/खाता हूँ नित कालाजाम
मत पूछो तुम मेरे ठाठ,/मुझको तो है काम हराम।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बालक की भाषा स्थूल ग्राहिणी होती है। अत: उसके लिए लिखी रचनाओं में शब्दों का प्रयोग करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उनके माध्यम से और बालक के वातावरण में समाए ज्ञान का ही विस्तार हो। सभी मनोवैज्ञानिक लोग भी इस तथ्य से सहमत हैं कि बालक के मानसिक विकास में 'रुचि' और 'स्मृति' का प्रथम स्थान है। तर्क तथा 'अज्ञान' के प्रति कौतूहल एवं औत्सुक्य भी बालक में आरंभ से रहते हैं, किन्तु वे प्रधान बनकर अपना विकास नहीं करते, रुचि और स्मृति से ही जुड़े हुए वे धीरे-धीरे किशोरावस्था तक पहुँचते हैं और वहाँ प्रधान हो जाते हैं। संस्कृत साहित्य तथा लोक-कथाओं में ऐसी भाषा मिलती है, जो अज्ञात एवं अनदेखे संदर्भों का चित्रण करने में असमर्थ है।

बाल काव्य की अपनी साहित्यिकता भी है और शास्त्रीयता भी। रस, छंद, अलंकार, प्रतीक, बिंब आदि की दृष्टि से बालकाव्य संपन्न विधा है। रस और छंद तो बाल काव्य को विशेष रूप से ग्राह्य बनाते हैं। नीरस और छंददोषपरक रचनाएँ बालक कदापि स्वीकार नहीं करते। बाल काव्य के मनोवैज्ञानिक पक्ष को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता। मनोवैज्ञानिक विभेदों की उपेक्षा कर सार्थक बाल काव्य की रचना संभव ही नहीं। मनोविज्ञान के आधार पर ही बालक की अवस्था के अनुकूल रुचिपूर्ण बालकाव्य की रचना का मार्ग प्रशस्त होता है।

सम्पर्क : भोपाल (म.प्र.)

राजकुमार जैन 'राजन'

वर्तमान परिवेश में बाल साहित्य की महत्ता

बाल मनोविज्ञान की दृष्टि से बालक का वर्गीकरण 6 से 7 वर्ष तक शिशु, 7 से 13 वर्ष तक बालक एवं 14 से 18 वर्ष तक किशोर मानकर किया जाता है। इसी आधार पर शिशु-साहित्य, बाल-साहित्य और किशोर-साहित्य के संप्रत्यय विकसित हुए। अतः सबसे पहले तो रचनाकार को यह तय करना होता है कि वह किस आयु वर्ग के बच्चों के लिए साहित्य रचना चाहता है।

बच्चों के मानसिक विकास के लिए साहित्य की अनिवार्यता स्वयंसिद्ध है। बाल साहित्य के मनस्वी रचनाकार निरंकार देव सेवक के शब्दों में कहें तो जिस साहित्य से बच्चों का मनोरंजन हो सके, जिसमें वे रस लें और जिसके द्वारा वह अपनी भावनाओं और कल्पनाओं का विकास कर सके, वह बाल साहित्य है।

वर्तमान परिवेश में बाल साहित्य से मेरा आशय बच्चों के लिए लिखे जाने वाले साहित्य से है, जो बालक को संस्कार, जीवन जीने की राह, आत्मविश्वास, स्वावलम्बन, राष्ट्रप्रेम और परिवेश को समझकर सकारात्मक करने की प्रेरणा दे। पहले बाल साहित्य मौखिक रूप से प्रचलन में आया। बाद में 'पंचतंत्र' एवं 'हितोपदेश' की कहानियों के माध्यम से लिखित रूप से बाल साहित्य स्थापित हुआ। शिशुकाल में माँ की लोरियों एवं दादी-नानी की कहानियों के रूप में बाल-रचनाओं का ही आस्वाद होता है। धीरे-धीरे कहानी, कविता, लोक कथा, लोकगीत, लोरी, जीवनी, नाटक, संस्मरण, यात्रा साहित्य और कई विधाओं का साहित्य पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों के रूप में बालकों के सामने आता रहा। कुल मिलाकर बालक और बाल साहित्य का रिश्ता पुराना होते हुए भी समय-परिवेश के अनुसार नित नए रंगों, विधाओं में सजता रहा और बालकों में प्रेरणा का संचार करता रहा जो आज भी जारी है। आने वाले समय में बाल साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है। शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक विकास के लिए बाल-साहित्य संजीवनी औषधि के समान है।

आज बच्चों की रुचियाँ तेजी से बदल रही हैं। सूचना प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से बच्चों में एक ओर जहाँ रिश्तों-नातों के प्रति सोच में यांत्रिकता और संवेदनशीलता का विकास हुआ है, वहीं दूसरी ओर उनकी स्वार्थ साधकता और हिंसावृत्ति में भी इजाफा हो रहा है। वह एकाकी,

चिड़चिड़ा और आक्रामक होता जा रहा है। बाल जीवन पर आज सबसे ज्यादा प्रभाव टी.वी., कम्प्यूटर, मोबाइल, इंटरनेट ने डाला है। अपनी सुलभता और जबरदस्त आकर्षण के कारण वह बच्चों को दिशाहीन भी बना रहा है। बच्चे निरंकुश बन रहे हैं। वे असमय जवान हो रहे हैं। वैज्ञानिक अध्ययनों से यह तथ्य प्रमाणित हो चुका है कि आभासी दुनिया बच्चों की संवेदनशीलता और कोमल मस्तिष्क को अन्य माध्यमों से कहीं अधिक प्रभावित कर रहा है, इस कारण वे आजकल उसी दुनिया में खोए रहते हुए अपने परिवेश से प्रायः कट जाते हैं। साईबर दुनिया बच्चों से उनका बचपन छीन रही है। यह हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती है।

बालक या भावी पीढ़ी के निर्माण में बाल साहित्य की भूमिका काफी हद तक महत्त्वपूर्ण रही है। साईबर दुनिया ने बच्चों को पुस्तकों से दूर कर दिया है। स्कूली किताबें भी नेट पर पढ़ी जाने लगी हैं। बच्चों को स्कूली किताबों से इतर पढ़ने की रुचि विकसित करने के लिए जरूरी है कि अभिभावक भी पढ़ने की आदत डालें। अगर हममें किताबें पढ़ने की आदत होगी तो बच्चों में भी यह धीरे-धीरे विकसित होती जाएगी और फिर वह किताबों की दुनिया में ही रमा दिखाई देगा, जो अभिभावकों के लिए खुशी की बात होगी, क्योंकि किताबें ही ज्ञान-वृद्धि का उत्तम स्रोत हैं। हम बच्चों के दिल में किताबों को दोस्त बनाने की प्रेरणा भरें।

वर्तमान समय में बाल साहित्य की जितनी पुस्तकें छपती हैं, उतनी तो बड़ों की भी नहीं छपती। पुस्तकें हमें जीना सिखाती है, अँधेरे में रोशनी की किरणें बिखेरती हैं। पुस्तकें ही है जो हमें सफलता के शिखर पर पहुँचाती है। पुस्तकों ने ही हमारी अँगुली पकड़कर हमें आदिम युग से आज के वैज्ञानिक युग तक पहुँचाया है... पृथ्वी पर विद्यमान संस्कृति और सभ्यता के विकास में पुस्तकों का सबसे बड़ा योगदान है। पुस्तकों का महत्व न तो कभी कम हुआ है, न कभी होगा।

शब्द, पन्ने, और जिल्द इनसे बनी किताब कागजों में सिमटा होता है बचपन इसे सहेज कर रखना होता है जब जी में आया, पन्ने पलटे और यादों के समंदर में लगा लिया गोता। हम सभी का बचपन किताबों की यादों में है आज हम स्वयं से ही एक सवाल पूछें कि हमने किसी बच्चे को कोई सुंदर कहानी, कविता की किताब या पत्रिका खरीद कर कब दी थी या हमने आखिरी बार कब अपने बच्चों को बाल साहित्य पढ़ते देखा था। हममें से ज्यादातर को दिमाग पर बहुत जोर लगाना पड़ेगा। हालात ही ऐसे हैं। बच्चों में साहित्य के प्रति उमंग और उत्साह जगाने के लिए हमें प्रयास करने होंगे।

शैक्षणिक पाठ्यक्रमों के अलावा किताबें पढ़ने-पढ़ाने की प्रवृत्ति इन दिनों घटती जा रही है। बच्चों को तरह-तरह की आकर्षक चमकीली वस्तुएँ उपहार में दी जाती हैं। वे बचपन से बाजार देख रहे हैं, सुन रहे हैं, गुन रहे हैं। दुनिया बाजार में तब्दील हो रही है। बच्चों को सबसे बड़ा उपभोक्ता बनाने की साजिश खामोशी से रची जा रही है। यह स्थिति खतरनाक है और इसका भविष्य कैसा होगा। हमारे बच्चों की संवेदनाओं का किस तरह मोल-भाव कर लिया जाएगा, यह सोचकर ही डर लगता है। बच्चों, अभिभावकों, पालकों, शिक्षकों को बाल साहित्य के संसार से परिचय करवा कर इस खतरे को कम किया जा सकता है। किताबें उन्हें जीवन-दृष्टि देंगी।

आज पूरे देश की आवश्यकता है कि साहित्य में रुचि पैदा कर बच्चों में पनप रही नकारात्मक गतिविधियों को रोका जाए जिससे समय रहते सही संस्कार उनमें पनप सकें। अगर हम चाहते हैं कि हमारा बच्चा जीवन में सफल हो तो उसकी शिशु अवस्था में ही उसे बाल साहित्य पढ़ने को दिया जाए। कहा जाता है कि अनौपचारिक शिक्षा ही बालक के संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास कर सकती है। एक संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास बचपन में पठन-पाठन की रुचि के विकास के साथ होता है। प्राथमिक कक्षाओं के छात्रों के लिए इंटरनेट, कम्प्यूटर की तुलना में पुस्तकें ही अधिक मददगार साबित होती हैं। यह तथ्य ब्रिटेन के प्रकाशक संघ द्वारा कराए गए एक अध्ययन से सामने आया है। शोधकर्ता डॉ. रोज वाटसन के अनुसार सूचना प्रौद्योगिकी हालाँकि बच्चों के सामान्य ज्ञान के स्तर को बढ़ाने में अवश्य मददगार होते हैं, लेकिन परंपरागत स्कूली पुस्तकें व बाल साहित्य कहीं अधिक कारगर साबित होते हैं।

उम्मीद जगी है कि बाल साहित्य की महत्ता समझने वालों की संख्या आज बढ़ रही है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा बाल साहित्य की सैकड़ों पुस्तकें सुंदर साज-सज्जा के साथ प्रकाशित करवाई गई हैं, जिसमें स्वयं प्रकाश की 'प्यारे भाई राम सहाय', मीनाक्षी स्वामी की 'बाँसुरी के सुर', 'मलयश्री हाशमी' की 'हाथ मिलाओ', अनवर की 'मैं हूँ रप्पायी', श्याम सिंह शशि की 'भारत के यायावर', रंजना परतेपुर की 'लालपरी', माधवी कुट्टि की 'बचपन की यादें', क्षमा शर्मा की चुनिंदा बाल कहानियाँ', संतोष साहनी की 'एक थी चिड़िया', रामेश्वर काम्बोज हिमांशु की 'हरियाली और पानी' एवं तेत्सुको कुरायानागी की 'तोतो चान' बाल साहित्य की अनमोल पुस्तकें हैं।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा ही प्रकाशित डॉ. श्री प्रसाद, प्रकाश मनु, विष्णु प्रभाकर, चित्रा मुद्‌गल, डॉ. हरिकृष्ण देवसरे आदि ख्यातनाम बाल साहित्यकारों की चुनिंदा बाल कहानी, संग्रह प्रकाशित कर बाल संसार को अनुपम भेंट दी है। पिछले दिनों देश के कई अन्य प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित प्रेरणादायी बालोपयोगी कृतियों में डॉ. मोहम्मद अरशद खान की 'एलियन प्लेनेट', डॉ. हरिकृष्ण देवसरे की 'जंगल डॉट कॉम', पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम की कृति 'तेजस्वी मन', हरिशंकर कश्यप की 'मेरे देश के महान बालक', रोहिताश्व अस्थाना की चुनी हुई बाल कहानियाँ, विकास दवे की 'पाती बिटिया के नाम', आबिद सुरती की '365 कहानियाँ', दिलीप सालवी की 'गणित व विज्ञान प्रश्नोत्तरी' के साथ ही राजस्थान के रचनाकारों में गोविंद शर्मा की 'मुझे भी सिखाना' एवं 'डोबू और राजकुमार', दीनदयाल शर्मा की 'मित्र की मदद व रसगुल्ला', प्रबोद कुमार गोविल की 'मंगल ग्रह के जुगनू', जयसिंह आशावत की 'गौरैया ने घर बनाया', राजकुमार जैन राजन की 'मन के जीते जीत' एवं 'पेड़ लगाओ', इंजीनियर आशा शर्मा की 'अंकल प्याज', सत्यनारायण सत्य की 'दिन आए छुट्टी वाले', विमला भंडारी की 'किस हाल में मिलोगे दोस्त', कीर्ति शर्मा की 'दोस्त का जादू' आदि प्रमुख कृतियाँ बच्चों के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हुई हैं।

समाज रूपी बगिया का सौंदर्य बच्चे ही हैं इसलिए बच्चों के लिए सदैव सजग रहने की

आवश्यकता है। बाल-साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए सेमिनार, गोष्ठियाँ, समीक्षा, पुस्तक मेले, पुस्तकालय का दौर भी चलता रहना चाहिए।

वर्तमान परिवेश में बाल साहित्य की महत्ता समझते हुए पिछले कुछ वर्षों से प्रौढ़ साहित्यिक पत्रिकाओं ने भी अपनी पत्रिकाओं में बाल साहित्य के 6 से 8 पृष्ठ नियमित देना प्रारंभ किया है। बाल पत्रिकाएँ तो प्रकाशित हो ही रही हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि अब बाल साहित्य की महत्ता समझी जाने लगी है। यही नहीं जम्मू कश्मीर अकादमी की पत्रिका 'शिराजा', राजस्थान साहित्य अकादमी की पत्रिका 'मधुमती', प्रकाशन विभाग की पत्रिका 'आजकल', राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की पत्रिका 'पुस्तक-संस्कृति' ने भी बाल साहित्य विशेषांक प्रकाशित किए हैं, जो बाल साहित्य के विकास की गवाही देते हैं। इसकी महत्ता प्रतिपादित करते हैं।

इनके अलावा 'साहित्य अमृत', 'जगमग दीप ज्योति', 'दिव्यता', 'नवनीत', 'सृजन कुंज', 'साहित्य गुंजन', 'साहित्य समीर दस्तक', 'राष्ट्र समर्पण', 'सुमन सागर', 'संगिनी', 'ज्ञान-विज्ञान बुलेटिन', 'सार समीक्षा', 'साहित्यांचल', 'संगम', 'समय सुरभि अनन्त' सहित कई पत्रिकाओं के बाल साहित्य विशेषांक प्रकाशित हुए हैं।

यह बाल साहित्य और बाल साहित्यकारों के लिए शुभ संकेत है। ये बाल विशेषांक निश्चित ही बाल साहित्य की महत्ता को दर्शाते हैं। ये विशेषांक बाल साहित्य के महत्त्वपूर्ण दस्तावेज के रूप में सुरक्षित रहेंगे। वर्तमान समय को बाल साहित्य का स्वर्णिम युग भी कहा जा सकता है जिसमें सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, डॉ. श्रीप्रसाद, शकुंतला सिरोठिया, डॉ. राष्ट्रबंधु, कन्हैयालाल नंदन, बालकृष्ण गर्ग, प्रयाग शुक्ल, शेरजंग गर्ग, बालस्वरूप राही, दिविक रमेश, लक्ष्मीनारायण वाजपेयी, विनोद चंद्र पाण्डेय, कृष्ण शलभ, चक्रधर नलिन, प्रकाश मनु, राधेश्याम प्रगल्भ, प्रभाकर माचवे, श्याम सिंह शशि, घमण्डीलाल अग्रवाल, शील कौशिक, सूर्यभानु गुप्त, विकास दवे, ओमप्रकाश क्षत्रिय प्रकाश, रावेंद्र कुमार रवि, उदय किरौला, मंजरी सक्सेना, नागेश पांडेय संजय, ज़ाकिर अली रजनीश, शादाब आलम, फहीम अहमद, डॉ. उमेश सिसवारी, गौरव वाजपेयी, ललित शौर्य, मेराज रजा आदि के साथ ही राजस्थान के सीताराम गुप्त, मनोहर वर्मा, सावित्री चौधरी, गोविंद शर्मा, ज़ेबा रसीद, डॉ. कृष्ण कुमार आशु, डॉ. भैरूलाल गर्ग, पूरन सरमा, राजकुमार जैन राजन, दीनदयाल शर्मा, सुधा जौहरी, चाँद मोहम्मद घोसी, रवि पुरोहित, विमला भंडारी, ज्योतिपुंज, मुरलीधर वैष्णव, सन्देश त्यागी, कीर्ति शर्मा आदि कई रचनाकारों ने बाल साहित्य जगत में अपनी सम्मानजनक उपस्थिति दर्ज करवाई है एवं बाल साहित्य की प्रतिष्ठा में अपना संपूर्ण योगदान दिया है, दे रहे हैं।

आज बाल साहित्य से बालकों को जोड़ने के लिए सबसे पहली आवश्यकता पठन-पाठन की परंपरा को एक आंदोलन के रूप में पुनर्जीवित करने की है। बालकों में पुस्तकों के प्रति रुचि नहीं है तो उनके प्रति वितृष्णा भी नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि बच्चों के आसपास इस तरह का वातावरण निर्मित किया जाए कि वे स्वत: पुस्तकों की ओर आकृष्ट हों, उन्हें पढ़ने के लिए प्रेरित हों। यदि बालकों के हाथों में 'अच्छे बाल साहित्य' की पुस्तकें होंगी तो एक पुस्तक संस्कृति

का विकास होगा। बच्चे भी पुस्तकों से अधिक समय तक दूर नहीं रह सकेंगे। हमें यह बात ध्यान में रखनी होगी कि यदि बाल साहित्य नहीं रहा तो उसके रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी आज तक हस्तांतरित हो रही संस्कृति भी नहीं रहेगी।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, प्रकाशन विभाग, भारत ज्ञान-विज्ञान समिति, संपर्क फाउंडेशन, एकलव्य प्रकाशन, राजकुमार जैन राजन फाउंडेशन, बाल-वाटिका, बाल-प्रहरी एवं सलिला तथा सृजन सेवा संस्थान जैसी संस्थाएँ व व्यक्ति अपने-अपने प्रयासों से बाल साहित्य बालकों तक पहुँचाने और उनमें पठन-पाठन की रुचि पैदा करने में समर्पित भाव से लगे हैं। इस दिशा में इनके द्वारा किये गए कार्य अभिनन्दनीय हैं।

हमें चाहिए कि बाल साहित्य बच्चों तक पहुँचाने की मुहिम को यथार्थ के धरातल पर साकार करें। आज साईबर युग के बढ़ते खतरों में हमें परंपरा और संस्कृति से जुड़ा नवीन परिवेश का बाल साहित्य बच्चों को उपलब्ध करवाना है। यह काम बाल साहित्यकार, शिक्षक और अभिभावक ही कर सकता है जो समाज को नई दिशा देता है।

सरकारी स्तर पर शहरों, कस्बों, गाँवों के विकास की जो योजनाएँ बनती हैं, स्मार्ट सिटी भी/उनमें सब कुछ होता है पर पुस्तकालय नहीं होता है। हमारे पास जगह-जगह महापुरुषों की मूर्तियाँ लगाने के लिए तो पैसे हैं, पुस्तकालय जैसे सार्थक काम के लिए उसका अभाव क्यों? पुस्तकालय संस्कृति पर हमारी व सरकार की उदासीनता पर चिंतन आवश्यक है।

बालकों के लिए प्रकाशित महत्त्वपूर्ण पुस्तकों को घर-घर में पहुँचाना, हम सबकी भी जिम्मेदारी है। हम भी चाहे पचपन के हो जाएँ हममें बचपन का रहना बहुत जरूरी है, जिस दिन हमारा बचपन खत्म हुआ, उस दिन हम बूढ़े हो जाएँगे।

सम्पर्क : *आकोला (चित्तौड़गढ़) (राजस्थान)*

मनोहर चमोली 'मनु'

भाग्य, किस्मत, कुण्डली बनाम तकनीक-विज्ञान, ज्ञान

कोरोना का प्रभाव भारत में धीरे-धीरे कम होने लगा है। यह सु:खद है। कोरोना ने हमारे बहुमूल्य ग्यारह महीने छीन लिए हैं। अभी भी हमारा सामान्य जन-जीवन पटरी पर नहीं लौट सका है। साल दो हजार बीस का सिहांवलोकन करें तो हिन्दी पट्टी ही नहीं, समूचा देश ही नहीं दुनिया के कई मुल्कों में पढ़ने-लिखने की संस्कृति प्रभावित हुई है। हालाँकि पढ़ना-लिखना कम नहीं हुआ। वह तो बढ़ा ही है। माध्यम बदल गए हैं। लेकिन हम तो छपी हुई सामग्री की बात कर रहे हैं। छपी हुई सामग्री बच्चों के लिए सबसे कारगर है। ई पत्र-पत्रिकाएँ, इंटरनेट, मोबाइल के माध्यम से पढ़ना-लिखना बच्चों के लिए विकल्प हो सकता है लेकिन इसे प्राथमिक माध्यम नहीं बनाया जाना चाहिए। इन पिछले आठ महीनों में आँखों की समस्याएँ बढ़ी हैं। बच्चों की आँखों में तकलीफें भी ख़ूब बढ़ी हैं।

कोरोना के दौरान हिन्दी में निकलने वाली कई पत्रिकाएँ बंद हुई हैं। भारत भर में ही नहीं कई देशों में बच्चों का प्रकाशन बंद हुआ। इंटरनेट पर प्रकाशन होता रहा। मौटे तौर पर हम मानते रहे कि बच्चों के पास पढ़ने-लिखने की सामग्री जाती रही। लेकिन हम भारत की बात करें तो भारत में लगभग 25 करोड़ परिवार हैं। भारत के लगभग छ: करोड़ परिवार तो अक्षर ज्ञान से वंचित हैं। सवा अरब की आबादी में औसतन पचास फीसदी परिवारों में इंटरनेट की रोजमर्रा की सहूलियत है ही नहीं। ऐसे में यह सोचना बेमानी है कि भारत के बच्चे पढ़ रहे हैं। ऐसे में बाल साहित्य की ज़रूरत और अधिक है।

आज भी जब हम बच्चों से, किशोरों से और यहाँ तक कि वयस्कों से कविता-कहानी की चर्चा करते हैं तो नब्बे फीसद मामलों में उन कविताओं-कहानियों पर चर्चा होती है जिन्हें उन्होंने स्कूली किताबों में पढ़ा होता है। एक साल के लिए एक हिन्दी की स्कूली किताब में पूरा साहित्य है?

एक ओर हैरानी वाली बात है, अध्यापकों का साहित्य से विमुख रहना। साहित्य पढ़ाने वाले विषय अध्यापकों में बहुत बढ़ा हिस्सा सूर, तुलसी, कबीर और प्रेमचन्द से आगे नहीं बढ़ पाया है। समकालीन साहित्य और साहित्यकारों पर चर्चा करें तो संवादहीनता की स्थिति आ जाती है। ऐसे में नितांत ज़रूरत इस बात की है कि सरकार के साथ-साथ अभिभावक, शिक्षक और प्रकाशक भी बाल साहित्य को बढ़ावा दें। यही नहीं हो रहा है जो सबसे अधिक होना चाहिए।

साहित्य और बाल साहित्य के संदर्भ में विदेशी साहित्य और साहित्यकारों पर दृष्टि डालने से पता चलता

है कि प्रतिष्ठित साहित्यकार वही है जिसने बाल साहित्य लिखा हो। खूब लिखा हो। भारत में विदेशी साहित्य विज्ञान, तकनीक, यथार्थ और वैज्ञानिक नज़रिए से ओत-प्रोत है। भारत में खासकर हिन्दी में इम्तिहान देते जाते बच्चों को सिर झुकाने या मीठा खाने जैसे टोटकों से बड़ा किया जाता है। भाग्य, किस्मत, कुण्डली, इबादत, ज्योतिष, परी कथाएँ-राजा-रानी की कथाएँ, तिलिस्म कथाओं से बचपन गुजारा जाता है। इसका असर दिखाई देता है। यही बच्चे बड़े होकर दो भागों में बँट जाते हैं। विज्ञान और वैज्ञानिक विचारधारा की छाया में पले-बढ़े बच्चे देश के उन्नत विभागों में सेवाएँ देते हैं। भाग्य, मिथक और टोटकों में बड़े हुए बच्चे नियति को स्वीकार कर भाग्यवादी बन किस्मत के भरोसे जीवन यापन करते हैं।

बाल साहित्य सार्वजनिक शिक्षा के साथ-साथ नौनिहालों के प्रति सजग रहता है। कितना अच्छा होता कि कोरोना काल में बाल पत्रिकाओं के एक से बढ़कर विविध क्षेत्रों में प्रवेशांक निकलते। क्या भारत के पूँजीपतियों को, कारपोरेट जगत के अरबपतियों को और सम्पन्न घरानों को नहीं चाहिए था कि पत्रिकाओं और पत्रों के नए प्रकाशन पर सोचते? उलट इसके पिछले ग्यारह महीनों में प्रकाशन जगत से कई चौंकाने वाली ख़बरें हमने सुनी हैं। नन्हें सम्राट और नंदन बाल पत्रिकाएँ बंद हो गई हैं। कई पत्रिकाओं का प्रकाशन बंद रहा। कई मासिक से तिमाही हो गईं। यही नहीं हजारों कलमकारों की नौकरी चली गई।

हम सब जानते हैं कि आजाद भारत के समय भारत की साक्षरता दर अठारह फीसदी भी नहीं थी। सौ में अठारह व्यक्ति ही पढ़े-लिखे थे। इन तिहत्तर सालों में हम अब सौ में चौहत्तर बाशिंदे पढ़े-लिखे मुल्क के हो गए हैं। एक अनुमान के अनुसार सम्पूर्ण साक्षरता हासिल करने के लिए अभी हमें बीस साल और लगेंगे। आज हम एक अरब चालीस लाख की आबादी का आँकड़ा पार कर चुके हैं। ऐसे मुल्क में किसी भी समस्या से निजात पाना आसान काम नहीं। भारत में हर साल दो करोड़ बच्चे पैदा होते हैं। भारत में केवल कुपोषण से एक साल में लगभग दस लाख बच्चे काल के गाल में समा जाते हैं। लगभग दस करोड़ बच्चे अभी भी स्कूल नहीं जा पाते। भारत में आज भी बारहवीं कक्षा तक अनवरत पढ़ते रहने वाले बच्चे मात्र तीन फीसदी हैं। भारत में लगभग सोलह करोड़ बच्चे हैं। यह संख्या छः साल से कम उम्र के बच्चों की है। दुनिया में हर पाँचवाँ किशोर भारतीय है। दस साल से उन्नीस साल के इन बच्चों की आबादी पच्चीस करोड़ से अधिक है।

इन आँकड़ों का सीधा सम्बन्ध बाल साहित्य से कैसा हो सकता है? प्रत्यक्ष तौर पर कहा जा सकता है संभवतः नहीं। लेकिन थोड़ा ठहरकर विचार करने पर जवाब हाँ में आने लगता है। कारण? स्पष्ट है कि बच्चों की शिक्षा, पालन-पोषण, सही परवरिश बेहद ज़रूरी है। यह तब और ज़रूरी है जब बच्चे ही देश की प्रगति में शामिल होने वाले सकारात्मक नागरिक बनते हैं। आजाद भारत में रहते हुए भी हम अभी सम्पूर्ण साक्षर नहीं बन पाए हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि जब तक समूचा भारत साक्षर नहीं हो जाता तब तक विकास की नीतियाँ और शिक्षित समाज के लिए ठोस नीतियाँ नहीं बन सकती। इसका अर्थ यह नहीं है कि जब तक एक-एक गाँव में बिजली और सड़क नहीं बन सकती तब तक देश में अत्याधुनिक शहरों का निर्माण न हो। हर परिवार को रोटी, कपड़ा और मकान का लक्ष्य पूरा नहीं हुआ है, यह बात सही है लेकिन इसका अर्थ यह भी कतई नहीं है कि भारत दुनिया को बचाए-बनाए रखने के कार्यक्रमों में भागीदारी न करे।

यही कारण है कि कोई भी मुल्क विकास के पथ पर आगे बढ़ते हुए वर्तमान ज़रूरतों के हिसाब से नई सूचना, तकनीक और कार्यक्रमों में अपनी हिस्सेदारी सुनिश्चित करता है। आज पूरे विश्व में प्रगतिशील और

विकसित देश बच्चों के सर्वांगीण विकास में अधिक ध्यान दे रहे हैं। यह ज़रूरी भी है। आजाद भारत के बाद साक्षरता के साथ-साथ बच्चों की शिक्षा पर भी ध्यान दिया गया। पत्र-पत्रिकाओं ने रचनाकारों के माध्यम से बच्चों को अच्छी शिक्षा देने के साथ-साथ उनमें तर्क और कल्पना के घोड़े दौड़ाने के लिए खूब साहित्य प्रकाशित किया। लेकिन जब उन पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ने वाले बच्चों की संख्या कम थी। उससे पहले तो गरीबी, बेकारी, भुखमरी सहित स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ मुँह बाए खड़ी थीं। आज भारत उन्नत देश की ओर अग्रसर है। आज हर परिवार अपने नौनिहालों को पढ़ाना चाहता है। ऐसे में बाल पत्रिकाएँ और बाल साहित्य सामग्री किसी पौष्टिक खुराक से कम नहीं। ये और बात है कि बाल पाठकों के लिए विचारणीय है कैसी रचनाएँ प्रकाशित हों।

हर पत्र-पत्रिका की अपनी रीति-नीति होती है। होनी भी चाहिए लेकिन बच्चों के लिए रचना सामग्रियों में कुछ सतर्कता तो बरतनी ही चाहिए। बच्चों की लिखी रचनाओं को भी स्थान मिले लेकिन बच्चों के लिए लिखी गई रचनाओं को भी भरपूर स्थान मिले। पिछले दस-पन्द्रह वर्षों से प्रकाशित अमूमन सभी बाल पत्रिकाओं में बाल पत्रिकाओं के नाम पर अधिकतर लेखक के रूप में बड़े-बुजुर्ग ही लिख रहे हैं। अब यदि बच्चे नहीं लिख रहे हैं तो क्या बड़ों का लिखा बच्चे पढ़ रहे हैं? ऐसी कुछ-एक पत्रिकाएँ हैं, जो बड़ों-बच्चों को एक ही अंक में स्थान दे रही हैं। ऐसी पत्रिकाओं की सामग्री की पठनीयता की बात करें तो बच्चे पहले बच्चों का लिखा हुआ ही पढ़ते हैं। क्यों? बड़ों का लिखा हुआ अमूमन बच्चे पढ़ते ही नहीं। अपवाद छोड़ दें तो, ऐसा क्यों है? क्या नामचीन बाल साहित्यकारों ने कोई रचना पत्रिका में भेजने से पहले बच्चों को पढ़वाई? जँचवाई?

बड़ों का कहना होता है कि बच्चे कैसे हमारे लेखन का आकलन कर पाएँगे। बाल-लेखन है तो बच्चों के लिए और हम यह कहते फिरें कि बच्चे उसका आकलन नहीं कर सकते। फिर वह रचना बाल पत्रिका में क्यों? किसके लिए? अधिकतर बाल-साहित्यकार बच्चों के लिए लिखते समय बच्चे को बोदा-भोंदू-कोरा स्लेट, अज्ञानी, कच्ची मिट्टी का घड़ा आदि मानकर रचनाएँ लिखते हैं। खुद को बड़े के स्तर पर रखकर लिखते हैं? बहुत हुआ, तो अपना जिया बचपन याद करते हुए लिखते हैं। क्या इस तरह से मानकर कुछ लिख लेना बाल-साहित्य का भला करेगा? कितना अच्छा हो कि पहले हम बड़े बच्चों के साथ समय बिताकर जीवन का आनंद लें। उनके साथ घुलें-मिलें। उनके साथ बच्चा बनकर रहें। तब भला क्यों कर अच्छी रचना नहीं बन सकेगी? एक बात और बच्चों के लिए लेखन सरल हो। पर यदि बच्चा पाठक है। उसमें पढ़ने की ललक है तो फिर रचना छोटी ही हो ज़रूरी नहीं। हाँ वह रोचक हो। बच्चा क्यों पढ़े? यह सवाल रचनाकार के मन में ज़रूर रहे।

एक मित्र ने कहा कुछ कविताएँ भेजिए। मैंने आठ-दस कविताएँ भेज दीं। कुछ दिनों बाद उनका फोन आया कि आपकी दो रचनाएँ बच्चों ने स्वीकार कर ली हैं। मैं चौंका। पूछा तो उन्होंने बताया-"दरअसल। रचनाओं का चुनाव बच्चे ही कर रहे हैं। जो उन्हें पहले वाचन में पसंद आ रही हैं। उसे वह बड़े समूह में दे रहे हैं। अधिकतर उसे पठनीय मान रहे हैं, तब ही उसे स्वीकार किया जा रहा है। मेरी भूमिका तो बस उनके साथ सहायक-सी है।" इसे आप क्या कहेंगे? ऐसा नहीं है कि वे बच्चे कक्षा तीन-चार में पढ़ रहे हैं। वे बच्चे पढ़ने-लिखने की दिशा में आगे बढ़े हुए बच्चे हैं। वे जानते हैं कि बच्चों को क्या पढ़ना पसंद आएगा? बस इतनी सी बात है। यदि पत्रिका या पत्र यह महसूस करना जानते हैं कि बच्चे क्या पढ़ना पसंद करेंगे तो समस्या है ही नहीं। एक बात और। बच्चों को क्या पसंद करना चाहिए। यह भी ज़रूरी है। वे क्या पढ़ना चाहते हैं? यह तो ज़रूरी है ही। उन्हें पढ़ने को क्या दें? यह भी ज़रूरी है।

एक संपादक का फोन आया कि कुछ भेजिए। मैंने कहा–''बच्चों जैसा या बच्चों का या बच्चों के लिए?'' वह कहने लगे–''मतलब?'' मैंने जवाब दिया–''यही कि जिस स्तर के बच्चे हैं, वह जो सोचते हैं, जैसा सोचते हैं। उसके आस-पास लिखने वाला बच्चों जैसा हुआ। जिस स्तर के बच्चे हैं, उन्हीं से लिखवाया जाए तो बच्चों का और मैं जो सोचता हूँ कि यह रचना बच्चों के लिए होनी चाहिए, वह बच्चों के लिए हुई।'' वे कहने लगे जो आप सोचते हैं कि वह बच्चों के लिए होनी चाहिए, वे भेज दीजिए।

अब आप बताइए। मैं जो सोचता हूँ या आप जो सोचते हैं, वह बच्चों के लिए हो सकता है? शायद कुछ-कुछ। या कभी कुछ भी नहीं। ये भी संभव है कि बहुत कुछ। लेकिन हम यह मान लें कि हमने जो लिखा है, वह संपूर्ण है-पर्याप्त है? कहने का अर्थ यही है कि हम बड़े बच्चों के लिए जो कुछ घर बैठकर अपनी सोच से लिख रहे हैं, जरूरी नहीं कि वह बच्चों को मुफीद भी लगे। बच्चे उसे पहले ही वाचन में खारिज भी कर सकते हैं। इसका अर्थ यह भी नहीं कि हम लिखना ही छोड़ दें। भाव यही है कि क्या हम किसी भी रचना का निर्माण करते समय यह सोचते हैं कि जिस पाठक के लिए हम लिख रहे हैं, उसकी सोच, दायरा, मन, इच्छाएँ, सपने और परिस्थितियाँ रचना को आत्मसात् करने वाली हैं भी या नहीं।

साहित्य को पढ़ने वाला बाल पाठक आपके क्षेत्र-विशेष, अंचल और आपके स्थानीय परिवेश को महसूस कर पाता है? रचनाकार का यह भी धर्म है कि देश-दुनिया को अपने स्थानीय परिवेश से भी परिचित कराए। दुनिया भर के बच्चे अपनी दुनिया को आपकी दुनिया से जोड़कर देखना चाहते हैं। वे रचनाकार बधाई के पात्र हैं जिनकी अधिकतर रचनाओं में उनका अंचल झलकता है। उनके परिवेश के बच्चों का चित्रण होता है। मेरा मानना है कि गिलहरी हर जगह नहीं होती। समुद्र पहाड़ के बच्चों के लिए विहंगम-अद्भुत और हैरत में डालने वाला होता है। ठीक उसी प्रकार जब हमने पहली बार हाथी देखा हो। पहली बार रेल देखी हो। आज भी पहाड़ के बच्चों के लिए हवाई जहाज इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना रेल के बारे में सोचना, उसे देखने की इच्छा का प्रबल होना। जहाज तो वह आसमान में दूर से ही सही, यदा-कदा देखते ही रहते हैं।

हम सब बाल पत्रिकाओं में बच्चों की भावनाओं को भी उकेरें। उनके लिखे हुए को प्रोत्साहित करें। हर बच्चे को प्रथम, द्वितीय और तृतीय की कसौटी पर न रखें। उसके लेखन का बढ़ाने में सहायता दें। ऐसी बहुत कम पत्रिकाएँ हैं, जो बच्चों के लिए हैं। जो बच्चों के लिखे हुए को ज्यादा स्थान देती हैं। हास्यास्पद बात तो यह है कि इन पत्रिकाओं को बचकाना, कूड़ा-कबाड़ करार दिया जाता है। इन्हें उद्देश्यहीन घोषित कर दिया जाता है। यह घोषणा भी वे करते हैं, जो बड़े हैं। जिन्हें बच्चों से बात करने का सलीका भी नहीं आता है। बाल-साहित्य में खुद को तराशना बड़ी बात है। जो कुछ लिखा जा रहा है, वह बच्चों के लिए कारगर नहीं है। बच्चे उसमें रम नहीं रहे हैं। आनंदित नहीं हो रहे हैं। तभी तो पढ़ नहीं रहे हैं। पढ़ रहे हैं तो गुन नहीं रहे हैं। उससे बड़ी बात आनंद नहीं ले रहे हैं। कई बाल पत्रिकाएँ सूचना, ज्ञान और जानकारी से ठुँसी हुई हैं। अगर देखा जाए तो स्कूल भी सूचना, ज्ञान और जानकारी दे रहा है। घर पर अभिभावकों का सारा जोर पाठ्य पुस्तक और परीक्षा है। तो क्या यही मकसद पत्रिका का हो? अखबारों में से तो साहित्य गायब होता ही जा रहा है। बाल अभिव्यक्ति या बच्चों के लिए साहित्य अखबारों से लगातार कम होता जा रहा है।

अधिकतर पत्रिकाएँ खुद को बाल पत्रिकाएँ कहती हैं। लेकिन बच्चों की लिखी गई रचना के लिए उनमें तीन-चार पेज ही हैं। क्या इन्हें बाल पत्रिकाएँ कहेंगे? संपादकों का कहना है कि जरूरी नहीं बच्चे स्तर का लिखें।

उनका हर कुछ लिखना बाल साहित्य कैसे हो सकता है? एक उदाहरण-हम बाजार में सब्जी खरीदने जाते हैं। एक ही स्टॉल से विविधता भरी सब्जियाँ लाते हैं। स्वाद, रुचि और इच्छा के अनुसार जो हमें नहीं जँचती, वह तरकारी हमारे झोले में नहीं आती। फिर हम बच्चों को बच्चों की पत्रिकाओं में अधिक स्थान देने से क्यों बचते हैं? बच्चों की पत्रिकाएँ हम बड़ों के लिए तो नहीं हैं? बच्चों की पत्रिकाएँ बच्चों के लिए हैं भी या नहीं?

अधिकतर पत्रिकाएँ बच्चों को नौसिखिया ही मानती हैं। रंग भरो प्रतियोगिता, शीर्षक आधारित प्रतियोगिता, बूझो तो जानें, आप कितना जानते हैं? ऐसे कई स्तंभों से पत्रिकाएँ भरी पड़ी हैं, जो हर अंक में बच्चों को खुद को साबित करने की होड़ में लगी हैं। तीन-चार प्रविष्टियों को पुरस्कृत कर देने भर से बाल विकास हो रहा है? एक संस्था है वह हर साल किसी के जन्मदिवस पर चित्रकला प्रतियोगिता कराती है। हर साल पाँच सौ से अधिक बच्चे उस प्रतियोगिता में सहभागी बनते हैं। उसी स्पॉट पर उसी दिन प्रथम, द्वितीय, तृतीय और तीन सांत्वना पुरस्कार देकर यह संस्था सोचती है कि वह बच्चों को चित्रकार बना रही है। क्या वाकई यह संस्था बाल विकास में कुछ कर रही है? पिछले दस सालों में (लगभग साठ बच्चों को) जिन्हें चित्रकला के नाम पर संस्था ने पुरस्कृत किया होगा उनमें एक भी चित्रकला की दिशा में आगे बढ़ पाया? यह शोध का विषय हो सकता है। यही हाल बाल साहित्य लिखने का है। क्या बाल-साहित्यकारों की रचनाओं को पढ़कर या बाल पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ छप जाने भर से बच्चों में सकारात्मक बदलाव आया है? यह विमर्श का विषय है।

आज नहीं तो कल हमें अपनी दिशा तय करनी होगी। वह बाल-साहित्य कपोल-कल्पना ही होगा। निरर्थक ही होगा, जिसके केन्द्र में बच्चे नहीं हैं। जिनका सरोकार बच्चों से नहीं है। सीख, उपदेश और नसीहत देते रहने का हश्र शायद वही होगा, जो हर साल रावण का पुतला जला देने से हो रहा है। रामलीला में आदर्श अभिनय कर देने भर से हम आदर्श और अनुकरणीय नहीं हुए। ठीक उसी तरह से बाल-साहित्य में भी 'चाहिए-चाहिए'-'ऐसा करो-ऐसा करो' चिल्लाने भर से बच्चों का भला नहीं होने वाला है। अब समय आ गया है कि इक्कीसवीं सदी के बाल साहित्य में हम कम से कम एक-एक रचना ही ऐसी सृजित करे जो भविष्य में रेखांकित हो। जिसका उल्लेख किया जा सके। जिसे पढ़कर बच्चे आनंदित हो मनन की स्थिति में हों।

उम्मीद की जानी चाहिए कि कोरोना से उबरने के बाद हम भारत के लोग बाल साहित्य की दिशा तय करेंगे। हर क्षेत्र से नई-नई पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू होगा। ऐसी पत्रिकाएँ और पत्र प्रकाशित होंगे जो बच्चों में लोकप्रिय हो सकेंगे। बच्चों में पढ़ने-लिखने की संस्कृति का विकास करेंगे।

हमें यह समझना होगा कि अथक प्रयासों के बाद भी भारत को सम्पूर्ण साक्षर होने में बीस साल से अधिक का समय लगेगा। ऐसे में परिवारों में पहली-दूसरी पीढ़ी का इक्कीसवीं सदी में साक्षर होना हमारी धीमी प्रगति का लिखित और प्रत्यक्ष साक्ष्य है। ऐसे में वे मुल्क जिनके बच्चों के घरों में बाजार से बना-बनाया जंक फूड नहीं, छपी हुई बाल पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं वे बच्चे अक्षरों की दुनिया से भाव-बोध, यथार्थ-कल्पना की उड़ान भरकर बड़े होकर विज्ञान, तकनीक, सूचना और ज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान क्यों कर न करेंगे?

सम्पर्क : *पौड़ी गढ़वाल (उत्तराखंड)*

संतोष कुमार सिंह

पहेलियाँ बढ़ाती हैं बुद्धि की सामर्थ्य

पहेली साहित्य की बहुत पुरानी और सशक्त विधा है जो मनोरंजन के साथ-साथ बुद्धि की परख करती है और उसे व्यायाम भी कराती है। यह समाज के हर वर्ग में प्रचलित और लोकप्रिय विधा रही है। यह बाल साहित्य की विधा है अथवा प्रौढ़ साहित्य की, यह कहना मुश्किल है। अध्ययन करने से ज्ञात हुआ है कि पहेलियाँ बालकों, किशोरों, युवाओं, प्रौढ़ों, अनपढ़ों और पढ़े-लिखे लोगों के मन को भी रुचिकर रही हैं। गाँव से लेकर बड़े-बड़े नगरों में इनकी लोकप्रियता सहज ही पाई गई है।

वर्तमान में पहेलियों का स्वरूप कई तरह का है यथा-पद्य पहेली, चित्र पहेली, वर्ग पहेली, वाक्य पहेली, व्याकरणिक पहेली तथा गणितीय पहेली। जिस विषय की पहेली बनानी होती है उसके गुण, रूप एवं कार्य का इस प्रकार वर्णन किया जाता है कि दूसरी वस्तु का वर्णन जान पड़े। इसे बहुदा कवित्तपूर्ण शैली में लिखा जाता है ताकि सुनने में मधुर लगे। इसलिए इन्हें पद्य पहेलियाँ भी कहना समुचित प्रतीत होता है।

पहेलियों की परंपरा हमारे देश में प्राचीन काल से प्रचलित है। ऋग्वेद के श्लोकों में भी इसका उल्लेख मिलता है-

''चत्वरि श्रृंगा त्रयो अस्य पादा, द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रौरवीति, महादेवो मर्त्याम् आविवेश:।।''

अर्थात जिसके चार सींग हैं, तीन पैर हैं, दो सिर हैं, सात हाथ हैं जो तीन जगह से बँधा हुआ है, वह मनुष्य में प्रविष्ट हुआ वृषभ है, शब्द करता हुआ महादेव है।

इसका गूढ़ उत्तर यह है कि यह वृषभ जिसके चार सींग चारों वेद हैं, प्रात:काल, मध्यान्ह और सायंकाल तीन पैर हैं, उदय और अस्त दो सिर हैं, सात प्रकार के छंद सात हाथ हैं। यह मंत्र ब्राह्मण और कल्परूपी 3 बंधनों से बँधा हुआ मनुष्य में प्रविष्ट है।

पहेली क्या है? इसको समझने के लिए हम कह सकते हैं कि वह प्रश्नात्मक उक्ति है जिसमें बात का लक्षण बताते हुए कहा जाता है कि बताओ वह कौन-सी बात है। या यों कहें कि वह गूढ़ बात जिसका अर्थ सहज न हो, पहेली होती है। पहेली एक ऐसा वाक्य है जिसमें वस्तु का लक्षण घुमा-फिरा कर या

भ्रामक रूप में दिया गया हो और उसी के सहारे बूझने का प्रस्ताव हो। जिस विषय की पहेली की रचना करनी होती है उसके रूप, गुण, कार्य का वर्णन अन्य वस्तु के रूप, गुण व कार्य के सदृश्य करते हैं। जैसे पेड़ में लगे हुए मक्के के भुट्टे की पहेली है–

'हरी थी, मन भरी थी... राजाजी के खेत में दुशाला ओढ़े खड़ी थी।।

यह किसी स्त्री का वर्णन जान पड़ता है। कुछ पहेलियों में उनके विषय का नाम भी रख देते हैं। जैसे–

'देखी एक अनोखी नारी।
गुण उसमें एक सबसे भारी।।
पढ़ी नहीं यह अचरज आवे।
मरना–जीना तुरत बतावे।।'

इसका उत्तर 'नाड़ी' है जो पहेली में नारी शब्द के रूप में विद्यमान है अर्थात् पहेली में बहकाने का प्रयास किया जाता है।

बुद्धि के अनेक व्यायाम में पहेली बूझना भी एक अच्छा व्यायाम है। बालकों में पहेलियों का बड़ा चाव होता है। इससे मनोरंजन के साथ बुद्धि की सामर्थ्य भी बढ़ती जाती है। बालक, युवक, प्रौढ़ व वृद्धजन भी अक्सर पहेलियाँ बुझाकर मनोरंजन करते हैं।

संस्कृत में पहेली को 'प्रहलिका' या 'प्रहेलि' कहते हैं। संस्कृत की एक पहेली का नमूना–

'श्याममुखी न मार्जारी द्विजिह्वा न सर्पिणी।
पंचभार्ता न पांचाली यो जानाति पंडितः।।'

अर्थात् काले मुख वाली होते हुए बिल्ली नहीं है, दो जीभ वाली होते हुए सर्पिणी नहीं है तथा पाँच पति वाली होते हुए भी द्रोपदी नहीं है, पर उसे जो जानता है वह पंडित है। (इसका उत्तर कलम है। यह तब लिखी होगी जब सिरे पर निब के दो भाग होते थे)

अंग्रेजी तथा अन्य यूरोपियन भाषाओं में भी पहेलियों की परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है। अंग्रेजी में पहेली को 'रिडिल' अथवा 'एनिग्मा' कहते हैं। यहाँ इस 'स्फिनिक्स' की पहेली का उदाहरण दिया जा सकता है– वह कौन–सी वस्तु है जो प्रातः चार पैरों से, दोपहर दो पैरों से तथा संध्या तीन पैरों से टहलती है। 'स्फिनिक्स' ने दिन को अलंकारिक भाषा में मनुष्य जीवन को संबोधित किया है।

जैन साहित्य में भी पहेलियाँ लिखने की परंपरा रही है। इसमें 'हीयाली' जैसी रचनाएँ पहेलियों की अनुरूपता की सूचक हैं। 19वीं शताब्दी तक जैन कवियों द्वारा लिखी हीयालियाँ उपलब्ध हैं। थीबन स्फिनिक्स की पौराणिक कथा के अनुसार रानी जोकास्टा से विवाह करने के लिए पहेली प्रतियोगिता आयोजित की गई थी। इंग्लैंड में स्विफ्ट ने स्याही, कलम, पंखे जैसे कई विषयों पर पहेलियाँ रची थीं। 17 वीं शताब्दी में पहेली बनाना साहित्यकारों का प्रिय विषय बन गया था। पहेली को फारसी में 'चींस्ता' कहते हैं और पुरातन समय में ईरान में इसका प्रचलन था। चीनी भाषा में पहेली के दो रूप हैं– 'मे यू' अर्थात् वस्तुओं की पहेली। दूसरी 'जू मे' अर्थात् शब्दों की पहेलियाँ।

हिंदी में भी पहेलियाँ खूब लिखी गई हैं। इस संबंध में अमीर खुसरो की पहेलियों का उल्लेख किया जा सकता है। एक उदाहरण–

‘एक थाल मोती से भरा।
सबके सिर पर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाली फिरे,
मोती उससे एक न गिरा।।’

हिंदी में पहेलियों के अनेकानेक विषय रहे हैं यथा कुआँ, मक्के का भुट्टा, दिया, हुक्का, तरबूज, मिर्ची, खाट, खरगोश, ऊँट, उस्तरा, बंदूक, सब्जियाँ, दरवाजा इत्यादि। क्षेत्रीय बोलियों यथा भोजपुरी, अवधी, बुंदेलखंडी, मैथिली, राजस्थानी और ब्रजभाषा में पर्याप्त मात्रा में पहेलियाँ पाई जाती हैं। नवीन युग में गणित को लोकप्रिय बनाने के लिए जितना काम मार्टिन गार्डनर ने किया है शायद उतना और किसी ने नहीं किया है। इन्होंने ‘साइंटिफिक अमेरिकन’ में बहुत सारे लेख पहेलियों के बारे में लिखे हैं। यह लेख बहुत ज्ञानवर्धक और मनोरंजक हैं। इन्होंने पहेलियों की कई पुस्तकें भी लिखी थीं।

वर्तमान में भी पहेलियाँ प्रचुर मात्रा में लिखी जा रही हैं। अनेक साहित्यकार तरह–तरह की पहेलियाँ लिख रहे हैं जो अखबारों तथा मासिक पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशित हो रही हैं। बच्चे, किशोर और प्रौढ़ सभी उन पहेलियों को पढ़कर अपनी बुद्धि–सामर्थ्य बढ़ा रहे हैं। पद्य पहेली, चित्र पहेली और सुडोकू वर्ग पहेली तथा शब्द पहेलियाँ बहुत ही लोकप्रिय हो रही हैं। उदयपुर राजस्थान के श्री प्रकाश तातेड़ ने कई प्रकार की पहेलियाँ लिखी हैं। उनकी पहेलियों पर पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं। जयपुर की सुधा चौधरी वर्ग पहेलियाँ लिखने में बहुत ही सिद्धहस्त हैं। मेड़ता रोड राजस्थान के चाँद मुहम्मद घोसी बहुत अच्छे चित्रकार हैं जिनकी अनेक पत्रिकाओं में चित्र पहेलियाँ प्रकाशित हो रही हैं।

वास्तव में पहेलियाँ मस्तिष्क का व्यायाम कराने, बुद्धि की सामर्थ्य बढ़ाने और स्वस्थ मनोरंजन का सरल एवं सुलभ साधन हैं। यह समारोहों, पिकनिकों और संध्या को सोने से पूर्व खाली समय भरने में बालकों और बड़ों के लिए सदैव उपयोगी रही हैं और रहेंगी।

सम्पर्क : *मथुरा (उ.प्र.)*

सविता प्रथमेश

बाल साहित्य और विज्ञान

बाल साहित्य की जब बात की जाती है तो स्वाभाविक रूप से परियाँ आ जाती हैं, जादू का सिलसिला शुरू हो जाता है, तिलिस्म होता है। देखा जाए तो यह फंतासी बड़ी मज़ेदार भी होती है। पाठक बँधा रह जाता है। कल्पना लोक का ऐसा संसार पाठक के सामने खुल जाता है कि ठगा पाठक वर्तमान में आकर स्वयं को ठगा सा महसूस करता है।

लेकिन तीन-चार-पाँच बरस के बच्चों के लिए तो इस दुनिया की छोटी-छोटी घटनाएँ भी किसी तिलिस्म से कम नहीं। उनके लिए तो यह भी किसी चमत्कार से कम नहीं कि शाम ढलते-ढलते सूर्य भी जाने कहाँ ग़ायब हो जाता है? उनके लिए तो यह भी किसी आश्चर्य से कम नहीं कि आकाश में तारे टिमटिम कर रहे हैं। जाने किस हैंगर में लटके हैं कि गिरते नहीं, और तो और वह जब देखता है कि पौधों की पत्तियाँ तो हरे रंग की हैं लेकिन फूलों के रंग जाने कैसे-कैसे? कौन बनाता होगा भला इन फूलों को? ये रंग भला आते कहाँ से हैं? इस चक्कर में वह फूलों को तोड़-मरोड़ देता है, टुकड़े-टुकड़े कर देता है। लेकिन कुछ नज़र आए तब?

आदि तो और बच्चों से दो क़दम आगे है।

'मम्मी मैं कहाँ से आया?'

'क्या आपने मुझे खा लिया था जो मैं पेट में चला गया?'

मोनू तो और भी असमंजस में पड़ जाता है जब रात को पेड़-पौधों को छूने पर दादी मना करते हुए कहती हैं, 'रात को पौधों को नहीं छूना चाहिए क्योंकि वे सोते हैं।'

'लेकिन दादी उनकी आँखें कहाँ हैं जो वे सो जाते हैं?'

सोनू इतने में ही पौधों का ऊपर से नीचे मुआयना कर लेता है लेकिन आँखें जाने कहाँ छुपी होती हैं?

बच्चे जब आसपास नज़र डालते हैं तो उनके लिए प्राकृतिक घटनाएँ किसी चमत्कार से कम नहीं होतीं। मानव सभ्यता के आरंभिक युगों में आदिमानव भी तो बच्चों जैसी ही जिज्ञासा, डर और उत्सुकता से भरा था। किसी अदृश्य शक्ति का चमत्कार मानता था वह प्राकृतिक घटनाओं को। बिजली की चमक भी उसमें बिल्कुल बच्चों जैसे भय का संचार कर देती थी। धीरे-धीरे उसने प्रकृति को समझना शुरू

किया, डरना छोड़ा तब प्राकृतिक घटनाओं से पर्दा उठता गया। इन घटनाओं में उसकी रुचि बढ़ती गई और डर पर जीत पाकर उसने रहस्यों पर से पर्दा उठाया और आज हमें मालूम है कि समस्त प्राकृतिक घटनाओं का क्या कारण है? वे किसी अदृश्य शक्ति का चमत्कार नहीं है।

बच्चा जब नया-नया बोलना शुरू करता है। आसपास के वातावरण का निरीक्षण करता है। इससे जिज्ञासा उत्पन्न होती है जो प्रश्न के रूप में आती है। कायदा होता है कि प्रश्नों के उत्तर सही तरह से दिए जाएँ, बिना घुमाए-फिराए ताकि बच्चे के समक्ष भ्रम की स्थिति न हो लेकिन सामान्य तौर पर बच्चों को कभी भगवान, कभी परी और कभी जादू कहकर टाल दिया जाता है और बच्चा जब बड़ा होता है विज्ञान पढ़ता है तब भी दैनिक जीवन की बहुतेरी घटनाओं को दैनंदिन जीवन से जोड़ नहीं पाता।

इसी अवस्था में आवश्यकता होती है विज्ञान साहित्य की। वह साहित्य जो बालसुलभ सामान्य जिज्ञासाओं को सामान्य भाषा में हँसी-मज़ाक में समझा दे और बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का निर्माण भी कर दे लेकिन प्राथमिक स्तर से ही बच्चे विज्ञान पढ़ते हैं। माध्यमिक स्तर पर तो पाठ्यक्रम और भी विस्तृत हो जाता है। ऊपर चढ़ने पर और भी विस्तार से विज्ञान पढ़ा जाता है फिर अलग से बच्चों के विज्ञान साहित्य की क्या आवश्यकता? क्या प्राथमिक स्तर से हो रहा विज्ञान का शिक्षण संपूर्ण नहीं है जो अलग से बच्चों के लिए विज्ञान साहित्य रचा जाए? क्या शालेय स्तर पर विज्ञान शिक्षण अपने उद्देश्यों में असफल रहा है? इससे भी प्रमुख बात विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य क्या हैं?

विज्ञान शिक्षण के अनेक उद्देश्यों में से यह भी है कि समस्याओं को हल करने और वैज्ञानिक संदर्भों में सूचित निर्णय लेने के लिए ज्ञान, वैचारिक समझ और कौशल हासिल करने के साथ-साथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न करना भी होता है।

लेकिन हमारे समाज की जो स्थिति है वह सभी को ज्ञात है। कुरीतियाँ और अंधविश्वास अभी भी समाज में व्याप्त हैं। बल्कि अब वे और भी विकृत और वीभत्स रुप में सामने आ रही हैं। जबकि हम चांद और मंगल की बातें कर रहे हैं। गाँवों में भी बच्चे ऑनलाइन पढ़ाई कर रहे हैं लेकिन अंधविश्वास से भरे मैसेज भी आगे बढ़ा रहे हैं। एक डॉक्टर संतान विहीन दंपति को स्थान विशेष के मंदिर में विशेष पूजा करने की सलाह देता है वह भी स्वयं के अनुभव के आधार पर।

ऐसी स्थिति में यह धारणा बलवती होती है कि हमारा विज्ञान शिक्षण अपने उद्देश्यों में असफल रहा है। इसलिए साहित्यकारों का दायित्व बनता है कि वे ऐसा साहित्य रचें जो पाठ्यपुस्तक की भारीभरकम, कठिन और एक हद तक उबाऊ भाषा से अलग सहज और सरल भाषा में हो। विज्ञान साहित्य की ज़िम्मेदारी यहीं से आरंभ होती है कि वह कल्पना और कहानी के माध्यम से मनोरंजक तरीके से इस नज़रिए से तथ्यों और घटनाओं को प्रस्तुत करे जिससे बच्चों का मनोरंजन होने के साथ-साथ उनका बौद्धिक विकास भी हो और उनका दिमाग खुले, घटनाओं को देखने और विश्लेषण करने की उनमें क्षमता विकसित हो। जो अंततः विज्ञान शिक्षण का भी उद्देश्य है।

आसपास के वातावरण और प्राकृतिक घटनाओं को देखकर तीन-चार वर्ष की आयु में जब बच्चा 'क्या? क्यों? और कैसे?' की झड़ी लगा देता है तब बड़े उन्हें बहलाकर कभी भगवान जी तो कभी जादू या कभी-कभार तो भूत-प्रेतों के मत्थे इन घटनाओं को थोपकर बच्चे को बहला देते हैं। केवल घर ही

नहीं बल्कि आस-पड़ोस से भी उसे यही सीख मिलती है। यह सीख और समझ लेकर जब वह स्कूल जाता है तो एक हद तक इन घटनाओं के प्रति वह धारणा बनाकर स्कूल जाता है।

शालेय स्तर पर विज्ञान से जब उसका एक विषय के रूप में साबका पड़ता है तो वह तथ्यों को समझ लेता है, सूत्र और समीकरण रट लेता है। प्रथम श्रेणी में परीक्षाएँ भी उत्तीर्ण कर लेता है लेकिन विज्ञान की वह समझ विकसित नहीं हो पाती जो होनी चाहिए और जो विज्ञान शिक्षण का उद्देश्य भी है।

हमारी पाठ्यपुस्तकें यूँ भी कठिन और निहायत ही पुस्तकीय भाषा में लिखी हुई होती हैं ऊपर से विज्ञान की पुस्तकें तो और भी भारीभरकम शब्दों और तथ्यों के कठिन तरह के विश्लेषण से भरी होती हैं कि लगता ही नहीं कि विज्ञान की घटनाएँ हमारे जीवन का हिस्सा ही हैं। परिणामत: विज्ञान की सर्वोच्च परीक्षा और उसी क्षेत्र में कार्य करने के बाद भी व्यक्ति की वैज्ञानिक सोच और दृष्टिकोण नहीं बन पाता।

इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि वर्तमान में जो बाल साहित्य रचा जा रहा है उसमें विज्ञानपरक कथा, कहानी, कविता और आलेख मनोरंजक तरीके से लिखे जाएँ तो बच्चों की तथ्यों पर समझ भी बढ़ेगी और इन घटनाओं को वे किसी अदृश्य शक्ति का काम न समझ सामान्य रूप से लेंगे।

बच्चों के लिए जब विज्ञान साहित्य की बात होती है तो निश्चित ही यह पाठ्यपुस्तकों से अलग होने चाहिए। अलग होने का अर्थ केवल भाषा की सरलता और मनोरंजक तरीके से ही नहीं है बल्कि इसका आशय विविध विधाओं से भी है क्योंकि हम विज्ञान साहित्य कह रहे हैं तो विज्ञान हमेशा आलेख के रूप में ही क्यों रहे? या अधिक से अधिक नाटिका या झलकी या एकांकी के रूप तक ही सीमित क्यों रहे?

प्रसिद्ध विज्ञान लेखक देवेन्द्र मेवाड़ी कहते हैं, 'मैं विज्ञान को साहित्य की कलम से लिखना पसंद करता हूँ।' वे कहते हैं, विज्ञान बड़ा मज़ेदार विषय है। लेकिन इसे समीकरणों, सिद्धांतों और परिकल्पनाओं से कठिन रूप दे दिया गया है। इसलिए मैं किस्सागोई की तकनीक अपनाता हूँ।' परिणाम है उनका सहज-सरल विज्ञान लेखन जो बाँधकर रख देता है साथ ही घटनाओं और वस्तुओं को देखने का एक नया नज़रिया भी देता है।

बाल साहित्य में विज्ञान के प्रबल समर्थक और सारा जीवन लेखन विशेषकर बच्चों के लिए विज्ञान लेखन करने वाले और विभिन्न पुरस्कारों से पुरस्कृत हरिकृष्ण देवसरे कहते हैं, 'जो बच्चे परीकथाएँ, भूतप्रेतों की कहानियाँ पढ़ते हैं उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण जागृत होने में बाधा पड़ सकती है क्योंकि वे अंधविश्वासी अधिक बन सकते हैं।'

वे कहते हैं, 'जब हम विज्ञान की नज़र से कुछ पढ़ते हैं तो समझ आता है कि संभव क्या है, असंभव क्या है। विज्ञान कथाएँ उन्हें नई दृष्टि, नई खोज और सार्थक कल्पना देती हैं।'

'होटल का रहस्य' और 'ला वेनी' नामक बाल विज्ञान उपन्यास समेत उनकी अन्य बाल विज्ञान कहानियाँ बच्चों के साथ-साथ बड़ों में लोकप्रिय रही हैं।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग,भारत सरकार द्वारा वर्ष 2009 में विज्ञान लेखन हेतु राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित दिनेश चंद्र शर्मा की इस कविता को ही लें -

चिड़िया भी एक दर्जिन होती

'टेलर बर्ड एक चिड़िया होती/दर्जिन भी कहलाती है
गौरैया से छोटी होती/निडर फुदकती रहती है
कीड़े-मकोड़े इसका भोजन/मधुरस भी पी जाती है
घोंसला बनाती कारीगरी से/जिससे दर्जिन कहलाती है।'

चिड़िया की बाकी अन्य विशेषताओं को भी इसी तरह छोटे, सरल, सहज शब्दों में गेय रूप में पिरोया गया है।

विज्ञान की और भी बहुत सी अवधारणाएँ, नियम और तथ्यों को भी मनोरंजक तरीके से कहानी, कविता यहाँ तक कि मुझे लगता है पत्र लेखन के माध्यम से भी न सिर्फ सही तरीके से समझाया जा सकता है बल्कि विज्ञान पढ़ने के बाद भी जिस वैज्ञानिक दृष्टिकोण के निर्माण के अभाव की हम बात कर रहे हैं उसे भी पूरा किया जा सकता है। मसलन वैश्विक उष्णता, ग्रीन हाउस इफेक्ट, जलवायु परिवर्तन, लिंग-निर्धारण जैसे बहुत से विषय हैं जिन्हें साहित्य की विविध विधाओं में रचकर एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण बच्चों में निर्माण किया जा सकता है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ.आत्माराम ने लेखक शुकदेव प्रसाद से बातचीत में कहा था, परीकथाओं के मोहजाल से निकाल कर अपने आसपास को जानने-समझने की भूख बच्चों में जगाना बहुत बड़ा काम है। तभी आज के बच्चे बड़े होकर इस वैज्ञानिक युग की जटिलताओं से जूझ सकेंगे।

बाल विज्ञान साहित्य की जब चर्चा होती है तो इसमें निश्चित तौर पर गल्प भी शामिल है। लेकिन वहीं तक जहाँ तक बच्चों में विज्ञान को लेकर भ्रम न हो। वैज्ञानिक तथ्यों की अतिरेक प्रस्तुति और बहुत बार विज्ञान के नाम पर ऐसी बातों को स्थापित करना जो पूरी तरह अवैज्ञानिक ही हों से परी कथाएँ बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास तो करती ही नहीं बल्कि विज्ञान को सही तरह से समझने का अवसर भी नहीं देती हैं।

बाल साहित्य बच्चों की जीती जागती दुनिया का प्रतिबिंब होते हैं। उनकी चंचलता, मासूमियत, जिज्ञासा से भरे बाल साहित्य में मनोरंजन और वैज्ञानिक तथ्यों की प्रस्तुति के बीच सामंजस्य बिठाकर रचा गया साहित्य ही वर्तमान की आवश्यकता है।

सम्पर्क : *बिलासपुर (छ.ग.)*

डॉ. शील कौशिक

हिन्दी बाल साहित्य में राष्ट्र भावना

बालक देश और समाज की रीढ़ हैं। उनका समुचित विकास ही देश का विकास है। बच्चे प्राकृतिक रूप से निश्छल, निर्द्वंद्व मासूम होते हैं। वे पल में झगड़ते हैं और दूसरे ही पल अब्बा कर लेते हैं। वे कुम्हार की मिटटी के लौंदे की तरह हैं जिन्हें थपका कर, सहला कर या हल्की चपत मार कर गढ़ा जा सकता है, समुचित आकार दिया जा सकता है। यह कार्य एक बालसाहित्यकार भली-भाँति कर सकता है। बच्चों के मनोनुकूल लिखा गया साहित्य ही बालसाहित्य कहलाता है। दूसरे शब्दों में कहूँ तो बच्चों की रुचि, भावना, भाषा और मनोवृति को समझ कर लिखा गया साहित्य ही बालसाहित्य की श्रेणी में आता है।

राष्ट्र के प्रति प्रेम या राष्ट्रभक्ति केवल बार्डर पर सीमाओं की सुरक्षा या युद्ध में शामिल होने पर ही नहीं प्रदर्शित होती, बल्कि राष्ट्र के बहुआयामी, सम्पूर्ण सतत् विकास के लिए लोगों के बीच शांति, भाईचारे व सद्भावना बनाए रखने का प्रयास भी राष्ट्र के हित में और राष्ट्रीय भावना से जुड़े हैं। राष्ट्र भावना यह भी नहीं कि व्हाट्सएप, फेसबुक, ट्विटर या इन्स्टाग्राम यानी डिजिटल खिड़कियों में तिरंगा फहरा कर या बच्चों के हाथ में झंडा पकड़ा देने से हो गई राष्ट्रीय भक्ति पूरी। राष्ट्र से जुड़ी कोई चीज हो, कोई कार्य हो जो राष्ट्रीय सम्मान का प्रतीक हो, राष्ट्र को प्रगति के पथ पर ले जाए, विश्व में देश की गरिमा को बढ़ाए उसे प्यार किया जाना चाहिए, चाहे फिर वह देश की सुरक्षा हो या सेहत, शिक्षा, पौधारोपण, पर्यावरण संरक्षण, सुरक्षा, पानी की बर्बादी रोकना, तेज आवाज में लाउडस्पीकर न बजाना, यातायात के नियमों का पालन करना, महिलाओं, बुजुर्गों व शिक्षकों का सम्मान करना, सार्वजनिक धरोहरों का सम्मान करना व उन्हें सुरक्षित रखना हो।

बचपन जीवन का सबसे सुंदर, सलौना हिस्सा है। इसमें जितनी भी अमूल्य बातें बताई जाएँ उतना ही अच्छा है। एक नन्हें बीज की भाँति बच्चों में अंकुरण की समस्त सम्भावनाएँ होती हैं। उसके मन में अतीत सोया है, वर्तमान करवट ले रहा होता है और अदृश्य भविष्य मचल रहा होता है। उसके अंदर अपार शक्तियाँ निहित हैं। बीज के प्रस्फुटन की भाँति उसे एक ऐसे अनुकूल वातावरण की आवश्यकता है जो उसमें छुपी हुई प्रतिभा को उभार कर उचित दिशा दे सकें। यह दायित्व अभिभावकों, शिक्षकों और साहित्यकारों का है। अभिभावकों को अपने बच्चों के भविष्य की चिंता तो है, उनके सुख-सुविधाओं की फ़िक्र भी है परन्तु उनके पास उन्हें देने के लिए समय का अभाव है। शिशुवस्था से ही बच्चे अभिभावकों की स्नेहिल छत्रछाया तथा सुरक्षा से दूर होते जा रहे हैं। इस स्थिति में उनका संवेगात्मक विकास सकारात्मक परिणाम नहीं दे सकता। दूसरी ओर विद्यालयों में शिक्षा केवल पाठ्यक्रम तक ही सीमित है और यह पाठ्यक्रम इतना बोझिल है कि बच्चों की स्वाभाविक चंचलता पर अंकुश-सा लग गया है। ऐसे में बालसाहित्य रचयिता की बहुत बड़ी जिम्मेदारी है कि वह ऐसा रचनाकर्म करे

जिससे बच्चों में प्रेम, करुणा, दया, सद्भाव, अहिंसा और शांति जैसे मानवीय गुणों के साथ-साथ राष्ट्रीयता की भावना का विकास हो सके।

स्वतन्त्रता पूर्व बालसाहित्य की दृष्टि मिशनरी थी, ऋषि बंकिम चटर्जी का वंदेमातरम् एक गान नहीं एक आह्वान है, एक गीत नहीं एक गाथा है, अभिलाषा है, आकांक्षा है और महानता भी है। मोहम्मद इक़बाल का लिखा गीत-'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' ...और लाल बहादुर शास्त्री की प्रेरणा से मनोज कुमार का उपकार फिल्म के लिए लिखा गीत-'मेरे देश की धरती सोना उगले उगले हीरे-मोती', ने प्रत्येक देशवासी को राष्ट्रीय भावना से भर दिया था, सुभाषचंद्र बोस ने लालकिले पर लहराते तिरंगे की परिकल्पना की थी और 'दिल्ली चलो' का आह्वान किया था। 'कदम-कदम बढ़ाए जा, खुशी के गीत गाये जा, जो कौम से मिला तुझे, तू कौम पे लुटाये जा।' लोकमान्य तिलक का नारा- 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा', सुखदेव, चन्द्रशेखर आजाद, राजगुरु, गाँधी जी न जाने कितने देशभक्तों ने राष्ट्रभक्ति की अलख जगाई थी। बालसाहित्य में महापुरुषों की जीवनियों ने बच्चों में साहस और कर्तव्यबोध जगाया। उनमें नैतिक गुणों का विकास, राष्ट्रीयता की भावना के निर्माण तथा मानवीय मूल्यों के प्रति सजगता लाने के विभिन्न स्तरों पर प्रयास हुए। भारत भारती बाल पुस्तक माला के दो संस्करण निकले। चंदामामा और पराग जैसी पत्रिकाओं ने बालकों के सर्वांगीण विकास हेतु बालसाहित्य के मनोवैज्ञानिक पक्ष को खूब समझा है। सद बालसाहित्य का ही प्रभाव था कि विवेकानंद केवल 32 वर्ष की आयु में देव संस्कृति के पुरोधा बने, भगतसिंह ने 23 वर्ष की आयु में राष्ट्र भक्ति के ज़ज्बे के कारण फाँसी के फंदे का वरण किया था। इन्हें संस्कारों में, घुट्टी में राष्ट्रभक्ति पिलाई गई थी।

स्वतन्त्रता के बाद देश में नई चेतना का विकास हुआ और सरोकार भी बदले। बालसाहित्यकारों ने समयानुरूप, बालानुरूप साहित्य रचा। द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी से लेकर निरंकारदेव सेवक, हरिकृष्ण देवसरे, डॉ. श्रीप्रसाद, डॉ. राष्ट्रबंधु, चन्द्रपाल सिंह मयंक, डॉ. विनोदचंद्र पांडेय तथा सूर्यकुमार पांडेय, डॉ. सुरेन्द्र विक्रम, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', ठाकुर श्रीनाथसिंह, लल्लीप्रसाद पांडेय, शम्भूदयाल सक्सेना, शकुन्तला सिरोठिया आदि ने बालसाहित्य में राष्ट्रभक्ति व मनोवैज्ञानिक रचनाएँ लिखीं व बालसाहित्य को एक स्वतंत्र विधा के रूप में मनोवैज्ञानिक व मनोरंजक पृष्ठभूमि प्रदान की। राष्ट्रकवि सोहनलाल द्विवेदी की कविता की पंक्तियाँ देखिए- 'हम सब बाल सिपाही / माँ के घर के पहरेदार हैं/ कोई हाथ उठाए माँ पर/ तो नंगी तलवार हैं' /डॉ. राष्ट्रबंधु की कविता 'हम भारत के पहरेदार' में नन्हें-मुन्नों की यह प्रतिज्ञा कितनी पावन है- 'नन्हें-नन्हें इन कंधों पर/ रक्खा जाएगा सब भार/ हम भारत के वीर सिपाही/ हम भारत के पहरेदार।' इसी तरह चन्द्रपाल सिंह यादव मयंक की 'एक बनेंगे, नेक बनेंगे/ भारत के बच्चे सारे/ वीर बनेंगे, धीर बनेंगे/ माँ की आँखों के तारे।' शंकर सुल्तानपुरी की- 'युगों-युगों से वन्दनीय है/ माटी हिंदुस्तान की/ यह माटी शूरवीरों के अद्भुत बलिदान की।' उस समय के बालसाहित्य ने निश्चित ही राष्ट्र के प्रति सम्मान की भावना विकसित की। एक-दूसरे के प्रति जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा की संकीर्णता जैसे मलिन भावों से मुक्त कर मूक प्राणी मात्र के प्रति संवेदना और परस्पर सहयोग के भाव का संचरण किया।

वर्तमान में तेजी से बदल रहे अर्थप्रधान युग और एकल होते परिवारों में बच्चे भावनात्मक रूप से अभिभावकों से नहीं जुड़ पाते। दूसरा आज का बालक प्रबुद्ध है। ऐसे में बालसाहित्यकारों को बच्चों को इंटरनेट और गैजेट्स से दूर करने के लिए पहले से अधिक रोचक, मनोरंजक, चंचलता, चपलता और मिठास भरा

उद्देश्यपरक साहित्य लिखना आवश्यक हो गया है, ताकि वे इनसे विमुख होकर नैतिक गुणों का वरण कर सकें। चरित्र निर्माण के साथ-साथ जीवन की सच्चाइयों, अपने देश की संस्कृति, सभ्यता, संस्कार, परम्पराएँ व सामाजिक चेतना के प्रति सजग हो सकें।

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक से ही हिन्दी बालसाहित्य में विकास की दृष्टि से पूर्णतः समर्पित लेखकों की नई पीढ़ी अपने सृजन से बालसाहित्य को समृद्ध कर रही है। बच्चों की आवश्यकताओं और देश हित के सरोकारों से सम्बन्धित बालसाहित्य निरंतर लिखा जा रहा है। हिन्दी बालसाहित्य का रचना संसार दिन-ब-दिन परिपक्व और विकासशील हुआ है। उसमें गीत, कविता, कहानी, उपन्यास, जीवनी, नाटक, व्यंग्य निबन्ध, अनुवाद, समीक्षा व शोध का समावेश वृहद रूप से दिखाई देता है। देश भर में बालसाहित्य व्हाट्सअप ग्रुप बालसाहित्य की सभी विधाओं जैसे कविता, कहानी, पत्र-लेखन, ललित निबन्ध, यात्रा वृतांत, संस्मरण, आलेख, समीक्षा आदि में विमला भंडारी सहित अन्य संचालकों की निगरानी में नियमित भावाभिव्यक्ति कर रहे हैं। डॉ. शकुन्तला कालरा, प्रकाश मनु, डॉ. दिविक रमेश, डॉ. अजय जनमेजय, उषा यादव, डॉ. भैरूलाल गर्ग, विमला भंडारी, गोविन्द शर्मा, घमंडीलाल अग्रवाल, डॉ. जगदीशचन्द शर्मा, राकेश चक्र, गोविन्द भारद्वाज, डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, डॉ. नागेश पांडेय, डॉ. रामनिवास मानव, परशुराम शुक्ल, शाहदाब आलम, डॉ. फहीम अहमद, सुधा गुप्ता जगदीश, डॉ. सुरेन्द्र विक्रम, संजीव जायसवाल, डॉ. विकास द्वे, कुसुम अग्रवाल, सुकीर्ति भटनागर, डॉ. प्रीति प्रवीण खरे, राजकुमार जैन 'राजन', उदय किरोला, अजीम अंजुम, मंजरी शुक्ला, डॉ. शील कौशिक जैसे अनेक प्रतिष्ठित बालसाहित्यकार अपने-अपने क्षेत्र में लेखन के साथ-साथ पत्रिका सम्पादन व बालसाहित्य संस्थानों के माध्यम से बालसाहित्य के प्रचार-प्रसार व उन्नयन में गौरवशाली भूमिका निभा रहे हैं। ये सभी बालसाहित्यकार ज्ञानवर्द्धक, तार्किक, एवं वैज्ञानिक सोच से परिपूर्ण साहित्य लिख रहे हैं जो बच्चों को भविष्य में आने वाली चुनौतियों के लिए तैयार कर सकने में समर्थ हैं।

राष्ट्र भावना से ओत-प्रोत कुसुम अग्रवाल की कविता की पंक्तियाँ देखिए- 'भारत सुंदर फुलवारी/ हम सब फूल अनेक हैं/ रूप भले ही अलग-अलग हों/ भारतवासी एक हैं।' घमंडीलाल की कविता की पंक्तियाँ- 'प्यारा-प्यारा मेरा देश/ सजा-सँवारा मेरा देश/ दुनिया जिसको नमन करे/ नयन सितारा मेरा देश।' डॉ. मेजर शक्तिराज की- 'देश की बातें कहते-कहते/ दादी हमको करती प्यार/ बेटे नहीं बिखरने देना/ देश की आजादी के तार।' कविताओं के अतिरिक्त बालसाहित्य की अन्य विधाओं ने भी राष्ट्रीय भावना को पुष्पित व प्रफुल्लित करने में बराबर का योगदान दिया है। हाल ही में संजीव जायसवाल का देश भक्ति से ओत-प्रोत उपन्यास 'मिट्टी मेरे देश की' एन.बी.टी. से प्रकाशित हुआ है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि बच्चों के स्वस्थ, बौद्धिक, भावनात्मक एवं पूर्ण मानसिक विकास हेतु बालसाहित्य का खूब रचाव हो रहा है जो उन्हें राष्ट्र के समग्र उत्थान के प्रति सजग-सक्रिय-सचेत करने में सक्षम है, उन्हें एक जिम्मेदार नागरिक बनाने के लिए कृतसंकल्पित है। बस जरूरत है ऐसे अभिभावकों और शिक्षकों की जो बालसाहित्य की महता को समझ कर सर्वप्रथम स्वयं पाठक बनें और फिर बच्चों को पढ़ने के लिए प्रेरित करें। देश के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह राष्ट्र हित में बच्चों के व्यक्तित्व निर्माण में अपनी महती भूमिका का निर्वहन करें। तभी हम एक सुसंस्कृत, सभ्य व सेहतमंद राष्ट्र का निर्माण कर सकेंगे।

सम्पर्क : *सिरसा (हरियाणा)*

श्याम नारायण श्रीवास्तव

हिंदी बाल साहित्य में लोरी गीत और सिरोठिया जी

निंदिया प्यारी आ जा तू /मुन्ने को बहला जा तू
तुझको खील मिठाई दूँगी/दूँगी नये खिलौने
लाल सुनहरी चुनरी दूँगी/नई मँगाई मैंने
रागसुरीले गा जा तू /निंदिया प्यारी आ जा तू

ये लोरी श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया (1915-2005) जी की है। ये क्या इस तरह की अर्द्धशतक से अधिक लोरियाँ सिरोठिया जी के 'बाल संसार समग्र' में संग्रहीत हैं। जिन सिरोठिया जी के लिए छायावाद की महान कवयित्रि महादेवी वर्मा जी ने एक समारोह में कहा था-

''श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया 1933-34 में मेरी प्रिय छात्रा रही है। तब भी वह कविताएँ लिखती थी और अब तो वह सक्षम कवयित्रि है। साथ ही उसकी लेखनी बाल-मन की भावनाओं को शब्द चित्रों में आँकती रहती है। बालक का मन पाए बिना कोई व्यक्ति बालक के भावों को, कल्पनाओं को, शब्दों में नहीं उतार पाता और उस मन को पाने वाले के साथ वृक्ष बोलते हैं, फूल हँसते हैं, पशु-पक्षी कथा कहते हैं। मेरा आशीर्वाद है कि वह मन बालक ही रहे और निरंतर बालक के भाव चित्र अंकित करती रहे।''

छायावाद और प्रकृति के कुशल चितेरे कवि सुमित्रानंदन पन्त जी कहते हैं- ''सुश्री शकुन्तला सिरोठिया के गीत, मर्म-मधुर भावनाओं की झंकारों से ओत-प्रोत हैं। इन गीतों में सरल सात्विक व्यक्तित्व के जीवन संघर्ष की अभिव्यक्ति है। भाषा में एक गूढ़ अनिर्वचनीय सुख-दु:ख भरा आकर्षण है।'' तो प्रसिद्ध नाटककार व साहित्यकार डॉक्टर राम कुमार वर्मा जी कहते हैं कि श्रीमती सिरोठिया की काव्यश्री से हिंदी साहित्य गौरवान्वित हुआ है। इन्होंने बाल साहित्य के मुरझाए अंकुर को सींच कर पुन: पल्लवित और कुसुमित किया है।

श्रेष्ठ रचनाकार निरंकार देव सेवक जी की उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ से प्रकाशित 'बाल गीत साहित्य' (इतिहास और समीक्षा) एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। जिसमें उन्होंने सिरोठिया जी के लोरी गीतों की चर्चा करते हुए लिखा है, ''लोरियाँ लिखकर हिन्दी में जिन्होंने सबसे अधिक यश अर्जित किया है वे श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया हैं। उनकी लोरियों का क्षेत्र व्यापक भी है और माँ के मन की ममता और भावनाओं की कोमलता का उनमें अच्छा चित्रण है। उनकी एक प्रसिद्ध लोरी है-

चाँदनी की चादर उढ़ाऊँ तुझे मोहना/सोजा मेरे लालना
सूरज भी सो गया, पंथ सभी सो गये/पत्तों की गोदी में, फूल सभी खो गये
तू भी चुप सो जा, झुलाऊँ तुझे पालना/सोजा मेरे लालना

लोरी गीत को परिभाषित करते हुए बाल साहित्य के प्रणेता निरंकारदेव सेवक जी ने इस पुस्तक में आगे लिखा है, ''लोरी उन गीतों को कहते हैं जो नन्हें मुन्नों को सुनाने के लिए गाये जाते हैं। लोरी शब्द संस्कृत के लोल शब्द का अपभ्रंश है जिसका अर्थ होता है हिलाना, डुलाना या थपथपाना। माताएँ अपने बच्चों को गोद में लेकर, कंधे पर डालकर या पलने में लिटाकर थपथपी देकर सुलाती हैं और उनकी आँखों में नींद को बुलाने के लिए मुख से मधुर शब्दों में कुछ ऐसे गीत सुनाती हैं जिन्हें सुनकर बच्चों को जल्दी ही नींद आ जाती है।''

उन्होंने लोरी के इतिहास पर बात करते हुए लिखा है कि हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में बाल गीतों की तरह लोरियों के भी आदि कवि सूरदास ही माने जाते हैं। उन्होंने बाल कृष्ण को सुलाने, जगाने के लिए ऐसे सुंदर गीत लिखे हैं जिनकी कोमलता हमें अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलती।

मेरे लाल की आऊ निदरिया काहे न आन सुलावै
तू काहे न बेगि सी आवै तोको कान्ह बुलावै

बाल साहित्य को निरंतर समृद्ध बनाने में प्रयत्नशील डॉ. प्रकाश मनु का 'हिन्दी बाल साहित्य का इतिहास' एक उत्तम ग्रन्थ है। जो बाल साहित्य की व्यापक जानकारियों से परिपूर्ण है। डॉ. प्रकाश मनु ने इस ग्रन्थ में लोरी के विषय में हिन्दी के मूर्धन्य कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी का जिक्र करते हुए लिखा है कि हरिऔध जी उन कवियों में से हैं, जिन्हें पढ़कर बहुत से अन्य कवियों ने भी लोरियाँ लिखना शुरू किया था और यों हिन्दी में लोरियाँ लिखने की एक परम्परा ही बनती चली गई। आगे चलकर कन्हैयालाल 'मत्त', शम्भुदयाल सक्सेना, शकुन्तला सिरोठिया, ब्रजकिशोर नारायण, निरंकार देव सेवक, लक्ष्मी देवी चन्द्रिका, कमला चौधरी, विद्यावती कोकिल, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, राष्ट्रबंधु आदि ने एक से एक सुंदर लोरियाँ लिखी हैं।

उन्होंने इसमें श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया जी के विषय में विस्तार से लिखा है। 'उनकी बाल कहानियाँ थोड़ी परम्परागत ढंग की होते हुए भी किस्सागोई से भरपूर और बड़ी सरस हैं। जिन्हें बच्चे चाव से पढ़ते हैं। जीवन का घात-प्रतिघात वहाँ खुलकर आता है और बालमन की समस्याएँ और जटिलताएँ भी।'

उनकी चुनिन्दा दस बाल कहानियों के संग्रह 'गुल मोहर' को केंद्र में रखते हुए डॉ. प्रकाश मनु का कहना है, ''इन कहानियों की भाषा और संवेदना कविता के रंग में रँगी हुई हैं। इनमें सबसे चर्चित और बेहद चुस्त-दुरुस्त कहानी है, 'शेरू की जासूसी।' कहानी 'अपने ही घर में' की चर्चा करते हुए उन्होंने आगे लिखा है, ''शकुन्तला सिरोठिया की कई कहानियाँ सामाजिक समरसता को लेकर लिखी गई हैं।'' 'धर्म का संगम' का जिक्र करते हुए लिखा है, ''शकुन्तला जी ने ऐसी और भी कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें बच्चों के मन की उदारता, परस्पर प्रेम और धार्मिक सहिष्णुता की बड़ी सुन्दर झलक शब्दों में उतर आई है।''

''बच्चों का उन्मुक्त मन पढ़ते हुए, उसी के मुताबिक लय और भाषा की मस्ती साधने की कला शकुन्तला सिरोठिया के यहाँ भी नि:संदेह अनूठी है- हाथी आता झूम के/धरती मिट्टी चूमके। तथा बदल आया झूम के/पर्वत चोटी चूम के।

डॉ. प्रकाश मनु ने इस ग्रन्थ में सिरोठिया जी के लोरी गीत व बाल कविताओं के चर्चित संग्रह का 'शिशुगीत माला', 'सोन चिरैया', 'सोओ सुख निंदिया', 'गा ले मुन्ना', 'चटकीले फूल', 'आ री निंदिया',

'कारे मेघा पानी दे' आदि को प्रमुखता से रेखांकित किया है।

निरंकार देव सेवक जी ने एक स्थान पर लोरी लेखन के प्रति बेबाक टिप्पणी करते हुए लिखा है, ''लोरियाँ लिखना वास्तव में पुरुषों का काम भी नहीं है। माताओं के ही मनोभाव उनमें व्यक्त होते हैं और वही उन्हें गाती हैं। पुरुष प्रयत्न करके भी भावों की वह कोमलता और कल्पनाओं की वह बारीकी नहीं ला सकते, जिनके आधार पर मधुर और सरस लोरियाँ लिखी जाती हैं।''

सिरोठिया जी राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश व छत्तीसगढ़ से सीधा सम्बन्ध रहा है और हिंदी बाल कहानी, कविता, नाटक आदि के साथ 'लोरी गीत' हेतु बाल साहित्याकाश में एक उच्च स्थान प्राप्त है। समीक्षक उन्हें 'लोरी सम्राट' कहते हैं। सिरोठिया जी ने अपनी लोरियों में माँ की ममता को भर दिया है। उनके जीवन परिचय व अतीत के पृष्ठों को क्रम से पल्टा जाये तो तमाम जानकारियाँ चलचित्र की भाँति स्पष्ट होती चली जाती हैं। श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया जी का जन्म 15 दिसम्बर 1915 को राजस्थान के कोटा जिला में हुआ था। आपकी माता श्रीमती सुजानी शर्मा और पिता डॉक्टर भँवरलाल शर्मा जी हैं जो पहले राजस्थान राज्य में सेवारत थे। तत्पश्चात उत्तर प्रदेश सरकार की सेवा में आ गये। वे एक कुशल चिकित्सक थे। अत्यंत उदार और आधुनिक विचारों के धनी डॉ. शर्मा जी बौद्ध धर्म के ज्ञाता, चिंतक तथा साहित्यकार भी थे।

जिसका सीधा प्रभाव सिरोठिया जी पर पड़ा किन्तु बाल साहित्य की लेखिका सिरोठिया जी को माँ का प्यार अधिक दिनों तक न मिल सका। मात्र दो वर्ष की अवस्था में ही आपकी माता जी का स्वर्गवास हो गया था। परिवार में दादी या चाची के न होने से सिरोठिया जी का शैशव काल ननिहाल में बीता। इस बीच इनके पिता जी ने दो शादियाँ कीं, किन्तु दस वर्षों के अन्तराल में दोनों का ही स्वर्गवास हो गया। निश्चय ही सिरोठिया जी को माँ का सार्थक प्यार-दुलार न प्राप्त हो सका।

बचपन से ही आपका साहित्य व प्रकृति के प्रति विशेष आकर्षण था। इसलिए मनोरम प्रकृति ने आपके हृदय को मधुर व कोमल भावनाओं से ओतप्रोत कर दिया। 14 वर्ष की अवस्था तक का समय उत्तर प्रदेश के विंध्याचल, मिर्जापुर, लालगंज तथा चुनार जैसे रमणीय स्थलों में बीता। इसी अवस्था में आपने हिंदी के प्राचीन व आधुनिक साहित्यकारों की रचनाओं का अध्ययन किया। परिणाम स्वरूप साहित्य में रुचि जागृत हुई। 1929 में आपकी एक बाल कविता 'शिशु' बाल साहित्य पत्रिका में प्रकाशित हुई। अध्ययन एवं लेखन के प्रति आकर्षण को देखते हुए पिता डॉ. शर्मा जी ने आपको आगे की शिक्षा ग्रहण करने हेतु प्रयाग भेज दिया। प्रयाग में सिरोठिया जी का परिचय महादेवी वर्मा जी व तत्कालीन अन्य साहित्यकारों से हुआ।

1935 में मध्य प्रदेश के दमोह के मूल निवासी श्री भुवन भूषन सिरोठिया जी से विवाह हुआ और वे शकुन्तला शर्मा से शकुन्तला सिरोठिया हो गईं। आपके पति मध्य प्रदेश में प्रथम श्रेणी के न्यायाधीश थे। आपके श्वसुर श्री भगवानदत्त सिरोठिया को साहित्य रंजन की उपाधि मिली थी। तत्कालीन वरिष्ठ साहित्यकारों में सर्वश्री कामता प्रसाद गुरु, माखनलाल चतुर्वेदी, राय बहादुर साहब, जगन्नाथ प्रसाद भानु, पदुमलाल पुन्नालाल बक्शी आदि उनके मित्रों से थे। श्रीमती सिरोठिया ऐसे साहित्यिक परिवार की बहू बन कर आईं, बाद में उन्होंने अपना स्थायी निवास प्रयाग में बनाया और शिक्षा विभाग में अध्यापन कार्य

के साथ-साथ लेखन में भी सक्रिय रहीं।

प्रारम्भ से आपकी रुचि बाल साहित्य के क्षेत्र में अधिक रही। परिणाम स्वरूप बाल साहित्य में आपने महत्त्वपूर्ण कार्य करते हुए बाल कहानियाँ, कविताएँ, नाटक आदि की रचना की। जिसमें कहानियाँ शेरू की वीरता, नीना की भेंट, बालक नेपोलियन की डायरी, चिड़ियों की सौगात, बेला चली घूमने, टिक्कू ने चलना सीखा, छोटा मुसाफिर लम्बा सफ़र, भयानक घाटी और शेर आदि के नाम से कहानी संग्रह का रूप लेती चली गईं।

बाल साहित्य को लेकर एक चिन्तन के तहत श्रीमती सिरोठिया जी का कहना था कि आज भारत में जिस प्रकार सद्बाल-साहित्य की आवश्यकता का अनुभव हो रहा है, वैसा शायद ही किसी युग में हुआ हो। उनका मानना है कि बालक को यदि प्रारम्भ से ही राष्ट्रभक्ति, नैतिकता, अनुशासन, मानवता, समाज सेवा आदि की उदात्त भावना तथा शुचि संस्कार का साहित्य सुनाया और पढ़ाया जाये तो निश्चय ही वह राष्ट्र को उच्च शिखर पर खड़ा कर देगा। सिरोठिया जी ने मात्र बाल साहित्य ही नहीं बल्कि वयस्कों के लिए भी रचना की जिसमें उनके काव्य संग्रह 'सुधि के स्वर', 'अंश-अंश अभिव्यक्ति', 'चाँद इतना हँसा', 'मेरे परदेशी' आदि प्रमुख हैं।

लगभग 70 वर्ष की आयु में सिरोठिया जी ने बाल साहित्य में संलग्न रचनाकारों को सम्मानित व उनकी कृतियों को पुरस्कृत करने की योजना बनाई। मैं उन दिनों इलाहाबाद में ही उनके घर के निकट बाई का बाग़ मोहल्ले में ही अपने साहित्यिक मित्र डॉ. भगवानप्रसाद उपाध्याय जी के साथ रहता था। उपाध्याय जी पत्रकारिता करते थे और मैंने आईइआरटी इलाहाबाद से यांत्रिक इंजीनियरिंग की पढ़ाई करके वहीं नैनी में 1984 से एक फैक्ट्री में नौकरी करना शुरू किया था। साहित्यिक अभिरुचि के कारण ही हम दोनों एक साथ एक कमरे में रहते थे। वहीं से उनके यहाँ आना-जाना शुरू हुआ। हम उन्हें दादी कहकर बुलाते थे। उपाध्याय जी का सिरोठिया जी से पहले से ही परिचय था।

इसी बीच 1984 में ही साहित्यकारों को पुरस्कार देने की योजना भी बनी थी। 'शकुन्तला सिरोठिया बाल साहित्य पुरस्कार' से साहित्यकारों को सम्मानित किया जाने लगा। आयोजन को सफलता पूर्वक पूर्ण करने में हम सब सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में होते थे। जिसमें जनपद के और भी युवा साहित्यकार शामिल थे। 1989 में वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. रामकुमार वर्मा जी के नाम से 'बाल नाटक पुरस्कार' तथा 1993 में 'भवानीप्रसाद गुप्त- बाल कहानी पुरस्कार' तथा इसी के साथ 1986 से 'अभिषेकश्री' के अंतर्गत प्रयागराज के यशस्वी एवं वयोवृद्ध साहित्यकारों को सम्मानित किया जाने लगा। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बाल साहित्य पुरस्कार और सम्मान योजना को वे बिना सरकारी या गैरसरकारी अनुदान के अपने बल पर शानदार ढंग से आयोजित करती थीं।

इस प्रकार के विभिन्न पुरस्कारों से जिन यशस्वी साहित्यकारों को सम्मानित किया गया या फिर उनकी कृतियों पर उन्हें पुरस्कृत किया गया उसमें प्रमुख रूप से थे- डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, श्रीमती शकुन्तला वर्मा, राधेश्याम उपाध्याय, गोविन्द शर्मा, शिवकुमार गोयल, बाल शौरि रेड्डी, डॉ. शोभनाथ लाल, नरेशचन्द्र सक्सेना 'सैनिक', रामबचन आनन्द, रामचन्द्र मिश्र, श्रीमती सरोजिनी अग्रवाल, साबिर हुसेन, नारायणलाल परमार, भगवतीप्रसाद द्विवेदी, पृथ्वीनाथ पाण्डेय, घमंडीलाल अग्रवाल, विष्णुकान्त

पाण्डेय, जगदीशचन्द्र शर्मा, रामनिवास मानव, वसु मालवीय, कलीम आनन्द, शम्भुप्रसाद श्रीवास्तव, हरिकृष्ण तैलंग, प्रेमनारायण गौढ़, योगेन्द्रकुमार लल्ला, डॉ. हरीश निगम, डॉ. भैरूलाल गर्ग, डॉ. राजेन्द्र मिश्र, डॉ. चन्द्रिकादत्त शर्मा, ठाकुर श्रीनाथ सिंह, जगपति चतुर्वेदी, सरदार बलवंत सिंह, रामबहोरी शुक्ल, डॉ. जगदीश गुप्त, विष्णुकान्त मालवीय, हेरम्ब मिश्र, डॉ. राष्ट्रबन्धु, मानवती आर्या, युक्ति भद्र दीक्षित, डॉ. मोहन अवस्थी, श्याममोहन त्रिवेदी, डॉ. सुरेन्द्र विक्रम, चक्रधर नलिन आदि के साथ और भी बहुत से साहित्यकारों की एक लम्बी शृंखला है।

हालाँकि पुरस्कार को लेकर सिरोठिया जी का कहना था कि किसी विद्वान और साहित्यिक-विभूति का मूल्यांकन पुरस्कार राशि से नहीं किया जा सकता। पुरस्कार तो मात्र श्रद्धा सुमन हैं। स्नेह का तिलक है। हमारी अभिषेकश्री संस्था अपने सम्मानित साहित्य मनीषियों को हृदय की गहराई से अपनी श्रद्धा समर्पित करती है। किन्तु जब किसी नये पुरस्कार की घोषणा अभिषेकश्री संस्था के तहत होती तो सिरोठिया जी कहती हैं ''जब किसी पौधे के वृत पर नवीन कोंपले प्रस्फुटित होती हैं और जब नव-वधू सी सकुचाती, शरमाती अपने पल्लवी आवरण को पीछे सरकाती कलिका मुस्करा कर झाँकती है तब माली का मन प्रसन्नता से गुनगुनाने लगता है।''

''हमारी संस्था को भी जब किसी का स्नेह और विश्वास मिलता है और जब उसमें किसी नवीन पुरस्कार का प्रवेश होता है तब हमारे मन में भी अपार सुख की अनुभूति होती है। गत वर्ष 'भवानी प्रसाद बाल कहानी पुरस्कार' तथा इस वर्ष सम्मलेन बाल भारती पुरस्कार के प्रवेश से हमारे पुरस्कार परिवार में वृद्धि हुई है इससे हमारा मनोबल और आत्मविश्वास बढ़ा है।' ये बात 1993 की है। संस्था 'अभिषेकश्री' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका भी नियमित प्रकाशित करती थी। जिसमें संस्था की तमाम गतिविधियों की रपट के साथ विभिन्न स्तरीय रचनाकारों के आलेख व कविताएँ भी शामिल होती थीं।

साप्ताहिक हिन्दुस्तान के पूर्व सम्पादक शरदेन्दु जी ने सिरोठिया जी को एक पत्र में लिखा था कि आपने बच्चों को मीठी-मीठी लोरियाँ दी हैं। बाल साहित्यकारों को पुरस्कृत तथा वयोवृद्ध विद्वानों को सम्मान प्रदान कर श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया दूसरों के लिए प्रेरणा बन गईं हैं। वस्तुतः शकुन्तला जी एक व्यक्ति नहीं एक संस्था बन गई हैं। इसी प्रकार देश के बहुत से साहित्यकारों के पत्र उनकी रचनाओं या कार्यों के प्रति आते रहते थे जिसमें श्री वियोगी हरि, विष्णु प्रभाकर, लक्ष्मीनारायण मिश्र, शिवशंकर मिश्र, संतराम बी.ए., पद्मश्री चिरंजीत, डॉ. रामेश्वर शुक्ल अंचल, निरंकारदेव सेवक, डॉ. विश्वनाथ याज्ञिक, श्याममोहन त्रिवेदी, चक्रधर नलिन, डॉ. विवेकी राय, डॉ. संत कुमार, डॉ. ब्रजभूषण सिंह आदर्श, रामनिरंजन शर्मा, शम्भुप्रसाद श्रीवास्तव, नर्मदेश्वर चतुर्वेदी आदि प्रमुख हैं।

साहित्य सेवा हेतु सिरोठिया जी को पंजाब कला अकादमी, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, हिंदी साहित्य सम्मलेन प्रयाग, बाल कल्याण संस्थान, विक्रमशिला विद्यापीठ आदि स्थापित संस्थानों ने सम्मानित किया। निश्चय ही बाल साहित्य के क्षेत्र में श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया जी ने बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया है जिसके कारण वे मात्र प्रयागराज ही नहीं भारत के कई प्रान्तों में अपनी पहचान छोड़ गईं हैं। नब्बे वर्ष की उम्र में सिरोठिया जी का स्वर्गवास 5 जून 2005 में प्रयागराज में हुआ। श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया जी द्वारा हम सबको जो स्नेह प्राप्त हुआ है उसे हम आज भी सँजोये हुए हैं।

इतने बड़े साहित्यिक नगर इलाहाबाद में सिरोठिया जी के स्मृति में कोई विशेष आयोजन नहीं होता। जो पुरस्कार योजना उन्होंने प्रारम्भ की थी। सभी बंद हो चुकी हैं।

अभिषेकश्री पत्रिका का प्रकाशन भी बंद है। वाराणसी से 'बाल संसार समग्र' का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ था। समग्र में प्रथम लिखे होने के कारण मैंने प्रकाशक से द्वितीय भाग की बात की तो ज्ञात हुआ कि प्रकाशन की योजना थी लेकिन दूसरे खंड की सामग्री नहीं प्राप्त हुई थी। सिरोठिया जी के घर से भी नहीं ज्ञात हुआ कि दूसरे खंड की क्या रूपरेखा थी। फिर भी मेरा प्रयास जारी है कि उनकी शेष रचनाएँ पुस्तक का रूप लेकर पाठक के समक्ष आयें।

बाल गीत और उसमें भी शिशुओं का प्रिय गीत जिसे वे माँ के द्वारा सुनते-सुनते निद्रारानी के आगोश में चले जाते हैं अर्थात् लोरी गीत रचना हेतु तो श्रीमती सिरोठिया जी को सदैव स्मरण किया जाएगा। आरी निदिया के तहत आपने कई मधुर लोरियों की रचना की है। शिशुओं हेतु लोरी रचना में तो उन्हें विशेष महारत हासिल थी।

इसी के साथ-साथ आपने 'शिशु नगर' नामक नाटक भी लिखा। इन सभी रचनाओं को हिंदी प्रचारक पब्लिकेशन ने बाल संसार समग्र के रूप में प्रकाशित किया है। जिसमें से कई कहानी व कविता संग्रह पूर्व में प्रकाशित भी हो चुके थे। 'आरी निंदिया' व 'सोओ सुख निंदिया' के तहत उन्होंने शिशुओं हेतु ढेर सारी लोरियों की रचना की है जैसे-

आ जा निंदिया, चाँद की बिंदिया, सो जा प्यारे लाल

आँख बंद कर सो जा मुन्ना, तुझे सुनाऊँ लोरी

चाँद लोक से परियाँ उतरीं कुछ काली कुछ गोरी/सो जा मुन्ना निंदिया आयी/ओढ़े चुनरी लाल, सो जा मेरे लाल

लोरी से हटकर भी सिरोठिया ने बहुत सी रचनाएँ रचीं। जिसमें बाल साहित्य के तहत ही उनकी कविता ''खेतिहर'' लोगों में श्रमिक के प्रति एक अलग तरह के सम्मान की भावना उत्पन्न करती है-

ये जीने के अभ्यासी हैं इन पर हँसो न भैया,/नील गगन की चादर इनकी धरती इनकी मैया

नहीं चाहते राजमहल ये सुख की सेज न जाने,/नहीं माँगते षटरस भोजन सुख से ये अनजाने

किसानों को आगाह करतीं श्रीमती सिरोठिया जी लिखती हैं कि-

घिर-घिर आये बदरा भैया, चलो खेत की ओर

कल खेती में होगा सोना, बीज आज ही होगा बोना

डरो न आँधी पानी में भी, नीद न गहरी सोना होगा

तब मोती की फसल कटेगी, आज लगा लो ज़ोर

भैया चलो खेत की ओर, जब फिर होगी भोर

बाल साहित्य के परिदृश्य का एकाग्रता से अध्ययन एवं समीक्षात्मक व आलोचनात्मक लेखन में गहरी पैठ रखने वाले बन्धु कुशावर्ती जी ने अपनी महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'बाल साहित्यालोचन-अभिनव हस्तक्षेप' में सिरोठिया जी के साहित्य की उपलब्धता को लेकर गहरी चिंता व्यक्त की है। वे कहते हैं, 'बाल साहित्य में हिन्दी महिला लेखिकाओं के प्रतिनिधित्व के साथ ही श्रेष्ठ बालसाहित्य लेखन के

फलस्वरूप महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व रही हैं शकुन्तला सिरोठिया। कितना अच्छा होता की उनका समग्र-बाल साहित्य एकाधिक खंडों में प्रकाशित होकर सुलभ होता।'

प्रयागराज के हिन्दुस्तानी एकेडेमी की पत्रिका 'हिन्दुस्तानी' ने भी सिरोठिया जी के जन्म शताब्दी पर एक महत्त्वपूर्ण विशेषांक प्रकाशित किया था। जिसमें साहित्यकार बन्धु कुशावर्ती जी ने सिरोठिया जी के लोरी पर एक विशेष बात कही है। उन्होंने लिखा है कि प्रारम्भ से ही प्राय: जो लोरी गीत लिखे गये हैं, वे बालक पर केन्द्रित रहे हैं। बालिका विशेष पर यदि किसी ने लोरी लिखा है तो सिरोठिया जी ने।

सिरोठिया जी के लोरी गीत को लेकर निश्चय ही यह एक महत्त्वपूर्ण टिप्पणी है। उदाहरण के तौर ये लोरी सराहनीय है-

सो जा गुड़िया रानी, तेरी कल कर दूँगी शादी
मधुर-मधुर मेरे द्वारे पर बजेगी खूब शहनाई
तुझे विदा करके रानी, आएगी मुझे रुलाई
तू मत रोना लेकिन, गुड्डे के संग जाना
चंदा सा दूल्हा पाकर गुड़िया, दुल्हन का काम निभाना

सिरोठिया जी के जन्मशताब्दी पर बाल वाटिका के सम्पादक व वरिष्ठ बाल साहित्यकार डॉ. भैरूलाल गर्ग जी से एक विशेषांक निकालने हेतु मेरी चर्चा हुई। जिसके परिणाम स्वरूप काफी भागदौड़ के पश्चात् सिरोठिया जी पर डॉ. भगवानप्रसाद उपाध्याय व नरेंद्र सिरोठिया जी (सिरोठिया जी के सुपुत्र) की सहायता से हम एक अच्छा विशेषांक प्रकाशित कर सके थे। बाल वाटिका पत्रिका के इसी विशेषांक में उनका एक आत्मकथ्य जिसे बाल साहित्य के चर्चित रचनाकार विनोदचन्द्र पाण्डेय 'विनोद' जी ने प्रस्तुत किया था। उस आत्मकथ्य में सिरोठिया जी ने लिखा है- ''1959 से 1962 के बीच मैंने खूब लिखा। बालसखा, पराग, धर्मयुग, जीवन शिक्षा आदि पत्रों में खूब छपी भी। उन दिनों मैंने प्रभाती और लोरियाँ भी खूब लिखीं। 'आरी निंदिया' लोरी की पुस्तक छपी तो सरकार ने उसकी 13 हजार की रिकार्ड खरीद की।''

निश्चय ही जब भी हिन्दी बाल साहित्य में लोरी गीतों की चर्चा होगी। सिरोठिया जी अवश्य याद आएँगी। आज श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया जी सशरीर अवश्य ही इस धरा पर नहीं हैं लेकिन जब भी बाई का बाग़ इलाहाबाद में उनके छोटे पुत्र श्री नरेंद्र नाथ सिरोठिया जी से मिलने आवास पर जाता हूँ तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे अभी माननीया दादी शकुन्तला सिरोठिया जी अचानक प्रकट हो जाएँगी और हाल-चाल पूछने लगेंगी।

सम्पर्क : *रायगढ़ (छ. ग.)*

डॉ. सुरेन्द्र विक्रम

बालसाहित्य के संदर्भ में

बालसाहित्य बच्चों के लिए तो जरूरी है ही, बड़ों को भी इसकी गति, प्रगति और उपलब्धता की सही जानकारी अत्यंत आवश्यक है। ऐसा इसलिए भी है क्योंकि बच्चों को पत्रिकाएँ और पुस्तकें उपलब्ध कराने का दायित्त्व अभिभावकों का ही होता है। अभिभावक पाठ्यपुस्तकें तो बच्चों को आसानी से उपलब्ध करा देते हैं मगर बालोपयोगी पुस्तकें और बाल-पत्रिकाओं को उपलब्ध कराने में उन्हें पसीना आ जाता है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि अभिभावकों को न तो उपलब्ध बालसाहित्य की जानकारी होती है और न ही उन्हें यही पता चलता है कि बालोपयोगी पुस्तकें और पत्रिकाएँ कहाँ से मिलेंगी?

ऊपर उठाए गए सवाल के बहाने इस आलेख में बालसाहित्य पर केन्द्रित उन समस्याओं पर भी विचार किया जाएगा जिनसे हिन्दी का बालसाहित्य जूझ रहा है। बच्चों के बीच में घुसपैठ बनाकर मीडिया, कंप्यूटर, मोबाइल और इन्टरनेट कैसे बालसाहित्य को बेदखल करने पर आमादा हैं।

बालसाहित्य से लंबे समय तक जुड़े रहने के कारण मैंने महसूस किया है कि जब बच्चों के प्रति ही समाज में गंभीरता नहीं है तो उनके साहित्य के प्रति जागरूकता कैसे हो सकती है? महत्त्वपूर्ण मुद्दा यह है कि हम बच्चों के अधिकारों व हितों की रक्षा के प्रति कब जागरूक होकर आवश्यक कदम उठाएँगे?

यह प्रश्न विचारणीय होने के साथ-साथ पेचीदा भी है। पेचीदा इस अर्थ में है कि यहाँ महत्त्वपूर्ण प्रश्न अस्तित्त्व की रक्षा का भी जुड़ा हुआ है। बालसाहित्य का अस्तित्त्व बच्चों के भविष्य से अच्छी तरह समझने के लिए हमें विलियम वड्र्सवर्थ के इस सूक्तिपरक वाक्य की गहराई में जाना होगा जिसमें वह बच्चे में ही संपूर्ण व्यक्तित्व की कल्पना करता है- "Child is the father of man."

जहाँ तक बालसाहित्य की परंपरा और ऐतिहासिकता का सवाल है-बालसाहित्य के कदम पिछले सौ से अधिक वर्षों में धीरे-धीरे ही सही लेकिन पूरी ऊर्जा के साथ आगे बढ़े हैं। इस यात्रा में बच्चों को जोड़ने के साथ-साथ उनकी रोजमर्रा की जरूरतों, समस्याओं, आवश्यकताओं और पठन-पाठन पर भी बालसाहित्यकारों की पैनी नजर रही है। इस नजर में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तकनीक को भी समाहित किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि बालसाहित्य की विकास यात्रा सुनियोजित ढंग से आगे-आगे चलती अवश्य रही है।

इस यात्रा का एक व्यवस्थित इतिहास है मगर इस ओर लोगों का कम ध्यान गया है। दरअसल इतिहास प्रामाणिक और तथ्यपरक चीजों को सामने लाने का काम करता है, इसीलिए यह श्रमसाध्य कार्य है। इसमें अपनी पसंद-नापसंद की गुंजाइश बिलकुल नहीं होती है। अगर इतिहास में बैलेंस नहीं है तो भी उसकी स्वीकारोक्ति प्रबुद्ध पाठकों के बीच में नहीं होती है। बालसाहित्य का इतिहास विशेष रूप से क्रमबद्धता, प्रामाणिकता, विश्वसनीयता और व्यापक सोच की माँग करता है। यह सवाल आज भी मुँह बाए खड़ा है कि बालसाहित्य का प्रामाणिक तथ्यपरक सुव्यवस्थित और राग-विराग से परे इतिहास कब लिखा जाएगा?

यह शुभ संकेत है कि इधर हिन्दी बालसाहित्य के इतिहास को लिपिबद्ध करने की दिशा में सुगबुगाहट शुरू हो गई है क्योंकि भारत सरकार के विदेश मंत्रालय की ओर से पहल प्रारंभ की गई है। किसी भी विषय/विधा का इतिहास अपने आप में बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। समीक्षा/आलोचना और शोध इतिहास का अहम हिस्सा होता है। अगर किसी इतिहास के नाम पर लिखे गये ग्रंथ में यह हिस्सा गायब है तो उसे मुकम्मल इतिहास बिलकुल नहीं कह सकते हैं।

कहने के लिए तो यह इतिहास लेखन निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया जैसे-जैसे आगे बढ़ती जाएगी इतिहास का भविष्य पुष्ट होता चला जाएगा। यह भी विचारणीय है कि इतिहास का पुष्ट होना हमारी धरोहर की अस्मिता से भी जुड़ा हुआ है। अगर ऐसा नहीं होता तो कदाचित् प्रो. बच्चन सिंह को हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास नहीं लिखना पड़ता। हिन्दी बालसाहित्य का इतिहास भी बिना किसी भेदभाव के, लागडॉट से परे प्रवृत्तिपरक और गवेषणात्मक होना ही चाहिए। केवल कुछ लोगों की प्रशंसा और बाकी लोगों की जानबूझकर अवहेलना इतिहास का अतिरंजित रूप ही प्रस्तुत करता है।

इस वर्ष के प्रारंभ में राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग, नई दिल्ली द्वारा जो बैठक (इसका नाम संगोष्ठी दिया गया) आयोजित की गई थी उसका मुख्य उद्देश्य मॉरीशस में आयोजित 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन में की गई अनुशंसाओं के क्रियान्वयन से था। इस सम्मेलन में इन पंक्तियों के लेखक को भारत सरकार के विदेश मंत्रालय की ओर से हिन्दी बालसाहित्य और भारतीय संस्कृति पर व्याख्यान देने के लिए नामित किया गया था। मैंने अपने व्याख्यान में बालसाहित्य को मुख्य धारा से जोड़ने के लिए सरकार को निम्नलिखित आठ सुझाव दिये थे, जो इस प्रकार हैं-

1. साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में बालसाहित्य का स्तंभ नियमित प्रकाशित होना चाहिए। जैसे पहले 'धर्मयुग' और 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में नियमित प्रकाशित होता था। पत्र-पत्रिकाओं को बड़ों की पुस्तकों की भाँति बच्चों की महत्त्वपूर्ण और आवश्यक पुस्तकों की तथ्यपरक समीक्षा भी प्रकाशित करनी चाहिए। मात्र आठ-दस पंक्तियों की परिचयात्मक समीक्षा से बालसाहित्य का भला नहीं होने वाला है।

2. समय-समय पर समग्र बालसाहित्य और उसके अलग-अलग पक्षों पर समीक्षात्मक राष्ट्रीय संगोष्ठियाँ आयोजित की जानी चाहिए। राष्ट्रीय बालभवन, नई दिल्ली के बाद विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने भी इस दिशा में पहल की है परंतु इसकी निरंतरता बनी रहनी चाहिए। इसके साथ ही समय-समय पर बालसाहित्य की उपयोगी और विधा को आगे बढ़ाने वाली समीक्षात्मक पुस्तकें भी प्रकाशित होनी चाहिए।

3. बालसाहित्य के लेखकों, प्रकाशकों, बच्चों-अभिभावकों और समीक्षकों के बीच एक कड़ी बननी चाहिए इससे एक ओर बच्चों का भला होगा तथा दूसरी ओर बालसाहित्य का मार्ग भी प्रशस्त होगा।

4. वर्ष भर में प्रकाशित समग्र बालसाहित्य का निष्पक्ष आकलन पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाश में आना चाहिए। यह बड़ा कार्य है और बिखरा हुआ भी है इसलिए इस कार्य में राज्यवार समीक्षकों का एक पैनल बनाकर इसे क्रियान्वित किए जाने की आवश्यकता है।

5. बालसाहित्य में समीक्षा/आलोचना उतनी समृद्ध नहीं है जितनी मात्रा में बालसाहित्य सृजन हो रहा है इसलिए बालसाहित्य की समीक्षा/आलोचना के मानदंडों पर भी गंभीरता से विचार करके उसके मानक निर्धारित किए जाने चाहिए।

6. हिन्दी बालसाहित्य का विवेचनात्मक, विश्लेषणात्मक और तथ्यपरक व्यवस्थित इतिहास लिखा जाना चाहिए। इसमें व्यक्तिपरक प्रशंसा के अतिरेक से हर हाल में बचना चाहिए। इतिहास को इतिहास की तरह लिखा जाना चाहिए न कि अपनी-अपनी पसंद-नापसंद के अनुसार। कोशिश यह भी होनी चाहिए कि महत्त्वपूर्ण और मौलिक काम करने वाले बालसाहित्यकारों को इसमें अधिक से अधिक प्रतिनिधित्व मिल सके।

7. बालसाहित्य की उपेक्षित विधाओं-निबंध, डायरी, आत्मकथा, पत्र लेखन, यात्रा वर्णन रिपोर्ताज तथा संस्मरण आदि पर भी गंभीरता से लेखन होना चाहिए।

8. बालसाहित्य पर व्यापक विचार-विमर्श करने, उसे संरक्षित और सुरक्षित रखने तथा निरंतर ऊर्जावान बनाए रखने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर बालसाहित्य अकादमी या ऐसी ही कोई दूसरी संस्था की स्थापना सरकार द्वारा अवश्य की जानी चाहिए।

अब इसे संयोग कहिए या भारत सरकार के विदेश मंत्रालय की सदाशयता कि कार्यान्वयन समिति की बैठक में मेरे उपर्युक्त आठ सुझावों में से चार सुझावों को मानकर इनके कार्यान्वयन का उत्तरदायित्व राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग, नई दिल्ली को दे दिया गया। राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग, नई दिल्ली द्वारा विदेश मंत्रालय की निम्नलिखित अनुशंसाओं के अनुपालन में एक पत्र बालसाहित्यकारों को निर्गत किया गया जिसके बिंदु इस प्रकार थे-

1. साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में बालसाहित्य का एक कॉलम अनिवार्यत: रखा जाना।
2. प्रतिवर्ष बालसाहित्य पर राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन।
3. बालसाहित्य का वार्षिक आकलन।
4. हिन्दी बालसाहित्य का तथ्यात्मक इतिहास लेखन।

इसमें कुल चार अनुशंसाओं के क्रम में पहले नंबर पर की गई अनुशंसा साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में बालसाहित्य का एक कॉलम अनिवार्यत: रखा जाना से संबंधित संगोष्ठी में पूरे देश से लगभग डेढ़ सौ से अधिक बालसाहित्यकारों को आमंत्रित किया गया। अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार लगभग एक सौ बालसाहित्यकारों ने संगोष्ठी में उपस्थिति भी दर्ज कराई।

यह एक स्वर्णिम अवसर था और आमंत्रित बालसाहित्यकारों से केवल और केवल इसी गंभीर मुद्दे पर ही चर्चा की अपेक्षा की गई थी। हमारे पास मजबूत साक्ष्य थे कि एक समय वह भी आया था जब

'धर्मयुग' और 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में लगातार कई वर्षों तक बालसाहित्य छपा और बराबर बच्चों तक पहुँचा भी। उस समय लगभग सभी समाचार पत्र नियमित बालसाहित्य के स्तंभ छापते थे। बाद में न केवल अधिकांश समाचार-पत्रों ने बाल साहित्य से किनारा कर लिया बल्कि अनेक साहित्यिक पत्रिकाओं ने भी बालसाहित्य से हाथ खींच लिया।

भारत सरकार के विदेश मंत्रालय की यह पहल न केवल स्वागत योग्य रही है बल्कि मंत्रालय बधाई का भी पात्र है कि उसने क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग, नई दिल्ली को दिया, साथ ही उसी तत्परता से आयोग ने सराहनीय कदम भी उठाया।

इस संगोष्ठी में प्रतिभागियों में केवल अपनी बात कहने की ऐसी होड़ लगी कि पूरी संगोष्ठी ही अपने असली मुद्दे से भटक गई। कोई अपने बालसाहित्य सृजन की जोर-शोर से चर्चा करने लगा तो कोई इसे समकालीन बालसाहित्य की उठापटक से जोड़ने लगा। आमंत्रित बालपत्रिकाओं के संपादकों में से कुछ ने तो अपनी पत्रिका का प्रचार-प्रसार करने में भी कोई संकोच नहीं किया। एक सुझाव पुस्तक प्रकाशन पर आकर टिक गया। इन सुझावों के बीच-बीच में बालसाहित्यकारों के अपने-अपने फोटो सेशन भी कार्यक्रम को गौरवान्वित कर रहे थे।

इस घटना को सामने लाने का मेरा उद्देश्य सिर्फ इतना ही है कि बालसाहित्यकार खुद बालसाहित्य को लेकर कितने संवेदनशील, जागरूक, गंभीर और समर्पित हैं तथा बालसाहित्य की वैचारिक संगोष्ठियों में मुद्दे की बात पर चर्चा करने में कितनी रुचि लेते हैं। ऐसे में बालसाहित्य की प्रगति की दुहाई देना, स्वनामधन्य बालसाहित्यकारों को जिम्मेदार ठहराना या कोई भी टिप्पणी करना भी अपने आप में बड़ी चुनौती है।

आज बालसाहित्य के सामने एक और बड़ा संकट यह है कि जो अच्छा और स्तरीय बालसाहित्य लिखा जा रहा है उसका प्रकाशन कहाँ हो? यह कम चिंता की बात नहीं है कि करोड़ों की आबादी वाले देश में बच्चों के लिए हजार तो क्या अच्छी एक सौ भी बालपत्रिकाएँ नहीं हैं। बमुश्किल 30-35 स्तरीय बालपत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं जिनमें से कुछ तो स्थानीय होकर रह जाती हैं। कुछ ही क्षेत्र की सीमा को पार कर आगे बढ़ पाती हैं। ज्यादातर बालपत्रिकाओं का हश्र यही होता है कि वे निकलती तो बड़े जोश-खरोश के साथ हैं परंतु दीर्घजीवी नहीं हो पाती हैं। कुछ बालपत्रिकाओं के संपादकों की सोच का दायरा इतना संकुचित है कि वे कोल्हू के बैल की तरह लगातार चलती तो हैं मगर किसी भी लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाती हैं। कुछ ऐसी भी बालपत्रिकाएँ हैं जो दूसरों की सोच से संचालित होती हैं इसमें संपादक की भूमिका नगण्य होती है। कुछ बालपत्रिकाएँ अपने बनाए हुए खाँचे से बाहर ही नहीं निकल पा रही हैं। ऐसी स्थिति में निष्पक्ष बालसाहित्यकार को अपनी रचनाएँ प्रकाशनार्थ भेजने से पहले बड़ा संतुलन बनाना पड़ता है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि अनेक बालपत्रिकाएँ प्रकाशन संख्या की दृष्टि से दहाई अंक को भी पार नहीं कर सकीं। यह सुनने में अजीब लग सकता है परंतु सच्चाई यही है कि राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाने वाली बालपत्रिकाओं की संख्या अँगुलियों पर गिनने वाली है। जब बच्चों के लिए पर्याप्त मात्रा में पत्रिकाएँ ही नहीं हैं तो उनके साहित्य की समीक्षा, चर्चा-परिचर्चा का तो सवाल ही नहीं

उठता। जबकि बालसाहित्य को बच्चों से यही मायने में जोड़ने के लिए उसकी समीक्षा अपरिहार्य है। बालसाहित्य की लोकप्रियता को शिखर पर पहुँचाने वाली बालपत्रिका पराग(अब प्रकाशन बंद) के भूतपूर्व संपादक डॉ. हरिकृष्ण देवसरे का कहना है- ''बालसाहित्य की समीक्षा का महत्त्व माता-पिता, शिक्षकों तथा मनोवैज्ञानिकों सभी से जुड़ा हुआ है और वह इसलिए ज्यादा महत्त्वपूर्ण है कि इसका सीधा संबंध न केवल परिवार के भावी वंशज से जुड़ा हुआ है बल्कि देश की भावी पीढ़ी से भी है। इसलिए बालसाहित्य की समीक्षा अब रेखांकित होने की अपेक्षा रखती है।'' (जनसत्ता, रविवारी, 24 जुलाई 2005, पृष्ठ 3)

बालपत्रिकाओं के साथ-साथ अब बालसाहित्य के प्रकाशकों की भी चर्चा करना अप्रासंगिक नहीं होगा। यह सच्चाई है कि प्रकाशक बालकविताओं की पुस्तकें बिना सहयोग राशि लिए नहीं छापते हैं। हाँ, बालकहानियों और अन्य विधाओं की पुस्तकें छप जरूर जाती हैं मगर रॉयल्टी का सभी जगह टोटा है। इसके पीछे तर्क यह दिया जाता है कि पुस्तकें बिकती ही नहीं हैं। लेखक अगर प्रकाशक पर बहुत दबाव बनाता है तो एकमुश्त थोड़ी बहुत रकम देकर प्रकाशक अपना पिंड छुड़ा लेते हैं। कुछ प्रकाशक तो पुस्तकों की कुछ अधिक प्रतियाँ देकर उसे ही लेखक से रॉयल्टी मान लेने का आग्रह भी कर डालते हैं। एकदम नए लेखक को पुस्तकें छपवाने के लिए द्रविड़ प्राणायाम करना पड़ता है। कई प्रकाशक तो पुस्तकों की प्रतियाँ भी बहुत हुज्जत करने के बाद उपलब्ध कराते हैं। निष्कर्ष यह कि बालसाहित्य के लिए प्रकाशन जगत भी दूर की ही कौड़ी है।

बालसाहित्य को लेकर सवाल यह भी उछाल दिया जाता है कि बड़े साहित्यकार बच्चों के लिए नहीं लिखते हैं? यह सवाल बड़ा मौजू और महत्त्वपूर्ण भी है कि बड़े साहित्यकार बच्चों के लिए क्यों नहीं लिखते हैं? असलियत यह है कि बड़े साहित्यकार बच्चों के लिए बिल्कुल नहीं लिखते हैं, ऐसा भी नहीं है। कुछ बड़े साहित्यकारों ने इस क्षेत्र में हाथ भी आजमाया है। छायावाद के चारों महत्त्वपूर्ण रचनाकारों ने बच्चों के लिए कमोबेश ही सही मगर लिखा है। रामबृक्ष बेनीपुरी, रामधारी सिंह 'दिनकर', हरिवंशराय बच्चन, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, भारतभूषण अग्रवाल, अमृतलाल नागर से लेकर ममता कालिया, नरेन्द्र कोहली, मन्नू भंडारी, अशोक चक्रधर, हरीश नवल, प्रेम जनमेजय, गिरिराज शरण अग्रवाल, कन्हैयालाल नंदन, कमलेश्वर आदि ने भी बच्चों के लिए लिखा है और इनकी पुस्तकें भी उपलब्ध हैं। अन्य रचनाकारों में उदय प्रकाश, असगर वजाहत, नरेश सक्सेना भी छिटपुट ही सही लेकिन लिखते रहे हैं। भोपाल में आयोजित एकलव्य की कार्यशालाओं में बराबर इनकी उपस्थिति रहती है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली द्वारा आयोजित संगोष्ठियों/ सेमिनारों/ कार्यशालाओं में भी बड़ों के लिए लिखने वाले रचनाकर अपनी सहभागिता से कार्यक्रम को गौरवान्वित करते रहे हैं।

अब इसके दूसरे पहलू पर भी विचार करना आवश्यक होगा कि अगर बड़े साहित्यकार बच्चों के लिए नहीं लिखते हैं तो उनकी अपनी मजबूरियाँ हैं और मैं इसे बालसाहित्य के हित में भी मानता हूँ। इसका कारण यह है कि वैचारिक लेखन दो प्रकार से किया जाता है-

1.जबर्दस्त (जोरदार और महत्त्वपूर्ण) लेखन

2. जबर्दस्ती लेखन

यह शत-प्रतिशत सही है और अनेक बड़े साहित्यकारों ने स्वीकार भी कर लिया है कि बच्चों के लिए लिखना आसान नहीं है। अशोक वाजपेयी की स्वीकारोक्ति सहज ही नहीं बल्कि महत्त्वपूर्ण भी है- ''बच्चों के लिए लिखना सबके बस का नहीं है। कभी-कभी मुझे भी, एक सार्वजनिक व्यक्ति होने के नाते, बच्चों के कार्यक्रमों में जाना पड़ता है। हालाँकि मैं उसको निभा लेता हूँ- अपनी बतकही से। गाँधी जी के या बुद्ध के कुछ किस्से-कहानियाँ सुनाकर। लेकिन मुझे लगता है कि मुझमें वो सामर्थ्य स्वाभाविक रूप से नहीं है कि मैं बच्चों के साथ हिलमिल जाऊँ और उनकी शैली या उनके अनुकूल कुछ कह दूँ।''

हमें अशोक वाजपेयी जी का शुक्रगुजार होना चाहिए कि उन्होंने अपनी सामर्थ्य को विनम्रतापूर्वक स्वीकार किया कि यह आसान नहीं है कि बच्चों के लिए जो भी चाहे और जैसा भी चाहे लिखकर अपनी पैठ बना ले। वे आगे इसे और स्पष्ट करते हैं कि- ''बालसाहित्य दूसरे किस्म के सामर्थ्य की माँग करता है, दूसरे किस्म के शिल्प और शैली की माँग करता है। उसका एक अपना मिज़ाज होता है और हमलोग कुछ बेवजह की जटिलताओं में उलझे लोग हैं। मैंने बच्चों पर बहुत लिखा है, अपने पोते पर कविताएँ लिखी हैं। बेटे पर, पोतों पर, नातिन पर लिखी हैं पर सच्चाई यही है कि बच्चों के लिए कुछ नहीं लिखा है।''

अशोक वाजपेयी जी की यह साफगोई है कि उन्होंने अपने को बच्चों पर लिखने वाला तो स्वीकार किया मगर बच्चों के लिए लिखने वाला नहीं माना। यहाँ यह उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि अशोक वाजपेयी के संपादन में सन् 2004 में उमंग शीर्षक से बच्चों के लिए नाटक, कहानी और पटकथा का एक महत्त्वपूर्ण संकलन राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ था, जिसमें अधिकांश बड़ों के लिए लिखने वाले रचनाकारों-श्रीलाल शुक्ल, मृदुला गर्ग, रमेशचंद्र शाह, गिरिराज किशोर, राजेश जोशी, सुधा अरोड़ा, डॉ. कमल वशिष्ठ, कृष्णा सोबती, उदय प्रकाश, और कमलेश्वर के साथ बच्चों के लिए निरंतर लिखने वाले दिविक रमेश और राजेश जैन की भी रचनाएँ थीं।

अपने संपादकीय में अशोक वाजपेयी ने संक्षिप्त लेकिन बड़ी प्रभावोत्पादक भूमिका लिखी थी- ''बच्चे खेल-खेल में भी नाटक कर लेते हैं, बिना यह जाने कि वे दरअसल नाटक कर रहे हैं। अपने बजाय कुछ और होना, देखते-देखते दूसरा कोई बन जाना, मनुष्य के बजाय पेड़ या बिल्ली बन जाना उनके लिए रोमांचक अनुभव होता है।''

संपादन के इस अनुभव से अभिभूत वाजपेयी जी आगे लिखते हैं कि- ''यह सुखद संयोग अनूठा है कि शायद ही इससे पहले इतने सारे लेखकों ने एक साथ बच्चों के लिए कुछ लिखा हो। हिन्दी में बड़े लेखक बच्चों के लिए लिखने से प्राय: कतराते रहे हैं जबकि अन्य अनेक भारतीय भाषाओं में मूर्धन्य लेखकों ने बच्चों के लिए लगभग उज्ज्वल परंपरा के रूप में लिखा है।''

प्रो. मैनेजर पांडेय भी बालसाहित्य की वस्तुस्थिति को बड़े तार्किक ढंग से स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि- ''हिन्दी में बालसाहित्य की स्थिति बहुत विचित्र है। इसे मुख्य धारा के लेखक गंभीरता से नहीं लेते। उनके लेखन के बारे में गंभीरता से बात भी नहीं करते। इसलिए बालसाहित्य की हिन्दी में कोई व्यवस्थित आलोचना भी विकसित नहीं हुई है। उसका एक कारण यह लगता है कि हिन्दी के आलोचक बालसाहित्य को पढ़ते ही नहीं।''

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि मुख्य धारा के लेखक बालसाहित्य की गंभीरता को नजरअंदाज करते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण साफ है कि वे बालसाहित्य की प्रगति से अनभिज्ञ भी हैं और उसे जानना भी नहीं चाहते हैं। अब स्वाभाविक है कि अगर हम किसी चीज को न तो पढ़ेंगे और न ही जानने का प्रयास करेंगे, तो उस पर निरर्थक बहस और टीका-टिप्पणी करने का भी तो हमें कोई अधिकार नहीं है। उपर्युक्त दोनों विद्वानों अशोक वाजपेयी और प्रो. मैनेजर पांडेय की स्वीकारोक्ति के बाद बड़े आलोचक प्रो. नामवर सिंह को भी इसमें जोड़ते हैं तो एक बड़ा सवाल खड़ा हो जाता है। वे बालसाहित्य को सौदेबाजी से जोड़कर देखने की बात करते हैं- ''बालसाहित्य घाटे का सौदा है तो क्यों लिखेंगे लोग। जब ये कहा जाता है कि 'चाइल्ड इज द फादर आफ द मैन' इसका मतलब है कि जब हम नींव की उपेक्षा करेंगे तो उस पर कैसा घर बनेगा। बालसाहित्य एक तरह से नींव है। कहानी और अन्य बड़ी चीजें छोड़ दें तो हिन्दी में अच्छी नर्सरी राइम्स तक नहीं हैं जिसे बच्चे खुशी से झूमकर गा सकें।''

प्रो. नामवर सिंह बालसाहित्य को नींव तो मानते हैं मगर उनकी नजर में हिन्दी में अच्छी नर्सरी राइम्स अर्थात शिशु गीतों का अकाल है। यहाँ प्रो. मैनेजर पांडेय का ऊपर उद्धृत कथन मैं दुहराना चाहूँगा कि- 'हिन्दी के आलोचक बालसाहित्य को पढ़ते ही नहीं हैं' शत-प्रतिशत सही और विचारोत्तेजक भी है। इसे मैं कुछ महत्त्वपूर्ण शिशुगीतों के उदाहरण देकर सिद्ध करना चाहता हूँ कि हिन्दी बालसाहित्य में शिशुगीतों की बड़ी समृद्ध परंपरा रही है, परंतु दुर्भाग्य है कि हिन्दी के बड़े आलोचक सचमुच बालसाहित्य नहीं पढ़ते हैं। वे अनुमान के आधार पर टिप्पणी कर देते हैं।

आज से चालीस वर्ष पूर्व आठवें दशक में मैंने एक पुस्तक खरीदी थी -'365 Nursery Rhymes' यह पुस्तक आज भी मेरे पास सुरक्षित है। अंग्रेजी में उपलब्ध इन 365 शिशुगीतों के अलावा मुझे कोई भी और नया शिशुगीत नहीं मिला जो बच्चों की जुबान पर चढ़ा हो। लंबे समय से अंग्रेजी के यही शिशुगीत घूम-फिरकर साल दर साल इस पुस्तक से उस पुस्तक में और इस संकलन से उस संकलन में चक्कर लगा रहे हैं।

अब हिन्दी के शिशुगीतों की बात करें तो एक से एक बेहतरीन सैकड़ों शिशुगीत आज भी बच्चों के गले का कंठहार बने हुए हैं। डॉ. श्रीप्रसाद का निम्नलिखित शिशुगीत तो विश्व स्तर पर प्रकाशित संकलन में भारत का प्रतिनिधित्व कर चुका है। यह संकलन विश्व बालकविता संग्रह था और स्वीडन से सन् 1993 में छपा था। उसमें हिन्दी की एकमात्र कविता 'बिल्ली को जुकाम' मूल रूप में हिन्दी और स्वीडिश भाषा में उसका अनुवाद दोनों छपे थे। पाठक उस मूल शिशुगीत का आनंद लें जो इस प्रकार है-

बिल्ली बोली-बड़ी जोर का/मुझको हुआ जुकाम।
चूहे चाचा चूरन दे दो/जल्दी हो आराम।
चूहा बोला बतलाता हूँ /एक दवा बेजोड़।
आगे से तुम चूहे खाना/बिलकुल ही दो छोड़।।

इसके अतिरिक्त यहाँ पर कुछ और बेहतरीन शिशुगीतों की झलक बानगी के तौर पर प्रस्तुत है ताकि यह सिद्ध हो सके कि हिन्दी बालसाहित्य में शिशुगीतों की कितनी समृद्ध परंपरा रही है-

इब्नबतूता पहन के जूता/निकल पड़े तूफान में।

थोड़ी हवा नाक में घुस गई/थोड़ी घुस गई कान में। (सर्वेश्वर दयाल सक्सेना)

जो जेब न होती कुरते में/तो पैसे भला कहाँ धरते?
जो घास न होती धरती पर/तो गदहे-घोड़े क्या चरते? (रघुवीर सहाय)

रोटी अगर पेड़ पर लगती/तोड़-तोड़ कर खाते।
तो पापा क्यों गेहूँ लाते/और उन्हें पिसवाते। (निरंकार देव सेवक)

फोन उठाकर कुत्ता बोला-/सुनिए थानेदार।
घर में चोर घुसे हैं, बाहर /सोया पहरेदार।
मेरे मालिक डर के मारे/छिप बैठे चुपचाप।
मुझको भी अब डर लगता है /जल्दी आएँ आप। (विष्णुकांत पांडेय)

महँगाई अब बढ़ी यहाँ तक/भूखी दुनिया सारी।
पेट नहीं कुत्ते का भरता/छोड़ी पहरेदारी।
लंबी तान रोज सोता है/चोर भले ही आवे।
पहले सबको यही जगाता/अब मुर्गा इसे जगावे। (सूर्य कुमार पांडेय)

कहा बंदरिया ने बंदर से/चिल्ला जाड़ा आया।
कई दिनों से सूरज ने भी/चेहरा नहीं दिखाया।
काँप रही हूँ सर्दी से मैं /जल्दी हीटर लाओ।
वरना मैं तो चली मायके/खाना आप पकाओ। (डॉ. उषा यादव)

कितनी भोली-कितनी प्यारी /सब पशुओं में न्यारी गाय।
सारा दूध हमें दे देती/आओ इसे पिला दें चाय। (डॉ. शेरजंग गर्ग)

ऐसे सैकड़ों रोचक शिशुगीतों का अपना अलग संसार है मगर विस्तार भय के कारण यहाँ लोभ संवरण करना पड़ रहा है परंतु ऊपर की गई प्रो. नामवर सिंह की टिप्पणी पर गंभीरतापूर्वक पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि आज प्रो. नामवर सिंह हमारे बीच में नहीं हैं लेकिन मुझे विश्वास है कि अगर होते तो शायद यह आलेख पढ़कर अपनी ऊपर की गई टिप्पणी पर एक बार फिर से अवश्य सोचते?

मुख्य धारा से जुड़े साहित्य को लेकर यह सवाल भले ही न उठता हो कि बड़ों के लिए कैसा साहित्य लिखा जाना चाहिए मगर बच्चों के साहित्य को लेकर यह प्रश्न हमेशा से गूँजता रहा है कि उनके लिए कैसा साहित्य लिखा जाना चाहिए? मैं इसे इस अर्थ में भी आवश्यक समझता हूँ कि अगर बिना

तैयारी और बच्चों के मनोविज्ञान को समझे उनके लिए साहित्य लिखा गया तो इसके दो परिणाम होंगे-

1.बच्चे उस साहित्य को बेहिचक नकार देंगे जो उनके मन के अनुरूप नहीं लिखा गया है।

2. यह भी हो सकता है कि उस साहित्य के प्रति उनकी रुचि ही समाप्त हो जाए।

इसलिए रोचक, स्वस्थ, प्रभावशाली और बच्चों के मन को मोहने वाला बालसाहित्य ही लिखा जाना चाहिए। सुप्रसिद्ध साहित्यकार महाश्वेता देवी की बालसाहित्य पर की गई निम्नलिखित टिप्पणी को हिन्दी ही नहीं बल्कि सभी भारतीय भाषाओं के बालसाहित्यकारों को हृदयंगम करनी चाहिए। उनका बहुत स्पष्ट कहना है कि-

''जो लोग शिशु साहित्य (बांग्ला में बालसाहित्य नहीं शिशु साहित्य ही होता है) लिखते हैं उन्हें बच्चों से बहुत प्रेम करना चाहिए, उन्हें समझना चाहिए, तभी आप बच्चों के मन लायक कहानी लिख पाएँगे। दूसरी बात जो चीजें बच्चों के बहुत नजदीक हों उन्हीं को केन्द्र में रखकर कहानी गढ़नी चाहिए। बालसाहित्य का एक उद्देश्य बच्चों को सही और गलत के प्रति सचेत करना भी है। कहानी और कविता के माध्यम से यह काम सहजता से किया जा सकता है।''

महाश्वेता देवी के उपर्युक्त कथन का एक-एक शब्द इस अर्थ में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि बालसाहित्यकार को सबसे पहले खुद को बच्चों से जोड़ना चाहिए। उनके मनोभावों को पढ़कर उनकी रुचि के अनुरूप, उनके परिवेश से जोड़ते हुए, उन्हीं की भाषा शैली में बालसाहित्य का सृजन करना चाहिए। इससे भी बड़ी बात यह है कि बच्चों को सही गलत की जानकारी देना भी बालसाहित्य के दायरे में ही आता है। कोई भी रचनाकार अगर इन आवश्यक शर्तों को पूरा नहीं करता है तो उसे बालसाहित्य सृजन से दूर ही रहना चाहिए। आज के बच्चों की 'आइक्यू' बहुत तेज है। मीडिया ने इसे और प्रखर बना दिया है। वे स्पर्श से ही अच्छा-बुरा समझ लेते हैं। जब उन्हें यह स्पर्श उनके लिए लिखी गई कविताओं और कहानियों के माध्यम से मिलेगा, तो उनकी खुशी अवश्य दुगुनी हो जाएगी। इसमें किसी प्रकार की कोई संदेह की गुंजाइश नहीं है।

सम्पर्क : *लखनऊ (उ. प्र.)*

तरुण कुमार दाधीच

प्रेरक बाल साहित्य की आवश्यकता

आज सर्वाधिक विचारणीय बिंदु यह है कि बालकों के लिए बाल साहित्य कैसा हो? हमारे बच्चे देश के कर्णधार हैं। इस दृष्टि से उन्हें ऐसे बाल साहित्य की आवश्यकता है जो उनमें जीवन मूल्यों का विकास कर सके। बच्चों के लिए लिए लिखना कठिन नहीं है तो आसान भी नहीं है। उनकी मानसिकता के अनुरूप कथानक, कथोपकथन, देशकाल एवं वातावरण, सरल भाषा-शैली, प्रेरक पात्र एवं सटीक उद्देश्य को ध्यान में रखकर कहानी, कविता आदि अन्य विधाओं पर पठनीय एवं प्रेरणादायक रचनाओं की आवश्यकता होती है।

आजकल के हलचल भरे एवं व्यस्त जीवन में माता-पिता का यह दायित्व है कि वे अपने बच्चों की रुचि को ध्यान में रखते हुए उन्हें अच्छा बाल साहित्य पढ़ने के लिए प्रेरित करें। अच्छा बाल साहित्य वही कहा जा सकता है जो बच्चों का हर दृष्टि से सर्वांगीण विकास करने में सहायक हो। इस बात का ध्यान रखना नितांत आवश्यक है कि बच्चों की रुचि क्या है और वे किस प्रकार का बाल साहित्य पढ़ना चाहते हैं। पाठ्य पुस्तकों के अलावा बच्चे यह चाहते हैं कि उन्हें मनोरंजन के लिए अच्छी पुस्तकें व पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने को मिलें। अच्छा बाल साहित्य वही है जो बच्चों में नैतिक मूल्यों का विकास करे और जिससे उनमें अच्छी भावनाओं की वृद्धि हो। नैतिक शिक्षा, सरल जीवन, साहस, प्रेम, दया, कर्तव्यबोध और समसामयिक घटनाओं से युक्त, बाल साहित्य के माध्यम से बच्चों पर पड़ते पाश्चात्य प्रभाव को कम किया जा सकता है।

प्रत्येक शिक्षित माता-पिता की यह अभिलाषा होती है कि उनका बच्चा आत्मविश्वास, साहस, स्वावलंबन आदि गुणों से सम्पन्न हो और यह सत्य है कि अधिकांश बच्चों का बौद्धिक विकास अच्छे बाल साहित्य से होता है। बच्चों का यह सर्वांगीण विकास उनको मिलने वाले वातावरण के अनुसार अनवरत रूप से चलता रहता है। यह सर्व विदित है कि बच्चों के मानसिक विकास के लिए पढ़ने की आदत का होना परम आवश्यक है। बच्चों के लिए अच्छी पुस्तकें वही होती हैं जो उनमें बाहरी ज्ञान के साथ ही मानसिक विकास कर सकें। बच्चे जितना उत्कृष्ट साहित्य पढ़ेंगे, उनके ज्ञान में वृद्धि होती चली जाएगी। अच्छा साहित्य संकीर्ण भावनाओं से मुक्त कर बच्चों को मानसिक कुंठाओं से बचाता है। बच्चे यदि कुंठाग्रस्त रहने लगे तो उनका बौद्धिक विकास भलीभाँति नहीं हो पाएगा।

वास्तविक जीवन से निकटता रखने वाला बाल साहित्य बच्चों को रुचिकर लगता है। परिणामस्वरूप बच्चों के मन में स्थाई रूप से प्रेम, दया, वीरता आदि की भावनाओं का विकास होता है। बच्चों की रुचि को प्रभावित करने वाला और अच्छे संस्कार विकसित करने वाला साहित्य सर्वोत्तम बाल साहित्य माना जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रेरणादायक, उपयोगी बाल साहित्य पर सुकुमार एवं भावी पीढ़ी का भविष्य अवलंबित है।

सम्पर्क : *उदयपुर (राज.)*

डॉ. विजयानंद

हिंदी बाल पत्रकारिता

हिंदी बाल साहित्य की पत्रकारिता वैसे तो सन 1882 ई. में शुरू हुई थी। किंतु हिंदी बाल साहित्य का उद्भव विष्णु शर्मा जी के 'पंचतंत्र की कहानियाँ' के माध्यम से हो गया था। मुगल काल में गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस का बालकांड लिखकर विधिवत हिंदी बाल काव्य को स्थापित कर दिया। दशरथ के पुत्रों का बाल मन, बाल आकांक्षा, ठुमक-ठुमक कर चलना, विशेषकर राम का बाल अभिनय, रामचरितमानस के बालकांड को अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण बना देता है। पिता राजा दशरथ भोजन कर रहे होते हैं। राम अपने छोटे भाइयों के साथ ठुमक-ठुमक कर चल रहे होते हैं। अपनी बाल भाषा में उनसे कुछ कह कर खेलते रहते हैं। राजा दशरथ उन्हें बुलाते हैं। वे उनकी बातें नहीं सुनते, तब कौशल्या जी उन्हें डाँटती हैं और वे दौड़े-दौड़े चले आते हैं। गोस्वामी तुलसीदास लिखते हैं-

भोजन करत बुलावत राजा,/नहीं आवत तजि बाल समाजा।
ठुमक चलत रामचंद्र,/बाजत पैजनियाँ।

गोस्वामी तुलसी से और आगे बढ़कर सूरदास ने तो कृष्ण लीला के अनेक बाल सोपान रचे हैं। सूरसागर और सूर सारावली के अनेक प्रसंग इसकी वास्तविकताओं को स्वयं सिद्ध करते हैं। सूरदास ने माँ यशोदा, ग्वाल-बाल, सुदामा के साथ अनेक बालरूपों की विविध घटनाओं को अपने काव्य में पिरो दिया है। जन्मांध होते हुए भी दिव्यांग बन कर, उनकी काव्य दृष्टि पाठकों के मन को अंदर तक आत्मसात कर लेती है। वे लिखते हैं -

मैया मोरी, मैं नहीं माखन खायो, भोर भयो गईयन के पीछे। मधुवन मोहि पठायो।
ओ मैया मोरी, मैं नहीं माखन खायो।।

कालांतर में विदेशी यात्री अमीर खुसरो ने भारत में घूम-घूम कर उर्दू, फारसी से जोड़कर हिंदुई को अपनी पहेलियों, मुकरियों, शायरियों, मसनवियों में बच्चों के योग्य, सहज भाषा का विषय बनाया और पूरे देश में घूम-घूम कर इसका प्रचार किया। तब हिंदुई, हिंदुस्तानी ही कही जाती थी जो परिवर्तित होकर बाद में आज की हिंदी हुई। कथाकार जटमल ने 1623 ईस्वी में 'गोरा बादल की कथा' लिखकर हिंदी में पहली बाल पुस्तक रची। खड़ी बोली हिंदी के आते आते भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अंधेर नगरी जैसा नाटक लिखकर बच्चों को मनोरंजन का एक साधन दे दिया था।

लोकमानस में दादी, नानी अपने बच्चों को, राजा-महाराजा-रानी, नट-नटिन, तोता-मैना आदि की कहानियाँ सदियों से सुनाती चली आ रही हैं।

पंचतंत्र और कथासरित्सागर की कहानियाँ, शिक्षाप्रद, रोचक और बौद्धिक समाज को आकर्षित करती रही हैं। हिंदी के बाल साहित्य का यहीं से उद्भव हो गया था। हितोपदेश, सिंहासन बत्तीसी, बैताल पच्चीसी, जातक कथाएँ आदि हिंदी बाल साहित्य की पीठिका बन गई। स्वतंत्रता के संघर्ष के समय पंडित श्रीधर पाठक, सदल मिश्र, राजा लक्ष्मण प्रसाद सितारे हिंद, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, प्रेमचंद, मन्नन गजपुरी, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, सोहन लाल द्विवेदी, श्याम नारायण पांडेय, सुभद्रा कुमारी चौहान, विद्यावती कोकिल आदि जैसे साहित्यकारों ने हिंदी के बाल साहित्य को पूरी तरह स्थापित कर दिया। स्वाधीनता आंदोलन जब पूरे भारत में अपने चरम पर चल रहा था। यहाँ के लोगों को काले पानी की सजा हो रही थी, उसी के आसपास, प्रभातफेरियों का भी दौर विद्यालयों में शुरू हो गया था। तब हिंदी कवियों ने बच्चों के योग्य देशप्रेम की रोचक कविताएँ लिखीं, जो प्रभातफेरियों में गाई जाती रहीं।

हिंदी बाल पत्रकारिता का उद्भव भी उसी समय हुआ। हिंदी का बाल साहित्य राष्ट्रीय जागरण के साथ विविध विधाओं में फलने-फूलने लगा। सन 1882 ईस्वी में भारतेंदु हरिश्चंद्र की प्रेरणा से 'बाल दर्पण' नामक पत्रिका पहली बार इलाहाबाद से प्रकाशित हुई। इसके बाद भारतेंदु हरिश्चंद्र ने स्वयं 'बालबोधिनी' पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। 1891में लखनऊ से 'बाल हितकारी', 1906 में अलीगढ़ से 'छात्र हितैषी', वाराणसी से 'बाल प्रभाकर', 1910 में इलाहाबाद से 'विद्यार्थी' तथा 1912 में नरसिंहपुर, मध्य प्रदेश से 'मानीटर' नामक बाल पत्रिका प्रकाशित होने लगी । 1914 में 'शिशु',1917 में इलाहाबाद से 'बाल सखा' प्रकाशित होने लगी। उक्त कई पत्रिकाएँ तो कुछ वर्षों में ही बंद हो गईं, परंतु बालसखा लगातार 53 वर्षों तक प्रकाशित होती रही। 1920 में जबलपुर से 'छात्र सहोदर', 1924 में दिल्ली से 'वीर बालक', 1926 में पटना से बालक, 1927 में इलाहाबाद से 'खिलौना', 1934 में इलाहाबाद से 'चमचम', 1932 में कालाकांकर से 'कुमार', 1934 में ही इलाहाबाद से 'अच्छे भैया', 1936 में मुरादाबाद से 'बाल विनोद', 1938 में पटना से 'किशोर', 1934 में लखनऊ से 'होनहार', 1946 में इलाहाबाद से 'तितली' प्रकाशित होने लगी। भारत जैसे गरीब देश में लगभग 32 मुद्रित तथा 16 हस्तलिखित पत्रिकाओं का प्रकाशन आश्चर्य की बात थी। इन पत्रिकाओं ने कविता, कहानी, उपन्यास, जीवनी, निबंध, विज्ञान लेखन आदि क्षेत्र में अनेक लेखक पैदा किए। बाल साहित्यकारों को घर-घर तक पहुँचाने के लिए पत्रिकाओं ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इनके संपादकों एवं प्रकाशकों ने देशहित में अपने संचित धन व श्रम से बाल साहित्य का न केवल विस्तार किया, वरन् नई पीढ़ी को शिक्षित करने एवं देशप्रेम से सराबोर करने में भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1857 से 1947 तक के 90 वर्षीय भारतीय स्वाधीनता संग्राम के बाद जब हम आजाद हुए तो हिंदी बाल पत्रकारिता की दशा और दिशा भी परिवर्तित हुई। भारत सरकार के प्रकाशन विभाग ने राष्ट्रवाद, देशप्रेम आजादी की प्रसन्नता, बच्चों के भविष्य को ध्यान में रखकर सन 1947 में 'बाल भारत' का प्रकाशन आरंभ किया। 1948 में पंजाब से 'प्रकाश', मद्रास से 'चंदा मामा', 1949 में दिल्ली से 'अमर कहानी', पटना से 'चुन्नू-मुन्नू', 1951 में देहरादून से 'नन्ही दुनिया', लखनऊ से 'कलियाँ', 1955 में

दिल्ली से 'बालमित्र', जयपुर से 'वानर', 1957 में दिल्ली से 'स्वतंत्र बालक', 1958 में दिल्ली से ही 'पराग', लुधियाना से 'शोभा', जालंधर से 'नन्हें मुन्ने', वाराणसी से 'राजा बेटा', अमृतसर से 'बाल फुलवारी', 'मीनू-टीनू', 1960 में करनाल से 'बाल जीवन', आजमगढ़ से 'विश्व बाल कल्याण' पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगीं।

सन 1961 से तो जैसे बाल पत्रिकाओं की बाढ़ आ गई। 'बाल लोक, बाल दुनिया, बेसिक बाल शिक्षा', 1961 में, बाल वाटिका, रानी बिटिया, 1962 में, शेर सखा, 1963 में, नंदन, मिलिंद, 1964, जंगल, 1965-चमकते सितारे, 1966-शिशु बन्धु, बाल जगत, बच्चों का अखबार, 1967-बालकुंज, चंपक, 1968-नटखट, चंद्र खिलौना, बाल रंगभूमि, लोटपोट, 1969-मुन्ना, गोलगप्पा, 1970-नगराम, बच्चे और हम, चमाचम, 1972-गुरु चेला, हँसती दुनिया, गुड़िया, किशोर, बाल बंधु,1973-प्यारा बुलबुल, 1974-लल्लू पंजू, शावक, बालेश, बाल रुचि, देवछाया, बाल दर्शन, 1975-बाल साहित्य समीक्षा, हिमांक रत्न, 1977-बाल पताका, मुस्कुराते फूल, 1978-बाल मेला, देवपुत्र, 1979-राकेट, बालमन, 1980-कुटकुट, नन्हें तारे, नन्हीं मुस्कान, नन्हों का अखबार, 1981-आनन्ददीप, बालनगर, चंदन, लल्लू जगधर, 1982-सुमन सौरभ, किलकारी, बाल कविता, 1985-अच्छे भैया, नए फूल धरती के, बालहंस, 1986-बाल मंच, नन्हें सम्राट, किशोर लेखनी, 1988-बाल मेला, बाल विवेक, समझ झरोखा, नन्हा समाचार-1989, बाल वाणी-1994, बाल मिलाप-1998, बाल मिलाप-2003-बाल युग, बाल प्रहरी-2014 आदि बाल पत्रिकाएँ निरंतर प्रकाशित होती रहीं।

पत्रिकाओं के संपादकों यथा-भारतेंदु हरिश्चंद्र, माधव जी, सुदर्शनाचार्य, बद्रीनाथ भट्ट, राम लोचन शरण, रामजी लाल शर्मा, विश्वप्रकाश, रामनरेश त्रिपाठी, कुँवर सुरेश सिंह, लेखराज उल्फत, श.म.शमीम अनहोनी, लक्ष्मीचंद्र रूपचंदानी, तरुण भाई, यत्नप्रकाश शील, शान्तिप्रसाद दीक्षित, उमेश मल्होत्रा, रमाकांत पांडे, दयाशंकर मिश्र दद्दा, गुरुचरण सिंह साखी, भगवानदास दत्ता, श्रीमती सुमन, ज.न. वर्मा, भोलानाथ, पुरुषोत्तम सरन, जयप्रकाश भारती, राजेन्द्र अवस्थी, बाल शौरि रेड्डी, विश्वनाथ, विनोद चंद्र पांडेय, राष्ट्रबंधु, मानवती आर्या, मनोहर वर्मा, अनन्त कुशवाहा आदि ने हिंदी बाल साहित्य की सभी विधाओं में रचनाएँ प्रकाशित कर हिंदी बाल साहित्य के भंडार को भरा।

उक्त पत्र पत्रिकाओं के कई संपादक महत्त्वपूर्ण लेखक के रूप में भी हिंदी बाल साहित्य में शुमार हुए। इन पत्रिकाओं के सहारे भारत तथा मॉरीशस में बाल साहित्यकारों का सृजन यज्ञ आज भी जारी है। इन बाल पत्रिकाओं व बाल साहित्य को भले ही सामान्य समझा जाता रहा हो, परन्तु पाठ्यक्रमों में, छात्रों के चरित्र निर्माण, देशप्रेम, मनोरंजन, ज्ञानवर्धन, प्रहसन आदि जैसी बाल मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों को बाल साहित्यकारों ने ही स्वतंत्रता के बाद की नई पीढ़ी के मस्तिष्क में भरा। जिससे वे भारत, मॉरीशस और अन्य देशों के सभ्य नागरिक बन सकें। इन पत्रिकाओं ने ही उन्हें लिखने, प्रकाशित एवं प्रसारित होने का अवसर दिया। प्रकाशकों ने भी उनकी पुस्तकें प्रकाशित कर हिंदी बाल साहित्य के भंडार की श्रीवृद्धि की।

हिंदी बाल साहित्य के चर्चित बाल साहित्यकारों में सर्वश्री- रामवृक्ष बेनीपुरी, अमृतलाल नागर, निरंकार देव सेवक, शिक्षार्थी, लल्ली प्रसाद पांडे, रामकुमार वर्मा, महादेवी वर्मा, कृष्ण विनायक फड़के,

जगदीश चतुर्वेदी, द्वारिकाप्रसाद महेश्वरी, रामस्वरूप दुबे, श्रीमती शकुंतला सिरोठिया, सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, निर्मला सिंह, शशि गोयल, रामबचन सिंह आनंद, सूर्य कुमार पांडे, अजय जनमेजय, प्रेमनारायण गौड़, कैलाश कल्पित, श्याम सिंह शशि, योगेंद्र कुमार लल्ला, विनोद रस्तोगी, शंकर सुल्तानपुरी, मस्तराम कपूर उर्मिल, हरेकृष्ण देवसरे, श्यामनारायण कपूर, शुकदेव प्रसाद, डॉ.विनोद दवे, चक्रधर नलिन, डॉ. विजयानंद, रमाकांत मिश्र स्वतंत्र, रमाशंकर, बंधु कुशावर्ती, यश मालवीय, विनय मालवीय, हेमंत कुमार, सुरेंद्र विक्रम, डॉ. जाकिर अली रजनीश, नागेश पांडेय संजय, शिवचरण चौहान, परमात्मा श्रीवास्तव, आशीष शुक्ला, शादाब आलम, नीलम राकेश, शकुंतला कालरा, सुंदरलाल अरुणेश, डॉ. दिनेश पाठक शशि, अंशुमान खरे, लीला मजूमदार, विजयलक्ष्मी सुन्दराजन, रवीन्द्र रवि, अमिताभ चौधरी, घमंडीलाल अग्रवाल, रोहिताश्व अस्थाना, चंद्रपाल सिंह यादव मयंक, डॉ. श्रीप्रसाद, विष्णुकांत पांडे, राजकुमार जैन राजन, आनंद प्रकाश त्रिपाठी रत्नेश, गोविंद शर्मा, रामनिवास मानव, सुकीर्ति भटनागर, डॉ. बानो सरताज, संजीव जायसवाल संजय, हूंदराज बलवाणी, राजा चौरसिया, ओम उपाध्याय, दिनेश चमोला, आदित्य जैन, शोभा अग्रवाल चिलबिल, अनन्त प्रसाद रामभरोसे, श्रीमती शकुंतला वर्मा, डॉ. उषा यादव, श्यामलाकांत वर्मा, नरेशचंद्र सक्सेना सैनिक, दिविक रमेश, बाबूलाल शर्मा प्रेम, भगवती प्रसाद द्विवेदी, अरविंद दुबे, अलका प्रमोद, अमिता दुबे, पवन कुमार वर्मा, भारतभूषण आर्य, शिवमोहन यादव, अखिलेंद्र तिवारी आदि साहित्यकारों ने बच्चों के लिए ज्ञानवर्धक एवं मनोरंजक, सहज और सरल भाषा में बालसाहित्य लिखा।

सन 1956 ईस्वी के बाद मॉरीशस में बाल साहित्य लेखन शुरू हुआ। प्रोफेसर वासुदेव विष्णु दयाल, प्रह्लाद रामशरण, अभिमन्यु अनत, भुवनेश्वर सोनू, डॉ. कामता कमलेश, चंपावती बम्मा, हीरालाल लीलाधर, बृजेंद्र भगत, दीपचंद बिहारी, डॉ. लाल देव अंचराज, भोला, रामफल आशा, जी बोध मुकेश, इंद्रदेव इंद्रनाथ, धनराज शंभू, रामनाथ शीला, डॉक्टर वीरसेन जागा सिंह, नेमा पूजानंद, पांडे ठाकुर दत्त, कालीचरण जनार्दन, चिंतामणि मनीश्वरलाल, श्रीमती जगमोहन, सीता हरनारायण, नेमधारी सोनवाल, डॉ. हेमराज सुंदर, प्रीतम सत्यदेव आदि हिंदी बाल साहित्य का निरंतर सृजन कर रहे हैं।

वस्तुत: हिंदी बाल साहित्य पूरे विश्व में लगातार लिखा जा रहा है। इसका विस्तार उन सभी देशों में है, जहाँ हिंदी भाषा भाषी लोग रहते हैं। हिंदी के बाल साहित्यकार, बच्चों के योग्य अपने नाटक, कहानियाँ, कविताएँ, उपन्यास, जीवनी, ज्ञानवर्धक आवश्यक जानकारी, स्वास्थ्य, कार्टून, कॉमिक्स आदि लिखकर बच्चों को शिक्षित और प्रेरित करते हैं। मॉरीशस के अलावा त्रिनिदाद, टोबैको, फिजी, आबूधाबी, ब्रिटेन, अमेरिका, थाईलैंड, श्रीलंका, बर्मा, नेपाल, भूटान आदि देशों में भी हिंदी बाल साहित्य का निरंतर विस्तार होता जा रहा है। बाल साहित्य का भविष्य निश्चित रूप से उज्जवल है। इस पर विश्व हिंदी सम्मेलन में एक विशेष सत्र की भी आवश्यकता है, जिससे सामयिक वैश्विक परिवेश के स्तर पर बच्चों के लिए और कुछ उपयोगी बाल साहित्य लिखा जा सके।

सम्पर्क : *प्रयागराज (उ.प्र.)*

प्रभा पारीक

बाल साहित्य और सामाजिक परिवेश

बाल साहित्य का नाम आते ही रंगबिरंगी पुस्तकें कहानियाँ अथवा पशु-पक्षियों के चित्र आँखों के सामने तैरने लगते हैं। लेकिन बालसाहित्य में ओज से भरपूर कथा वार्ताएँ परियों की कथा, जादू की बातें, तिलिस्मी कथायें व धार्मिक प्रेरणादायी बाल कथायें, कवितायें, छोटी-छोटी चार-पाँच पंक्तियों की गाये खेल खिलाने वाली पंक्तियाँ इतिहास की बातें, जीवनियाँ बचपन की मस्ती, दादी-नानी की कहानियाँ, नाटक सभी कुछ शामिल है। आजकल के शहरी बालकों को विज्ञान आधारित कथायें, बहु प्रचलित अंग्रेजी में लिखा बाल साहित्य तिलिस्मी संसार, रोमांचित करने वाली कहानियाँ अधिक प्रभावित कर रहीं हैं, जो बच्चों को उनके चारों ओर के वातावरण से भिन्न दुनिया से परिचिय करवाती हैं... वह भी बालजगत के लिये ही तो बना है। बाल फिल्में हमारे ही बच्चों को प्रभावित नहीं कर पातीं उसका कारण भी विषयों का अधिक गंभीर होना, प्रादेशिक भाषा में फिल्मों का अभाव ही हैं।

साहित्य समाज के विचारों एवं अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम है। साहित्य वस्तुत: जीवन की विवेचना है। यह अपने समय का प्रतिबिम्ब है। लोगों के ह्रदय को जो विचार और भाव स्पन्दित करते हैं, वे ही समाज के बालकों के लिये साहित्य की विषय वस्तु बनकर सामने आते हैं। किसी भी समाज के लिये बालसाहित्य प्राणवायु है। जीवन जीने की कला होने के साथ-साथ बालसाहित्य समाज का दर्पण भी है। बाल साहित्यकार का यह परम कर्तव्य है कि वह समाज की असंगतियों व उसके विक्रत पहलुओं पर अपनी गूढ़ नजर डाले और उसके लिये समाधान के विकल्प समाज में रखे। बालसाहित्यकार अपनी व्यक्तिगत सोच को भी स्पष्ट करते रहें। इसे एक नियामक तत्व भी माना जा सकता हैं। सामाजिक परिवेश के अनुसार ही तो बालसाहित्य की रचना होती है। न बच्चों को न जीवन के बदलाव को किसी भी दायरे में बाँधा नहीं जा सकता। जब भी बालसाहित्य को किसी वाद अथवा बौद्धिक विश्वास के अनुसार बाँधने का प्रयास किया है वहाँ इसका प्रवाह अवरुद्ध नजर आने लगता है। बच्चों ने उसे अस्वीकार किया है।

एक बालसाहित्यकार के लिये बालकों का हित ही सर्वोपरि होना चाहिये। वह लेखक ही तो है जो बालकों के हित की बातें मीठी गोली, शहद की बूँद की तरह परोसने में सक्षम है। वही तो है जो बच्चों को सहलाता, बहलाता, गुदगुदाता बहुत कुछ कहने की क्षमता रखता है।

एक संवेदनशील बालसाहित्यकार जो बालकों के दु:ख, पीड़ाओं का सबसे बड़ा जानकार है/ विचार उसके लेखन में मुखर होकर सामाजिक जनचेतना का रूप भी लेते हैं। कभी कभी तो उनकी

संवेदनशील रचनायें अपना अच्छा असर दिखाती हैं।

बाल साहित्य के अन्तर्गत वह शिक्षाप्रद साहित्य भी आता है जिसका निर्माण बच्चों के मानसिक स्तर के अनुसार किया गया हो। बाल साहित्य किसी स्थिति विशेष में उपेक्षित, भले ही रहा हो पर किसी भी द्रष्टि से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

बाल साहित्य का मूल उद्देश्य, केन्द्र बिंदु सृजनात्मक साहित्य ही है। बाल साहित्य में दुराग्रहों व पूर्वाग्रहों का कोई स्थान न हो, निष्पक्ष हो, बालसाहित्यकार का लेखन तभी सार्थक है। अच्छा बालसाहित्य सदा सकारात्मक, भावपूर्ण, सरल, प्रेम, विश्वास से सराबोर शब्दों का संकलन ही तो है। जो बाल जीवन को अधिक मनोरंजक ओजपूर्ण व दिशा दिखाने में सहायक है। बाल साहित्य में छोटे स्तर से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक नियमित कार्यशालाओं का आयोजन समय-समय पर होता रहा है और विश्लेषणात्मक कार्य की चर्चा भी होती रही है। अनेक तरह के प्रयोग भी किये गये जो सफल भी हुये हैं। बाल कहानी का सबसे उत्तम लक्षण यही है कि वह बाल मन के मनोमस्तिष्क पर तीव्र प्रभाव डालकर बालक को उसके अनुरूप विचार करने को प्रेरित करना। अपने विचारों को बालक के मन रूपी कागज पर सहज ही अंकित करते रहना। इस प्रक्रिया को बिल्कुल सहजता से होना चाहिए कि बालक स्वयं इससे अनभिज्ञ रहे। यह अच्छा लेखक ही कर सकता है क्योंकि जिसके पास पात्रों से बालकों के साथ आत्मिक लगाव, बाल मन के साथ तादात्म्य बिठाने की क्षमता व जीवन के अनुभवों की पूँजी भी है और समाज के विभिन्न पहलुओं का सूक्ष्म निरिक्षण कर पाने की क्षमता भी है, वही बाल लेखक सफल है। जो स्वयं बालक बन कर पात्रों के रूप में अवतरित होकर एक कुशल अभिनेता की तरह उसका चरित्रांकन करे।

भारत बालसाहित्य के क्षेत्र में उन समृद्ध देशों में है जिसके पास लिखित व मौखिक बाल साहित्य का भंडार है पर हमारे सांस्कृतिक बदलते मूल्यों के कारण उनकी सहज स्वीकृति से कतराते हैं। तितली के पीछे दौड़ते बालक की सोच और तितली के पीछे दौड़ते बच्चों के बारे में लिखने वाले लेखक की सोच में कितना अंतर है वही अंतर बच्चों के बारे में लिखे साहित्य में नजर आता है।

मेरा सदा से ही आग्रह रहा है कि हम सभी मानते हैं कि बच्चे तो बच्चे ही होते हैं चाहे किसी भी वर्ग के हों फिर भी इनका विभाजन आवश्यक है। कुछ क्षेत्रों में ग्रामीण बच्चे बिल्कुल अपरिचित हैं जहाँ कुछ बच्चे शहरी क्षेत्रों में रहते हैं पर कुछ बातों से बिल्कुल अंजान हैं। नीम का पेड़ या ताड़, सुपारी, नारियल के वृक्षों की पहचान करने में ग्रामीण बच्चा कभी भूल नहीं करेगा। उनको पेड़, पहाड़, बादल, नदी, तालाब के बारे में विस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं होती पर शहरों में रहने वाले कुछ बच्चे तो इन चीजों को केवल चित्रों में ही देख कर बड़े होते हैं। ग्रामीण बालक को मटका बनाना, खाट बुनना उसके साधन को देखना, पेड़ों पर झूला आदि देखना, कौतुक नहीं है पर शहरी बच्चा इसे म्यूजिमय में देखकर, इसकी कार्य प्रणाली देखता है पर सीख नहीं सकता। उदाहरण के तौर पर इसीलिये वह चाक की उपमा को भी सही अर्थों में नहीं समझ सकता।

उसी तरह हवाई जहाज, एस्कैलेटर, मैट्रो ट्रेन, क्रेन आदि को देखकर छोटे शहरों के बच्चे कौतुक महसूस करते हैं। उनकी कथा कहानियों में इनका जिक्र आये तो वह आसानी से नहीं समझ पायेंगे। अपने सामान को सहेज कर रखना सँभालना ये सब बातें उच्च वर्ग के बच्चों के लिये नहीं हैं। जहाँ एक आया

उनके लिये यही काम करने के लिये नियुक्त है। आगे जाकर उनके स्कूल भी ऐसे ही हैं। गुल्लक, बचत शब्द उनकी समझ से बाहर हैं।

कड़ी धूप को झेल रहे, सर्दी, गर्मी का प्रकोप सह चुके यह बच्चे, प्रकृति के निकट हैं, संवेदनशील हैं। माता-पिता, दादा-दादी, बुआ-चाची जैसे संबंधों से अभी भी परिचित हैं। जहाँ उनके लिये तराजू शब्द अन्जाना नहीं है, जहाँ उन्होंने विलुप्त होते कुएँ देखे हैं नदी के बहाव को महसूस किया है, बरसते मेघ, ओले आदि देखे हैं। कोहरा, धुंध, धूल भरी आँधी उनके लिये परिचित शब्द हैं वहीं फ्लैट संस्कृति में पल रहे बच्चों के वातावरण भिन्न हैं, उनकी परवरिश भिन्न वातावरण में हो रही है, खेल के मैदान पर सीमित समय तक ही रहने वाले ये बच्चे तकनीकी साधनों के आदी हैं। इसलिये इनसे बात करते समय बहुत कुछ ऐसा होता है जो हमें चौकाने वाला है।

बाल साहित्य किसी भी मायने में बहस का विषय नहीं है। बच्चों की माँग और स्वीकृति पर निर्भर है, इसलिये रचनाकारों को व्यर्थ की बहस व तर्कों व मात्र अहंकार के भावों को तुष्ट करने से बचना चाहिये। आपने यदि बच्चों को ध्यान में रखकर लिखा है तो वह किसी बच्चे को तो अच्छा लगेगा ही। अभी नहीं बाद में उसका ध्यान उसमें निहित उद्देश्यों पर जायेगा ही।

बालसाहित्य किसी भी प्रकार का क्यों न हो उसे संतुलित ढंग से समझना होगा। बच्चों के लिये लिखते समय उनकी समस्याओं, आकांक्षाओं, उनके सपनों व उन सपनों की वास्तविकता का रूप उसमें झलकना चाहिये। बच्चों के प्रति इस दायित्व का निर्वहन जो करे वह श्रेष्ठ साहित्य है। ये भी ठीक वैसा ही है कि कक्षा में प्रथम आने के लिये पढ़ना जरूरी है पर वर्ष भर कक्षा में ध्यान देना भी जरूरी है।

बच्चों की जिज्ञासा ही तो उन्हें पढ़ने के लिये प्रेरित करती है। जादू की कहानियाँ, विज्ञान की बातें, भूत की कहानी तिलिस्मी किस्से उन्हें जिज्ञासा के साथ उनकी सोचने की प्रक्रिया को गति देते हैं। मेरी नजर में बच्चा कहीं का भी हो, किसी भी परिवेश में रह रहा हो, दादी-नानी का ऊष्मा भरा स्पर्श, माता-पिता की परवरिश और हम उम्र बच्चों का साथ और अच्छा साहित्य ही उनके चहुमुखी विकास में सहायक होता है। आपने भी महसूस किया होगा कि विदेशों में जहाँ बच्चों के खेलने के लिये रंगबिरंगे खिलौने हैं, स्कूल में भी रंग ही रंग हैं, वहाँ बच्चों के शयन कक्ष में सफेद रंग है। क्योंकि रंग आकर्षित करने के बाद थकान भी देते हैं और शान्ति और सुकून धवल रंग देता है। चारों ओर की हलचल के बाद बालक किसी भी प्रकार के बाल साहित्य को लेकर सुकून ही महसूस करेगा। अपनी उम्र के अनुरूप बालसाहित्य ही उसके अकेलेपन का मित्र होगा। आज के बदलते युग में जब हम बड़े ही अपने बचपन की बातों से आज को जोड़कर नहीं देख पा रहे तो हमारी लिखी रचनायें यदि आज को ध्यान में रखकर नहीं लिखी गई होगीं तो बच्चे कैसे उसके साथ जुड़ पायेंगे। जो ज्ञान वर्धक बातें, आदर्शवादी सोच दर्शाती रचनायें हमें प्रभावित करती थी, वे बच्चों को आज प्रभावित नहीं कर सकतीं, क्योंकि आज उनके पास एक सच्चा आदर्श ही नहीं है जिसे देखकर, सुनकर, पढ़कर वह अपने मार्ग का चुनाव कर सके, अगर आदर्श है भी तो वह समय-समय पर बदलते जा रहे हैं जो कि हमारी भौतिक वादी सोच का परिणाम है। बच्चों की सोच भी तो अपने माता-पिता से ही प्रभावित होती है।

सम्पर्क : *भरूच (गुजरात)*

सुमन बाजपेयी

क्रिएटिव राइटिंग-आकार देना होता है कल्पना व यथार्थ को

कुछ वर्ष पहले पटना पुस्तक मेले में स्कूली बच्चों की क्रिएटिव राइटिंग पर दो दिवसीय वर्कशॉप आयोजित की गई थी। विभिन्न कक्षाओं के बच्चों ने इसमें भाग लिया था और जो उत्साह व रचनात्मकता मुझे देखने को मिली, वह सराहनीय है। इतनी सारी कहानियाँ एक दिन में उन्होंने लिख डाली थीं कि पुरस्कारों का चयन कैसे किया जाए, यह निर्णय करना कठिन हो गया था।

तो प्रश्न उठता है कि आखिर क्रिएटिव राइटिंग क्या है? रचनात्मक लेखन? हम सभी जब लिखते हैं तो वह रचनात्मक ही कहलाता है, पर वास्तव में जब हम कुछ रचनात्मक उत्पन्न कर रहे हैं, वह क्या है? उस प्रक्रिया के दौरान हम अपनी कल्पना को साकार रूप देते हैं, जो मन में चल रहा है, उसे एक आकार देना चाहते हैं और वह हम उन घटनाओं व पात्रों द्वारा ही कर सकते हैं, जिन्हें हम अनुभूत करते हैं। मन में अनगिनत बातें आती हैं, हम नित नए अनुभवों से गुजरते हैं। उन्हें हम घटनाएँ कह सकते हैं और उन्हीं घटनाओं को जब हम क्रमबद्ध करते हैं तो वह एक कहानी का रूप ले लेती है और इसे ही हम क्रिएटिव राइटिंग कह सकते हैं।

कोई बाध्यता नहीं, फिर भी उद्देश्य महत्त्वपूर्ण : रचनात्मक लेखन वह लेखन होता है जिसमें समाज की किसी समस्या को उठाया जाता है। उसे किस तरह दूर किया जा सकता है, इस पर विचार किया जाता है, लेकिन वह बहुत सूक्ष्म ढंग से किया जाना चाहिए, जिससे यह न लगे कि इसी उद्देश्य से कहानी लिखी गई है और उसकी सारी रोचकता नष्ट हो जाए। पता न चले इस तरह से संवादों के माध्यम से या पात्र के द्वारा उसका समाधान भी दे दिया जाता है। ऐसे प्रभावशाली समाधान वाली कहानियाँ समाज में बहुत अच्छा प्रभाव डालती हैं। मुंशी प्रेमचन्द की लगभग हर कहानी की यही विशेषता है। उनमें जीवन का यथार्थ दिखाई देता है।

रचनात्मक लेखन के लिए जरूरी है कि हमें भाषा और विषय के बारे में अच्छी जानकारी हो। सृजनात्मक लेखन बाहर घटने वाली घटना नहीं, बल्कि भीतर होने वाला निर्माण है जो सहज ही हृदय से उमड़ कर बाहर आ जाता है। इसमें कल्पनाओं की ऊँची उड़ान लगानी पड़ती है तो कभी कल्पनाओं की गहराइयों में डुबकी।

क्रिएटिव राइटिंग एक ऐसी गतिविधि है जिसमें लेखक बिल्कुल बिना किसी बाध्यता के अपनी भावनाओं, अनुभवों और समाज में जो घट रहा है, यानी जिस तरह भी वह सहजता महसूस करता है, किसी रचना का सृजन करता है। इसके लिए सबसे जरूरी है शब्द ज्ञान होना और शब्दों का सही प्रयोग

व मनुष्य जीवन और अनुभवों को समझने की दिलचस्पी व संवेदना। इसके लिए लेखक का कल्पनाशील होना अत्यंत जरूरी है, क्योंकि कई बार वही उसकी प्रेरणा बन जाती है।

विविध रूप हैं : जब हम क्रिएटिव राइटिंग की बात करते हैं, तो इसके कई रूप हैं। कविता, नाटक, कहानी, सभी अलग-अलग तरह के रचनात्मक लेखन हैं। यहाँ मैं बात करूँगी कहानी लेखन की। कहानी का जन्म तो मनुष्य के जन्म के साथ ही हो गया था। ऐसा कोई नहीं है जिसने अपने बचपन में कहानी न सुनी हो। यही वजह है कि दादी-नानी की कहानियाँ आज भी लोकप्रिय हैं। जैसे ही कोई कहता है कि 'आओ मैं तुम्हें कहानी सुनाती हूँ, या सुनाता हूँ' तो उसके पास बच्चे जमा हो जाते हैं। मजे की बात तो यह है कि यह ऐसी विधा है जो हर उम्र के लोगों को सुहाती है। असल में कहानी सुनाना और सुनना इंसान का स्वभाव है और अपने-अपने तरीके से इसे बुनकर सुनाया जाता है। यही वजह है कि इस विधा में इतनी विविधता देखने को मिलती है।

कोई अपने अनुभवों के आधार पर इसे लिखता है तो कोई प्रकृति से प्रेरित होकर या पशु-पक्षी को आधार बनाकर। शिक्षाप्रद, उपदेशात्मक, रोचक, मनोरंजक, गुदगुदाने वाली-कहानियाँ जिस तरह चाहें गढ़ी जा सकती हैं। कहानियाँ लिखने के लिए केवल दृष्टि व अवलोकन करने की क्षमता चाहिए, क्योंकि कहानियाँ हमें हमारे आसपास ही बिखरी मिल जाएँगी। वास्तविकता व कल्पना को जोड़ते हुए हम अलग-अलग कहानियाँ बना सकते हैं।

कहानी लेखन की शुरुआत कब हुई, अगर इस पर नजर डालें तो उन्नीसवीं सदी में गद्य में इस नई विधा का विकास हुआ था। बाँग्ला में इसे गल्प कहा जाता है। कहानी ने अंग्रेजी से हिंदी तक की यात्रा बाँग्ला के माध्यम से की।

लेखन की खास बातें : अगर बच्चे कहानी लिखना चाहते हैं तो वे अपने बचपन की बातों को लिखें, जब भी कोई विचार मन में आए तो उसे तुरंत नोट कर लें। यह कहानी लेखन की पहली स्टेज है। उस समय उसे कोई आकार देने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। इसे हम सीड आइडिया कहते हैं। विचार जब आ गया तो उस पर सोच कर उसे बीज रूप दिया जाता है।

कहानी लिखते समय हमें सबसे पहले जरूरत होती है उसकी शुरुआत की फिर उसके मध्य भाग की और उसके बाद अंत की। बिना किसी निष्कर्ष के कोई भी अंत नहीं होना चाहिए। कई बार कहानी का अंत अधूरा छोड़ दिया जाता है जिसे हम क्लिफ हैंगर कहते हैं, यानी पाठकों पर यह तय करने के लिए छोड़ देना कि उसका अंत क्या होगा। अगर कोई निष्कर्ष न हो तो छोटे बच्चों की रुचि खत्म हो जाती है। और बाल लेखक के लिए क्लिफ हैंगर देना संभव नहीं, ऐसा परिपक्वता आने पर ही किया जा सकता है। हालाँकि बाल साहित्य में अधूरा अंत स्वीकार्य नहीं होता है।

कहानियों में कोशिश की जाती है कि कुछ न कुछ उसमें ऐसा हो कि पढ़ने के बाद अच्छी अनुभूति हो। कुछ ऐसी कहानियाँ भी होती हैं, जिनमें कुछ ऐसा कुछ नहीं होता लेकिन वे फिर भी चेहरे पर मुस्कुराहट ले आती हैं।

कहानी की शुरुआत में पात्र को गढ़ना होता है पूरी तरह से। उसके बाद आता है कहानी का मध्य भाग, जिसके माध्यम से कहानी धीरे-धीरे सरकते हुए अंत तक पहुँचती है। जब हम कोई छोटी कहानी

लिख रहे हैं तो यह समझ लें कि वह एक ही बार में पढ़ी जाती है इसलिए वह ऐसी हो जिसे पढ़ने में कठिनाई महसूस न हो। ऐसी लिखी जानी चाहिए जो एक प्रवाह में पढ़ी जा सके।

पाँच तत्वों पर दें ध्यान-

पात्र यानी कैरेक्टर/परिवेश यानी सेटिंग

रूपरेखा यानी प्लॉट/कशमकश या उलझन या कंफ्लिक्ट/विषय या थीम

पात्र जीवित व्यक्ति, मृत व्यक्ति, भूत, कोई जानवर, रोबोट, कुत्ता या खिलौना भी हो सकते हैं या प्रकृति-इसकी सूची असीमित है। हमारा जो मुख्य पात्र होता है जिसे हम प्रोटेगोनिस्ट कहेंगे वह या तो खुद अपनी कहानी सुनाता है या उसके माध्यम से कहानी सुनाई जाती है। यह ध्यान रखना जरूरी है कि पात्र हमेशा अपने उद्देश्य प्राप्ति की ओर अग्रसर होता हुआ होना चाहिए। इसका मतलब यह नहीं कि हमें सिर्फ हमेशा मुसीबतें कहानी में दिखानी हैं। हम हल्की-फुल्की कहानियाँ जो सिर्फ हँसाती हैं, गुदगुदाती हैं, जिनसे कोई ऐसा अर्थ नहीं निकलता कि कोई सीख दी जा रही है, ऐसी कहानियाँ भी हम लिख सकते हैं।

पात्र का चयन तीन रूपों में कर सकते हैं- स्वयं पात्र यानी प्रथम पुरुष, आप खुद लेखक हैं यानी कि द्वितीय पुरुष, किसी अन्य (वह) कथाकार का प्रयोग कर तृतीय पुरुष।

आमतौर पर मुख्य पात्र एक दुविधा रचता है और उसका समाधान भी करता है। बाकी सहायक पात्र होते हैं। ये पात्र मुख्य पात्र को विकसित करने में मदद करते हैं। पाठकों को पात्र के साथ जोड़ें। उसके लिए उपयुक्त विशेषण जोड़ें, दिलचस्प संवाद और ध्यान आकर्षित करने वाला विवरण दें।

पात्र परिचय या कैरक्टराइजेशन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें कहानी को बनाने में पात्रों को विकसित कर उसे एक जामा पहनाया जाता है। छोटी कहानियों में कम पात्र होते हैं और लिखते हुए लेखक को हमेशा यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि किस तरह से उसके पात्र पाठकों को अपने साथ जोड़ सकें। पाठक को लगे कि यह पात्र हमारे आसपास का ही कोई पात्र है। यानी पात्रों का जीवंत होना अनिवार्य है, बेशक कल्पना का समावेश किया गया हो, तब भी।

यह भी वर्णन करना जरूरी है ताकि कहानी की सचाई प्रमाणित हो सके कि पात्र कैसे कपड़े पहनता है, उसकी कद-काठी कैसी है, कैसे चलता है, उसके हाव-भाव कैसे हैं, चेहरे पर आने वाले भाव, उसकी सोच क्या है और वह गाँव का पात्र है या शहर का पात्र है। विदेशी है या हमारे समाज का- उसके अनुसार कहानी के अन्य पक्ष तैयार होते हैं।

इसका दूसरा मुख्य तत्व है सेटिंग यानी पृष्ठभूमि या परिवेश। इसमें अकसर दृश्यों का विवरण होता है जैसे सुपरमार्केट, स्कूल की कक्षा, मेट्रो या रेलवे स्टेशन या फिर बारिश का आना या बस का सफर। (अगर बाल साहित्य लिख रहे हैं) इसकी भी सूची असीमित है। परिवेश का वर्णन खूबसूरती से किया जाना चाहिए जिससे पढ़ने वाले की आँखों के सामने ही दृश्य साकार हो जाए। पाठकों की उत्सुकता को बनाए रखने के लिए जरूरी है कि एक रहस्य अंत तक बना रहे। आप चाहें तो क्लाइमेक्स के लिए अपने वर्णन को बचाए रख सकते हैं।

तीसरा तत्व है कहानी का प्लॉट या ढाँचा। कहानी की रूपरेखा माँस व माँसपेशियों की तरह होती है। इसमें घटना एवं पात्र के क्रियाकलाप समाहित होते हैं। कहानी के प्लॉट में एक या दो घटनाएँ होती हैं जिससे

कहानी बनती है और जिस विषय पर कहानी लिखी जा रही है, उस विषय को वह अभिव्यक्त करता है, कहानी को आगे बढ़ाता है। अगर एक से ज्यादा घटनाएँ हों तो उनका आपस में जुड़ा होना जरूरी है।

चौथा तत्व है कनफ्लिक्ट यानी कहानी में उलझन या दुविधा, पात्र के जीवन में आया कोई उतार-चढ़ाव।

पाँचवा तत्व है विषय या थीम। विषय ही कहानी का मुख्य केंद्र बिंदु होता है। आप कहीं से भी विषय उठा सकते हैं और अगर प्रकृति से जुड़े विषय हों तो वह बच्चों को ज्यादा पसंद आते हैं।

संवाद कैसे लिखें : समय व परिस्थिति के अनुसार संवाद लिखे जाते हैं। जिस पात्र की आप कहानी लिख रहे हैं, या जो पात्र आपने गढ़ा है, उसकी पृष्ठभूमि क्या है, वह कहाँ रहता है, वह किस तरह व्यवहार करेगा, किस तरह सोचेगा, यह समझने के बाद ही संवाद लिखे जाते हैं।

उपसंहार : उपसंहार वह पड़ाव है जिसके माध्यम से पाठकों को उसके पात्र के मुख्य लक्ष्य की प्राप्ति होती है। अर्थात् उस उद्देश्य को संपूर्णता दी जाती है जिसके लिए कहानी लिखी गई। इसलिए उपसंहार रोमांचकारी व दिलचस्प तथा जिज्ञासा पैदा करने वाला होना चाहिए।

जरूरी बातें : अपने विचारों को चाहे अनगढ़ रूप में ही सही, शब्द देने का लगातार प्रयास करें व सही भाषा व उन विचारों को आकार देने के लिए अच्छे लेखकों व कवियों के साहित्य को पढ़ें।

अपनी अभिव्यक्ति को उड़ान दें। उस वक्त यह सोचें कि जो आप लिख रहे हैं उसका वाक्य विन्यास, भावार्थ, शब्द संयोजन सही है कि नहीं, बस केवल अपनी अभिव्यक्ति को शब्दों में उतारते जाएँ।

कथा की विषय वस्तु लेखकीय दृष्टि एवं उससे संबंधित विचार मिलकर मुकम्मल रचना का रूप लेते हैं। अधिकांश रचनाओं की विषयवस्तु हमें जीवन की हलचलों से मिलती है। केवल घटना का ब्यौरा न दें, वरन् उसमें एहसासों को भी पिरोएँ, अपने मन के विचारों को भी उसमें गूँथें।

इंसान हो या वातावरण, जो दिखता है, उससे ज्यादा अनदिखा ही रह जाता है। अच्छा लेखक वही होता है जो दिख रहे से ज्यादा देख पाने में सक्षम हो क्योंकि वह सामने जो दिख रहा है, उससे अधिक देखने को इच्छुक होता है। जो दिखता है वह आईसबर्ग की चोटी भर है, इसलिए हमें सामने की चमक-दमक से परे जाकर अनुभव बटोरने में उत्साह दिखाना चाहिए।

अपने परिवेश, आसपास घट रही घटनाओं, लोगों के हाव-भाव, परिधान, संवाद, चेहरे पर आने वाले भावों या कहें कि उनकी बॉडी लैंग्वेज पर एक पैनी नजर रखें। अवलोकन करने से ही कहानी की कथावस्तु मिलती है।

कहानी में हम कल्पना का सहारा लेते हैं और इसलिए तर्क-वितर्क पीछे छूट जाते हैं, लेकिन सामाजिक जीवन से जुड़ी कहानियाँ लिखते हुए कल्पना के साथ-साथ हमें तार्किकता का सहारा भी लेना पड़ता है। अन्यथा पात्रों की विश्वसनीयता सिद्ध नहीं हो पाती और कहानी अवास्तविक लगती है।

सम्पर्क : दिल्ली

डॉ. अर्जुन दास खत्री

बाल विकास : मनोविज्ञान एवं शिक्षा

बाल विकास के अंतर्गत विद्यालयीन शिक्षा के 18 वर्ष तक के युवक आते हैं। किसी एक मनोविज्ञान एवं शिक्षा के द्वारा सभी बच्चों के विकास की व्याख्या नहीं की जा सकती। अलग-अलग आयु वर्ग के लिए मनोविज्ञान एवं शिक्षा दोनों के स्तर अलग-अलग होते हैं। इस आलेख में छोटे प्राथमिक स्तर के बच्चों के मानसिक विकास पर चर्चा करेंगे।

मनोविज्ञान : मनोविज्ञान भी शिक्षा के समान व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक दोनों प्रकार का होता है। जहाँ तक संभव हो, व्यावहारिक ज्ञान का प्रयास किया जाना चाहिये। मेरा पौत्र दक्ष तीन वर्ष का था। पुत्र नोएडा में रहता था जहाँ अधिकांशतः बहुमंजिला इमारतों के फ्लैट में निवास करना होता है। वे भी एक फ्लैट में रहते थे। वहाँ मेरा जाना हुआ। एक दिन मैंने देखा दक्ष डर रहा है। मैंने बहू से पूछा कि यह अचानक डरने कैसे लगा। उसने बताया की ऊपर मकान में फर्श सुधार हो रहा है। उसे तोड़ा जा रहा है। उसकी धमक नीचे हमारे फ्लैट में आ रही है। इसे समझा रहे हैं परंतु इसे कुछ समझ ही नहीं आ रहा है, डर रहा है।

मैंने तुरंत दक्ष को गोदी में लिया और उस फ्लैट में जा पहुँचा। बड़े शहरों में लोग निवासियों को नहीं पहचानते, संबंधियों को क्या पहचानेंगे? मैंने अपना परिचय देकर आने का कारण बताया और उनसे कहा की हमें अंदर आने दीजिये ताकि मैं इसे फर्श को तोड़ना दिखा सकूँ। मैं अंदर गया और बाथरूम के सामने दक्ष को ले गया जहाँ मिस्त्री हथौड़े से फर्श तोड़ रहा था जिसकी धमक से वह डर रहा था। मैंने उसे बताया की पानी नीचे टपकता है। उसे रोकने के लिए पहले इसे तोड़ेंगे फिर नया बनाएँगे। बस उसका डर निकल गया और वह सामान्य हो गया।

एक अन्य घटना तो बहुत ही विचित्र हुई। पुत्र, पुत्रवधू, और दक्ष जब चार वर्ष का था, भोपाल मेरे पास आये। साँची जाने की योजना बनी। हम वहाँ पहुँचे। साँची में बच्चों के मनोरंजन के नाम से देखने योग्य कुछ है नहीं, परंतु बालक तो संग ही रहेगा न। बाल प्रवृत्ति के अनुरूप दक्ष ने वहाँ पहुँचकर देखा। उसे अपना खेल मिल गया। वह छोटे पत्थर उठाकर इधर-उधर फेंकने लगा। मैंने उसे मना किया परंतु उसे शरारत अच्छी लग रही थी। वह खुले स्थान की ओर पत्थर भी फेंक रहा था जहाँ कोई भी आ-जा सकता था। वहीं पर एक सुरक्षा कर्मी था। मैंने दक्ष से कहा कि वह पकड़कर बंद कर

देगा। परंतु दक्ष पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अंततः मुझे उससे कहना पड़ा की इसे समझाओ। उसने टोका, दक्ष को रोका और बाँह पकड़ कर कहा कि तुम्हें बंद कर देंगे। बस विस्फोट हो गया। दक्ष को वह इतना अपमानजनक लगा कि वह दहाड़ मार कर रोने लगा और कहने लगा की मुझे नहीं देखना है, तुरंत वापस चलो। वह किसी की बात सुनने के लिए तैयार ही नहीं था। माता-पिता को खींचने लगा, वापस घर चलो। बड़ी समस्या उत्पन्न हो गई। अभी तो हम वहाँ पहुँचे ही थे। बार-बार तो जाना नहीं हो पाता है। पुत्र उसे गोदी में लेकर दुकान पर गया। मैं भी साथ में था। उसे टॉफी-बिस्कुट लेकर दिये, शीत पेय की बोतल भी दी परंतु उसने उन्हें लेने से इनकार कर दिया। उसके रोने का स्तर घटने का नाम ही नहीं ले रहा था। मैंने उनसे कहा कि वे सब अंदर देख आयें। मैंने पहले देखा ही था। अतः मैं दक्ष को लेकर वहीं रुक गया।

दक्ष का मुझसे प्रेम भी बहुत है क्योंकि मैं उसे अनेक कहानियाँ सुनाता रहता हूँ। अनेक पौराणिक और ऐतिहासिक कहानियाँ उसे सुना चुका था। वीरता की कहानियाँ उसे बहुत प्रिय हैं वह उसमें वीरता और स्वाभिमान का संचार करती हैं। परंतु उस दिन वह कहानी सुनने क्या किसी भी बात पर राजी नहीं हो रहा था। वहीं बेंच पर बैठे हमें कुछ समय हो गया परंतु थकने के कारण उसका धीरे-धीरे रोना और वापसी की जिद ज्यों की त्यों बनी हुई थी।

अचानक मैंने उसमें स्वाभिमान जागृत करके ऊर्जा का संचार किया। मैंने उसे समझाया, 'उस गार्ड ने तुम्हें बुद्धू बना दिया और डरा दिया।' मेरे बुद्धू और डराने की बात कहने पर उसका रोना बंद हुआ और वह आँखें पोंछते हुए पूछने लगा, 'कैसे बुद्धू बना दिया?' मैंने कहा, 'उसने तो पत्थर न फेंकने के लिए कहा था, बस। वहाँ मैं था, दादी थीं, तुम्हारे मम्मी-पापा थे। बताओ हमारे रहते वह तुम्हें कैसे पकड़ के ले जाता? तुम बुद्धू बन गये, डर गये और रोने लगे। तुम भी ताकतवर हो, हम सब तुम्हारे साथ हैं।'

मेरे इतना कहने से उसमें आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ और वह ऐसे हो गया जैसे कुछ हुआ ही न हो। उसमें ऊर्जा का संचार हो गया कि गार्ड उसे कैसे ले जा सकता था। फिर मैंने उसे सम्राट अशोक की कहानी सुनाई और स्तूप की ओर ले गया। वह दौड़ कर स्तूप पर चढ़ा और प्रसन्नता से सब देखने लगा। तब तक परिवार के लोग स्तूप आदि देखकर उद्यान में बैठे थे, पुत्र सोच रहा था कि दक्ष ने दादा को कितना परेशान क्या होगा, चलो उनके पास चलते हैं। तब तक उन्होंने देखा की दक्ष स्तूप पर चढ़कर मस्त है। मैंने उन्हें बताया की स्वाभिमान जागृत करने से ऐसा संभव हुआ है।

दक्ष में कहानियों से स्वाभिमान का विकास तो हो गया परंतु मैंने उसे गंभीरता से नहीं लिया। एक दिन मैं दक्ष को लेकर अपने बुजुर्ग मामा के घर गया जो नोएडा में ही रहते थे। मामाजी दो खिलौना इलेक्ट्रॉनिक कारें लेकर आये, एक दक्ष के लिए और दूसरी घरेलू नौकर के बच्चे के लिए। दक्ष उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। बच्चों की आदत होती है कि वे किसी मनपसंद वस्तु या खिलौने को देखते हैं तो उसके लिए जिद्द करने लगते हैं और अपना सामान दूसरे को नहीं देते। बालक दक्ष में भी यह भावना थी। जब वह उस कार से खेलने लगा तो मैंने उससे कहा कि वह कार तो मामा जी उस बालक के लिए लाये हैं, तुम्हारे लिए नहीं। मामा जी सामने नहीं थे। मैंने उसे दो-तीन बार यही बात

कही। अति पसंद का खिलौना होने के बावजूद दक्ष उससे इतना विरक्त हो गया कि बाद में उसे बार-बार कहने के बाद भी उसने उस कार में कोई रुचि नहीं ली। वह कार घर ले आये परंतु उसके विचार-व्यवहार में कोई अंतर नहीं आया क्योंकि मेरे ऋणात्मक व्यवहार से उसके आत्मसम्मान को ठेस पहुँची थी। तब से मुझे लगा कि हमें ऋणात्मक विचारों से यथासंभव बचना चाहिये।

आजकल बच्चों से स्वयं को मुक्त करने के लिए माता-पिता उन्हें टीवी के सामने बैठा देते हैं या मोबाइल पकड़ा देते हैं। उसके बाद बच्चे पढ़ने में कम टीवी-मोबाइल में ही अधिक ध्यान देने लगते हैं जो उनके विकास में बाधक होता है। बच्चों को मना करते रहें कि वे टीवी-मोबाइल न देखें तो वे सुनते नहीं हैं। वास्तव में बच्चे इतने जिद्दी नहीं होते जितना हम समझते हैं। प्रश्न है कि वह करे क्या? पहले परिवार में 3-4-5 बच्चे होते थे, मोहल्ले में अनेक बच्चे होते थे, उन्हें मिलकर खेलने के लिए सुविधा होती थी जो प्राय: एक बच्चा होने से अब नहीं है। अत: कहने मात्र से वे टीवी-मोबाइल नहीं छोड़ सकते। उन्हें विकल्प चाहिये।

हम जब बच्चों के पास होते हैं तो उन्हें किसी कार्य में व्यस्त कर देते हैं। दक्ष अब नौ वर्ष का है। उसके साथ होते हैं तो उसे रुचिकर किस्से-कहानियाँ सुनाएँगे, उसके साथ शतरंज खेलेंगे या फिर पिता उसे कभी क्रिकेट, कभी बैडमिंटन खिलाने तो कभी स्विमिंग पूल में तैराने के लिए ले जाते हैं। उसे कोडिंग भी सिखवा रहे हैं, ओलंपियाड में भी व्यस्त रखते हैं। इस प्रकार अन्यत्र व्यस्तता से टीवी-मोबाइल स्वत: पीछे छूटता जा रहा है। बच्चे को यह न कहें की यह मत करो, वह मत करो, उसे बताएँ कि वह क्या करे और उसे समय भी दें। मेरा छोटा पौत्र अनय चार वर्ष का है। उसे खिलाने पार्क ले जाते हैं, कहानियाँ सुनाते हैं, लुका-छुपी, लूडो, साँप-सीढ़ी आदि खिलाते हैं, दादी ब्लॉक से विभिन्न नमूने बनवाती हैं। पिता पुस्तक पढ़ाने या कुछ बनवाने में तत्पर रहते हैं। तब वह टीवी का नाम तक नहीं लेता। हमने देखा है कि बच्चे रचनात्मक कार्यों में अधिक रुचि लेते हैं परंतु कोई साथ में होना चाहिए। टीवी-मोबाइल से बुद्धि का समुचित विकास कैसे होगा? जबकि रचनात्मक कार्यों से नई-नई बातें सीखने से, काम करने से उसकी बुद्धि का विकास भी अच्छा होता है।

कुछ बच्चे बचपन से अति चंचल होते हैं, सक्रिय होते हैं क्योंकि उनमें अधिक शारीरिक ऊर्जा के साथ ही मस्तिष्क की सक्रियता भी अधिक होती है। बालपन में वे कुछ भी करते हैं, माता-पिता को अति प्रिय लगता है। वे उसकी प्रशंसा करते हैं तो वह वैसे ही काम और तत्परता से करने लगते हैं। बालपन में मस्तिष्क का विकास तीव्रता से होता है। ऐसे बच्चों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। उन्हें अपने मन से कुछ भी करने देने के स्थान पर उन्हें किसी उपयोगी कार्य जैसे पढ़ने, कहानियाँ सुनाने, ब्लॉक से नमूने बनवाने में या खेल आदि में व्यस्त रखना चाहिये। वे वही सीखते जाएँगे। उनके विकास की दिशा बनती जायेगी। ऐसे बच्चों का बिगड़ना भी सहज होता है। मनमाने ढंग से काम करते रहने पर बड़े होकर वे पढ़ाई से विमुख होने लगते हैं क्योंकि उनकी रुचियाँ मनमाने या इच्छित कार्यों को करने में रम जाती हैं।

सैद्धांतिक रूप से बाल मनोविज्ञान पढ़ा और पढ़ाया जा सकता है परंतु बच्चों में इतनी समझ नहीं होती है कि वे कुछ कहते ही उसे ग्राह्य कर लें और तदनुसार आचरण करने लगें। तात्कालिक रूप

से उसके व्यावहारिक समाधान देखने चाहिये। इसे अभिभावक देखें या शिक्षक देखें।

एक और स्थिति भी होती है जब बच्चे क्या बूढ़े तक चिड़चिड़े हो जाते हैं। बच्चे गोदी से नीचे उतरना ही नहीं चाहते, उतारते ही रोने लगते हैं। शिशुओं की बात छोड़िए, बड़े बच्चे भी ऐसा व्यवहार करने लगते हैं और लाख समझाने पर भी नहीं मानते, क्रोध करते हैं, कुछ खाना-पीना नहीं चाहते। माताओं के लिए यह स्थिति बड़ी विकट होती है। ऐसे बच्चे समझाने पर इसलिए नहीं मानते कि वे जिद्दी नहीं, अस्वस्थ होते हैं। अनेक बार तो यह स्थिति किसी बीमारी के समय उत्पन्न होती है और अनेक बार अज्ञात कारणों से होती है। उन्हें दवा की आवश्यकता होती है। होमियोपैथी में इसकी सटीक दवा है कैमोमिला 30 (chamommila 30)। इसकी कुछ खुराकों से ही शिशु हों, बड़े बच्चे हों या वृद्ध, ठीक हो जाते हैं और उनका चिड़चिड़ाना, अनावश्यक क्रोध करना स्वत: शांत हो जाता है, उनका व्यवहार, खाना-पीना सब सामान्य हो जाता है।

शिक्षा : शिक्षा विकास का सर्वोत्तम पथ है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य का सर्वांगीण विकास संभव है। प्रश्न है कि शिक्षा किस प्रकार दी जाये? शिक्षा देने में भाषा, विषयवस्तु, शिक्षक, पुस्तकें, विद्यालय, शिक्षण-सामग्री, पर्यावरण, प्रायोगिक कार्य आदि अनेक तत्व महत्त्वपूर्ण होते हैं। यहाँ पर मात्र व्यावहारिक शिक्षा की ही चर्चा की जायेगी।

मैं चार वर्ष पूर्व अमेरिका में था। वहाँ बच्चों को पढ़ाने और आगे बढ़ाने पर चर्चाएँ हो रही थीं। उनमें प्राथमिक स्तर पर यह बात उभर कर आई कि बच्चों को अधिकतम दूसरी कक्षा तक सही पढ़ना और लिखना सिखा दिया जाना चाहिए ताकि वह विषयों को भलीभाँति समझ सके। भाषा में शुद्ध उच्चारण एवं लेखन शुद्धि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अन्य भाषाओं में तो शब्दों के लेखन में स्वरों क्या, व्यंजनों का भी घालमेल है। एक ही स्वर या व्यंजन का अलग-अलग शब्दों में भिन्न-भिन्न उच्चारण होता है। परंतु हिन्दी में जो जैसे बोला जाता है, वैसे ही लिखा जाता है। अत: हिन्दी के लिए मात्रा ज्ञान सर्वाधिक आवश्यक है। वर्तमान में युवा पीढ़ी में यह फैशन हो गया है कि वे अपने बच्चे को अंग्रेजी बोलते हुए देखना चाहते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में उसी से अच्छी नौकरी मिलेगी। अत: वे हिन्दी विषय होने के बावजूद बच्चों को शुद्ध हिन्दी सिखाने में कोई रुचि नहीं लेते। इसलिए बच्चे भी उसकी उपेक्षा करते जाते हैं।

अपने देश में भाषा की तो कोई चिंता ही नहीं करता है। मेरी पत्नी के पास घरेलू बाई की नवीं में अध्ययनरत पुत्री कुछ दिन पढ़ने आई। वह निजी विद्यालय में पढ़ने के साथ ही ट्यूशन भी जाती है। उसके साथ समस्या यह थी कि समझाने पर उसे विषय तो समझ आ रहे थे परंतु वह उन्हें लिखने में असमर्थ थी। लिखने में ही नहीं, वह प्रश्न को पढ़ ही नहीं सकती थी। सोचिए कि वह विषय जानते हुए भी उत्तर कैसे लिख सकती है जब वह प्रश्न पढ़ ही नहीं सकती? भाषा की यह समस्या भारत की ही नहीं, विकसित देशों की भी है। अंतर मात्र इतना है कि वे प्रारम्भिक स्तर पर जोर देते हैं जबकि अपने देश में उस पर कोई विचार ही नहीं करता। अब तो दसवीं उत्तीर्ण विद्यार्थी पुस्तक पढ़ लें तो समझिए कि वे विद्वान हैं!

बात करें नई शिक्षा नीति की। हमारे देश में जब भी शिक्षा नीति में परिवर्तन किये गये, कोई

मौलिक चिंतन नहीं किया गया। इसलिए अपनी व्यावहारिक समस्या भी नहीं समझी गई। विदेश गये और वहाँ से कुछ नकल कर लाये और उसे ऐसे प्रदर्शित किया जैसे आसमान से तारे तोड़ लाये हों।

परीक्षा का बोझ कम करने के लिए अमेरिका में प्रोजेक्ट दिए जाते हैं। उनके अंक जोड़ने पर मुख्य परीक्षा का कार्य और तदनुसार बोझ भी कम हो जाता है। बड़ी अच्छी योजना है, बच्चों के मस्तिष्क का भार कम हो गया। अमेरिका में हमारे घर के निकट एक प्राथमिक विद्यालय है। उसमें विद्यार्थी संख्या छः सौ से कम होगी। वहाँ 28 का नियमित शिक्षा स्टाफ है जिनमें खेल, कला-ड्राइंग, संगीत, स्वास्थ्य एवं मनोविज्ञान विशेषज्ञ भी हैं। उनके अतिरिक्त प्रबंध समिति में छः सदस्य हैं। शिक्षक-अभिभावकों की टोलियाँ भी हैं जो स्वेच्छा से विद्यालय जाकर बच्चों को प्रोजेक्ट कार्य या अन्य प्रकार से सहयोग करते हैं। उस क्षेत्र में रहने वाले मकानों के संपत्ति कर का एक बड़ा भाग वहाँ विद्यालयों को अनुदान रूप में प्राप्त होता है। अच्छा भवन है, बड़ा मैदान है। छोटे बच्चों के लिए झूले लगे हैं। क्रीड़ा शिक्षक नियमित रूप से खेल-अभ्यास करवाते हैं। उसकी तुलना में हमारे देश के विद्यालयों में पूरे शिक्षक ही नहीं होते न ही कोई शिक्षक की योग्यता की चिंता करता है। इसके साथ ही शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात भी इतना अधिक होता है कि शिक्षक चाह कर भी सबको व्यक्तिगत रूप से नहीं देख सकता। प्रोजेक्ट कौन देगा और कौन देखेगा? इस प्रोजेक्ट योजना से अपने बच्चों को क्या लाभ होगा? अभी तो बच्चे-अभिभावक दोनों प्रसन्न होंगे कि बोझ कम हुआ परंतु भविष्य में क्या होगा, इसका चिंतन कौन करेगा?

बात करें आधुनिक तकनीकों की। चार वर्ष पूर्व अमेरिका में हमारे क्षेत्र में एक ऐसा विद्यालय प्रारंभ किया गया जिसमें सभी कार्य शिक्षा, गृहकार्य, परीक्षा आदि लैपटॉप, कंप्यूटर से ही करने होते हैं अर्थात कागज मुक्त पढ़ाई। अभिभावकों में अतिउत्साह था। जिन्हें अवसर मिला, अपने बच्चे उस आधुनिक विद्यालय में ले गये। विगत वर्ष 2019 में अर्थात् उसके तीन वर्ष बाद मैं पुनः अमेरिका गया था। एक भारतीय अभिभावक से बात हुई। उसने मुझे बताया कि पौत्री को कागज-मुक्त विद्यालय में प्रवेश करवाया था, उसे हाथ से लिखना ही नहीं आता है। तीसरी कक्षा उत्तीर्ण हो गई है। अब उसे कापी-किताब वाले विद्यालय में पढ़वाना है।

भविष्य क्या है? : पाठ्यक्रम कम होने से बच्चे प्रसन्न, अभिभावक प्रसन्न परंतु सुविधापूर्वक हायर-सेकेंडरी उत्तीर्ण करने के पश्चात् जब विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षण संस्थानों में प्रवेश की बात आती है तो ये विद्यार्थी टुकुर-टुकुर देखते रह जाते हैं। उन्हें प्रवेश नहीं मिल पाते। अमेरिका में हायर सेकेंडरी स्तर तक के लिए गणित-विज्ञान एवं अन्य विषयों की मोटी पुस्तक रहती है। प्रत्येक कक्षा को उत्तीर्ण करने के लिए उसमें अध्याय निर्धारित हैं। परंतु यदि कोई विद्यार्थी उनके अतिरिक्त अन्य अध्याय भी पढ़ना चाहता है तो पढ़ सकता है। उसकी भी पृथक परीक्षा होती है, पृथक अंक मिलते हैं जो मुख्य परीक्षा उत्तीर्ण करने के अंकों के अतिरिक्त होते हैं। तकनीकी एवं उच्च शिक्षण संस्थानों में प्रवेश के लिए कोई प्रवेश परीक्षा नहीं होती क्योंकि वहाँ बोर्ड के परीक्षाफल विश्वसनीय माने जाते हैं। अतः उनमें प्राप्त ग्रेड के आधार पर या कुछ पाठ्यक्रमों में उसके साथ साक्षात्कार के आधार पर प्रवेश होते हैं। वहाँ प्रवेश हेतु हायर सेकेंडरी में प्राप्त अंकों के साथ उन्हें प्राप्त हुए अतिरिक्त

पाठ्यक्रमों के अंक भी जुड़ते हैं। जिसमें सुविधानुसार कम पाठ्यक्रम से उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थी वंचित हो जाते हैं, वे उच्च तकनीकी शिक्षा नहीं प्राप्त कर पाते। परिणाम स्वरूप उन्हें उच्च वेतन की नौकरी नहीं मिल पाती है। उन्हें निचले स्तर की नौकरी से संतोष करना पड़ता है। वहाँ भारतीय बच्चों के साथ अभिभावक जुड़े रहते हैं। अत: वे उन्हें अतिरिक्त पाठ्यक्रम उत्तीर्ण करवाने के लिए सक्रिय रहते हैं, अधिक पढ़वाते हैं, परीक्षा दिलवाते हैं ताकि उनका भविष्य उज्ज्वल हो।

कुछ वर्ष पूर्व जब ओबामा राष्ट्रपति थे, उन्होंने अपने विद्यार्थियों को चेतावनी के साथ समझाने का प्रयास किया था कि अमेरीकी बच्चों की शिक्षा के प्रति उत्साह में कमी से विदेशी आगंतुक अमेरिकी लोगों से बहुत आगे बढ़ते जा रहे हैं, अत: वे भी पढ़ाई में ध्यान दें। इसी सरल शिक्षा के कारण वहाँ छात्र तनाव मुक्त हैं, परंतु अधिकांश उच्च तकनीकी एवं वैज्ञानिक पदों पर विदेशी लोगों की भरमार है। चार वर्ष पूर्व मैंने वहाँ समाचार पत्र में एक विश्लेषण पढ़ा था कि विदेशों से आये एवं विदेशी मूल के अमेरिकी लोग मूल अमेरिकी लोगों की तुलना में कितनी अधिक आय वर्ग में हैं, उनसे कितने अधिक सम्पन्न हैं। क्या भारत में नई शिक्षा नीति के संदर्भ में इस समस्या पर किसी ने विचार किया है? क्या भारत में भी वैसी ही अतिरिक्त पाठ्यक्रम की पुस्तकें होंगी? अतिरिक्त परीक्षाएँ होंगी? छात्र एवं अभिभावकों की रुचि तो मात्र मूल परीक्षा उत्तीर्ण करने में होगी। बाद में उच्च शिक्षा में प्रवेश के समय प्रतियोगी परीक्षाओं के समय ये सभी विद्यार्थी बहुत कष्ट में होंगे।

इसलिए विदेशों से कुछ आयात कीजिए तो समग्र रूप से कीजिए, पर्याप्त सुविधाओं के साथ कीजिए, अन्यथा जिसे बाल-कल्याण के नाम पर कर रहे हैं, वह भविष्य में बहुत कष्टप्रद सिद्ध होगा जैसे नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा से बिना पढ़े, बिना परीक्षा दिये भी आठवीं तक उत्तीर्ण करते जाने के फलस्वरूप बच्चों के विकास की अपार क्षति हो गई है। म. प्र. में विद्यालयीन स्तर पर वर्षों से सरल पाठ्यक्रम रखे थे ताकि बेचारों को अधिक परिश्रम न करना पड़े। ये प्रतियोगी परीक्षाओं में फिसड्डी सिद्ध हुए। उन्हें बारहवीं के बाद तकनीकी और चिकित्सा संस्थानों में प्रवेश के लिए मुख्य पढ़ाई रोक कर कोचिंग लेनी पड़ी, अतिरिक्त धन और समय देना पड़ा, फिर भी वे बहुत अच्छे स्तर को नहीं प्राप्त कर सके। इसलिए अब यहाँ भी राष्ट्रीय स्तर की पुस्तकें और पाठ्यक्रम लागू किया जा रहा है। पाठ्यक्रम और परीक्षा व्यवस्थाएँ सहज कीजिए परंतु भविष्य की कीमत पर नहीं।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*

डॉ. आरती स्मित

बाल साहित्य और चित्र

'साहित्य', जिसके सान्निध्य में पाठक रस और आनंद पाता है, चाहे वह पाठक नब्बे वर्षीय बुजुर्ग हो या बालक।

'बाल साहित्य' शब्द-मात्र कल्पना की दुनिया में उन्मुक्त सैर कराने वाले विमान का बोध देता है, जिसमें बैठकर यात्रा करते हुए बच्चे अपनी यथार्थ दुनिया में झाँकते चलते हैं। बाल साहित्य एक ऐसे साहित्य का अर्थ-बोध देता है जिसमें पैठकर बालमन अपनी जिज्ञासाओं, विचारों और कल्पनाओं की सहज अनुभूति पाता है; जहाँ उनके अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर मौजूद होते हैं, जहाँ उन्हें अपनी सोच को विस्तार देने के लिए अपरिमित धरती और असीम आकाश मिलता है; जहाँ वे विचरण करते हुए खो नहीं जाते, एक समृद्ध राह तलाशते हैं। दरअसल, बाल साहित्य बालमन को तर्कसंगत, सुविचारी और आलोचक बनाता है।

अब जिज्ञासा उभरती है कि बाल साहित्य को किस रूप में आँका जाए और उसकी परिधि क्या हो? क्या एक मनोरंजक कृति के रूप में या प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में नैतिकता का पाठ सिखाने वाली थेरेपी के रूप में और क्या उसकी परिधि में केवल सकारात्मक बातें ही हों जबकि आज इंटरनेट से जुड़े बच्चे अपने समय के साथ दौड़ लगाते हुए समझ के मामले में काफ़ी आगे निकल चुके हैं। अब वे अपने आसपास की घटनाओं से कुछ-कुछ परिचित होते हैं, और उन्हें परिचित होना भी चाहिए। कथाकार शंकर मानते हैं कि बाल साहित्य बच्चों को एक संवेदनशील मनुष्य के रूप में विकसित होने की स्थितियाँ देता है। इसलिए उसका स्वरूप वस्तुपरक हो ताकि नन्हें पाठक के दिल की गहराई में उतर सकें। कथाकार संजीव भी मानते हैं कि बाल साहित्य ऐसा हो जो बच्चों में जिज्ञासाएँ जगाए और जिज्ञासाओं का सम्मान करे। कठिन से कठिन पहेली को भी कौतुक, हास्य, सरल, सुबोध और बेहतर ढंग से समझा जाए। संजीव जी ने भाषा और शिल्प को महत्ता दी है।

बाल साहित्य की उपादेयता यही है कि वह बालक के कोमल मन की उस स्फूर्ति को व्यंजित करे, उसे आनंद देने के साथ ही उसके व्यक्तित्व-विकास में सहायक हो। समय के साथ चीज़ें बदली हैं और इसकी अनिवार्यता भी है। अब बच्चे राजा-रानी, तलवार से युद्ध, परी और

शैतान के युद्ध और चाँद पर सूत कातती, स्वेटर बुनती नानी की दुनिया से बाहर निकल चुके हैं, अब उनकी दुनिया में पक्षी-पशु के साथ-साथ नदी-नाले, पर्वत, सूर्य का ताप, बादल और बूँदों के गठन की बातें हैं; धरती के हरी-भरी होने और पेड़ों के कट जाने से उजड़ी धरती के विलाप की कल्पनाएँ हैं; अब वे रात के जीव की दुनिया में जाना पसंद करते हैं, बीज से पौधे के पनपने की कल्पना को साकार देखना चाहते हैं। वे मोबाइल, लैपटाप और कंप्यूटर के वेबसाइट के इंद्रजाल में प्रवेश करना चाहते हैं। बच्चे इन्हीं के ज़रिए इसी तरह की नई दुनिया, नए पात्र, नई परिस्थितियों के साथ तादात्म्य स्थापित करते नज़र आते हैं। उनकी दुनिया बड़ों की दुनिया का हिस्सा नहीं होती, उनकी अपनी थाती होती है- विज्ञान और तर्क पर आधारित दुनिया। इसलिए आज सबसे अधिक ज़रूरी है कि बाल साहित्यकार बच्चों के परिवेश, उनके मन:स्तर पर टिके रहकर साहित्य रचे। सुप्रसिद्ध बाल साहित्यकार हरिकृष्ण देवसरे अपनी कहानी रचकर बच्चों को सुनाते थे, कहानी के जिस भाग पर बच्चों की उत्कंठा या दिलचस्पी घटती देखते, उस भाग को बदल कर फिर सुनाते, इस प्रकार उनकी रचना बाल-समूहों से छनकर प्रकाशकों तक पहुँचती और बाल पाठक इसे बहुत पसंद करते। वरिष्ठ बाल साहित्यकार विष्णु प्रभाकर, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, की शृंखला को आगे बढ़ाएँ तो प्रकाश मनु, क्षमा शर्मा, रामेश्वर कांबोज हिमांशु, पंकज चतुर्वेदी, श्यामसुंदर अग्रवाल, प्रदीप शुक्ल आदि ऐसे सजग बाल साहित्यकार हैं जो बच्चों की दिलचस्पी को ध्यान में रखते हुए, नई-नई बातों से उनका परिचय कराते चलते हैं, वह भी इतनी सहजता और सरलता से कि बच्चा उन नैतिक मूल्यों/तत्वों को आप से आप ग्रहण कर ले।

बाल साहित्य- समीक्षक लिलियन स्मिथ का मानना है, ''यह आवश्यक नहीं है कि बच्चों के लिए लिखी सभी पुस्तकें साहित्य ही हों और न ही यह आवश्यक है कि बड़े लोग जिसे बाल साहित्य मानते हैं, बाल रुचि के अनूकूल चुनी गई यह पुस्तक उस कसौटी पर खरी उतर जाये। ऐसे लोग भी हैं जो बड़ों की बातों का सरल ढंग से विवेचन ही बाल साहित्य मान लेते हैं। लेकिन यह विचार बच्चों को बड़ों का सूक्ष्म संस्करण सिद्ध करता है। वास्तव में यह धारणा बचपन को गलत ढंग से समझने के कारण उत्पन्न हुई है, क्योंकि बच्चों का वास्तव में जीवन-अनुभव बड़ों से बिलकुल भिन्न होता है। उनकी एक अलग दुनिया होती है जिसमें जीवन के मूल्य बाल-सुलभ मनोवृत्ति के आधार पर निर्धारित होते हैं, बड़ों के अनुभव के आधार पर नहीं।''

डॉ. हेनरी स्टील कॉमागार ने ठीक ही कहा है, 'वास्तव में यह कहना कठिन है कि बच्चे इस प्रकार की पुस्तक को पसंद करते हैं, इस प्रकार की नहीं।'

हम महसूस कर सकते हैं कि कई ऐसी पुस्तकें, जैसे- गुलीवर ट्रैवल, हातिमताई, सिंदबाद द सेलर, अलीबाबा चालीस चोर, रॉबिन्सन क्रूस, डेविड कॉपरफील्ड से लेकर चाचा चौधरी, मोटू पतलू, अकबर बीरबल, तेनालीरामा ने बच्चों और बड़ों-दोनों का दिल जीता है। हैरी पॉटर किशोरों को अधिक पसंद आती है। 'पंचतंत्र', विक्रम वेताल, सिंहासन बत्तीसी की कहानियों को समसामयिक परिस्थितियों में ढालने की दरकार नज़र आती है। क्योंकि आज साहित्य द्वारा बच्चों के मन में गूढ़ रहस्यात्मकता और अंधविश्वास के आरोपण की अपेक्षा विज्ञानपरक रहस्य के प्रति

कौतूहल उत्पन्न करना आवश्यक है क्योंकि बच्चे बेहद संवेदनशील होते हैं। वे प्रत्येक विषयवस्तु को अपने समय के अनुरूप देखते-समझते हैं। इसलिए आज बाल साहित्य के रूप में ऐसी रचनाओं की ज़रूरत है जो बालकों को वर्तमान में पनपती अपसंस्कृति की चपेट से बचा सके; विखंडित होती मान्यताओं, घिसे-पिटे जीवन-मूल्यों और सामंतवादी नीतियों से परिपूर्ण मूल्यों को किनारे कर उनमें कर्मठता, साहस, बुद्धिमत्ता और तर्कशक्ति का विकास कर सके।

बच्चे का व्यक्तित्व विकास यों तो गर्भावस्था से होता है, इसलिए गर्भवती महिलाओं को अच्छी नीतिपरक पुस्तकें पढ़ने की सलाह दी जाती है। जन्म के पश्चात् लोरी और कविताएँ-कहानियाँ उनके मस्तिष्क को तैयार करती हैं। छः माह से एक वर्ष के बीच का बच्चा रंगीन चित्रों वाली पुस्तकों को उलटता-पलटता है। यदि यह क्रम बना रहा तो ढाई से तीन वर्ष के बीच वह चित्रों के माध्यम से कहानी न केवल समझने लगता है, बल्कि बुनने भी लगता है। अब वह शिशु थाली में चाँद पाकर खुश नहीं होता, सवाल करता है...'कहाँ है चाँद? वह इस अयथार्थ को स्वीकारता नहीं, लाकर हाथ में देने की ज़िद करता है। उसे समुद्र, नदी, तालाब से लेकर एक्वेरियम में पलती मछलियों की बातें समझ आती हैं। बढ़ती उम्र के साथ वह पुस्तक की बातों को अपने आसपास के वातावरण से जोड़ता है, खोजता है-उस रहस्यमय दुनिया तक पहुँचना चाहता है, जिसकी झलक उसे पुस्तक में मिलती है।

बाल मनोवैज्ञानिक जे. ए. हेडफ़ील्ड के अनुसार, 'परीकथाएँ निश्चय ही अवास्तविक विचारों का प्रतीक होती हैं। इस आयु के बालक-बालिका को अवास्तविक से नहीं, बल्कि वास्तविकता से मतलब होता है। उसकी कल्पना उन व्यावहारिक उपलब्धियों से भरी रहती है जिन्हें वह प्राप्त कर सकता है या करेगा। इसलिए वह परीकथाओं में अधिक रुचि नहीं लेता।'

मेरिया मांटेसरी ने भी यह पाया कि 'काल्पनिक और निर्मूल कहानियों के द्वारा बालक के कोमल हृदय पर ऐसे संस्कार पड़ जाते हैं जिनके कारण वे अनेक अवैज्ञानिक बातों पर विश्वास करने लग जाते हैं। शैशवावस्था के संस्कार स्थायी होते हैं, अतः बालक के मन से बाद में अवैज्ञानिक बातों को हटाना कठिन हो जाता है।

देखा गया है कि बच्चे की सोच क़िस्से-कहानियों से अधिक प्रभावित होती है। कई बार वे उनके संस्कारों का हिस्सा हो जाती हैं। यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने कहा था, 'प्रत्येक घर की प्रौढ़ महिलाओं को अच्छी से अच्छी कहानियाँ याद कराई जाएँ और उन्हें ये आदेश दिए जाएँ कि वे अपने बच्चों को उन्हीं कहानियों को सुनाएँ।.... राष्ट्र के अधिकारियों को चाहिए कि बच्चों को ऐसी कहानियाँ न सुनाने दें जो उनके मन पर अनैतिकता के संस्कार डालें।'

यह भी पाया गया है कि जिन रचनाओं को पढ़ते समय उन्हें कथानक या घटनाक्रम अपनी ज़िंदगी या भावना से जुड़ा हुआ महसूस होता है, उन्हें वे बार-बार पढ़ते हैं। किशोर वय में प्रवेश करते बच्चों को जासूसी उपन्यास, रोमांचक कथाएँ बहुत पसंद आती हैं, जैसे कि हैंस एंडरसन, ग्रिम बंधुओं की कहानियाँ, सिंदबाद जहाज़ी, अमर चित्र कथाएँ, खजाने वाली चिड़िया आदि रचनाएँ। विज्ञानपरक कथाएँ बच्चों को नई कल्पना, भावी जीवन, समाज से परे जानने की सोच

देती हैं।

भारतीय बाल साहित्यों में नायक मनुष्य हो या पशु-पक्षी, हमेशा उदात्त गुणों से पूर्ण होता है। वह ईमानदार, सहिष्णु, न्यायप्रिय, धैर्यवान और सूझबूझ वाला होता है। फैंटेसी के प्रति बच्चों का रुझान पहले भी रहा, अब भी है, तभी तो हितोपदेश, पंचतंत्र और चंद्रकांता संतति की सफलता हमारे सामने है। पंचतंत्र कथानक, घटनाक्रम, भाव और भाषा एवं शैली में इतना विशिष्ट रहा कि विश्व के लगभग सभी भाषाओं में इसका अनुवाद कीर्तिमान स्थापित करता है।

बाल साहित्यकार क्षमा शर्मा मानती हैं कि 'बच्चे आज भी भूत की कहानियाँ सुनना चाहते हैं।' संभवत: उनकी कल्पना करके जो रोमांच होता है, उसमें उन्हें आनंद आता हो। किंतु अब ऐसे बच्चों की संख्या कुछ घटी है।

हरिकृष्ण देवसरे मानते थे, 'बच्चों के लिए एक पुस्तक अच्छी पुस्तक तभी बन सकती है जब वह पूरे अनुभव के साथ लिखी जाए और फिर बच्चों की अपनी कसौटी पर खरी उतरे। ऐसी पुस्तकें बच्चों की जिज्ञासा शांत करने के साथ उनकी कल्पना-शक्ति को उर्वरा बनाकर नई जिज्ञासा को जन्म देंगी और इस तरह बच्चे अन्य पुस्तकें पढ़ने को प्रेरित होंगे।'

प्रकाश मनु और पंकज चतुर्वेदी ने बाल साहित्य में इन समस्त खूबियों के साथ ही एक अन्य बिंदु को महत्त्वपूर्ण माना है, वह है चित्रात्मकता। सचमुच, बाल साहित्य और चित्र का सहोदर-सा संबंध जान पढ़ता है, ख़ासकर बारह वर्ष तक के बच्चों के लिए।

चित्र की अपनी समृद्ध भाषा होती है। नन्हा शिशु जब पढ़ना नहीं जानता, तब भी वह चित्र से आसपास की चीज़ों से मिलान कर उससे तादात्म्य स्थापित कर लेता है। चित्रों की भाषा वह उतनी ही अच्छी तरह ग्रहण करता है, जितना बड़े बच्चे लिपिबद्ध साहित्य। रंग-बिरंगे चित्र कथानक को जीवंतता प्रदान करते हैं। घटना के अनुरूप चित्र बालमन तक शीघ्र पहुँचते हैं, साथ ही चित्रों से पुस्तक की रोचकता बढ़ जाती है।

मैंने कुछ शिशुओं/बच्चों को लेकर दिल्ली में एक प्रयोग किया। पाँच माह के शिशु के सामने लगातार दो वर्षों तक चित्रों वाली पुस्तकें खोली और पलटी जाती रहीं, तो बढ़ती उम्र में उसकी बौद्धिकता अपेक्षाकृत अधिक विकसित हुई। दो वर्ष की उम्र में पुस्तकें खोलकर देखना और चित्रों के सहारे अपनी कल्पना से कविता, कहानी बुनना उसने शुरू कर दिया था। ढाई वर्ष की उम्र में उसे सभी रंगों, अधिकांश पशु-पक्षियों के नाम सहित नदी, समुद्र, बादल वन, अस्पताल, रेलवे स्टेशन-वह हर चीज़ जो यथार्थ में थी, और जिसके बारे में उसने पुस्तकों से जाना-समझा था और माँ से सुना था, उसे सबकी पहचान थी।

इसीप्रकार, छत्तीसगढ़ का एक-डेढ़ वर्ष का शिशु चित्र के सहारे लगभग 25 से 30 पशु-पक्षी और फल के नाम बता सका। माता-पिता चित्रात्मक पुस्तक उसके सामने खोल देते और पूछते 'गाय/काउ कहाँ है', इसी प्रकार, और भी कई चीज़ें। वह शिशु अँगुली रखकर सही-सही बताता जाता। मैंने स्वयं जाँचा कि कई शब्द तो उसने चित्र देखकर स्वयं कहे। इतना ही नहीं, यथार्थ में उन विषय वस्तुओं को देखकर झट से पहचान भी गया।

कहने का सीधा सादा अर्थ यह है कि चित्र, कहानी हो या कविता-किसी भी रचना के प्रति बालमन में रोचकता पैदा करते हैं। चित्रों की अपनी, बड़ी समृद्ध भाषा होती है।

सजग बाल साहित्यकार सदैव रचना के अनुरूप चित्रांकन पर ध्यान देते हैं। जैसे, यदि कहानी आदिवासी गाँव की है तो पात्र का चित्रण आदिवासी के रूप में और परिवेश उनके गाँव जैसा ही होगा, अन्य क्षेत्र के गाँव जैसा नहीं। इससे बच्चे की कल्पना-शक्ति का सही दिशा में विकास होता है। आगे जाकर वे उन चीज़ों को स्वयं पहचान जाते हैं।

चित्र प्रादेशिक विशेषता को उभारने का भी काम करते हैं। भूगोल पढ़कर बच्चे बोर हो जाते हैं, मगर यदि भूगोल की जानकारी रोचक कहानी की तरह चित्र सहित दी जाए तो बच्चे रुचि लेंगे। उदाहरणत:- यदि लाचेन नदी की कहानी के साथ ही उत्तरी सिक्किमवासी सहित उफनती बर्फ़ीली नदी और चमकते-दमकते पत्थरों से पटे किनारे का चित्रांकन होता है तो बच्चा उस परिवेश में पहुँच जाता है। वह अपनी कल्पना में उन आकर्षक पत्थरों को छूकर देखता है, नदी के ठंडे जल में उतरकर देखता है और उसके तेज़ प्रवाह से रोमांचित हो उठता है। वह पूर्वी भारत के लोगों को पहचान जाता है, फिर वह उन्हें अपना-सा लगने लगता है। यह बात हर प्रदेश पर लागू होती है। इसीप्रकार, यदि हम जोहिला (झेलम) नदी किनारे बसे भू-भाग का चित्र दिखाते हैं तो मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ का आदिवासी बच्चा उससे तुरत जुड़ता है। मगर, एक बात यह भी कि यदि हम उन्हें 'जेंटलमैन' में सूट-बूट टाई वाले व्यक्ति का चित्र दिखाते हैं तो वह अपने परिवार और समाज के धोती-कुरता बंडी पहने बुजुर्ग को उस श्रेणी में नहीं रख पाता। शिशु मन एक बार जो छवि गढ़ लेता है, उससे उबरना उसके लिए कठिन होता है। तो, यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि किस समाज को किस प्रकार की चित्रात्मक पुस्तक दी जाये। कुछ समय पहले जनजातीय भाषा में बाल पुस्तकें प्रकाशित हुईं, चित्र भी स्थानीय आदिवासी परिवेश के अनुरूप गढ़े गए, बच्चों में प्रचलित भी हुआ, मगर बाद में यह कहकर बंद कर दिया गया कि इससे शिक्षा विभाग पर अतिरिक्त भार पड़ता है। यह जानकारी मध्यप्रदेश के आदिवासी क्षेत्र में कार्यरत व्यक्ति से स्कूली शिक्षा पर विमर्श के दौरान मिली। इन क्षेत्रों में चित्रात्मक पुस्तकों की पहुँच अभी बाकी है, इसलिए आँगनबाड़ी से लेकर प्राथमिक विद्यालय पहुँचे बच्चों का पुस्तक के साथ दोस्ताना रिश्ता नहीं बन पाया है। यही हाल राजस्थान के दौसा ज़िले के अंतर्गत आए कई गाँवों के विद्यालयों के भी मिले। मेरे व्यक्तिगत शोध एवं प्रयोग से स्पष्ट रूप में यह परिणाम दिखा कि चित्र के साथ पलता-बढ़ता बच्चा अन्य बच्चों की अपेक्षा अधिक मेधावी होता है।

अब जबकि विश्वग्राम की संकल्पना को अधिक बल मिलने लगा है, रचना के साथ चित्रों की उपस्थिति की महत्ता बढ़ जाती है। पलाश के वन की बात यदि बिना चित्र के करें तो बच्चा उसके सुर्ख रंग की वैसी कल्पना नहीं कर पाएगा या छतनार वृक्ष के जीवों की रोचक कहानी सुनाए तो छतनार वृक्ष और उसके ऊपर रहते जीवों के चित्र कहानी को सजीवता प्रदान करेंगे। ज्यों-ज्यों बालक बड़ा होता जाएगा, चित्र की अपेक्षा कहानी पढ़ना अधिक पसंद करेगा, बावजूद इसके बिना चित्रों वाली पुस्तक वह कम लेना चाहेगा। क्योंकि चित्र रचना को सजीव के साथ ही

सरस भी बनाते हैं।

कहानी कोई भी हो, पात्र और परिवेश का चित्रांकन बाल पाठकों को उस स्थान-विशेष से जोड़ने में मदद करता है, जहाँ कहानी ले जाना चाहती है। बाल साहित्य में आवरण चित्र का विशेष महत्त्व है। आवरण चित्र बालकों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। बच्चा पुस्तक हाथ में लेता है, पलटता है, भीतर के चित्र देखता है, साथ में दिए हुए कथा-खंड को पढ़ता है, फिर निर्णय लेता है कि पूरी पुस्तक रोचक होगी या नहीं। आज का बाल पाठक, पाठक ही नहीं आलोचक भी है। उसे इस बात से कोई सरोकार नहीं होता कि कौन-सा साहित्यकार सुप्रसिद्ध है, कौन नहीं। वह पुस्तक या पत्रिका तभी पलटता है जब आकर्षक आवरण चित्रों के बीच झलकता शीर्षक उसे गुदगुदाता है या उत्कंठित करता है। फिर बारी आती है अंतर्कथा की-अंतर्चित्रों की, जिसके साथ उसे अपनी यात्रा पूरी करनी होती है। लोटपोट, इन्स्पेक्टर विक्रम, मालगुड़ी डेज, ऊपर की दुनिया नीचे की दुनिया, अन्तरिक्ष में विस्फोट, यह मैं हूँ आदि रचनाएँ चित्रों के कारण ही प्रिय रही हैं।

यह शुभ संकेत है कि वर्तमान समय में चित्रांकन की गुणवत्ता पर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया जाने लगा है, रंगों के समन्वय, कागज़ों की मुलामियत या उसके खुरदरेपन को कहानी में वर्णित क्षेत्र के अनुरूप बननेवाले चित्रों के हिसाब से उपयोग किया जाता है। प्रथम बुक्स, एकलव्य, नेशनल बुक ट्रस्ट, चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट, प्रकाशन विभाग एवं अन्यान्य प्रकाशन संस्थानों ने बाल साहित्य के लिए चित्रांकन की अनिवार्यता समझी जिसका फल यह हुआ कि इलेक्ट्रॉनिक हमले के बावजूद बच्चों में पुस्तक के प्रति रुचि बढ़ी है। और कई बाल पुस्तकों ने ऑनलाइन अपनी उपस्थिति दर्ज़ कर बच्चों तक पहुँचने में सफलता पाई है। रंगीन चित्रात्मक रचनाओं का सफल प्रभाव यह रहा कि पिछले कई दशकों से उनपर कार्टून चलचित्र बन रहे हैं; बच्चे पुस्तक में वर्णित कथाक्रम का चित्र से मिलान कर अभिनय कर रहे हैं। अब, अभिभावकों पर निर्भर करता है कि वे बच्चे को कितना प्रेरित करते हैं!

सम्पर्क : पूर्वी दिल्ली

डॉ. कृष्णा कुमारी

बाल साहित्य की आवश्यकता, उपयोगिता और विशिष्टता

साहित्य समाज का अभिन्न अंग है, प्रतिबिम्ब है। आदमी को इन्सान बनाने की प्रक्रिया में साहित्य का महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसके द्वारा मानव के विकारों का परिष्कार होता है और वह उच्चतर जीवन जीने की ओर अग्रसर होने लगता है। इस प्रकार साहित्य मनुष्य को सुसंस्कृत बनाते हुए सभ्यता से भी जोड़े रखता है।

बाल साहित्य इससे थोड़ा भिन्न होता है। सम्पूर्ण वाङ्मय का आधार भी बाल साहित्य ही माना गया है। बाल साहित्य अर्थात् बच्चों का साहित्य जो बालक के लिए रचा जाता है, बालक को आनंद चाहिए, मनोरंजन चाहिए, इस प्रकार बाल साहित्य का अर्थ हुआ 'गद्य-पद्य में लिखी गई ऐसी रचनाएँ जिन्हें पढ़कर बालक आनंदित हो उठें, उल्लसित हो जायें, उनकी कल्पनाओं को पंख लग जाएँ। इसी के साथ बालक के सम्यक उन्नयन, सर्वांगीण विकास में सहायक हो, उसे सुसभ्य, सुसंस्कृत, चरित्रवान, सुनागरिक बनाने में अहम् भूमिका निभाये, उसमें विश्वबंधुत्व, मानवीय संवेदना का भाव जाग्रत करे तथा उस के भावी जीवन के लिए पाथेय सिद्ध हो। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार-

'उनके लिए बाल साहित्य तो वह है जो उन्हें हिलाए, डुलाये और दुलराये भी। यानी वे ख़ुशी से झूम उठें।' -(दिविक रमेश, बाल साहित्य : कल, आज और कल, बाल वाटिका, पृष्ठ-22)

बाल साहित्य की आवश्यकता : बाल साहित्य, साहित्य का ही महत्त्वपूर्ण अंश है और जो बालक के सम्यक उन्नयन की आधारशिला तैयार करता है। उसे प्रकृति से जोड़ता है, बातों ही बातों में प्रेम, सहयोग, करुणा, सत्य, सद्भावना, संवेदना, साहस आदि मानवीय गुणों से बालक का साक्षात्कार करवाता है। मूलत: बाल साहित्य बच्चों को जीने की कला सिखाता है, चीजों को देखने-परखने की नई दृष्टि देता है।

डॉ. नागेश पांडेय ने बाल साहित्य की आवश्यकता को व्यक्त करते हुए लिखा है-'बच्चों को सभ्य और सुसंस्कृत बनाने की दिशा में बाल साहित्य की अवर्णनीय भूमिका है। आज जब विश्व के समग्र राष्ट्रों में एक प्रतियोगिता का वातावरण है और विकास की आपाधापी में नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है, ऐसे में बालक को एक सफल नागरिक के रूप में तैयार करने हेतु बाल साहित्य की आवश्यकता विशेष रूप से बढ़ गई है।' -(डॉ. नागेश पाण्डेय 'संजय,' बाल साहित्य के प्रतिमान, पृष्ठ-15)

इसी परिप्रेक्ष्य में प्रख्यात बाल साहित्यकार हरिकृष्ण देवसरे का मानना है-

‘बाल साहित्य की तुलना माँ के दूध से की जा सकती है। जैसे बच्चा अपना पहला आहार माँ के दूध के रूप में लेता है वैसे ही उस का पहला बौद्धिक आहार माँ के मुँह से सुनी लोरी के रूप में बाल साहित्य होता है। जैसे बच्चे के स्वस्थ शारीरिक विकास के लिए माँ का दूध आवश्यक होता है वैसे ही उस के स्वस्थ मानसिक विकास के लिए बाल साहित्य।’-(अखिलेश श्रीवास्तव चमन, ऐसा हो बच्चों का साहित्य, आजकल, पृष्ठ-12)

मूर्धन्य आलोचक डॉ. नगेन्द्र ने माना है-

‘पहले समाज में बालक का अस्तित्व खिलौने के रूप में था। उनको प्यार-दुलार तो मिलाता था लेकिन उसे समाज का एक अभिन्न अंग नहीं समझा जाता था। लेकिन आज के बालक की आवश्यकताओं में एक आवश्यकता बाल साहित्य की भी है।’(हिंदी बाल पत्रकारिता; उद्भव और विकास, डॉ. सुरेन्द्र विक्रम, पृष्ठ-11)

अर्थात् बाल साहित्य में माँ के दुलार की महती आवश्यकता है क्योंकि इसका पाठक एक बच्चा होता है और बच्चे को सर्व प्रथम माँ का प्यार, दुलार ही चाहिए।

‘श्रीनाथ सहाय ने बाल साहित्य की आवश्यकता को बताते हुए लिखा है ...

‘बालक देश की आधारशिला है। इसकी समुचित शिक्षा, संवेगिक व बौद्धिक विकास पर ही देश का विकास संभव है। प्रारम्भ से ही इन्हें राष्ट्रीय, जनतान्त्रिक मूल्य आधारित शिक्षा देने की आवश्यकता है, जिससे एक जागरूक नागरिक के रूप में इनका उत्तरोत्तर विकास हो। इस दिशा में बाल-साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, जिसके द्वारा बालकों में स्वस्थ संस्कार प्रतिस्थापित हो सकें। अनुशासन, मर्यादा, व्यवस्था की नींव बचपन में ही उचित बाल साहित्य द्वारा निर्मित की जा सकती है।’- (श्रीनाथ सहाय, बाल साहित्य का संसार, आजकल, पृष्ठ- 15)

उपर्युक्त संदर्भों एवं विद्वानों के मतानुसार बाल साहित्य बच्चों के लिए अत्यावश्यक है। यह एक पथ प्रदर्शक की भाँति काम करता है, बालकों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। डॉ. देवसरे के अनुसार बाल साहित्य बच्चों के लिए माँ के दूध जितना उपयोगी है। डॉ. नागेश पाण्डेय ने इसे बच्चों को सुनागरिक बनाने के लिए जरूरी माना है, वहीं श्रीनाथ सहाय ने बच्चों के समुचित विकास और नैतिक मूल्यों से जुड़ने के लिए बाल साहित्य की अहम् भूमिका को स्वीकार किया है। डॉ. नगेन्द्र इसे बच्चों के लिए प्रमुख आवश्यकता मानते हैं।

बालक किसी भी समाज के लिए आत्म स्वरूप होता है। इस नन्हें पौधे को जैसे खाद-पानी से सिंचित किया जायेगा, वैसा ही पल्लवित, पुष्पित और फलित होगा। वस्तुत बाल साहित्य बच्चों का मनोरंजन करने के साथ-साथ उन्हें आनंद प्रदान करता है, उनका ज्ञानवर्द्धन करता है, उनकी कल्पनाओं, जिज्ञासाओं का शमन करता है, स्मरण शक्ति एवं तर्क क्षमता में वृद्धि करता है। बौद्धिकता का विकास करके प्रकृति और पर्यावरण प्रेम भी जाग्रत करता है। बाल रचनाओं के द्वारा बालक अपने परिवेश को, वस्तुओं को, सामाजिक गतिविधियों को, रिश्तों को बारीकी से जानने लगता है। बाल साहित्य उनकी प्रज्ञा को तीव्र करता है। वहीं नई वैज्ञानिक तकनीकों से जोड़े रखता है।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात कि बालकों का साहित्य एकल परिवारों में दादा-दादी, नाना-नानी की कमी

को पूरी करते हुए, बच्चों के एकाकीपन को दूर करता है साथ ही जीवन जीने की कला सिखाता है।

बाल साहित्य बच्चों के साथ-साथ प्रौढ़ों, नवसाक्षरों और इनसे जुड़े अन्य व्यक्तियों के लिए भी आवश्यक माना गया है, जैसे दादा-दादी, नाना-नानी, माता-पिता, शिक्षक आदि। तभी तो वे अपने बालकों को कवितायें, कहानियाँ सुना सकेंगे और उनसे जुड़ कर उनका प्यार पा सकेंगे। डॉ. नागेश पाण्डेय ने इस परिप्रेक्ष्य में लिखा भी है-'बाल साहित्य केवल बच्चों के लिए ही नहीं, प्रौढ़ों, नवसाक्षरों के लिए भी समान रूप से अपनी महत्ता सिद्ध करता है। वास्तविकता तो ये है कि बच्चे से जुड़े हर व्यक्ति के लिए बाल साहित्य का अध्ययन अपेक्षित है।'- (डॉ. नागेश पाण्डेय 'संजय', बाल साहित्य के प्रतिमान, पृष्ठ -16)

समग्रत सनातन काल से बाल साहित्य की आवश्यकता रही है और हमेशा रहेगी।

बाल साहित्य की उपयोगिता : बाल साहित्य बालकों के लिए जितना आवश्यक है उतना ही उपयोगी भी। इस संदर्भ में डॉ. राष्ट्र बंधु का मानना है-'हमें चाहिये कि हम बाल साहित्य की उपयोगिया से समाज को परिचित कराएँ। आँगनबाड़ी में बच्चों को पहेलियाँ, लोरियाँ और कहानियों का प्रवेश क्रमबद्धता से नहीं है। शिक्षा में जे.टी.सी., बी.टी., सी., बी.एड., एम्. एड. और पुस्तकालयों के लिए बाल साहित्य का ज्ञान, शिक्षा को सामाजिकता से जोड़ सकता है। अत: बाल साहित्य में जो मनोविज्ञान है उससे मनोचिकित्सा की सफलता सरलता से हो सकती है। स्वास्थ्य और चिकित्सा में भी बाल साहित्य का उपयोग चमत्कारी प्रभाव दिखा सकता है।'-(डॉ. राष्ट्रबंधु, आधुनिक भारत की अपेक्षाएँ और बाल साहित्य, बाल वाटिका, पृष्ठ-8)

उपयोगिता निम्नांकित बिन्दुओं से स्पष्ट है-

- बाल साहित्य बच्चों को खुशियों से भर देता है
- इससे बालकों की कल्पना शक्ति का विस्तार होता है।
- बाल साहित्य पढ़ने, देखने और सुनने से बच्चे कई प्रकार की कलाओं से सहज रूप से जुड़ जाते हैं। साथ ही बाल साहित्य लिखना भी सीख जाते हैं।
- बाल साहित्य से बालकों की क्रियात्मक क्षमता और सृजनशीलता में वृद्धि होती है।
- बाल साहित्य से बच्चों के अतिरिक्त समय का बहुत अच्छा सदुपयोग होता है।
- इसके पढ़ने से उनमें स्वावलंबन, आत्मनिर्भरता, अनुशासन, दृढ़ता, साहस, मैत्री-भाव, सहयोग की भावना, प्रेम आदि भाव स्वत: ही जाग्रत हो जाते हैं।
- कहानियों, कविताओं, पहेलियों आदि के पठन-पाठन से बालकों की स्मरण शक्ति बढ़ती है।
- कहानी सुनकर मित्रों को या किसी और को सुनाने से उनकी वाक कला, वाक चातुर्य में संवर्द्धन होता है।
- नाटकों के पठन और मंचन से अभिनय कला का विकास भी होता है।
- बाल-साहित्य को आत्मसात करने से बच्चे व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त करते हैं।
- बाल पहेलियाँ सुनने और हल करने से बच्चों का मानसिक विकास होता है, संतुष्टि मिलती है, चिंतन-मनन से द्वार खुलते हैं।

बाल साहित्य की विशिष्टता : बाल साहित्य की प्रथम विशिष्टता यही है कि वह बालकों के लिए होता है, क्योंकि बाल साहित्य सम्पूर्ण वाङ्मय का अति महत्त्वपूर्ण अंग है। बालक अपने आप में ही इस सृष्टि की विशिष्ट ईकाई है। बाल साहित्य बड़ों के साहित्य से अनेक प्रकार से भिन्न है, जो इसकी विशेषताओं के फल स्वरूप ही है। इस संदर्भ में डॉ. नागेश पाण्डेय 'संजय' का कथन प्रस्तुत है-'बाल साहित्य सामान्य साहित्य का अंग होते हुए भी उससे सर्वथा पृथक है। भाषा-शैली, शिल्प, उद्देश्य, संवेदना, मनोविज्ञान और महत्त्व इत्यादि अनेकानेक दृष्टियों से दोनों में मूलभूत अंतर है। (डॉ. नागेश पाण्डेय 'संजय', बाल साहित्य के प्रतिमान, पृष्ठ-13)

डॉ. श्रीप्रसाद के अनुसार 'बड़े और बच्चों की कविता में मूल अंतर संवेदना का है।'

स्पष्ट है, बाल साहित्य की भाव-पक्ष और कला-पक्ष के आधार पर अपनी अलग विशेषताएँ हैं क्योंकि बालक और बड़ों की दुनिया हर दृष्टि से भिन्न होती है। जहाँ बच्चा कल्पनाओं के आकाश में विचरण करते नहीं थकता वहीं बड़ों को यथार्थ के कठोर धरातल पर चलना पड़ता है।

बाल साहित्य रस से परिपूर्ण, सहज, बच्चों की तरह मासूम होता है और इसके लिए बाल रचनाकार को उनकी भावभूमि पर उतर कर सर्जना करनी पड़ती है। बाल साहित्य जितना सरल होता है उसका सृजन उतना ही कठिन। बाल साहित्य की अन्य विशेषताओं में उसका आकार में लघु होना भी जरूरी है, चाहे गीत हो, कहानी हो, नाटक हो या दूसरी विधा। इसलिए कि बालकों को शीघ्र याद हो सके और हमेशा स्मृति में रहे। बाल साहित्य का सकारात्मक होना इसकी विशेषता है।

बालक सदैव वर्तमान में जीता है, या फिर कल्पनाओं में। अत: बाल साहित्य वर्तमान के साथ भविष्य की संकल्पना को लेकर लिखा जाता है। बाल साहित्य, बच्चों के साथ-साथ बाल साहित्य प्रौढ़, युवा, महिलाएँ भी बड़ी रुचि से पढ़ते हैं और भरपूर आनंद लेते हैं अर्थात् बाल रचनाएँ हर वर्ग को बहुत पसंद आती हैं। बाल रचनाओं की भाषा-शैली अन्त्यानुप्रास (तुकबन्दी) आदि बाल रचनाओं की प्रमुख विशिष्टताएँ हैं।

सम्पर्क : *कोटा (राज .)*

संगीता सेठी

बाल साहित्य : नैतिकता और आनंद

'मेरे दिल के कोने में छिपा इक नन्हा सा बच्चा
बड़ों की देखकर दुनिया बड़ा होने से डरता है'

साहित्य अगर समाज का दर्पण है तो बाल साहित्य बालमन का विस्तृत विश्लेषण है। यूँ कहें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी कि साहित्य की शैशवावस्था बाल साहित्य ही है। साहित्य का जन्म बच्चों के साथ की गई बतकही से ही हुआ है। बतकही यानी छोटे-छोटे जुमले, बतकही यानी छोटे-छोटे रुचिकर वाक्य, छोटे-छोटे बाल गीत और छोटी-छोटी कहानियों से ही बच्चों का परिचय जीवन में सबसे पहले होता है। यदि उसे बचपन में इस बतकही का रुचिकर वातावरण मिलता है तो आगे चलकर साहित्य में रुचि लेता है।

प्राचीन काल में यही बात कही थी जो आगे चलकर है लोककथाओं में प्रचलित हुई। जब छपाई का युग आया तब ये कथाएँ लिपिबद्ध होकर छपाई के रूप में पुस्तकें बनकर हमारे सामने आईं। अब बाल साहित्य का स्वरूप कैसा हो, यह एक बाल साहित्यकार के लिए गम्भीर विषय है कि क्या बच्चों को नैतिक साहित्य पढ़ाया जाए या उन्हें आनंद देने वाला साहित्य दिया जाए।

सच बात तो यह है कि बच्चों को उनके जीवन में सबसे पहले परोसे जाने वाले साहित्य में आनंद होना चाहिए। बच्चा जब साहित्य से रूबरू होता है और उसके सामने पुस्तकें आती हैं तो उन पुस्तकों में आनंद होना चाहिए, उन पुस्तकों को पढ़कर बच्चों के चेहरे पर मुस्कुराहट आनी चाहिए, उन पुस्तकों को पढ़कर ठहाका लगाना चाहिए और तो और बच्चों को आनंदमयी साहित्य को पढ़कर मस्ती करना आना चाहिए। अब हमारे मन में प्रश्न यह उठता है कि भला कोरे आनंद वाला साहित्य बच्चों के सामने रखेंगे तो वे भला क्या सीखेंगे। सीखने की तो यही उम्र होती है न, यह उम्र गई तो कब सीख पायेंगे। लेकिन ऐसा नहीं है।

बच्चों की इस उम्र में हमारा दायित्व है कि हमारे प्रयासों से बच्चे शब्द की तरफ आकर्षित हों, बच्चे पढ़ने की तरफ आकर्षित हों और अन्तत: बच्चे पुस्तकों की तरफ आकर्षित हों। जब पुस्तकों के प्रति यह आकर्षण स्थायी हो जाएगा तो बच्चे अन्य जानकारी के लिए भी लालायित रहेंगे। ज्ञान भरे साहित्य में भी उन्हें रस आने लगेगा। उन्हें नैतिक साहित्य के प्रति भी आकर्षण होगा।

यदि हम उनके साहित्य की शुरुआत भारी भरकम नैतिक कहानियों से करेंगे तो वे पुस्तक का पर्याय नीरसता को मानेंगे। वे शब्द से दूर भागेंगे। वे पढ़ने को मात्र ज्ञान की बातें मानेंगे जो अक्सर उनके

सिर से निकल जाती है, वे पुस्तकों को नीरस मानते हुए उनसे दूर भागेंगे। जो बच्चा शब्दों से परिचित नहीं होगा, जो बच्चों को अपना दोस्त नहीं मानेगा वह आगे चलकर गंभीर विषयों पर कैसे मनन करेगा। हाँ! आनंद की अनभूति देने वाले साहित्य के बीच नैतिकता की कुछ बातें उसके बीच धीरे से सरका देना बाल साहित्यकारों की चतुराई कही जा सकती है। मजे-मजे में कहानी कहते हुए उसे जीवन मूल्यों का ज्ञान देने की समझदारी भी कही जा सकती है।

समाज में देश में विभिन्न देशों में और पूरी दुनिया में ज्ञान का अपार भण्डार भरा हुआ है और बढ़ते बच्चों को हमें इस ज्ञान के भंडार के नज़दीक लाना है। इसलिए बाल साहित्य आनंद देने के साथ नैतिकता का समावेश लिए भी होना चाहिए। विद्यालय में बच्चों को पढ़ाई के लिए भेजते हैं, अभिभावक बच्चों को पढ़ाई के लिए सुबह-सुबह तैयार करते हैं, उनका टिफिन तैयार करने, उन्हें स्कूल पहुँचाने और वापिस लाने, उनका होमवर्क संपन्न करवाने और उन्हें मीठी नींद सुलाने के दबाव में रहते हैं। उधर विद्यालय में अध्यापक बच्चों को पाठ्यक्रम पूरा करवाने और उसका दोहराव कराने और परीक्षा संपन्न करवाने के दबाव में रहते हैं। ऐसे में बीच की कड़ी जो बच्चों को आनंद देने का प्रयास करती है वो गायब हो जाती है। वही आनंद की कड़ी समृद्ध साहित्य द्वारा पूरी की जा सकती है। ऐसे में बाल साहित्यकारों का दायित्व बनता है कि बच्चों के लिए उच्च श्रेणी वाला आनंद देने वाला साहित्य रखें।

आज से करीब 20 वर्ष पूर्व नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पाठक मंच बुलेटिन के लिए अपनी कहानियाँ भेजना शुरू किया तो एक के बाद एक कहानियाँ अस्वीकृत होकर आने लगीं। मैं समझ नहीं पा रही थी। तब मैंने सम्पादक जी को फोन करने की ठानी। उस समय मोबाइल युग भी नहीं था और लैंड फोन पर बात करना दुरूह कार्य था। मैंने विनम्र शब्दों में पूछा कि आखिर आप मेरी कहानियाँ किस वजह से वापिस कर रहे हैं जबकि वैसी ही मेरी कहानियाँ अन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही हैं। तब संपादक जी का कहना था कि मुझे तुम्हारी कहानी में कोई सीख नहीं चाहिए, कहानी मजा ही मजा में समाप्त हो जानी चाहिए, बच्चों को सीख से कोई मतलब नहीं होता है। 'और सच'! मुझे भी कहानी लिखने की सीख मिल गयी थी।

उसके बाद कहानियों को आनंदमयी बनाने की मुहिम शुरू हो गयी। कहानियों में मजा लाया गया और 2004 में मेरी आस्था की कहानियों की शृंखला आई। कहानियों को देखकर, पढ़कर, पुस्तकें हाथ में लेकर खुश होते बच्चे देखे। एक बार मूक-बधिर बच्चों के स्कूल में मेरी बेटी के स्कूल वाले ले गए। प्राचार्या ने बच्चों के लिए कुछ उपहार लाने को कहा। मैंने अपनी बिटिया आस्था को वही अपनी लिखी पुस्तक 'आस्था की कहानियाँ' दी। वह सकुचाते हुई ले गयी क्योंकि अन्य बच्चे तो बिस्किट फल वगैरह ले गए थे। जब वह मूक बधिर स्कूल में उपहार देने के लिए पंक्तिबद्ध खड़ी थी तब उसके हाथ में रंग-बिरंगी पुस्तकें थीं। उन्होंने उल्टी-पल्टी और पुस्तकों के बारे में पूछा। जब आस्था ने बताया कि मेरी माँ ने ही लिखी है तो वे पहले तो आश्चर्य चकित हुईं फिर बोलीं अपनी मम्मी को कहना मुझसे मिलें। मैं जब मिली तो वे मेरे लेखन को लेकर मंत्रमुग्ध थीं। वे मुझे अपने विद्यालय की छात्राओं से मिलवाना चाहती थीं जिन्हें मैं बता सकूँ कि हमें क्या पढ़ना चाहिए और क्या लिखना चाहिए। प्राचार्या महोदया चिंतित थीं कि आजकल विद्यालय बच्चों को केवल डॉक्टर, इंजीनीयर बनने के लिए रट्टामार पढ़ाई करवा रहे हैं।

उनके बीच रचनात्मकता समाप्त होती जा रही है। मुझे 100 बच्चों के दल से मिलवाया गया और उनसे मनोरंजक तरीके से बातचीत की गयी। बातचीत का नवनीत यह निकल कर आया कि अगर हम आनंदमयी साहित्य नहीं पढ़ेंगे तो हमें विज्ञान और गणित जैसे विषय भी भारी-भरकम लगेंगे। अगर हम आनंदवाला साहित्य लिखना नहीं सीखेंगे तो जीव-विज्ञान, भू-विज्ञान, भौतिक विज्ञान जैसे विषयों को रुचिकर तरीके से शब्दों में कैसे पिरोयेंगे।

बच्चों को आनंद देने के लिए भारत की कथा परम्परा में बेहद पुरानी कहानियों में पंचतंत्र, बेताल पचीसी, तेनालीराम, अकबर-बीरबल, चंदामामा, नल-दमयंती, सावित्री आदि आज भी बच्चों को आनंद देती हैं। 1970 के दशक में बालकृष्ण देवसरे, विभा देवसरे, प्रकाश मनु, कृष्ण कुमार आदि ने बच्चों की रुचियों को ध्यान में रखते हुए मजेदार रचनाएँ कीं। समकालीन बाल साहित्यकारों में संजीव जायसवाल संजीव की बाल पुस्तक 'चन्दा गिनती भूल गया' 'पहलवान जी' और 'वो हँस दिया' अपने आनंद के लिए खासी चर्चित रहीं।

बच्चों को आनंद देने वाली कहानी ज्यादा याद रहती है और वह बार-बार उसे सुनना चाहता है। मैं अपने बेटे को हर रात एक कहानी सुनाती हूँ। मैं कहानी को लिखने से पहले या कहानी लिखने के बाद यानी कहानी छपने से पहले भी उसे सुना कर विभिन्न प्रयोग करती हूँ। मैंने अपने प्रयोगों में पाया जो कहानियाँ आनंद से शुरू होकर आनंद की जिज्ञासा से समाप्त होती हैं वे उसे बहुत पसंद आती हैं। आनंद वाली कहानी को वह बार-बार सुनना चाहता है। मेरी नानी मुझे आज से 50 साल पहले एक कहानी सुनाती थीं जिसमें जूँ के तीन दोस्त होते हैं, वे पिकनिक पर जाते हैं। जूँ को भूख लगती है। वह अपने तीन दोस्तों को जिसमें कौआ, मुर्गा और हाथी को खा जाती है। फिर कहानी आगे गीतात्मक चलती है : 'जूँ मार ततला सब दरया रतला, बैल सिंह गिर गए, डाले पत्ते उतर गए ...कौआ काना ....और यहाँ हम हँस पड़ते। नानी के मुँह से सुनते तो खूब मजा आता था। हम ठहाके लगा कर हँसते थे। मैंने ये कहानी अपने बेटे को कभी नहीं सुनाई। ये सोच कर आज के युग का बच्चा कहाँ समझेगा। न सिर में जूँ है न ऐसी कल्पना। फिर एक रात मेरी कहानी के पिटारे में कहानी नहीं जुटी तो मैं इसी कहानी पर आ गयी। घोर आश्चर्य कि मेरे बेटे को यह कहानी बेहद पसंद आई और उसने लगातार महीने भर उस कहानी का दोहराव करवाया और खुद भी रट बैठा।

यानी आज से 50 साल पहले के बचपन को जो आनंद उस कहानी में आता था, आज के बचपन को भी उतना ही मजा आ रहा है। ऐसे तमाम उदाहरण और अनुभव आपकी और मेरी ज़िन्दगी में शामिल हैं जो यह साबित करते हैं कि बाल-साहित्य में आंनद सर्वोपरि है पर नैतिकता भी समाप्त नहीं होनी चाहिए। अंततः बच्चों की दुनिया में मजा है, उसे मजा ही रहने दो, मत थोपो ज्ञान आनंद ही रहने दो। मुझे यहाँ निदा फ़ाज़ली का ये शेर याद आ रहा है-

बच्चों के नन्हें हाथों को/चाँद सितारे छूने दो
चार किताबें पढ़कर वो भी/हम जैसे हो जाएँगे

सम्पर्क : *मुंबई (महाराष्ट्र)*

शिखर चंद जैन

फलों के इंद्रधनुषी टोकरे सा हो बाल साहित्य

बाल साहित्य के लेखन के विषय को लेकर अक्सर बाल साहित्य के लेखकों में असमंजस और मतभेद की स्थिति देखी जाती है। कुछ लोग बाल साहित्य के पाठकों को ऐसे भारी-भरकम विषय और ऐसी क्लिष्ट भाषा शैली में साहित्य परोसना चाहते हैं जो बाल पाठकों की छोड़िए वयस्क पाठकों के पल्ले भी आसानी से नहीं पड़ता। अगर कहा जाए कि कुछ विद्वान लेखकों की पांडित्य प्रदर्शन की ऐसी मंशा की वजह से बाल पाठकों में बाल साहित्य के प्रति अरुचि होने लगी है तो गलत नहीं होगा। वहीं कुछ लेखक बच्चों को उपदेश देने वाली कहानियाँ बिल्कुल प्रवचन की शैली में लिखते हैं फिर शिकायत करते हैं कि आजकल के बच्चों में कहानियों के प्रति रुचि नहीं रही। इसी प्रकार कुछ लिक्खाड़ किस्म के विद्वान 3000-3500 शब्दों में या 10-15 पृष्ठों वाली कहानियाँ बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं। उन्हें सोचना होगा कि आज के दौर की पढ़ाई में, अत्यधिक व्यस्तता के बीच बच्चों को क्या इतना समय मिल पाता है? या उनकी मानसिक स्थिति ऐसी रहती है कि वे इतनी बड़ी-बड़ी कहानियाँ पढ़ें? फिर ऐसी 20- 25 कहानियों की एक मोटी सी किताब छपवाने या अखबारों में लगभग आधे पेज की बाल कहानी प्रेषित करने की क्या सार्थकता है?

खैर, 30-32 वर्षों से देशभर के राष्ट्रीय व स्थानीय समाचार पत्रों, बाल पत्रिकाओं और पारिवारिक-साहित्यिक पत्रिकाओं से मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ है, उसके आधार पर मेरा मानना है कि बाल साहित्य को ताजा, रसीले और पौष्टिक फलों के इंद्रधनुषी टोकरे जैसा होना चाहिए, जिसे देखते ही खाने को मन ललच उठता है।

फलों से साहित्य की तुलना पर आपको किंचित आश्चर्य हो सकता है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे शारीरिक विकास के लिए चिकित्सक या पोषण विशेषज्ञ अलग-अलग रंगों के, विभिन्न गुणों से भरे, रसीले, ताजा और पौष्टिक फल खाने की सलाह देते हैं, उसी प्रकार बच्चों की मानसिक खुराक के लिए बाल साहित्य में विविधता, ताजगी और उपयोगिता का समावेश होना चाहिए।

सार्थक बाल साहित्य ऐसा होना चाहिए जिसे कोई भी बच्चा मनोरंजन के लिए हाथ में ले और कहानी या आलेख पढ़ते हुए हर रचना को पढ़ने के साथ कुछ न कुछ नया सीख कर उठे। कहानी या लेख किसी भी प्रकार के हो सकते हैं।

कुछ लोग परी कथाओं और भूत-प्रेत की कहानियों का विरोध करते हैं। लेकिन मैंने नंदन में एक बाल पाठक के रूप में ऐसी ढेर सारी कहानियाँ पढ़ीं और उनसे परियों की दयालुता और विशाल हृदयता व परोपकार की सीख ली। भूत-प्रेतों की कहानियों का रोमांच अनुभव करते हुए जाना कि यह एक कल्पना मात्र है। राजा-रानी की कहानियों में बुद्धिमत्ता, न्याय-अन्याय और अच्छे-बुरे समाज के बारे में सहजता से सीखा जा सकता है ।

विज्ञान कथाएँ फंतासी के मजे के साथ-साथ बच्चों को आने वाले भविष्य की एक तस्वीर दिखाती हैं। उनकी कल्पनाशक्ति को पैना करती हैं और विज्ञान पर उनके विश्वास को दृढ़ करती हैं।

कुछ पत्र-पत्रिकाओं के संपादक या लेखक जानवरों में परस्पर बातचीत वाली कहानियों को पसंद नहीं करते। लेकिन मेरा मानना है कि पशु-पक्षियों को पात्र के रूप में दर्शाती ऐसी कहानियाँ बच्चों को आकर्षित करती हैं। इसलिए इनके माध्यम से उन्हें बहुत सी अच्छी बातें सिखाई जा सकती हैं। इनके माध्यम से जानवरों की आदतों स्वभाव व उनकी विशेषता से रूबरू करवाया जा सकता है। बच्चों को जंगलों व जानवरों की जानी-अनजानी बातों और दिलचस्प तथ्यों से भी परिचित करवाया जा सकता है।

इसी प्रकार लेखकों को नवीनतम तकनीक, उपकरणों, इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स व संचार माध्यमों की जानकारी देने वाली कहानियाँ भी लिखनी चाहिए। इनमें तकनीकी शब्दों को अंग्रेजी में लिखने में गुरेज नहीं करना चाहिए। ताकि बच्चा व्यावहारिक रूप से इन्हें आसानी से समझ सके। समय-समय पर सुमन सौरभ, पराग और मेला में ऐसी कहानियाँ खूब छपती थीं। इस प्रकार की जानकारी बच्चों के लिए अत्यधिक आवश्यक है।

कई लेखक कहते हैं कि लोक कथाएँ बाल कथाएँ नहीं। मैं उनसे भिन्न मत रखता हूँ। बहुत सारी लोक कथाएँ तो बच्चों को बहलाने, गृहिणियों की खाली समय की बोरियत कम करने के उद्देश्य से ही लिखी गईं। लोक कथाओं को मौजूदा संदर्भ में सरल व बोधगम्य भाषा शैली में प्रस्तुत करने के दो फायदे हैं। एक तो बच्चे विभिन्न संस्कृतियों व परंपराओं से परिचित होते हैं दूसरा यह बेहद रोचक होने के कारण न सिर्फ बच्चों का भरपूर मनोरंजन करती है बल्कि उन्हें लोक संस्कृति, परिस्थिति जन्य निर्णय लेने और हाजिर जवाबी की कला भी सिखाती है। बालहंस, नंदन, चंदामामा, मेला, बाल भास्कर जैसी पत्रिकाओं और राजस्थान पत्रिका, सन्मार्ग, पंजाब केसरी जैसे अखबारों ने ऐसी कहानियाँ लंबे समय तक खूब छापी हैं।

आज के युग में पौराणिक कथाएँ कौन पढ़ता है? ऐसा कहने वाले लेखक यह भूल जाते हैं कि हमारी पौराणिक कथाओं में अच्छे और बुरे, सत्य और असत्य, न्याय और अन्याय जैसी सामाजिक सीख के साथ और भी बहुत कुछ है जो जीवन में काम आने लायक है। इनके माध्यम से बच्चे हमारी सांस्कृतिक व धार्मिक समृद्ध परंपरा को भी जान पाते हैं। बालहंस और नंदन ने समय-समय पर पौराणिक कथाओं के शानदार विशेष निकाले हैं, जिन्हें खूब पसंद किया गया और इनकी जबरदस्त बिक्री हुई। बाल भास्कर में भी पौराणिक कथाओं को स्थान दिया जाता है। सन्मार्ग, समाज्ञा, दैनिक विश्वमित्र, पंजाब केसरी, दैनिक भास्कर, राजस्थान पत्रिका जैसे बड़े अखबारों ने भी पौराणिक कथाएँ प्रकाशित की है जिन्हें काफी पसंद किया गया।

इन विषयों के साथ-साथ आज के दौर में बाल साहित्य रचने वाले विद्वानों को समय की माँग के

अनुसार ऐसी कहानियाँ और लेख अवश्य लिखने चाहिए जो बच्चों को पौष्टिक व शुद्ध खानपान, व्यायाम व सेहत का ध्यान रखने के लिए प्रेरित करें। मुश्किल परिस्थितियों व उनसे निपटने की रणनीति पर आधारित कहानियाँ भी बच्चे खूब पसंद करेंगे। साथ ही ऐसी कहानियों का सृजन भी जरूरी है जो बच्चों की तर्क क्षमता का विकास करे, उनकी निर्णय क्षमता को दुरुस्त करें और उन्हें एक सफल इंसान बनने में सहायक हों।

बच्चों के सर्वांगीण विकास, उनके संपूर्ण मनोरंजन और सामान्य ज्ञान बढ़ाने वाली कहानियों के ऐसे बहुत सारे विषय हैं जिन पर काम किया जा सकता है। जैसे इंसान के जीवन पर दूरगामी प्रभाव डालने वाले प्राकृतिक बदलाव, नए आविष्कारों की प्रेरणा, विलुप्त हो चुके या अज्ञात पशु-पक्षी, पर्यावरण, सामाजिक उतार-चढ़ाव, सामान्य ज्ञान, नागरिक कर्तव्य एवं रोजमर्रा की जिंदगी में काम आने वाले सामान्य कानून की जानकारी देने वाली कहानियाँ।

आज की तारीख में बाल साहित्य रचने वाले लेखकों के सामने सबसे बड़ी चुनौती है, ऐसे रोचक और उपयोगी साहित्य की रचना जो न सिर्फ बच्चों को सहजता से आकर्षित कर सके बल्कि उनके माता-पिता को भी यह विश्वास दिला सके कि इस साहित्य से उनके बच्चे को बहुत कुछ सीखने को मिलेगा।

सम्पर्क : *कोलकाता (प.बं.)*

डॉ. लता अग्रवाल

नन्हें शिशुओं का उपहार हैं फ़िल्मी लोरियाँ

शब्द को ब्रह्म कहा गया है, कारण शब्द में अद्भुत शक्ति है, जब शब्द लय से सम्बन्ध स्थापित करते हैं तो उनका प्रभाव भी द्विगुणित हो जाता है। तब वे शब्द मेघ-मल्हार बनकर आसमान से वर्षा कर देते हैं तो दीप राग बनकर दीप को प्रज्ज्वलित करने की क्षमता उत्पन्न कर देते हैं। ऐसे ही प्रभाती और लोरी भी इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं। प्रभाती में जहाँ लोगों को जाग्रत करने की क्षमता है तो लोरी तनाव मुक्त कर निंद्रा के आगोश में ले जाने की अपार क्षमता रखती है। यह बच्चों ही नहीं बड़ों पर भी अपना प्रभाव दिखाती है। यूँ तो समस्त विश्व में शिशुओं के लिए लोरी का प्रमाण देखने को मिलता है। करीब चार हज़ार साल पहले बेबीलोनिया में किसी माँ ने अपने बच्चे को लोरी सुनाई थी। भारतीय इतिहास में भी हजारों वर्ष पुराना इतिहास मिलता है लोरी का। मार्कण्डेय पुराण में मदालसा का एक प्रसिद्ध प्रसंग है जिसमें महारानी मदालसा ने अपने पुत्रों को लोरी सुनाकर ही भक्ति और वैराग्य का मार्ग दिखाया। उनकी लोरी का उदाहरण, 'शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि /संसार मायापरिवर्जितोऽसि। /संसारमायां त्यज मोहनिद्रां /मदालसा शिक्षयतीह बालम्।'

यद्यपि माँ द्वारा लोरी के माध्यम से शिशुओं को विरक्ति का मार्ग प्रशस्त करने का यह अनूठा उदाहरण है, मगर देखने वाली बात यह है कि जो शब्द बीज माँ अपने नन्हें शिशु में बोना चाहती थी वह उसमें सफल हुई है। अर्थात् लोरी अबोध बालक को भीतर तक प्रभावित करती है यह बात सिद्ध होती है। अब और आगे चलें तो त्रेता और द्वापर में भी हमें लोरी की परम्परा मिलती है। रामायण युग में माता कौशल्या बालक श्री राम को सुलाने के लिए लोरी गाती हैं। जिसे तुलसीदास जी लिखते हैं-

'पौढ़िये लालन पालने हौं झुलावौं/कद पद सुखं चक कमल लसत लखि/लौचन भँवर बुलावौ।'

वहीं देवकी अपने कान्हा को पालने में झुलाते हुए लोरी सुनाती है। जिसे सूरदास जी शब्द देते हैं,

'यशोदा हरि पालने में झुलावे/हलरावै दुलरावे मल्हरावै, जोई जोई कछु गावै/मेरे लाल को आऊ निंदरिया/काहौ न आये निंदरिया।'

उपरोक्त बातों के आधार पर हम लोरी को यदि परिभाषित करना चाहें तो प्रेम सागर सिंह द्वारा दी परिभाषा में हम लोरी की समस्त विशेषता को देख सकते हैं, 'लोरी उनींदे बालक के मन को बहलाने वाला वह शिशु गीत या गुनगुनाहट है जिसका ताल और सुर में बँधा संगीत उसे अपने सम्मोहन में बाँधकर

विश्राम देता है और धीरे-धीरे बालक निद्रालोक में पहुँच जाता है। लोरी के बोल वात्सल्यमयी माता के अन्तस् से स्वत: बह निकलते हैं।'

फिल्में हमारे जीवन का दर्पण दिखाती हैं और फिल्मों का साहित्य से अटूट नाता है। चाहे वह कविता हो, कहानी, पटकथा, नाटक या फिर लोरी। फिल्में समाज के हर वर्ग से जुड़ी हैं और उनके हित सामग्री का समावेश हमें फिल्मों में मिलता है। इस दृष्टि से फिल्मों में कुछ लोरियाँ खासतौर पर शिशुओं के लिए लिखी गईं, जो बेहद लोकप्रिय हुईं। हर माँ की जुबान पर ये लोरियाँ रच बस गईं। ऐसी लोरियों को फ़िल्मी लोरियाँ कहा गया आइये हम इस पर कुछ चर्चा करें। जैसा कि हमने देखा प्राचीनकाल से ही लोरी शिशुओं के दिल के बहुत करीब रही है, कोई अतिश्योक्ति नहीं अगर कहूँ की शिशु का अबोध मन लोरी के साथ खेलता है। माताएँ जब बच्चे को अपनी गोद में उठा, सीने से लगाए थपकी देते हुए, हिलाती-दुलराती हैं तो बालक एक आत्मिक आनन्द की अनुभूति करता है। यह एक भावपूर्ण विधा है इसलिए इसकी सत्ता भाषा या क्षेत्र से परे संसार की सभी भाषाओं में देखने को मिलती है। वास्तव में यह बच्चे का शब्दों से प्रथम साक्षात्कार है। यह शिशु और उसकी माँ के बीच का निहायत ही व्यक्तिगत संवाद है, जहाँ श्रोता के रूप में केवल शिशु और कहने वाले के रूप में केवल माँ होती है। एक माँ अपने बच्चे को कभी कल्पना के आकाश की यात्रा कराती है तो कभी अपने आस-पास के वातावरण से अवगत कराती है, कभी खेत-खलिहानों के किस्से तो कभी चाँद के पार की बातें बताती है...तो कभी अपने जीवन की व्यथा-कथा भी कह जाती है। फिल्म 'ब्रह्मचारी' की यह लोरी हम सभी ने बार-बार सुनी है,

'मैं गाऊँ तुम सो जाओ /सुख सपनों में खो जाओ' जीवन के संघर्षों की बयानगी के साथ भावी जीवन के प्रति सुखद संदेश देती यह लोरी शिशु के मन में सकारात्मकता के बीज बोएगी। इसके साथ ही लोरी गाने वाले को भी मन में असीम शांति का एहसास देती है। लोरी की अभिव्यक्ति बेहद मधुर होती है, माँ एक-एक शब्द को पिरोकर लोरी बुनती है। यही परम्परा सदियों से चली आ रही है। यही कारण है कि लोरी हमारे लोक साहित्य का महत्त्वपूर्ण हिस्सा बनी, इसे लोक गीतों में स्थान मिला, कारण लोरी के बहाने माँ अपने शिशु को लोक जीवन से जोड़ती है। कोई कथा लोरी की लय में पिरोती है, तो हाथी-घोड़ों की बारात सजा देती है। कोई सपनों का राजकुमार खोज लाती है, अपनी बिटिया को डोली में बिठा लेती है, अपने नन्हें-मुन्ने के लिए दुल्हन ढूँढ़ लाती है। ये वही लोक कथाएँ हैं जो सदियों से माताओं के साथ दादी-नानी अपने बच्चों को कहानी के रूप में सुनाती हैं, फिल्म (लम्हे) की यह लोरी 'गुड़िया रानी बिटिया रानी परियों की नगरी से एक दिन/राजकुँवर जी आएँगे महलों में ले जाएँगे।'

संजीवनी है लोरी शिशुओं के लिए- नि:संदेह आज हम विज्ञान युग में जी रहे हैं। हमारे दैनिक जीवन, आचार-व्यवहार, जीवन शैली को भी विज्ञान ने प्रभावित किया है। किन्तु लोरी का साथ तब भी नहीं छूटा, कारण लोरी शिशु के मनोविज्ञान को समृद्ध करती है, इसके प्रमाण हम मदालसा के रूप में देख सकते हैं। लोरी महज कोई गेय रचना मात्र नहीं है। डेढ़ से दो वर्ष तक की आयु का शिशु न बोल सकता है न शब्दों को समझ सकता है, एक तरह से वह भाषिक संसार से अनभिज्ञ होता है। ऐसे शिशु का रुदन, उसकी चंचलता को लोरी पहले एकाग्र करती है, फिर धीरे-धीरे गीत की लय और नाद उसके स्नायु को शिथिल करते हैं, यहाँ हम कहें कि तनावमुक्त करते हैं तो यह अधिक सही होगा। इससे शिशु धीरे-धीरे

नींद के आगोश में जाने लगता है। (संजोग) फिल्म की यह लोरी जिसमें वह लय और नाद हम आसानी से देख सकते हैं। यह लोरी आज भी अपने शिशु को सुलाते हुए, हर माँ की जुबान पर आ ही जाती है- 'जू जू जू जू जू जू जू/यशोदा का नन्दलाला/बृज का उजाला है/मेरे लाल से तो/सारा जग झिल मिलाये/जू जू जू जू जू जू जू।'

इस बीच वह कभी कुनमुनाता है, उनींदी अवस्था में चमकता है तो माँ की थपकी उसे साहस देती है, माँ की गोद का सम्बल उसे हौसला देता है। माँ के वात्सल्य में डूबे स्वर, रेशमी अहसास, उसका आत्मबल बढ़ाता है। इसलिए कहा जाता है लोरी शिशु को गहरी नींद तो देती ही है उसे निडर बना उसका मानसिक विकास भी करती है। लोरी शिशु का मौलिक अधिकार है जो हर शिशु को मिलना ही चाहिए।

लय लोरी का प्राणतत्व है- प्रश्न उठता है हम कोई भी साहित्य जब रचते हैं तो यह ध्यान में रखते हैं कि हम किस वर्ग के लिए यह रच रहे हैं। अत: लोरी हम उन शिशुओं के लिए रच रहे हैं जिनका भाषा से कोई परिचय नहीं है, नि:संदेह यहाँ भाव प्रमुख हो जाते हैं और शब्द गौण। फिर भी लोरी का अपना स्वरूप है, इसकी पंक्तियाँ छोटी तथा शब्द बहुत ही सहज-सरल होने चाहिए, शब्दों से अधिक नाद, ध्वन्यात्मक लोरी को प्रभावी बनाते हैं। अक्सर वे लोरियाँ अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुई हैं जिनमें वर्णों की आवृत्ति बार-बार हुई है, या कोई वर्ण नाद के रूप में लम्बी तान के साथ गाया जाता है। फिल्म (अलबेला) की यह लोरी वर्ण के बीच लम्बी तान का अच्छा उदाहरण है, जो शिशु के कानों में मिश्री घोलता है- 'धीरे से आ जा री अँखियन में/निंदिया आ जा री आ जा, धीरे से आ जा/धीरे से आ जा री अँखियन में/निंदिया आ जा री आ जा, धीरे से आ जा।'

हम अनुप्रास अलंकार के रूप में वर्ण की बार-बार आवृत्ति होने से उसमें नाद पैदा होता है, ध्वनि का कम्पन शिशु को एकाग्रता की ओर ले जाता है। उस शब्द को न समझकर भी शिशु उसकी लय में खो जाता है और धीरे-धीरे नींद का आँचल उसे अपनी गिरफ्त में ले लेता है।

रिश्तों की मधुर डोर है लोरी- ये सच है कि जब भी लोरी की बात आती है तो दो ही रिश्ते सामने आते हैं माँ और शिशु, जैसे- यशोदा मैया और उनके कान्हा का उदाहरण सर्वत्र दिया जाता है। इस लोरी को देखें, कौन होगा जिसने इस लोरी को न गुनगुनाया हो, फिल्म (वचन) की इस लोरी की न जाने कितनी पीढ़ियाँ मुरीद हैं 'उड़न खटोले बैठ के मुन्ना चंदा के घर जाएगा/तारों के संग आँख मिचौली खेल के दिल बहलाएगा /खेल कूद से जब मेरे मुन्ने का दिल भर जाएगा/ठुमक ठुमक मेरा मुन्ना वापस घर को आएगा /चंदा मामा दूर के, पूए पकाएँ बूर के।' किन्तु माँ के आलावा भी इसकी पात्र हो सकती हैं, माँ जैसी, मासी, बुआ, दादी, नानी, या बड़ी बहन आदि। चूँकि लोरी भाव से बँधी होती है और एक माँ या ममता के किसी भी रिश्ते का आधार ही निर्मल भाव होता है अत: लोरी पर किसी वर्ग विशेष का अधिकार नहीं होता। यह राजवंश से लेकर सड़क पर पत्थर तोड़ती एक गरीब माँ तक से भी समान जुड़ाव रखती है। चाहे महलों की रानी के राजकुमार या राजकुमारी हों, उनका सोने का पलना हो या फिर एक गरीब भिक्षा माँगने वाली या कठोर श्रम करने वाली माँ द्वारा अपने कार्यस्थल पर ही किसी पेड़ की छाँह में बँधी पुरानी कथली या साड़ी के टुकड़े से बनी झोली ही क्यों न हो, माँ अनपढ़ ही क्यों न हो, माँ की लोरी में कोई भेद नहीं होता। प्राचीन समय में जब सामूहिक परिवारों में माताएँ काम में व्यस्त होतीं,

चक्की पर आटा पीस रही होतीं, धान काट रही होतीं तो पास में कपड़े की झोली बना काम करते हुए झोली पर एक रस्सी बाँध बच्चे को उसमें डाल लोरी गुनगुनाती और शिशु सो जाता फिर जब कभी वह कुनमुनाता माँ फौरन रस्सी का सिरा पकड़ हिला देती। इससे बच्चे के मन में यह विश्वास बैठ जाता कि माँ उसके आसपास है।

अनाड़ी फिल्म की यह लोरी ऐसे ही अशिक्षित पात्र के द्वारा गाई गई और बहुत लोकप्रिय हुई- 'छोटी-सी, प्यारी-सी, नन्ही-सी आई कोई परी/भोली-सी, न्यारी-सी, अच्छी सी आई कोई परी/पालने में ऐसे ही झूलती रहे /खुशियों की बहारों में झूमती रहे/गाते-मुस्कुराते संगीत की तरह/ये तो लगे रामा की गीत की तरह/रा रा रू... रा रा रा... रा रा रू।'

यह लोरी शिशु के लिए कोई सुनहरा संसार नहीं रचती, न ही उसे कल्पना लोक में ले जाती है, न परी के दर्शन कराती है, न चंदा मामा से मिलवाती है, न ही हाथी-घोड़े की पालकी पर बैठाती है। बस एक वात्सल्य का भाव रचती है और मधुर लय 'रा रा रू...रा रा रा... रा रा रू' सुनाती है। नि:संदेह ! लोरी माँ और शिशु के बीच रिश्तों की मिठास को मजबूत करती है। शिशु अधिक देर तक माँ के सीने से लगा रहता है, उससे जो ओरा उसे माँ से मिलती है, माँ के शरीर की ऊष्णता मिलती है फिर माँ का स्वर वह सतत् सुनता है, ऊपर से लय और नाद का सौन्दर्य इस मिठास को बढ़ा देता है। एक कारण और है, उस दौर में महिलाएँ जब घर के काम से थककर विश्राम चाहती थीं तब शिशु रोते हुए उनके पास आते थे तो वे उन्हें लोरी सुनाकर सुला देती थीं, इससे उन्हें भी विश्राम मिलता था। फिल्म (माँ-बेटी) की यह लोरी देखिये, माँ कैसे शिशु से सोने का निवेदन करती है, 'सो जा मेरी बिटिया रानी, /सो जा राजदुलारी!'

बातों ही बातों में उसे आस-पास के सभी जीव के बारे में बताती है, चाँद-तारे के साथ नींद का भी मानवीय करण कर देती है। नींद परी के रूप में है, उसके पास एक जादू का पिटारा है जो सोने पर ही मिलेगा। जाहिर है यह जादू का पिटारा सुखद स्वप्न है। इस तरह माँ बच्चे को प्रलोभन देती है और सोने की विनती करती है।

लोरी का रचना संसार-सवाल उठता है क्या लोरी की कोई विशेष विषय सामग्री होती है, या कोई सीमा रेखा होती है, जिसके आधार पर एक माँ लोरी की रचना करे? नहीं। लोरी का संसार बेहद विस्तृत होता है, माँ स्वयं अपने और शिशु के जीवन से लेकर समस्त सजीव-निर्जीव जगत को अपनी लोरी में स्थान दे सकती है। हाँ, यह शिशु वर्ग की रचना है तो जाहिर इसमें कोई वीभत्सता के लिए स्थान नहीं है। अन्यथा, चिड़िया, तोता-मैना, परी, चाँद, तारे, फूल, तितली, भौंरा, पत्ती, हठी घोड़े, मोर, हवा, पर्वत, झरना, नदी, झूला, घुँघरू की आवाज सभी को तो समाहित कर लेती है माँ, वह इस लोक से परलोक तक कल्पना की उड़ान भरते हुए अपने लाल को भी यात्रा करा देती है। (मासूम) फिल्म की यह लोरी जो बादल और झील के बहाने अपनी बात कह जाती है, 'थोड़ा-सा बादल थोड़ा-सा पानी /और एक कहानी/ दो नैना और एक कहानी/छोटी-सी दो झीलों में वो बहती रहती है/कोई सुने या ना सुने/कहती रहती है/ कुछ लिख के और कुछ जुबानी/हो थोड़ा सा बादल थोड़ा सा पानी/और एक कहानी।'

या फिर सीधे निंदिया से संवाद करती है, अगर उसका शिशु झूले में लगे घुँघरू की आवाज से उठ जाता है तो तुझे ही उसे बहलाना होगा। यह है भाव, इसीलिए कहा जाता है लोरी में शब्दों से अधिक भाव

और लय का महत्त्व होता है। क्योंकि शिशु के कान लय को अनुभव करने हैं। फिल्म (सुजाता) की यह लोरी देखिए, 'रेशम की डोर अगर पैरों को उलझाए/रेशम की डोर अगर पैरों को उलझाए/घुँघरू का दाना कोई शोर मचा जाए/रानी मेरी जागे तो फिर निंदिया तू बहलाना/नींद भरे, पंख लिए, झूला झुला जाना/नन्हीं कली सोने चली हवा धीरे आना।'

हम सबने अभिमन्यु की कथा से यह तो जान ही लिया है कि गर्भस्थ शिशु भी सुनने की क्षमता रखता है, डॉ. पुखराज बाफना भी इस सम्बन्ध में कहते हैं कि, 'जब भ्रूण पर इन सबका इतना अधिक असर होता है, तो निश्चित ही बच्चे पर लोरी का असर तो होता ही है।' अत: लोरी में एक माँ द्वारा अपने शिशु के लिए बुनी मंगलकामनाएँ, स्नेह, दुलार, भावी जीवन के लिए प्रेरक विचार ...ये सभी बच्चे को निश्चय ही सकारात्मकता से ओतप्रोत करते ही होंगे। जब एक माँ कहती है- 'मेरी मुनिया रानी बने/महलों का राजा मिले/देखे खुशियों के मेले/दर्द कभी न झेले/ले के गोद में सुलाऊँ/गाऊँ रात भर सुनाऊँ/मैं लोरी लोरी..।'

फिल्म (अनोखी रात) अपनी बच्ची के भावी जीवन के लिए माँ चाहती है कि उसकी बेटी के जीवन में कभी कोई तकलीफ न आये, सदा खुशियाँ बरसती रहें। ये भाव बच्चे को कहीं न कहीं इस बात का एहसास दिलाते हैं कि हमारे साथ हमारी माँ है। डॉक्टरों का भी कहना है कि माँ लोरी के माध्यम से बच्चे में अच्छे संस्कार के बीज रोप सकती है। लोरी सुनते हुए शिशु को आनंद की अनुभूति होती है। उसके भीतर एक तरह आनंद रस का प्रवाह होता है। जिससे वह रोमांचित भी होता है और उसके भीतर ग्रहण शक्ति का विकास भी होता है। लोरी स्त्रीलिंग, पुल्लिग में भेद नहीं करती। क्योंकि इसका नाता ममता से होता है और ममता बच्चों में कभी भेद नहीं करती, फिल्म (रिश्ते नाते) की यह लोरी जिसमें माँ अपनी बेटी पर अपना प्यार लुटाती है, 'आ री निंदिया की परी मेरी गुड़िया को सुला/चाँद के पलने में मेरी मैना को झुला/गोद मेरी पलना, दिन भी तेरा बिछौना...2।'

माँ चाँद को पलना बनाती है, अधिकतर प्राचीन लोरियों में चाँद का प्रयोग मिलता है, शायद चाँद बच्चों का प्यारा खिलौना रहा है, या फिर माँ की आँखें अपने बच्चे को सुन्दरता की दृष्टि से चाँद के करीब पाती है। मेरी प्रिय लोरी फिल्म (आराधना) से जिसमें माँ अपने बच्चे को ही चाँद की संज्ञा दे रही है, 'चंदा है तू, मेरा सूरज है तू /ओ मेरी आँखों का तारा है तू-3 /जीती हूँ मैं बस तुझे देखकर/इस टूटे दिल का सहारा है तू/चंदा है तू, मेरा सूरज है तू।

'कहीं माँ अपने बच्चे के लिए एक अलग ही मोहक संसार बन देती है, नाम देती है सपनों की नगरी, जहाँ चाँद उसका हमजोली बनकर उसके साथ खेलता है। फिल्म (जीवन ज्योति) की यह लोरी ऐसा ही कुछ कहती है। 'परियों के बालक तारों के भेस में/तुझको बुलाने आए चंदा के देस में/...ओ तोहे सपनों की नगरी से निंदिया पुकारे/सो जा रे सो जा।' कहीं माँ नींद की चिरोरी करती है कि वह उसके बच्चे को अपने आगोश में ले ले ताकि वह सुंदर सपने देखे जिससे उसके होंठों पर मुस्कान आ जाए। फिल्म (सदमा) की यह लोरी किसका मन नहीं मोहती- 'सुरमई अंखियों में नन्हा-मुन्ना एक सपना दे जा रे-2 / निंदिया के उड़ते पाखी रे/अँखियों में आ जा साथी रे...।'

लोरी की मिठास बच्चे ही नहीं बड़ों को भी अपने आकर्षण में बाँध लेती है। उसका माधुर्य, वाणी

की मिठास, लय, शब्दों का जादू ही ऐसा है कि बड़े भी उसके सम्मोहन से दूर नहीं रह पाते। यही लोरी की सार्थकता है। फिल्म (मिलन) की यह लोरी सुन आज भी तन मन शांति का एहसास पाता है- 'राम करे ऐसा हो जाए/ मेरी निंदिया तोहे मिल जाए/मैं जागूँ, तू सो जाए/मैं जागूं, तू सो जाए...।'

लोरी का एक और रूप हम देखते हैं फिल्मों में वह यह कि इसे पिताओं ने भी अपने बच्चों के लिए गाया है। ऐसी कई लोरियाँ फिल्मी इतिहास में मिलेंगी जिसमें पिता ने भी उतनी ही ममत्व भरी भावना से, एक-एक शब्द में मानों प्राणों का संचार कर लोरी गाई है। जिससे यह सिद्ध हुआ कि लोरी पर महज माँ ही नहीं पिता का भी उतना अधिकार है, क्यों न हो आखिर सन्तान तो दोनों का ही अंश है, फिर प्यार में भला अंतर कैसे आ सकता है? फिल्म (नौकर) में पिता यानी संजीव कुमार द्वारा गाई गई यह लोरी देखिये- 'अँखियों में छोटे-छोटे सपने सजायके/बहियों में निंदिया के पंख लगायके/चंदा में झूले मेरी बिटिया रानी /चाँदनी रे झूम, हो चाँदनी रे झूम।'

लोरी का संसार व्यापक है यह तो सिद्ध हुआ, लोरी हमारी समृद्ध परम्परा का हिस्सा है। फिल्मों ने इसे और भी सौन्दर्य के साथ गढ़कर इसके प्रभाव को विस्तार दिया है। जो फ़िल्मों का जीवन से जुड़ाव दर्शाता है, भविष्य में भी इस तरह की लोरी रचे जाने की आवश्यकता है ताकि आने वाले बच्चों में भी इसका प्रभाव जीवित रहे।

हम सभी महसूस कर रहे हैं आज लोरी हाशिये पर सरका दी गई है। शिशु आज भी नींद को व्याकुल हैं मगर उन्हें माँ की लोरी के स्थान मोबाइल की लोरी या फिर अफीम से बनी दवा, शहद की चूसनी के सेवन से काम चलाना होता है। दुखद है यह स्थिति भारत में जहाँ लोरी की समृद्ध परम्परा रही है, वहीं बच्चों को नींद आने के लिए रोजी रोटी में व्यस्त माताएँ रेडीमेट लोरियाँ लगाकर शिशु के सिरहाने रख देती हैं। खैर! इसे सकारात्मक रूप में देखा जाये तो आधुनिक दौर में बदलते वक्त में कई बदलाव साहित्य के क्षेत्र में हुए हैं उस दृष्टि से लोरी में भी यह बदलाव अपेक्षित तो है, किन्तु जिस प्रकार लोरी के साथ, स्पर्श, शब्द मंत्र, थपकियाँ, संस्कार, भावी जीवन की मंगलकामनाएँ जुड़ी हैं वह रेडीमेट लोरी में भला कहाँ? इसी सन्दर्भ में डॉ. मेहरबान सिंह का कथन स्मरण आता है कि, 'जो बच्चे लोरी से वंचित होते हैं, वे माँ के उस वात्सल्य से वंचित होते हैं, जो उसका अधिकार है।' यह अधिकार उन्हें मिलना ही चाहिए। ये फ़िल्मी लोरियाँ उपहार हैं समाज को फिल्मों का।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*

डॉ. मोहम्मद अरशद खान

संचार माध्यम, बालक और बाल साहित्य

विगत सदी का अंतिम दशक तमाम उतार-चढ़ावों से भरा रहा है। इस दशक के आरम्भ में जो परिवर्तन हुए, और जिस तेजी से हुए, आजादी के बाद वह और किसी दौर में नहीं दिखे। स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय समाज के विभिन्न क्षेत्रों में तमाम प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष परिवर्तन हुए। पुरातनपंथी दृष्टिकोण के स्थान पर नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण का उदय हुआ। अंग्रेजों के जाने के बाद भी पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव न केवल बना रहा, बल्कि और गाढ़ा हुआ। नए मूल्य निर्मित हुए। संयुक्त परिवार टूटकर, एकल परिवार बने। औद्योगीकरण आरम्भ हुआ तो सामंती मूल्य टूटे और जनतांत्रिक भावनाओं का उदय हुआ। बड़ी संख्या में रोजगार की तलाश में शहरों में आबादी का केन्द्रीकरण शुरू हुआ। अनेक सकारात्मक-नकारात्मक परिवर्तन सामने आए। कुल मिलाकर सम्पूर्ण भारतीय समाज परिवर्तन की इस प्रक्रिया की धीमी-धीमी आँच पर पकता रहा। किंतु अंतिम दशक में परिवर्तन की यह प्रक्रिया बहुत तेजी से हुयी। प्रत्यक्ष रूप में भले ही हमें इतने ज्यादा परिवर्तन न दीखते हों, पर अप्रत्यक्ष रूप में जो परिवर्तन हुए वे इतने क्षिप्र और गतिशील थे कि उन्होंने हमारे जीवन मूल्यों को आमूल परिवर्तित कर दिया।

90 के दशक में सबसे प्रभावकारी और महत्त्वपूर्ण घटना हुई, वह थी तत्कालीन वित्त मंत्री मनमोहन सिंह द्वारा उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण की नवीन आर्थिक नीति। इस नीति ने परंपरागत भारतीय समाज पर दूरगामी प्रभाव डाला। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का निर्बाध प्रवेश, निजीकरण को बढ़ावा और संचार क्रान्ति ने जहाँ एक ओर आर्थिक रूप से भारत को प्रभावित किया, वहीं सामाजिक क्षेत्र में तीव्र परिवर्तन किया। आर्थिक विकास के माडल में समाजवाद का सिकुड़ता दायरा और निजीकरण की शक्ल में बढ़ते पूँजीवाद ने एक नया समाज विकसित किया। विज्ञापनवादी चकाचौंध, संवेदनहीनता और स्वार्थ परस्त वातावरण में जीवन मूल्य अपनी प्रासंगिकता तलाशते-तलाशते अपना रूप बदल बैठे। बाज़ार हमारे जीवन के बीच आ बैठा। अधिक उपभोग हमारी स्तरीयता का मानक बन गया। बाजार ने समाज में छद्म जरूरतें पैदा कर दीं। भीतर से खोखला जीवन ऊपरी चमक-दमक और विज्ञापनी आदर्शों को लेकर जीने लगा।

भूमंडलीकरण और संचार क्रांति ने आज विश्व में इतनी तेज़ी से परिवर्तन किए हैं कि देखते-देखते दुनिया की तस्वीर ही बदल गई है। भारत चूँकि एक विकासशील देश है, और यहाँ तकनीक का विकास

यूरोपीय देशों की भाँति नहीं हुआ है, इसलिए ये परिवर्तन यहाँ और अधिक स्पष्ट और दूरगामी सिद्ध हुए हैं। विगत दो-चार दशकों में पारंपरिक भारत की पूरा नक्शा ही जैसे बदल गया है।

एक बाल साहित्यकार का मानना है-''वर्तमान समय सूचना विस्फोट का युग है। बच्चों के ज्ञान और मनोरंजन के क्षेत्र में एकदम क्रांति आ चुकी है। रेडियो, टी.वी., कम्प्यूटर, इंटरनेट, मोबाइल जैसे ढेरों संसाधन बालमन को आकर्षित करने में लगे हैं। यहाँ तक कि इनकी चमक-दमक के आगे बच्चों की पारंपरिक पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ अस्तित्व-रक्षा के लिए संघर्ष की भूमिका में नज़र आने लगी हैं।'' (बच्चे और बाल साहित्य-चित्रेश, बालवाटिका मासिक, सं. भैरूलाल गर्ग, भीलवाड़ा, राजस्थान, नवंबर 2008)

प्रसिद्ध बाल साहित्य चिंतक हरिकृष्ण देवसरे कहते हैं-''वास्तव में सूचना-प्रौद्योगिकी का विकास जिस गति से हुआ है उससे दुनिया एक 'ग्लोबल विलेज' में बदल गई है। कम्प्यूटर के 'की-बोर्ड' पर बटन दबाते ही स्क्रीन पर वांछित सूचना उपलब्ध हो जाती है। सूचना-क्रांति का सूत्रपात करने में टेलीफोन, फैक्स, रेडियो, टेलीविज़न, सेटेलाइट, ई-मेल, मीडिया, फोटो कॉपियर, वीडियोफोन जैसे उपकरणों की बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। यह भी कि ये उपकरण न केवल सर्वसुलभ हैं और व्यापक रूप में प्रयोग हो रहे हैं, बल्कि बच्चे भी इनसे परिचित हैं और इनमें से कुछ का प्रयोग करना जानने लगे हैं।'' (बालसाहित्य मेरा चिंतन, मेधा बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ.-239)

अमेरिकन एजेंसी OFCOM (Office of Communication)के Children's Media Literacy संबंधी सर्वेक्षण (प्रकाशन वर्ष- 4 फरवरी 2020) की मानें तो अधिकांश बच्चे किसी न किसी मीडिया साधन का उपयोग करते हैं। तीन से चार वर्ष तक की आयु के 79 प्रतिशत बच्चे इंटरनेट का इस्तेमाल करते हैं। यह इस्तेमाल सोशल साइट्स पर समय बिताने, ऑनलाइन गेम्स खेलने, चैटिंग करने या अपने होमवर्क से संबंधित जानकारी जुटाने आदि के लिए होता है। इनमें से 24 प्रतिशत बच्चों के पास अपना सेलफोन या टैबलेट है। पाँच से सात वर्ष तक की आयु के 42 प्रतिशत बच्चों के पास मोबाइल या टैबलेट है। इनमें 62 प्रतिशत बच्चे अपना अधिकतर समय गेम्स खेलने में बिताते हैं। आठ से ग्यारह वर्ष की आयु के 79 प्रतिशत बच्चों के पास स्मार्टफोन और टैबलेट हैं, जबकि 12 से 15 वर्ष की आयु के 83 प्रतिशत बच्चों के पास स्मार्टफोन हैं। अधिकतर बच्चे इंटरनेट का इस्तेमाल फेसबुक, इंस्टाग्राम जैसी सोशल साइट पर समय बिताने के लिए करते हैं। बच्चों में इंटरनेट के इस्तेमाल और उसकी जानकारी का आलम यह है कि 12 से 15 वर्ष आयुवाले बच्चों के 70 प्रतिशत माता-पिता स्वीकारते हैं कि उनके बच्चे इंटरनेट, मोबाइल आदि संचार माध्यमों की विशेषज्ञता उनसे अधिक रखते हैं। इनमें से 56 प्रतिशत बच्चे ऐसे हैं जो इंटरनेट-सर्फिंग में अपने माता-पिता का दख़ल नहीं चाहते। 41 प्रतिशत बच्चों के अभिभावकों ने यह भी स्वीकार किया कि वे इंटरनेट जैसी चीज़ों का उपयोग अपने बेडरूम में अकेले करना पसंद करते हैं।

OFCOM की 29 जनवरी 2019 की प्रकाशित रिपोर्ट कहती है कि यू-ट्यूब बच्चों का प्राथमिक ऑनलाइन गंतव्य बना हुआ है, जिसमें 80 प्रतिशत इसका उपयोग कर रहे हैं। लगभग आधे (49 प्रतिशत), और 3-4 वर्ष की आयु के प्री स्कूल के एक तिहाई (32 प्रतिशत), अब नेटफ्लिक्स, अमेज़ॅन प्राइम वीडियो और नाउ टीवी जैसी सदस्यता ऑन-डिमांड सेवाएँ देखते हैं। (https://www.ofcom.org.uk/

about-ofcom/latest/media/media-releases/2019/why-children-spend-time-online)

अगर भारत की बात करें तो इस संचार क्रांति से न केवल महानगरीय जनता प्रभावित हुई है, बल्कि इसका असर गाँवों में भी दिखाई देने लगा है। सम्पूर्ण भारतीय समाज तेज़ी से सूचना-समाज में परिवर्तित हुआ है। टी.वी., कम्प्यूटर, इंटरनेट, मल्टीमीडिया आज हमारे जीवन का अनिवार्य अंग बन चुके हैं। आज इनसे अप्रभावित होकर जीवन बिताना असंभव-सा लगता है। प्रसिद्ध बाल साहित्य चिंतक हरिकृष्ण देवसरे मानते हैं कि "आठवीं-नवीं कक्षा तक पहुँचते-पहुँचते बच्चे कम्प्यूटर के ज्ञान से परिचित होने लगते हैं, क्योंकि सूचना-प्रौद्योगिकी के उपकरणों का प्रयोग करना तो वे छोटी आयु से ही सीख जाते हैं। ज़ाहिर है कि जब वे भविष्य की कल्पना करते हैं तो सूचना-प्रौद्योगिकी उन्हें आकर्षित करती है और वे उसे भविष्य की अनिवार्यता मानने लगते हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें यह ज्ञान उपलब्ध कराना आवश्यक हो जाता है। दूसरे शब्दों में बच्चों को आज सूचना-प्रौद्योगिकी का ज्ञान अर्जित करने से रोका नहीं जा सकता।" (बाल साहित्य : मेरा चिंतन, मेधा बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ.-240)

सूचना-प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से बच्चों में जहाँ एक ओर रिश्ते-नातों के प्रति सोच में यांत्रिकता और संवेदनहीनता का विकास हुआ है, वहीं दूसरी ओर उनकी स्वार्थ-साधकता और हिंसा-वृत्ति में भी इज़ाफा हुआ है। बाल जीवन पर आज सबसे अधिक प्रभाव टी.वी. ने डाला है। अपनी सुलभता और जबर्दस्त आकर्षण के कारण वह बच्चों के जिज्ञासु मन को सहज ही प्रभावित कर लेता है। केबल टी.वी. और डी.टी.एच. जैसी सुविधाओं ने तो इसके आकर्षण को दुर्निवार रूप दे दिया है। आज अनगिनत टी.वी. चैनल विभिन्न आयु वर्ग के तमाम कार्यक्रमों और सीरियलों से पटे पड़े हैं। सिर्फ बच्चों के लिए ही दर्जनों टी.वी. चैनल हैं। इन पर सिर्फ कार्टून और एनीमेशन फिल्में ही नहीं बल्कि हैरी पॉटर टाइप, जादू-टोने और तिलिस्म से भरे सीरियल और फिल्में भी मौजूद हैं। इसके बर-अक्स देखा जाए तो ऐसा भी नहीं है कि हमारे पारंपरिक और मूल्यवान साहित्य को नकारा गया है। रामायण, महाभारत, हनुमान, कृष्ण और भीम जैसे चरित्रों और कथाओं पर भी चमकदार एनीमेशन फिल्में मौजूद हैं; मगर अपने कम्प्यूटरी सौंदर्य और हाइटेक युग के आकर्षण के साथ। उनका उद्देश्य बच्चों में मूल्य-निर्माण नहीं, बल्कि पौराणिक प्रसंगों की चमत्कारिक और फैंटेसीपरक घटनाओं को मसालेदार बनाकर बच्चों को दर्शक के रूप में जोड़ना मात्र है।

बच्चों के लिए ही क्या बड़ों के लिए भी हनुमान, महादेव, महाभारत, रामायण, शकुंतला, चंद्रकांता और अरेबियन नाइट्स से लेकर कारपोरेट जगत के छल-छद्मों से युक्त सास-बहू के सीरियलों की कमी नहीं है। बच्चा सिर्फ अपने चैनल देखता हो ऐसा नहीं है। वह सब कुछ देखता है। ख़ासतौर से वह सब कुछ जिसके लिए उसे मना किया जाता है, और जिसके लिए हमारे जागरूक टी.वी. निर्माताओं ने चाइल्ड लॉक का सिस्टम बना रखा है। लेट नाइट फिल्में, हॉरर शो, डब्ल्यू.डब्ल्यू.ई. तथा टी.एन.ए. जैसे हिंसा प्रधान सीरियल्स उसकी हिट लिस्ट में शामिल होते हैं।

ज़्यादातर बच्चे, चाहे वे किसी भी आयु वर्ग के हों, उनमें हिंसा और साहस प्रधान सीरियल देखने की प्रवृत्ति पाई गई। America Academy of Pediatrics-AAP के अनुमान के अनुसार आठ वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते बच्चा लगभग 8000 हत्या के दृश्य और 18 वर्ष की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते

लगभग दो लाख हिंसात्मक दृश्य देख चुका होता है।

हालाँकि ऐसा नहीं है कि टी.वी. पर सिर्फ हिंसा और मनोरंजन प्रधान सीरियल ही मौजूद हैं। तमाम ऐसे चैनल भी हैं जो बच्चों के लिए बेहद उपयोगी और पढ़ाई-लिखाई में सहायक हैं। लेकिन आँकड़े यही बताते हैं कि टी.वी. पर ज्ञान आधारित कार्यक्रम देखनेवाले बच्चों का प्रतिशत सिर्फ 22.8 है (Zenith-International Journal of Multidisciplinary Research, Vol-I, Issue 5, September 2011)

टी.वी. के सामने अत्यधिक समय बिताने से बच्चा तमाम शारीरिक तथा मानसिक परेशानियों का शिकार हो रहा है। बच्चों में मोटापा बढ़ना आज एक आम समस्या है। America Academy of Pediatrics-AAP का निष्कर्ष है कि टी.वी. के सामने दो घंटे से अधिक बैठना बच्चों के स्वास्थ्य के लिए घातक होता है।

आज टी.वी. ने बच्चों में हीरोइज़्म और हिंसा-वृत्ति में इज़ाफा किया है। अतिमानवीय शक्तियों से युक्त पावर रेंजर्स, बेन टेन, अवतार, शक्तिमान या जूनियर जी टाइप नायक और उनके हैरत अंगेज़ कारनामे बच्चों के मन को गहरे प्रभावित करते हैं। आज उसका आदर्श गाँधी-नेहरू न होकर शाहरुख़ ख़ान हैं ('मैं शाहरुख़ ख़ान बनना चाहता हूँ'-कहानी, रमाशंकर, बाल साहित्य समीक्षा-नवं.-2008)। आज का बच्चा अपने फेवरिट हीरो की स्टाइल, उसके कपड़े, उसके बोलने का अंदाज़ सब कुछ कॉपी करना चाहता है। आज टी.वी. उसके सबसे बड़े शिक्षक की भूमिका निभा रहा है। बच्चा अच्छी-बुरी तमाम चीज़ें टी.वी. से सीख रहा है।

विज्ञापनों का संसार भी बच्चों को कम प्रभावित नहीं कर रहा है। विभिन्न उत्पादों में, चाहे वे बच्चों से संबंधित हों या नहीं, उन्हें एक युक्ति के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। उनसे बच्चा तो प्रभावित हो ही रहा है, अभिभावक भी 'इमोशनल ब्लैकमेलिंग' का शिकार हो रहे हैं।

विभिन्न विज्ञापनों की उक्तियाँ आज बच्चों के मुख से मुहावरों की तरह कहते-सुनते देखी जा सकती हैं। पुराना लाओ-नया ले जाओ के एक्सचेंज ऑफर के दौर में बच्चे का यह सोचना स्वाभाविक है कि -

'एक पुराने दादा जी से, जो नए दादा जी आते।
दोनों चलते कूपन लेकर, मुफ्त मलाई खाते।'
(विज्ञापन : सुशील शुक्ल, पाठक मंच बुलेटिन, जनवरी 2007)

मारधाड़, हिंसा, हत्या, अपहरण और बलात्कार की ख़बरों से अख़बार और चैनल पटे पड़े हैं। न चाहते हुए भी बच्चा इनसे दो-चार होने के लिए मजबूर है। दुर्घटना, डकैती, हड़ताल, गिरफ्तारी, साम्प्रदायिक दंगों से बच्चों के मन पर पड़ने वाले प्रभाव की अभिव्यक्ति बाल साहित्य में भी देखने को मिल रही है-

पढ़ा आज अख़बार में?/होता क्या संसार में?
कल फिर कर्फ्यू लगा शहर में/सड़कों पर सन्नाटा है,
भाई-भाई को कुछ लोगों/ने देखो फिर बाँटा है।
बहीं ख़ून की नदियाँ देखो/होली के त्योहार में।

(रेल के डिब्बे में, एन.डब्ल्यू.ए. पब्लिकेशन, फैज़ाबाद, 2001, पृ.-23)

ऐसा भी नहीं है कि इन समस्याओं से निपटने के प्रयास नहीं हो रहे। विभिन्न सीरियलों और कई चैनलों द्वारा भी उनमें मूल्य विकास और चरित्र-निर्माण के प्रयास किए जा रहे हैं। जवाहरलाल नेहरू के प्रयासों से 1955 में केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के अतंर्गत स्थापित 'चिल्ड्रंस फिल्म सोसाइटी ऑफ इंडिया' ने बाल फिल्मों के निर्माण में उल्लेखनीय प्रयास किया है। इस संस्था के बाहर के प्रोडक्शनों ने भी बाल फिल्मों के निर्माण में उल्लेखनीय कार्य किया है। किंतु इनके द्वारा जो अच्छी फिल्में बनाई गईं, वे अच्छी तरह प्रचारित-प्रसारित नहीं हो पाईं और जो आईं वे स्तरहीन और घटिया थीं। उनका उद्देश्य अतिमानवीय नायक के प्रस्तुतिकरण द्वारा सिर्फ पैसा बटोरना था। इन फिल्मों से और कुछ हुआ हो या न हुआ हो 'भूतनाथ' और 'भूत अंकल' जैसे काल्पनिक चरित्रों से बच्चों के अंधविश्वास में ज़रूर इज़ाफा हुआ।

लेकिन परिस्थितियाँ इतनी निराशाजनक भी नहीं हुई हैं। बदलती परिस्थितियों और तकनीकी विकास के दौर में भी बाल साहित्य और बाल पत्रिकाओं की सार्थकता हमेशा बनी रहेगी। उसका रूप भले ही बदल जाए। पंजाबी बाल साहित्यकार दर्शन सिंह आशट एक साक्षात्कार में स्वीकारते हैं-''इसका यह मतलब नहीं है कि टी.वी. पुस्तक को खा जाएगा। पुस्तक का महत्व आज भी है और सदैव बना रहेगा। जनसंचार माध्यम अपनी भूमिका ईमानदारी से निभाएँ तो बाल साहित्य के विकास में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।'' (बाल साहित्य समीक्षा मासिक, सं. राष्ट्रबंधु, कानपुर, जनवरी 2007)

वस्तुत: ''जन संचार माध्यमों द्वारा जिस तेज़ी से और जिस स्तर का सूचना ज्ञान प्रसारित किया जाता है, उसके ही अनुरूप पढ़ाई की ज़रूरतें बढ़ती हैं। यदि वे ज़रूरतें नहीं पैदा होती हैं तो एक विकासशील देश के बच्चों में और एक विकसित देश के बच्चों की तुलना में जो दूरी उत्पन्न हो जाएगी, उसके कारण वे अपने बदलते परिवेश के साथ सामंजस्य स्थापित करने में सफल नहीं होंगे। आज इलेक्ट्रिक साधन, बढ़ते हुए तकनीकी ज्ञान को समझने में और भविष्य की तैयारी में काफी महत्त्वपूर्ण और उपयोगी सिद्ध हुए हैं। किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि उनके कारण पुस्तकों का महत्व कम हो गया है। दूसरे शब्दों में, पुस्तकों द्वारा जिस स्थाई ज्ञान को प्राप्त करने का अभ्यास किया जाता है, उसके लिए इलेक्ट्रानिक संचार माध्यम ही सहायक हैं।'' (डॉ. हरिकृष्ण देवसरे : बालसाहित्य मेरा चिंतन, मेधा बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ.-214)

सम्पर्क : *शाहजहाँपुर (उ.प्र.)*

डॉ. विमला भंडारी

बाल साहित्य के उन्नयन और संवर्धन में संस्थागत योगदान

संदर्भ : राजस्थान

देशप्रेम, मातृभूमि के प्रति समर्पण, शौर्य, शृंगार, प्रेमाख्यान, नख-शिख वर्णन जैसी साहित्य परंपराओं का निर्वहन करता राजस्थान बाल साहित्य के क्षेत्र में भी अपनी अनूठी पहचान रखता है। आदिकाल से राजस्थान की लोक कथाओं में बाल साहित्य की समृद्ध परंपरा रही है जिसे विजय दान देथा की 'बाता री फुलवाड़ी' पुस्तक में भी देखा जा सकता है। इसमें बालकों के लिए प्रेरणादाई तथा स्वस्थ मनोरंजन करने वाली लोक कथाएँ दृष्टिगत होती हैं। ये लोक कथाएँ छोटे तथा किशोर बालकों में जीवन मूल्यों की स्थापना के साथ उनमें कौतूहल, जिज्ञासा, आनंदानुभूति के भाव जागृत करते हुए उनको वैचारिक दृष्टि से समृद्ध बनाने की क्षमता रखती हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व राजस्थान में 40 के दशक से बाल साहित्य लेखन और प्रकाशन की परंपरा प्रारंभ हो गई थी। दौलत सिंह लोढ़ा 'अरविंद' (भीलवाड़ा) की बाल साहित्य की प्रकाशित पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। 50 के दशक के आते-आते बाल साहित्य लेखन की परंपरा विस्तार पाती गई। राजस्थान के बाल साहित्यकारों, उनकी प्रकाशित पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं की एक लंबी सूची है।

इसी कालखंड में पूरे देश में बाल साहित्य संरक्षण, संवर्धन और उन्नयन की दृष्टि से संस्थाओं की स्थापना प्रारंभ हुई। राजधानी दिल्ली में 'नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया'(एनबीटी) जैसी सरकारी और 'चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट'(सीबीटी)जैसी गैर सरकारी संस्थाओं की स्थापना हुई। 1 अगस्त 1957 को स्थापित हुई नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया वर्तमान में शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अंतर्गत बढ़िया कार्य कर रही है। 1957 में ही केशव शंकर पिल्लई, जिन्हें शंकर के नाम से जाना जाता है, ने चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट (सी.बी.टी.) की स्थापना की। आरंभ में शंकर 'शंकर्स वीकली' पत्रिका निकालते थे। देश में इमरजेंसी के बाद उन्होंने वीकली बंद कर दी और अपना सारा ध्यान चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट (सी.बी.टी.) के विभिन्न पहलुओं को विकसित करने में लगा दिया। राजधानी में संपन्न होने वाली गतिविधियों का असर देश में भी दिखाई देने लगता है। राजस्थान में ऐसी संस्था की स्थापना का पहला शंखनाद हुआ मेरी जन्मभूमि राजसमंद से। आचार्य तुलसी के

प्रयासों से पूरे देश में 'अणुव्रत विश्व भारती' की स्थापना हुई, किंतु राजसमंद में यह पूरी तरह से बाल साहित्य और बालक को समर्पित की गई।

अणुविभा, राजसमंद : 'अणुविभा' यानी अणुव्रत विश्व भारती, नामक संस्था का सुरम्य परिसर राजस्थान के उदयपुर शहर से 60 किलोमीटर दूर एक हरी-भरी पहाड़ी और झील के किनारे स्थित है। अणुव्रत आंदोलन के प्रवर्तक आचार्य तुलसी की प्रेरणा से बालकों के हित चिंतक मोहन भाई जैन ने इस संस्था की स्थापना 30 दिसंबर 1982 को की। इसके बहुआयामी भवन को 'चिल्ड्रंस पीस पैलेस' कहा जाता है।

भारत का यह अनूठा बाल पर्यटन केंद्र बन गया। मोहन भाई ने 'बालक के निर्माण से ही अच्छे नागरिक का निर्माण संभव होगा' उद्देश्य को लेकर इसके परिसर में ज्ञान, संस्कार व मनोरंजन का त्रिवेणी संगम स्थापित किया। यहाँ जीवन मूल्यों से परिपूर्ण शिक्षाप्रद चित्रदीर्घा, बाल संसद, बाल पुस्तकालय, विज्ञान कक्ष, पार्क, झूले, गुड़िया घर, संगीत कक्ष, संग्रहालय, विश्व दर्शन, योग कक्ष, व्यसन मुक्ति के उपाय, अच्छा इंसान बनने हेतु प्रेरक चित्र, महापुरुषों का जीवन परिचय बहुत कुछ है। एक ही स्थल पर इतनी अधिक गुणवत्तापूर्ण, गरिमामयी, रोचक जानकारी का संकलन एक अद्भुत संयोजन है, जो स्वच्छता और सुंदरता में बेमिसाल है। यहाँ उपलब्ध ज्ञान के इस खजाने से बच्चे स्वत: सीखते हैं। बाल संसद में बच्चे मंथन करते हैं। यहाँ आकर बच्चों की स्कूल, परीक्षा, कोचिंग, ट्यूशन की थकान दूर हो जाती है। वे भय और भार से मुक्त होकर, तन-मन से स्वस्थ ऊर्जावान हो जाते हैं। इस बाल तीर्थ में इतना कुछ सीखने, जानने, समझने और जीवन में उतारने हेतु है कि बालोदय शिविर में सम्मिलित बच्चे, शिक्षक, अभिभावक सभी संतुष्ट और तृप्त हो जाते हैं। वर्षपर्यंत यहाँ अनेक बाल शिविर संचालित होते रहते हैं। यहाँ भोजन एवं आवास की उत्तम व्यवस्था है।

यहाँ के पुस्तकालय में सभी भारतीय भाषाओं में बाल साहित्य की पर्याप्त पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ उपलब्ध हैं। वर्ष में कई बार बाल साहित्यकार बच्चों के साथ काम करने आते हैं। उन्हें कविता सृजन, कहानी सुनाने से लेकर लेखन कार्यशाला में सिखाने के उपक्रम भी किए जाते हैं।

यहाँ बाल साहित्यकारों का सम्मेलन भी आयोजित किया जाता है। नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया जैसी संस्थाएँ भी उनके साथ जुड़कर कार्य करती हैं। यहाँ से 'बच्चों का देश' जैसी राष्ट्रीय बाल पत्रिका प्रकाशित होती है। इसमें बच्चों के मध्य संचालित क्लब गतिविधियों के तहत बच्चों द्वारा किया गया लेखन व चित्रकारी प्रकाशित कर उन्हें प्रोत्साहित किया जाता है। कुल मिलाकर यह संस्थान बालक और बाल साहित्यकारों के बीच एक सेतु की तरह प्रायोगिक प्लेटफार्म है। राजस्थान में ही नहीं, बल्कि पूरे देश में यह अपने ही ढंग का एक अनूठा अग्रणी कार्यस्थल है, जिसमें बाल साहित्य और बालक को संस्कारित करने से जुड़ी सभी गतिविधियाँ रोचक व मनोवैज्ञानिक शैली में संपन्न होती हैं।

बाल वाटिका, भीलवाड़ा : दक्षिणी राजस्थान में बालसाहित्य को लेकर किए जाने वाले प्रयासों में ऐसी ही एक अन्य विलक्षण मासिक पत्रिका है- बाल वाटिका। इसने अल्प काल अवधि

में हिंदी बाल साहित्य में अपनी पुख्ता पहचान स्थापित की। भीलवाड़ा से मार्च 1996 डॉ. भैरूलाल गर्ग ने इस पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। यह नियमित रूप से प्रकाशित होने वाली बाल साहित्य और सामग्री की संपूर्ण मासिक पत्रिका है। इसमें बाल साहित्य विमर्श, समीक्षा, आलोचना से लेकर बच्चों के लिए विविध सामग्री प्रकाशित की जाती है।

अब तक इसके तीन कलेवर अर्थात् साइज बदले गए। कभी विधा पर, तो कभी विषय पर, तो कभी व्यक्ति पर केंद्रित कर इसके कई विशेषांक निकले, जो अपने आप में अनूठे अंक रहे।

बाल वाटिका के माध्यम से बाल साहित्य के क्षेत्र में कार्य कर रहे साहित्यकारों को एक मंच मिला। 1997 में इसका पहला तीन दिवसीय बाल साहित्यकार सम्मेलन 24-25-26 अक्टूबर को भीलवाड़ा स्थित टाउन हॉल में संपन्न हुआ।

प्रत्येक वर्ष आयोजित होने वाले इसके बाल साहित्यकार सम्मेलन में देशभर के ख्यातिनाम बाल साहित्यकार जुड़ते रहे हैं। मंच से बाल साहित्य विषयक अनेक शोधपत्र वाचन सत्र होते हैं। इनके माध्यम से विभिन्न विषय, स्थिति को लेकर व्यापक चर्चाएँ होती हैं। कालांतर में बाल साहित्य के शोधार्थियों का रुझान इस ओर हुआ और उन्हें इसका लाभ भी मिला। इसके संस्थापक और संपादक डॉ. भैरूलाल गर्ग हिंदी के व्याख्याता रहे हैं। उन्होंने बाल साहित्य के क्षेत्र में शोध करवाने में पर्याप्त रुचि ली। इस तरह राजस्थान में बाल साहित्य को लेकर एक पुख्ता जमीन तैयार हुई। भारत के अन्य राज्यों के बाल साहित्य और राजस्थान के बाल साहित्य का एकीकरण हुआ। फलस्वरूप राजस्थान साहित्य अकादमी ने भी अनेक आयोजन में सहभागिता बनाई।

2005 में विज्ञान लेखन समिति, फैजाबाद की सहभागिता में डॉ. राजीव रंजन उपाध्याय के साथ लोकप्रिय विज्ञान शिविर संपन्न हुआ। इसमें किया गया कार्य पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ। बाल साहित्यकार सम्मेलन आयोजन के साथ यहाँ बच्चों की लेखन कार्यशाला, पुस्तक एवं पत्रिका प्रदर्शनी भी लगती रही। कुल मिलाकर यह स्थल बाल साहित्य का एक ऐसा गढ़ बन गया, जिसमें देश के बड़े-बड़े बाल साहित्यकार, संपादक प्रतिवर्ष जुड़ते रहे। वर्तमान समय में भी 'बाल वाटिका', बाल साहित्य की एक महत्वपूर्ण बाल पत्रिका कही जा सकती है।

चित्रा प्रकाशन एवं राजकुमार जैन 'राजन' फाउंडेशन, आकोला, चित्तौड़गढ़ : बाल साहित्य की पुस्तकों के प्रकाशन, प्रकाशित पुस्तकों पर पुरस्कार, विद्यालयों में निशुल्क बाल साहित्य की पुस्तकें भेंट करने का महान कार्य श्री राजकुमार जैन 'राजन' कर रहे हैं। प्रतिवर्ष बाल साहित्य पर केंद्रित आयोजन करने के लिए समर्पित मेवाड़ की इस अग्रणी संस्था के संस्थापक अध्यक्ष राजकुमार जैन 'राजन' हैं। वह बाल साहित्य उन्नयन और संवर्धन को लेकर देशभर में विभिन्न गतिविधियाँ संचालित कर रहे हैं।

सृजन सेवा संस्थान, श्रीगंगानगर : श्रीगंगानगर में बाल साहित्य संवर्द्धन के लिए सृजन सेवा संस्थान 15 साल से काम कर रहा है। इलके द्वारा अनेक कार्यक्रम आयोजित हुए हैं। नेशनल बुक ट्रस्ट के साथ मिलकर स्कूल-कालेज में विभिन्न प्रतियोगिताएँ करवाई गईं। राजस्थानी साहित्य अकादमी, उदयपुर के सहयोग से हुए जिला सम्मेलन में बाल साहित्य पर विशेष सत्र रखा। हर

चौथे वर्ष संस्था अपने वार्षिक पुरस्कार बाल साहित्य पर देती है। वर्ष 2021 में छः पुरस्कार बाल साहित्य पर केंद्रित रहेंगे। नवंबर 2019 सृजन कुंज शोध पत्रिका को बाल साहित्य पर केंद्रित कर विशेषांक के रूप में निकाला गया।

टाबर टोली, हनुमानगढ़ : बच्चों को साहित्यिक प्रोत्साहन देने के लिए 14 नवम्बर, 2003 को बाल दिवस के दिन टाबर टोली पाक्षिक अखबार का लोकार्पण हुआ। इसका मुख्य ध्येय था इसमें प्रतिभावान बच्चों के साक्षात्कार के साथ केवल सकारात्मक समाचार प्रकाशित करना। यह फेसबुक पर भी है। इसका ब्लॉग भी है। यह नेट पर 193 देशों से जुड़ा है।

टाबर टोली की ओर से शुद्ध शब्द लेखन, नृत्य, चित्रकला, कहानी, कविता, निबंध आदि प्रतियोगिताएँ करवाई जाती हैं। इसके संपादक श्रीमती कमलेश शर्मा, संस्थापक और साहित्य संपादक दीनदयाल शर्मा, बाल संपादक मानसी शर्मा और प्रबंध संपादक दुष्यन्त जोशी हैं।

सलिला संस्था, सलूंबर : 4 सितम्बर, 1994 को डॉ. विमला भंडारी द्वारा सलूंबर में स्थापित की गई 'सलिला संस्था' सलूंबर के साहित्यिक रुचि रखने वालों को वैचारिक मंच देने के लिए आरंभ की गई थी। यह संस्था कभी देशभर की बालक और बाल साहित्य की विशिष्ट अग्रणी संस्था बन जाएगी, ऐसी परिकल्पना उस समय नहीं की गई थी।

सलिला संस्था ने राजस्थान साहित्य अकादमी के साथ मिलकर वर्ष 2010 में पहला राष्ट्रीय बाल साहित्यकार सम्मेलन आयोजित किया जिसमें देशभर के बाल साहित्यकारों की सक्रिय सहभागिता से अपूर्व सफलता मिली। संभवत देश में होने वाला यह पहला ऐसा सद्प्रयास था जिसमें बाल साहित्य की सुगंध गाँव-कस्बों-ढाणी से होती हुई, अंतिम छोर के बालक तक पहुँची।

वर्ष 2010 से प्रारंभ हुआ यह सिलसिला अनवरत प्रतिवर्ष जारी है। इन सम्मेलनों की संयोजक डॉ. विमला भंडारी का विचार है कि साहित्य के बलबूते लोगों की मानसिकता बदली जा सकती है और बच्चों को संस्कार दिए जा सकते हैं। 'इन दो दिवसीय सम्मेलनों में विद्यालयों के विद्यार्थी, शिक्षक, शिक्षा जगत के उच्च अधिकारी, प्रशासनिक उच्च अधिकारी और जनप्रतिनिधियों की सक्रिय भागीदारी रहती है। विभिन्न चरणों वाले सत्रों में आयोजित इन सम्मेलनों को सलूंबर क्षेत्र के हजारों लोगों ने देखा व सुना। यह जनभागीदारी इस सम्मेलन की सबसे बड़ी उपलब्धि रही।

हर सम्मेलन किसी विशेष ज्वलंत राष्ट्रीय थीम पर आधारित होता है जिससे 21वीं सदी का बालक, साहित्य और साहित्यकार परस्पर टीम की तरह साहित्य के सामाजिक सरोकारों से बालकों की इस पीढ़ी को जोड़ने का प्रायोगिक काम करते हैं।

सलिला संस्था के राष्ट्रीय बाल साहित्यकार सम्मेलनों में राजस्थान सहित देश के अनेक राज्यों के वरिष्ठ एवं नवोदित बाल साहित्यकार पत्र वाचन, संगोष्ठी, कार्यशाला, कवि सम्मेलन आदि में भाग लेकर इसे उच्च स्तर प्रदान करते हैं। ये सम्मेलन सलिला संस्था, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, भारतीय बाल साहित्य संस्थान कानपुर जैसी कई संस्थाओं के संयुक्त तत्वाधान में आयोजित हुए।

बाल साहित्य पर केंद्रित यह पूरा अनुष्ठान कभी सात दिवसीय भी रहा। प्रथम चरण में 5

दिवसीय बच्चों की लेखन कार्यशाला या चित्र कौशल कार्यशाला का आयोजन हुआ। कभी कार्टून, कोलाज, पत्रिका व पुस्तकों की प्रदर्शनी सजी जिसका बच्चों, शिक्षकों, अभिभावकों द्वारा अवलोकन किया गया। बालकों व शिक्षकों द्वारा पुस्तकों की समीक्षा भी की गई। लेखकों एवं प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित नवीन बाल साहित्य का लोकार्पण भी प्रतिवर्ष का स्थाई कार्यक्रम बन गया है।

इन सम्मेलनों में आम जनता को जोड़ने के लिए सलूंबर के राजमहलों में अतिथियों एवं साहित्यकारों द्वारा हाड़ी रानी प्रतिमा पर पुष्पांजलि कार्यक्रम का आयोजन प्रारंभ हुआ। पुरस्कार वितरण, स्मारिका सलिल प्रवाह का लोकार्पण कार्यक्रम के अतिरिक्त कवि सम्मेलन से आम समुदाय को जोड़ा गया। सलूंबर से दूर ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों में उत्तराखंड से प्रकाशित बाल पत्रिका बाल प्रहरी तथा सलिला की ओर से आयोजित कार्यशाला में बालक खुलकर सामने आए। साहित्यिक प्रवृत्तियों के साथ उन्होंने प्रस्तुतीकरण का कौशल सीखा। उनका आत्मविश्वास बढ़ा और उनमें छिपी प्रतिभा उजागर होने व गति देने का सार्थक कार्य हुआ।

सलिल प्रवाह स्मारिका से बनी विशेषांक : प्रारंभ में 'सलिल प्रवाह' का प्रकाशन सलिला संस्था द्वारा स्मारिका के रूप में किया गया था ताकि विज्ञापन के जरिए संस्था की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ कर साहित्यिक आयोजनों को करवा सकें। सलिल प्रवाह धीरे-धीरे सदस्यों की लेखन प्रकाशन से आगे बढ़कर बाल साहित्य को समर्पित एक विशेषांक बन गई। जिसमें राजस्थान के बाल साहित्यकारों पर केंद्रित कर उन्हें उजागर करने की पहल की गई। इसी कार्य योजना के तहत बाल पहेली की विशेषज्ञ सुधा जौहरी, जयपुर पर 2015 का अंक केंद्रित किया गया। इसके बाद चाँद मोहम्मद घोसी, (मेडतासिटी), सावित्री चौधरी, (जयपुर), संगीता सेठी, (जोधपुर) तथा 2020 का अंक मुरलीधर वैष्णव, (जोधपुर) पर केंद्रित किया गया। 2020 के इस अंक में व्हाट्सएप पर क्रियाशील बाल साहित्यकार पटल पर सक्रिय रचनाकारों की बाल साहित्य की प्रतिनिधि रचनाएँ भी प्रकाशित करके इसके कलेवर को एक नया आयाम दिया गया। इसके संपादक मंडल में प्रकाश तातेड़ और अनिल जायसवाल जैसे प्रतिष्ठित बाल पत्रिकाओं के संपादक जुड़े होने से इसकी गुणवत्ता में अभिवृद्धि हुई और यह पत्रिका बेजोड़ बन गई और चहुँओर इसका स्वागत हुआ।

बच्चों की लेखन कार्यशाला : बालक, बाल साहित्य का महत्त्वपूर्ण घटक है। महानगरीय बालक का साहित्य परिवेश से जुड़े रहना आसान और सहज है किंतु ग्रामीण क्षेत्र के बालक के पास पाठ्य पुस्तकों से इतर कोई भी साहित्य सामग्री या साहित्य जुड़ाव नहीं होता है। खासतौर से आदिवासी ग्रामीण क्षेत्र की बाल प्रतिभाओं को सँवारने बाल साहित्यकार और बाल पत्रिका के संपादक बच्चों के बीच गए और उनमें साहित्य के प्रति रुचि विकसित कर उनकी पठनीयता का विकास करने का नवाचार पहली बार सलिला संस्था के माध्यम से हुआ। उनमें दबी-छिपी प्रतिभा को उजागर होने का एक मंच मिला। बच्चों की लेखन कार्यशाला की गतिविधियों में सलूंबर के ग्रामीण जनजाति के छात्र-छात्राओं की सहभागिता रही और उन्होंने सर्वप्रथम साहित्य के बारे में

जाना, सीखा और समझा। ग्रामीण क्षेत्र में बच्चों को बाल साहित्य जोड़ने और एक समझ विकसित करने का प्रयास सलिला संस्था द्वारा निरंतर जारी है।

पाँच दिन चलने वाली इन कार्यशालाओं में बालकों की रुचि के अनुसार बच्चों के अलग-अलग समूह बनाए जाते हैं। उन्हें समूह में कविता, कहानी, निबंध लेखन सिखाया जाता है। बच्चों की नाटक, कविता प्रस्तुति करवाई जाती है। बाल कवियों की काव्य गोष्ठी और उनके द्वारा मंच संचालन करवाया जाता है। पुरस्कार देकर उनका मनोबल बढ़ाया जाता है। बच्चों को दीवार अखबार बनाना सिखाया जाता है। उनसे हस्तलिखित पांडुलिपि तैयार करवाई जाती है। उन सभी रचनाओं की प्रदर्शनी लगाकर उन्हें प्रोत्साहित किया जाता है। पत्रिका-पुस्तकों की प्रदर्शनी लगाई जाती है। बाल साहित्य पुस्तकों का लोकार्पण करवाया जाता है। बच्चों द्वारा उनकी समीक्षा करवाई जाती है। शिक्षकों और अभिभावकों द्वारा भी उनकी समीक्षा कराई जाती है। खेल खेल में उनकी प्रतिभा को निखारा जाता है। बाल साहित्य से उनको जोड़ा जाता है और उनकी पठनीयता को नया आयाम दिया जाता है। इस क्षेत्र के बड़े अधिकारियों को बुलाकर उनसे रूबरू कराया जाता है। लेखन कार्यशाला का सहभागिता का प्रमाण पत्र दिया जाता है।

कई गतिविधियाँ विभिन्न विशेषज्ञों को बुलाकर संपन्न करवाई जाती है। इन कार्यशाला में बाल प्रहरी के संपादक उदय किरोला, कला शिक्षक केशव वरनोती, चाँद मोहम्मद घोसी, श्रीकृष्ण जुगनू, डॉ. जाकिर अली रजनीश, डॉ. इंदु गुप्ता, शांतिलाल शर्मा, शंकरलाल पांडे, मुकेश राव, मधु माहेश्वरी इत्यादि कई विशिष्ट साहित्यकार सम्मिलित हुए।

सम्मेलन में शोध पत्र वाचन : राष्ट्रीय बाल साहित्यकार सम्मेलन में राजस्थान के अलावा 8 से 10 राज्यों के बाल साहित्यकार सहभागिता हेतु प्रतिवर्ष आमंत्रित किए जाते हैं। इस अवसर पर विशेष आकर्षण विविध विषयों पर किए गए पत्र वाचन और उन पर किया जाने वाला विचार विनिमय होता है। वर्ष 2010 में पत्र वाचन का विषय 'इक्कीसवीं शताब्दी का बाल साहित्य' पर केंद्रित था। इसके अंतर्गत बाल साहित्य की काव्य विधा का पत्र वाचन जगदीश चंद्र शर्मा, गिलुंड ने किया था और बाल साहित्य की कहानी विधा का पत्र वाचन शकुंतला कालरा, दिल्ली ने ईडाणा पंचायत में किया था। बाल साहित्य के क्षेत्र में कार्यरत विभिन्न संस्थाओं पर पत्र वाचन गोविंद शर्मा, संगरिया ने किया था। 2011 में साहित्य, समाज और हमारा समय' पर विषय केंद्रित किया गया। जिसके अंतर्गत तीन पत्र वाचन हुए। पहला पत्र वाचन का 'सृजन के सरोकार और किताबों में बचपन' जिस पर पत्र वाचन एनबीटी के उप संपादक पंकज चतुर्वेदी, नई दिल्ली ने किया। 'हमारी बाल पत्रिकाएँ और बाल साहित्य की चुनौतियों' पर पत्र वाचन बच्चों की देश की संपादक स्व. कल्पना जैन, जयपुर ने किया। 'मीडिया, समाज और बाल साहित्य' पर पत्र वाचन डॉ. प्रीति प्रवीण खरे भोपाल ने किया। वर्ष 2012 में 'जनजाति अंचल का बचपन : बाल साहित्य की रचनात्मक भूमिका' पर केंद्रित कर शोध पत्र प्रस्तुत हुए। 'अंतरजाल का बाल साहित्य : एक पड़ताल' आशा पांडे, उदयपुर ने प्रस्तुत किया। 'बाल साहित्य तब और अब' विषय पर पत्र वाचन अनुजा भट्ट, नई दिल्ली ने प्रस्तुत किया। 'सूचनात्मक बाल साहित्य : तलाश नई संभावनाओं की'

पर डॉ. परशुराम शुक्ल, भोपाल ने अपना पत्र वाचन किया। इस अवसर पर बदलते परिवेश में बाल साहित्य का समसामयिक विवेचन भी प्रस्तुत हुआ और बच्चों को बाल फिल्में भी दिखाई गई। 2013 में संपन्न हुए सम्मेलन में पत्र वाचन के विविध विषयों और वार्ताकार इस तरह से थे- 'राजस्थान के बाल नाटक' डॉ. रमेश मयंक, चित्तौड़गढ़, 'हिंदी के श्रेष्ठ बाल नाटक', रमेश तैलंग, नई दिल्ली, 'कहानी से नाटक' मानस रंजन महापात्र, नई दिल्ली, वर्ष 2014 में आयोजित होने वाले राष्ट्रीय बाल साहित्यकार सम्मेलन का केंद्रीय विषय था 'आधी आबादी का हिंदी बाल साहित्य लेखन' जिस पर बीज वक्तव्य दिया डॉ. प्रभा पंत, हलद्वानी ने। पत्र वाचन के विषय 'गढ़ती है बचपन कविता के संग', डॉ. अनुश्री राठौड़ उदयपुर, 'तलाशती है जीवन कहानी के संग', मनोहर चमोली, उत्तराखंड ने प्रोजेक्टर के माध्यम से प्रस्तुत किया। 2015 में 'कैसा हो आज के हाईटेक युग का बाल साहित्य', मनोहर चमोली द्वारा प्रस्तुत किया गया। 'कैसा है अन्य भारतीय भाषाओं का बाल साहित्य', रजनीकांत शुक्ल, गाजियाबाद द्वारा वार्ता प्रस्तुत की गई। 2016 में 'बाल साहित्य के पात्रों का बाजार : एक विवेचन' रजनीकांत शुक्ल प्रस्तुत किया गया। 2017 में 'टीवी कार्टून धारावाहिक, हिंदी बाल साहित्य और बच्चे' डॉ. शील कौशिक, सिरसा द्वारा प्रस्तुत हुआ। 'साहिर के गीतों में बालक' फिल्मी गीतों के लेखन को लेकर इस विषय पर रजनीकांत शुक्ल द्वारा वार्ता प्रस्तुत की गई।

'बाल साहित्य में यात्रा वृतांत : राष्ट्रीय एकता का बेहतरीन प्रकल्प' वर्ष 2018 का केंद्रीय विषय था। जिस पर डॉ. विमला भंडारी ने अपनी बात रखी। 'बाल साहित्य अनुवाद : प्रगाढ़ होते मैत्री संबंध' पर राजकुमार जैन राजन, आकोला ने अपना पत्र वाचन प्रस्तुत किया। एनबीटी के संचालन में द्विजेंद्र कुमार के साथ बाल साहित्यकारों की यात्रा वृतांत लेखन कार्यशाला संपन्न हुई। 'समकालीन बाल साहित्य की पुस्तकें और बदलता पाठक' 2019 का विषय रहा। इस पर देवपुत्र के संपादक डॉ. विकास दवे, इंदौर ने अपना वक्तव्य केंद्रित किया।

राष्ट्रीय बाल साहित्यकार सम्मेलन में बच्चों की सहभागिता : दो दिवसीय सम्मेलन का आरंभ सदैव बालकों की प्रस्तुतियों द्वारा हुआ। इस तरह ग्रामीण प्रतिभाओं को एक मंच प्रदान कर काव्य गोष्ठी और नाटक प्रस्तुति द्वारा उन्हें पर्याप्त स्थान और महत्त्व दिया गया। सम्मेलन में बालकों की सहभागिता निरंतर रही किन्तु उसमें कई बदलाव और नवाचार होते रहे। बच्चों द्वारा पुस्तकों का लोकार्पण, समीक्षा के अलावा, कवि दरबार, कविता के साथ, नाटक प्रस्तुति, बाल प्रतिभा पुरस्कार लेकर उनकी उपस्थिति पूरे सम्मेलन में बनी रहती है।

सलिला संस्था की अन्य महत्त्वपूर्ण गतिविधियाँ-

1. बाल साहित्य की पुस्तकों का लोकार्पण : बाल साहित्य की नव प्रकाशित पुस्तकों का लोकार्पण नव प्रकाशन को मंच प्रदान कर नवीन कृतियों को लोगों के सामने लाया जाता है।

2. बाल साहित्य की विधाओं में पर प्रतियोगिता और पुरस्कार : बाल साहित्य की विभिन्न विधाओं में प्रतियोगिता आमंत्रित कर पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं। चयनित प्रविष्टियों के संकलन एंड संपादित कर संग्रह की पुस्तक प्रकाशित कर साहित्यकार समाज को सौंपी जाती है।

3. पुस्तक प्रदर्शनी कार्टून प्रदर्शनी : सम्मेलन के अवसर पर प्रदर्शनी लगाई जाती है विभिन्न प्रकाशक इसमें शामिल होते हैं और अपनी स्टॉल लगाते हैं। बच्चे अपनी मनपसंद किताब चुनते हैं, खरीदते हैं और पत्रिकाओं के ग्राहक बनते हैं। इस अवसर पर बच्चों के कार्यशाला के में की गई हस्तलिखित पांडुलिपि की प्रदर्शनी भी लगाई जाती है।

4. अखिल भारतीय कवि सम्मेलन : आमजन की सहभागिता और आमंत्रित रचनाकारों को मंच प्रदान करने हेतु विशाल अखिल भारतीय कवि सम्मेलन का आयोजन राष्ट्रीय बाल साहित्यकार सम्मेलन के अवसर पर किया जाता रहा है। जिससे हजारों की संख्या में लोग पहुँचते हैं। साहित्य की पहुँच आमजन तक पहुँचे और उन्हें एक संवेदनशील नागरिक बनाने में साहित्य सफल हो सके। साहित्यकार भी आमजन से जुड़ सके, राष्ट्रीय आयोजन के माध्यम से ऐसा एक साझा मंच प्रतिवर्ष तैयार किया जाता है।

तब से लेकर अब तक इस वर्ष वेबीनार करवाने को लेकर अब तक नियमित 11 राष्ट्रीय बाल साहित्यकार सम्मेलन, इसके बाल साहित्य के क्षेत्र में अपनी उल्लेखनीय सफलता की कहानी कह रहे हैं।

राजस्थान की मेवाड़, धरा का वह भाग है जो सदैव प्रताप के शौर्य से अनुगूँजित रहा। इसी मेवाड़ का अभिन्न अंग भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़, उदयपुर, सलूंबर, राजसमंद एवं नाथद्वारा में बाल साहित्य को केंद्रित कर गतिविधियों की ऐसी अनुगूँज उठी कि राजस्थान के अन्य भागों में कार्यरत निजी संस्थाएँ भी प्रभावित हुईं। इससे राजधानी जयपुर, अजमेर, श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़, संगरिया आदि जगहों में बाल साहित्य को रेखांकित करने वाले सम्मान-पुरस्कार, विशेषांक प्रकाशन, लोकार्पण के माध्यम से विशेष महत्त्व दिया गया। राजस्थान साहित्य अकादमी वर्ष 1975 से नियमित रूप से बाल साहित्य की पांडुलिपि प्रकाशन में सहयोग और प्रकाशित पुस्तक पर पुरस्कार प्रदान करने लगी। कुल मिलाकर बाल साहित्य की गतिविधियों की हलचल पूरे प्रदेश में गुंजायमान होने लगी। नतीजा यह हुआ कि पिछले वर्ष यानी 2019 में मुख्यमंत्री अशोक गहलोत ने राजस्थान में बाल साहित्य अकादमी स्थापना की घोषणा कर दी। आज तक पूरे देश के किसी राज्य में बाल साहित्य अकादमी का गठन नहीं हुआ है, ऐसे में की गई इस घोषणा का चहुँओर स्वागत हुआ और इसके गठन की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई।

सम्पर्क : *सलूंबर (उदयपुर) राजस्थान*

श्रीमती वंदना बघेल

सामाजिक चेतना में बाल पत्रिकाओं का योगदान

मानव एक सामाजिक प्राणी है और समाज हमारे आसपास की प्रतिध्वनि होता है। सामाजिक शब्द से तात्पर्य किसी भी देश काल से संबंधित मानव समाज में अभिव्यक्त जागरूकता से होता है। इस जागरूकता का उद्भव सामाजिक अन्याय, अनीति, शोषण, दुराचार जैसी प्रक्रिया से होता है। सम्पूर्ण मानव जाति की सम्पत्ति सामाजिक चेतना है। अत: काल विशेष में समाज में सुधार लाने के लिए जो भी प्रयास किये जाते हैं वे सामाजिक चेतना के अन्तर्गत आते हैं।

समाज के विकास, उन्नति जागरण, देश व समाज में प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण होने वाली क्षति या अधोगति को उबारने के लिए चेतन मन द्वारा जो चिंतन किया जाता है जिससे समाज में नई विचारधारा प्रवाहित होती है जिसके प्रभाव से समाज में नवजागरण या जागरूकता की लहर व्याप्त हो जाए उसे सामाजिक चेतना कहा जाता है ।

क्योकि मनुष्य के सामाजिक प्राणी होने के नाते उसके समाज के प्रति कई दायित्व होते हैं सामाजिकता के कारण ही हम एक दूसरे से जुड़ते हैं और साथ ही एक-दूसरे के प्रति चिंता भी करते हैं। जीवनमूल्य जो कि व्यक्ति को श्रेष्ठ बनाने का काम करते हैं उनकी कमी से व्यक्ति असामाजिक बन जाता है जो कि समाज के लिए खतरनाक साबित हो सकता है।

वर्तमान में बढ़ती आधुनिकता और एक-दूसरे को पीछे छोड़ने की होड़ में व्यक्ति आत्मकेन्द्रित होता जा रहा है वह निजस्वार्थ के लिए जीवन जीने को ही सार्थकता मानता है जिसके कारण आज समाज में सामाजिकता नष्ट होती जा रही है तथा असामाजिकता अपने पैर पसार रही है। जिसके दुष्परिणाम भी हमारे सामने आ रहे हैं। अत: हमें इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

हमारा भारत एक जनतांत्रिक देश है यहाँ जनतंत्र को सुचारू रूप से चलाने के लिए सामाजिक चेतना की जागरूकता अत्यंत आवश्यक है। भारत में सामाजिक चेतना के अभाव के संबंध में चिंता व्यक्त करते हुए राजेन्द्र कुमार शर्मा जी ने लिखा है -

''हमारे देश में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक चेतना की बहुत कमी है, लोग समस्याओं से ग्रस्त हैं फिर भी इनके निदान का प्रयास नहीं करते। भ्रष्टाचार बढ़ रहा है और जनता चुप है। पूँजीपति ऐश कर रहे हैं और मजदूर अपनी आवश्यकतायें पूरी नहीं कर पा रहे हैं।'' (अस्थाना रोहिताश्व /बाल काव्य

में भारतीय संस्कृति)

बढ़ती असामाजिकता के दुष्परिणाम सामने हैं कि हम बच्चों के सामाजिक सरोकारों के प्रति उदासीन हो गए हैं। बढ़ते जनसंचार माध्यम (टी.वी., कम्प्यूटर, मोबाइल, लेपटॉप, इन्टरनेट) आदि के द्वारा बच्चों का बचपन छीना जा चुका है साथ ही साथ माता-पिता के द्वारा बच्चों पर बनाए जाने वाले दबाव ने उन्हें कुंठित, एकाकी व आत्मकेन्द्रित बनने पर मजबूर कर दिया है। एक ओर माता-पिता दोनों कामकाजी होने के कारण बालक को स्नेह, प्रेम व समय नहीं दे पा रहे तथा दूसरी ओर बच्चों पर कैरियर व परसेन्टेज (प्रतिशत) बनाने का दबाव इतना ज्यादा है कि बच्चों का बचपन कोसों दूर चला गया है उसका स्वाभाविक विकास अवरुद्ध हो गया है। इस प्रकार के वातावरण में जीने वाला बच्चा क्या बड़ा होकर सामाजिक जीवन जी पाएगा? क्या अपने जीवनमूल्यों व सामाजिक सरोकारों के महत्त्व को समझ पाएगा? यह एक बहुत बड़ा प्रश्न चिन्ह है। पहले के समय में बच्चा अपने बचपन में दादी-नानी के किस्से कहानियों के साथ संस्कारों का विकास तथा खेल-खेल में जीवनमूल्यों का विकास कर लेता था। लेकिन समय के साथ सब कुछ बदल गया है। पारिवारिक विघटन भी एक बहुत बड़ा कारण है। बच्चा अब दादा-दादी, नाना-नानी, या संयुक्त परिवार में न पलकर उसका पालन-पोषण नौकरों की देख रेख में हो रहा है।

आज अपराधों का ग्राफ बढ़ता जा रहा है समाज में अन्याय, अत्याचार, अनीति, भ्रष्टाचार, जातिगत भेदभाव, जीवनमूल्यों के प्रति अनैतिकता बढ़ती जा रही है। सामाजिक चेतना ही मनुष्य के जीवन को सार्थकता प्रदान करती है आज हमें बच्चों को सामाजिक सरोकारों व जीवन मूल्यों के महत्त्व को बताने की अत्यंत आवश्यकता है। एक श्रेष्ठ मनुष्य ही श्रेष्ठ समाज का निर्माण कर सकता है और श्रेष्ठ बनने के लिए उसमें बचपन से ही जीवनमूल्यों व सामाजिक चेतना जागृत करने की आवश्यकता है।

बालसाहित्य व उससे जुड़ी बालपत्रिकाएँ आज बच्चों में बचपन से ही सामाजिक चेतना जागृत करने के अथक प्रयास कर रही हैं। बच्चा कुम्हार की माटी की तरह होता है। जैसा आकार देना चाहो दे दें। उसके मन पर बनी आकृति पत्थर पर बनी आकृति की तरह अमिट होती है। हमारे समाज में कई बुद्धिजीवी इस बात को मानते हैं कि बच्चों को सही दिशा देना अत्यंत आवश्यक है। अत: वे अपनी लेखनी के माध्यम से बाल साहित्य व बालपत्रिकाओं के माध्यम से बच्चों में अभिरुचियों के साथ-साथ आदर्श की पल्लवित पुष्पित कर रहे है।

विनोदचंद्र पाण्डे 'विनोद' अपनी कविता में लिखते हैं-

हम बाल रचनाकार हैं,/हम बाल रुचि को जानते,
उनकी प्रकृति पहचानते,/कर ज्ञात बाल स्वभाव को,
करते प्रकट उद्गार हैं।

बाल साहित्य की अनेक बाल पत्रिकाएँ - चंपक, नंदन, बालवाटिका, देवपुत्र, बच्चों का देश, नन्हें सम्राट, समझझरोखा, बाल भारती, बालहंस, बाल प्रहरी, बाल साहित्य समीक्षा आदि तथा उनमें अपना साहित्यिक योगदान देने वाले बालसाहित्यकार डॉ. राकेश चक्र, डॉ. शकुन्तला कालरा, डॉ. विनोदचंद्र पाण्डेय 'विनोद', डॉ. परशुराम शुक्ल, डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, डॉ. मालती शर्मा 'गोपिका', डॉ. अजय जन्मेयजय, डॉ. सेवानंदवाल जी, प्रभुदयाल श्रीवास्तव, पद्मा चांगावकर, डॉ. सुधा गुप्ता 'अम्रता' आदि ने

अपने लेखन के माध्यम से बालकों में सामाजिक चेतना जागृत करने के प्रबल प्रयास किये हैं बाल पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं के माध्यम से बालक पारिवारिक रिश्तों के प्रति, राष्ट्र के प्रति, समाज के प्रति, सृष्टि के प्रति अपने दायित्वों का ज्ञान पाता है।

नैतिकता जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण जीवनमूल्य है। बच्चों को शिष्ट, शालीन और संस्कार सम्पन्न बनाने के लिए नैतिकता की परम आवश्यकता है।

बालक को नैतिक शिक्षा का महत्त्व बताने के लिए चंद्रपालसिंह यादव 'मयंक' अपनी कविता के माध्यम से बताते हैं-

''नैतिक शिक्षा का जीवन में, सचमुच है महत्त्व भारी
इसे एक स्वर से स्वीकार, कर रही है दुनिया सारी
नैतिक शिक्षा ही बच्चों का, जीवन उच्च उठाती है
नैतिक शिक्षा ही मानव को, सतपथ पर ले जाती है।''

आज के समय में प्रत्येक व्यक्ति स्वार्थी है। इस समय परोपकार जैसे गुण की भी परम आवश्यकता है। इसी बात की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए डॉ. प्रेमजैन अपना संदेश व्यक्त करते हैं-

''सूरज एक आग का गोला, फिर भी कितना भोला भाला
भीतर करुणा भरी हुई है करता रोज उजाला है वह
अंधकार को पीता जाता, मन का तनिक न काला है वह
महापुरुष है कभी न थकते, पर-उपकार सदा ही करते
जीव जगत को देकर जीवन, उनकी सब पीड़ाएँ हरते।''

डॉ. परशुराम शुक्ल जी ने बचत का महत्त्व बालगीत के माध्यम से बच्चों में सामाजिक चेतना जागृत करने की प्रेरणा दी है।

जो बच गया वही है अपना, जो खर्चा बन गया सपना,
जीवन के इस दुर्गम पथ पर, सपना कभी हुआ न अपना
अगर बचत करी है अच्छी, जो चाहोगे पाओगे,
बच्चों बचत अभी से करना वरना फिर पछताओगे।

संस्कार जीवन को सँवारने का काम करते हैं। सामाजिक जीवन में संस्कार भी महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। अनुशासित जीवन और सबके प्रति अपनत्व का भाव रखने वाला कभी भी जीवन को बोझ नहीं समझता। इस प्रकार जीवन मूल्य का महत्व व्यक्त करते हुए रामेश्वर जाटव 'जीवन' शीर्षक से अपनी कविता लिखते हैं-

''संस्कारों से सजता जीवन, अनुशासन से बनता जीवन,
सबके प्रति प्रेम भाव हो, बोझ नही तब लगता जीवन,
राम सी मर्यादाएँ हो जब, तब हर मन को भाता जीवन,
कृष्ण सा चातुर्थ-प्रबल हो, कर्मशील बन जाता जीवन।'' (पाण्डेय रत्नाकर/ हिन्दी साहित्य : सामाजिक चेतना पृष्ठ-158)

बालकों से कम उम्र में काम करवाना एक अपराध है इसी ओर ध्यान आकर्षित करते हुए वन्दना

जैन ने अपनी कविता बालश्रम लिखी -

''है बचपन कोमल कच्चा सा/क्यूँ इतना बोझ उठाता है
दिनभर करके भी काम अथक/दो टुकड़े रोटी पाता है।''

(गर्ग भैरूलाल (संपादकीय)/ बालवाटिका मासिक पत्रिका फरवरी 2017 पृष्ठ-4)

इसी प्रकार समय के महत्व को बताने के लिए राजेन्द्र कुमार वर्मा अपनी कविता 'जीवन की दौड़' में बच्चों को समय अनमोल है बताते हुए कहते हैं-

''टिक-टिक चले बिन खाये सरपट दौड़े
बाधाएँ आए कितनी भी, रोके से यह नहीं रुके।''

डॉ. परशुराम शुक्ल ने धार्मिक भेदभाव को मिटाने के लिए अपने विचार कविता के माध्यम से बालकों तक इस प्रकार पहुँचाए ताकि बालकों के मन में जाति-पाँति, धर्म का भेदभाव मिट जाए।

''हिन्दू मुस्लिम भाई-भाई /ठाकुर पण्डित हरिजन भाई।
बैर छोड़कर प्रीति बढ़ाओ।/सबको अपने गले लगाओ

आज भी समाज में बहुत सी जगह बेटी के जन्म पर दु:ख जताया जाता है। कहीं तो उसे गर्भ में ही खत्म कर दिया जाता है। अत: सरकार द्वारा 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओं' को ध्यान में रखते हुए तथा बालिका दिवस की जानकारी देने के लिए बाल साहित्यकार डॉ. प्रीति प्रवीण खरे अपनी कविता 'राष्ट्रीय बालिका दिवस' के माध्यम से बेटी का महत्त्व बताती हैं-

''चौबीस जनवरी बालिका दिवस आता
इंदिरा गाँधी जी को इसका श्रेय जाता
बेटी से अपना बेहतर समाज बने
सच्चा अच्छा जीवन उसका आज बने।''

आज बालकों में हिंसा तथा व्यभिचार बढ़ रहा है। यह ऐसे विषय हैं जिनपर विचार करना अत्यंत आवश्यक है इसीलिए बाल साहित्य समीक्षा 1997 में प्रकाशित एक कहानी 'आत्मविश्वास' है जिसमें गर्मी की छुट्टियों में जीतू नाम का लड़का अपनी फीस व पढ़ाई खर्च के लिए रेल्वे स्टेशन पर गोलियाँ, टॉफी, बिस्कुट बेचता है और अपने सहपाठी नवीन से सामना होने पर उसे समझाता है कि मेहनत करके खाने में कैसी शर्म ...धंधा चाहे छोटा हो या बड़ा शर्म नहीं करना चाहिए।

बाल पत्रिकाओं के माध्यम से बच्चों को अपनी संस्कृति के साथ-साथ मानवीय मूल्यों और पठन कार्यों के प्रति सचेत भी किया जाता है। देवपुत्र पत्रिका में 'सांस्कृतिक पहेलियों द्वारा सीताराम पाण्डेय जी बच्चों को संस्कृति से परिचित कराने का प्रयास करते हैं जिसके माध्यम से बच्चों में रुचिपूर्वक सांस्कृतिक ज्ञान व चेतना जागृत होती है।

1.''कौन साथ थे दोनों जन्मे/किनने पिता नहीं पहचाना?
किनका जन्म हुआ जंगल में/कौन पिता से दंगल ठाना?'' (उत्तर: लव-कुश)

2 ''किसने तोड़ा शंकर-धनुदी/किसको पिता दिया वनवास?
त्रेता युग में युद्ध किया था/नाम बताओ तो शाबास।'' (उत्तर: श्री रामचन्द्र)

इसके अलावा देवपुत्र पत्रिका में 'सांस्कृतिक प्रश्नमाला' नामक स्तंभ से भी सांस्कृतिक चेतना जागृत करने का प्रयास किया जाता है जिसमें प्रश्नों के माध्यम से बच्चों को संस्कृति के प्रति रुचि जागृत की जाती है जैसे –

प्रश्न ''1 देवताओं के गुरु कौन माने जाते हैं?

2 विष्णु स्तंभ लोहे का एक ऊँचा स्तंभ है जिसमें गत सोलह सौ वर्षों में जंग नहीं लगी है। यह स्तंभ कहाँ है?

3 रामेश्वरम् में जिस जगह से श्रीराम सेतु बनना शुरू हुआ उस जगह का नाम क्या है?

4 विराट नगरी में महारथी अर्जुन ने अज्ञातवास के समय कौन सा नाम रखा?''3

इसी प्रकार नंदन पत्रिका में प्रकाशित सरोजिनी कुलश्रेष्ठ की एक सबसे अच्छी बाल कविता 'बोलो माँ' जिसमें भूकंप में मची अफरातफरी, ध्वंस और विनाश को लेकर बच्चों के मन में उठे सवालों, भय और जिज्ञासाओं की अभिव्यक्ति बताई है। इस कविता के माध्यम से वे बच्चों को प्राकृतिक विपदाओं की जानकारी देकर चेतना जागृत करना चाहती हैं–

''माँ धरती क्यों डोल रही थी,/घुर-घुर करती बोल रही थी?

इसके ऊपर हम रहते हैं,/कूद-फाँद करते रहते हैं।''

''फिजूलखर्ची बच्चों में अधिकतर देखी जाती है और बचत के महत्त्व को समझाते हुए बालहंस पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'आस्था का गुल्लक' है जिसमें आस्था एक फिजूलखर्ची करने वाली लड़की है और माँ द्वारा गुल्लक लाकर देने पर वह उसे (गैरेज) में फेंक देती है। उसी गुल्लक को आस्था की बहन लेकर उसमें पैसे जमा करती है। उन पैसों से माँ उसे घड़ी लाकर देने की बात कहती है तो आस्था भी उनसे घड़ी माँगती है। तब माँ उसे समझाती हैं कि वह भी अपने द्वारा बचत के पैसों को इकट्ठा कर जरूरत का सामान ला सकती है।''

बच्चों को सामाजिक सरोकारों से जोड़ती देवपुत्र पत्रिका में प्रकाशित एक कहानी 'घर का चिराग' है जिसमें ''एक जमींदार रघुराज घोषणा करते हैं इस वर्ष जिसकी होली सबसे रंगीन होगी उसे मैं व्यक्तिगत रूप से पुरस्कृत करूँगा। सुबह से वह सबकी होली देखने निकले/हर घर में रंगरोगन था, होली के रंग, मिठाईयाँ व हलचल थी। केवल मंगल के घर सूनापन था। रघुराज के पूछने पर मंगल ने बताया कि उसके पड़ोसी परमेश्वर का बेटा कुछ दिन पहले भगवान को प्यारा हो गया। परमेश्वर होली नहीं मनाना चाहता था लेकिन मैंने उसे समझाया/मेरी पत्नी व बच्चों को वहाँ भेजकर रंग रोगन करवाकर मिठाई बनाई जिसके कारण सारे पैसे खत्म हो गए। इस बात को सुनकर रघुराज ने मंगल को गले लगा लिया और कहा मैं तुमसे बेहद प्रसन्न हूँ।''

इस कहानी को पढ़कर बालक अपने सुख से अधिक दूसरों के दु:ख को महत्व देना सीखेगा जो कि एक श्रेष्ठ सामाजिक नागरिक का गुण होता है।

डॉ. संतोष भट्टाचार्य द्वारा लिखी 'संगति का फल' कहानी में समीर नामक एक बहुत ही होशियार, अनुशासनप्रिय व आज्ञाकारी बालक जो प्रतिवर्ष अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होता था लेकिन कक्षा में आए नए दो लड़कों रवि व प्रकाश के साथ रहकर वह बिगड़ गया। पढ़ाई में मन न लगना, स्कूल से बिना बताए

भाग जाना और छुट्टी के समय पर घर लौट जाना, समय पर कोई भी कार्य न करना तथा माता पिता से बुरा बर्ताव करना, जैसे अवगुणों को उसने अपना लिया। एक दिन उन्होंने स्कूल की छुट्टी कर एक रानीताल नामक तालाब पर जाने की योजना तैयार की। समीर अगली सुबह तालाब पर जाने की सोचते हुए सो गया तथा सपने में मछली पकड़ने व मछली को तड़पते व कष्ट भोगते देख वह दु:खी होता है। अगली सुबह से अच्छा बालक बनने का दृढ़ संकल्प लेकर रवि व प्रकाश का साथ छोड़ने की बात सोचता है। क्योंकि उसे समझ में आ जाता है कि बुरी संगति उसे गलत राह पर ले जा रही थी।''

मेहनत करने वालों की कभी हार नहीं होती। मेहनत करने से हर काम सफल हो जाता है। इस बात को स्पष्ट करते हुए तथा मेहनत का महत्त्व बताते हुए राजा चौरसिया जी अपनी कविता में लिखते हैं-

बिना आग में तपे कभी भी,/सोना बनता कभी न कुंदन।
बिना घिसे ठंडक, शीतलता,/कभी नहीं देता है चंदन।

साहित्यकार समाज से जुड़ा व्यक्ति है तथा समाज में लोगों की दीन-दशा मानव के कष्टों को देखकर दु:खी होना, सामाजिकता का परिचायक है। ऐसे समाज को पीड़ित और विवश लोगों को सहारा देने तथा उन्हें समान स्तर तक लाने हेतु व दृढ़ प्रतिज्ञ होकर डॉ. परशुराम शुक्ल जी कहते हैं-

''निर्धन और विवश लोगों को/सबल सहारा देना होगा।
जिन्हें सताया हो समाज ने,/उनको भी अपनाना होगा।''

एक श्रेष्ठ साहित्यकार समाज को भी श्रेष्ठ बनाना चाहता है। वह चाहता है कि सम्पूर्ण समाज की समस्त बुराइयों का नाश हो। कहीं कोई भेदभाव न रहे। प्रत्येक व्यक्ति में सदगुणों का विस्तार हो, तभी हम अपने एक उत्कृष्ट समाज का सपना साकार कर सकेंगे और इसी प्रकार बच्चों को सोचने पर मजबूर कर देने वाली कविता ''दंगे कौन कराते?'' चम्पा चौधरी द्वारा रचित है-

हिन्दू और मुसलमानों में/कौन कराते दंगे?
इनमें से हैं कौन बुरे माँ।/लुच्चे कौन लफंगे?

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि आज के युवा परिश्रम, धैर्य, सहनशीलता, भाईचारा, परोपकार, सहिष्णुता जैसे गुणों से दूर होते जा रहे हैं समाज में सात्विक प्रवृत्तियों का दमन किया जा रहा है। बालकों में मर्यादा, अनुशासन, आज्ञाकारी जैसी विशेषताएँ न होकर उनका मस्तिष्क संकुचित व कुंठाग्रस्त हो गया है। इसीलिए बालकों में सामाजिक चेतना जागृत करना अत्यंत आवश्यक है जिससे उन्हें सही दिशा दी जा सकें। उन्हें वास्तविकता के धरातल पर उतरकर यथार्थ से रूबरू कराकर समसामयिक समस्याओं के प्रति सचेत व जागरूक करना अत्यंत आवश्यक है। इस दिशा में हमारी बाल पत्रिकाएँ अथक प्रयासरत हैं तथा आगे भी आशा है कि ये अपनी रचनाओं के माध्यम से बालक के कोमल मन में सामाजिक चेतना पुष्पित-पल्लवित करने में अपना सम्पूर्ण योगदान देंगी।

सम्पर्क : *इन्दौर (म.प्र.)*

डॉ. सुधा गुप्ता 'अमृता'

स्वातंत्र्योत्तर बालकविता में षड ऋतु वर्णन

भारत की पहचान ऋतुओं से है। ऋतुओं के बदलाव वातावरण में इस प्रकार रस घोलते हैं कि न केवल पर्यावरण, बाह्य आवरण बल्कि मन के आवरण को खोलकर परत दर परत अपने ही रसरंग में सराबोर कर लेते हैं। वसंत आने पर धरा पीतवसना होकर चहुँओर रंग बिखेरती है तो वहीं ग्रीष्म में सूर्य तपकर नदी, सरोवर, समुद्र से जल-वाष्प लेकर बादलों को भरने की तैयारी में जुट जाता है। आसमान में रंगबिरंगी पतंगें इंद्रधनुषी रंग बिखेरने लगती हैं। साँझ होते ही बच्चे धमाचौकड़ी को तैयार और हम सब भी तो पिकनिक कार्यक्रमों की रूपरेखा बनाने लगते हैं। खेतों में फसलें पककर हवा में झूम-झूमकर खनखनाने लगती हैं। वर्षा घनघोर घटा लेकर आती है और धरती की प्यास बुझाती है। वहीं ठंडी ठिठुरन लेकर आती है। बस इतना ही ऋतुओं का मायाजाल नहीं है। हेमंत, शरद और शिशिर ऋतुएँ भी अपनी छटा बिखेरती हैं यानी हमारे देश में तीन नहीं छह ऋतुएँ होती हैं। किन्तु, बाल साहित्य में ठण्ड, गर्मी और वर्षा के ही वर्णन-चित्रण हमारे बाल साहित्यकार करते आए हैं। प्रौढ़ साहित्य में तो कभी-कभी षट ऋतु वर्णन मिलता है। जिन बाल साहित्यकारों ने षट ऋतु वर्णन लिखने की कोशिश की है, उन्हें मैंने इस शोध आलेख के बहाने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। हिंदी कैलेंडर के अनुसार चैत्र-वैशाख (मार्च - अप्रैल) वसंत ऋतु के महीने हैं। यह ऋतु वसंत पंचमी, गुड़ी पड़वा, होली, रामनवमी, हनुमान जयंती जैसे पर्व लेकर आती है। ज्येष्ठ-आषाढ़ (मई-जून) ग्रीष्म ऋतु के महीने हैं। यह ऋतु वट पूर्णिमा, रथ यात्रा, गुरु पूर्णिमा जैसे पर्व लाती है। सावन-भादों (जुलाई-अगस्त) ये वर्षा ऋतु के महीने हैं। यह ऋतु रक्षाबंधन, कृष्ण जन्माष्टमी, गणेश चतुर्थी, नवाखाई, ओणम जैसे त्यौहार लाती है। क्वांर-कार्तिक (सितम्बर-अक्टूबर) ये हैं शरद ऋतु के महीने। यह ऋतु नवरात्रि, विजयादशमी, शरद पूर्णिमा, बीहू जैसे पर्व लाती है। अगहन-पूष (नवम्बर-दिसंबर) ये हेमंत ऋतु के महीने हैं। इस ऋतु में दीपावली, भाई दूज, कार्तिक पूर्णिमा के त्यौहार आते हैं। माघ-फागुन (जनवरी-फरवरी) ये शिशिर ऋतु के महीने हैं। यह ऋतु शिवरात्रि, पोंगल, मकर संक्रांति जैसे बड़े पर्व लेकर आती है।

उपरोक्त कैलेंडर के आधार पर षट ऋतु वर्णन की ओर बढ़ते हैं -

वसंत ऋतु- वसंत ऋतु यानी ऋतुराज का वर्णन करने में तो महाकवि तुलसीदास भी अपने आप को अक्षम बतलाते हैं। ऋतुराज होता ही ऐसा है, फिर भी बाल साहित्यकारों ने भरसक प्रयास

किया है। प्रख्यात साहित्यकार पं. द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी का बालकाव्य को समृद्ध करने में बड़ा योगदान रहा है। उन्होंने वसंत का सुन्दर चित्रण किया है –

माँ! यह वसंत ऋतु राज री, आया लेकर नव साज री
महक महक डाली महक रही, कुहु कुहु कुहु कोकिल कुहुक रही
सन्देश मधुर जगती को वर, देती वसंत का आज री। (बालवाटिका अंक फरवरी 2014, पृ. 06, भीलवाड़ा (राज) सं. भैरूलाल गर्ग)

हिंदी बाल साहित्य में डॉ. सरोजनी कुलश्रेष्ठ एक बड़ा नाम है। उनके बाल साहित्य की समृद्धि में योगदान को नहीं भुलाया जा सकता। उनकी वसंत की झलकियाँ द्रष्टव्य हैं –

हुआ शिशिर ऋतु का अब अंत, छाया चारों ओर वसंत
उधर आम का आया बौर, पहना है वसंत ने मौर। (वही पृ. 07)

वसंत की कविता के बहाने कवयित्री ने यह भी बतला दिया कि शिशिर ऋतु चली जाने के बाद वसंत का आगमन होता है। वरिष्ठ साहित्यकार विनोदचन्द्र पाण्डे 'विनोद' की वसंत शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

कोयल कू-कू कर जाती, सब ओर है अमृत बरसाती
मधुमक्खी मधुरस पीती, तितली सहर्ष इतराती
बुलबुल का राग निराला, भौरों ने मधुर सुनाया
आया वसंत फिर आया। (वही पृ. 06)

श्रीमती पद्मा चौगांवकर देखिये किस प्रकार वसंत का स्वागत करती हैं –

नव वर्ष की अगुवाई में/निसर्ग निखर आया है/ऋतुराज आया है
शाखों ने पहिन ली/नर्म नई पोशाखें/मौलश्री फूल रही
आम भी बौराया है/ऋतुराज आया है। (षट ऋतु वर्णन 2016, पृ. 10 सं. विकास दवे, गोपाल माहेश्वरी, 40 संवाद नगर, इंदौर)

वहीं वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. सुधा गुप्ता 'अमृता' का मन वसंत के आगमन में झूमकर एकाकार हो जाता है और वे कह उठती हैं –

आया वसंत आया वसंत, खुशियाँ भर गईं दिग-दिगंत
झूम उठा गेंदा मतवाला, झूमा बगिया का रखवाला
तितली बैठे न इक ठौर, कोयल कूके आम की बौर
भँवरा उड़े अनूठे पंथ, आया वसंत आया वसंत। (वही पृ. 08)

कवि साहित्यकार जगदीश 'गुप्त' की वसंत पर अलग ही कहन है –

पीत पत्र झर गये, नवीन पुष्प खिल गये
वसंत का है आगमन, मन सुमन खिल गये। (अप्रकाशित पाण्डुलिपि, पृ.12)

वसंत ऋतु पर अनेकानेक कवि बाल साहित्यकारों ने कलम चलाई है।

वसंत ऋतु फागुन का संदेशा लेकर आती है और ग्रीष्म की आहट हवाओं में अपना रंग दिखाने

लगती है। सूरज अपने पूरे रंगोआब के साथ धूप के सुनहरे रथ पर सवार होकर निकल पड़ता है, पूरी धरती से पानी सोखने के लिए। वरिष्ठ साहित्यकार दिविक रमेश जी ने मौसम की गाड़ी खूब चलाई है –

गर्मी की गाड़ी ले देखो, मई-जून मिलकर हैं आये

बस जी करता ठंडा पी लें, ठंडी कुल्फी हमको भाये। (बालवाटिका अंक फरवरी 2013, पृ.06, भीलवाड़ा (राज.) सं. भैरूलाल गर्ग)

वरिष्ठ बाल साहित्यकार पद्मा चौगांवकर गर्मी की धूप को ढीठ कहती हैं –

गर्मी की ऋतु आई/बहुत चढ़ी सूरज के सर

धूप ढीठ होकर इतराई/और धूप की देखा-देखी

बिना बात हवा गरमाई/सूखे सब ताल-तलाई। (षट ऋतु वर्णन 2016, पृ.11, सं. विकास दवे, गोपाल माहेश्वरी, 40 संवाद नगर, इंदौर)

वरिष्ठ साहित्यकार प्रत्यूष गुलेरी जी गर्मी से बेहद परेशान नजर आ रहे हैं –

सूरज ने गर्मी बरसाई –

हवा नहीं है ठंडी लगती/कूलर की अब पंखे की

फ्रिज का पानी ही सब पीते/याद भुलाई मटके की

तन से बहे पसीना टप-टप / पानी जैसे टपक रहा

तन-मन की सुध भूल चुकी है/याद नहीं अब सबक रहा। (बालवाटिका अंक मई 2013, पृ.15, भीलवाड़ा (राज) सं. भैरूलाल गर्ग)

जहाँ गुलेरी जी गर्मी से परेशान नजर आते हैं वहीं बाल साहित्यकार जगदीश गुप्त जी गर्मी का लुत्फ़ उठाते प्रतीत होते हैं –

गर्मी की हो गई है छुट्टी/मौज मनाने के दिन आये

गुड़ संग सत्तू पना आम का/रोज खाएँगे बड़े काम का

(अप्रकाशित पाण्डुलिपि पृ.18)

वहीं वरिष्ठ बाल साहित्यकार डॉ. सुधा गुप्ता 'अमृता' गर्मी का चित्रण कुछ इस तरह करती हैं –

मार्च-अप्रैल मई और जून/रूठा रहता है मानसून

गरम-गरम लू चलती फर-फर/ कूलर पंखे चलते घर-घर

(षट ऋतु वर्णन 2016, पृ.09, सं. विकास दवे, गोपाल माहेश्वरी, 40 संवाद नगर, इंदौर)

तपती धरती की प्यास बुझाने वर्षा ऋतु झूमकर आती है। वर्षा नाम लेते ही काले-घुँघराले घुमड़ते-उमड़ते बादलों की गर्जन, बूँदों की छम-छम का अहसास मन को गुदगुदाने लगता है। फिर भला बादल/बूँदों के गायन/नर्तन पर कवि की लेखनी कैसे चुप रह सकती है? वर्षा पर विभिन्न कल्पनाओं के माध्यम से वरिष्ठ-कनिष्ठ कवियों ने बाल रचनाएँ की हैं। विशिष्ट वरिष्ठ कवि स्व. रामानुज प्रसाद त्रिपाठी की कल्पना के रंग कुछ इस तरह बिखरे हैं –

ये बादल के नन्हें बच्चे/नीले नभ में घूम रहे हैं

चले पहिन कर गीले कपड़े/काले-काले भूरे-भूरे
भाग-भागकर छिप-छिप जाते/एक दूसरे को छू-छू रे
खेल रहे हैं आँख मिचौली/एक-एक को चूम रहे हैं।(बालवाटिका अंक जुलाई 2017, पृ. 48, भीलवाड़ा (राज) सं. भैरूलाल गर्ग)

रामानुज जी ने बादल का मानवीकरण कर नटखट, चंचल बच्चे के रूप में प्रस्तुत किया है। वहीं भगवती प्रसाद गौतम की बहुत अच्छी बाल कविता है -

नन्हीं-नन्हीं बूँदों पर, रीझ-रीझ जाने का मौसम
उफने नाले भरी तलैया, बोल उठा मन छप-छप खेलें
निकलें घर से गुपचुप बाहर, तड़-तड़ बरखा के झल झेलें
कड़क-कड़क नभ में बिजली के, दीख-दीख जाने का मौसम। (बालवाटिका अंक जुलाई 2015, पृ. 11, भीलवाड़ा (राज) सं. भैरूलाल गर्ग)

गौतम जी का मन बरखा रानी पर रीझ गया है तो वहीं वरिष्ठ बाल साहित्यकार पद्मा चौगांवकर की वर्षा संदेशे लेकर आ रही है-

मौसम के भीगे संदेशे, खुशियाँ लेकर आते हैं
मह-मह मिट्टी को महकाते, बूँदों की बारात सजाते
ले आते मौसम मनभावन, वर्षा ऋतु के भादों-सावन। (षट ऋतु वर्णन 2016, पृ.12 सं. विकास दवे, गोपाल माहेश्वरी, 40 संवाद नगर, इंदौर)

वर्षा ऋतु पर बिलकुल एक नवीन कल्पना से लबालब कुसुम अग्रवाल अजमेर की कविता देखें, जिसमें वर्षा को माँ और पत्तों को शिशु का मानवीय रूप देकर प्रस्तुत किया है -

माँ वर्षा ने शिशु पल्लव पर शीतल जल बरसाया
धूल धूसरित तन को उसके मल-मलकर नहलाया

इस पूरी कविता में धरती में सोये बीज के अंकुरित होने से लेकर वृक्ष बनने तक की सुन्दर कल्पना की गई है। कुसुम जी की कविता चरम पर है। आगे वे कहती हैं-माँ वर्षा बच्चों से मिलने हर सावन में आए/अपने संग खुशहाली के उपहार सदा वह लाए। (देवपुत्र अंक जुलाई 2017 पृ.38, प्र.सं.- कृष्णकुमार अष्ठाना, 40 संवाद नगर, इंदौर)

वरिष्ठ बाल साहित्यकार डॉ. सुधा गुप्ता 'अमृता' ने बूँदों का उपकार कुछ इस तरह व्यक्त किया है -

बूँदों ने पायल छनकाई, छम-छम उतर धरा पर आई
झूमी गैया, झूमा भैया, नैया कागज की तैराई
(अप्रकाशित पाण्डुलिपि, पृ. 25)

सुधा जी की कविताओं को देशज शब्द भावनाओं की खुशबू के साथ निखारते हैं।

बाल साहित्यकार जगदीश 'गुप्त' जी वर्षा के काले मेघों के साथ भीगती कविता के साथ -

देखो काले मेघा छाये, पुलकित मन सबके हर्षाये

गर्म धरा पर बरसें बूँदें, मिट्टी का कण-कण मुस्काये (अप्रकाशित पाण्डुलिपि, पृ. 22)

वर्षा ऋतु के बाद शरद ऋतु का शुभागमन होता है। धरती निखरी-निखरी, उजली-उजली प्रतीत होती है आसमान की छटा अजब निराली होती है। पद्मा चौगांवकर लिखती हैं-

आश्विन-कार्तिक ये दो मास, शरद ऋतु के सब दिन ख़ास
वर्षा रानी अब जाती है, उसे विदा कर फूले काँस
(षट ऋतु वर्णन 2016, पृ.13 सं. विकास दवे, गोपाल माहेश्वरी, 40 संवाद नगर, इंदौर)

श्रीमती इन्दु पाराशर ने शरद का स्वागत कुछ इस तरह किया है -

गई वर्षा न भली प्रकार, शरद ऋतु लेती आकार
काँस जवास आदि के फूल, धरा पर बिछते खेत दुकूल
चमेली जूही मालती संग, उमड़ती सबके हृदय उमंग। (वही पृ. 31)

प्रशांत कुमार दीक्षित जी ने भी 'शरद' पर कलम चलाई है -

आश्विन कार्तिक मास काल में शरद ऋतु
बरखा ऋतु के तदनन्तर ये आती है/नदियाँ भी निर्मल जल सरसाती हैं
लगती है इसमें प्रशांत पर्वों की झड़ी/दीपावली, दुर्गा पूजा आदि पर्व लाती है। (वही पृ. 52)

वरिष्ठ बाल साहित्यकार ओम उपाध्याय शिशिर को कुछ इस तरह वर्णित करते हैं -

ऋतुएँ आतीं ऋतुएँ जातीं, ऋतुओं पर हम लिखें पाती
ऋतु शरद है बहुत ही ख़ास, त्यौहारों की धूम आसपास। (वही पृ. 62)

बाल साहित्यकारकार जगदीश 'गुप्त' की शरद ऋतु की बानगी देखिये -

चंदा की शीतलता लेकर, शरद ऋतु करती पहुनाई
शाम-सवेरे हलकी ठंडक, शाल ओढ़कर कुछ गरमाई। (अप्रकाशित पाण्डुलिपि, पृ.18)

सुपरिचित बाल साहित्यकार डॉ. सुधा गुप्ता 'अमृता' के अंदाजे-बयाँ बड़े निराले हैं -

वर्षा ऋतु की हुई विदाई, शरद ऋतु मनभावन आई
आसमान में छिटके तारे, ज्यों मोती के चले फुहारे
चंद्र किरण चंचल छवि छाई, शरद ऋतु मनभावन आई। (षट ऋतु वर्णन 2016, पृ. 05 सं. विकास दवे, गोपाल माहेश्वरी, 40 संवाद नगर, इंदौर)

हेमंत ऋतु में ठण्ड जोर पकड़ने लगती है। अगहन-पूष की अगवानी में हेमंत पसर जाता है। इंदु पाराशर जी कहती हैं -

गुलाबी जाड़ा है हेमंत, शीत का है यह पहिला मन्त्र
हवा में ठंडक का अहसास, सभी को ले आता है पास (वही पृ 32)

हेमंत ऋतु की सूक्ष्म पड़ताल करते हुए पद्मा चौगांवकर कहती हैं -

अगहन पूष में ऋतु वसंत, वर्षा का होता है अंत
दबे पाँव तब जाड़ा आता, धीरे-धीरे धाक जमाता
जाड़े की फिर बजती तू-तू, धूप निबल हो जाती

सूरज की फिर एक न चलती, हर दिन दूनी ठण्ड सताती। (वही पृ 14)

वहीं डॉ. दयाराम 'मौर्य रत्न' कुछ इस तरह हेमंत को बखानते हैं -

तन पर कोट शीश पर टोपी, कठिन शीत काया में सिहरन
निर्जन पथ वायु के झोंके, आग सेंकने का होता मन...
खेतों में फसलें आकर्षक, ओस बिंदु पर्णों पर पड़ते
रश्मि भानु का प्रत्यावर्तन, स्वर्णकार जो नग को जड़ते। (वही पृ. 20)

संवेदनशील बाल साहित्यकार डॉ. सुधा गुप्ता 'अमृता' को हेमंत ऋतु कुछ इस तरह भा गई है -

माघ पूष की ठंडी रातें, ठिठुरन करती सबसे बातें
स्वेटर मफलर ओढ़ रजाई, दादी ने फिर कथा सुनाई
पलकों पर झट निंदिया आई, हेमंत ऋतु सबके मन भायी
शी शी-शी-शी मुँह से निकले, दादा के मुँह राम राम। (वही पृ. 06)

वरिष्ठ बाल साहित्यकार जगदीश 'गुप्त' की कविता हेमंत की छवि को इस तरह उकेरती है -

ऋतु हेमंत लेकर आती ठंडा महीना पूष
किन्तु, सेहत अच्छी रखती, पियो टमाटर जूस। (अप्रकाशित पाण्डुलिपि, पृ. 24)

शी शी शी शी की सिहरन जब शरीर को कँपकँपाने लगती है तो समझो शिशिर आ गई। पद्मा जी लिखती हैं -

शिशिर ऋतु के दिन अलबेले, ये मौसम कुछ करने का है
चलें परीक्षा देने पढ़कर, अवसर बीते क्या पछताना
मेहनत कर लेना डटकर (षट ऋतु वर्णन 2016, पृ. 15 सं. विकास दवे, गोपाल माहेश्वरी, 40 संवाद नगर, इंदौर)

दरअसल हेमंत और शिशिर दोनों ऋतुओं का यह संक्रमण काल होता है। पूष-माघ में कड़ाके की ठण्ड पड़ती है। इसीलिए शायद शिवरात्रि पर शी शी शी शी शिव के रूप में उच्चरित होता है।

इंदु पाराशर जी लिखती हैं -

शिशिर में आई कड़कती ठण्ड, सभी की हुई बोलती बंद
काँपते सबके थर थर गाल, वाद्य से बजने लगते दाँत
शिशिर में वर्षा ओले पड़े, मावठा इसे बुद्धिजन कहें
पहाड़ों पर होता हिमपात, नहीं वृक्षों पर पात। (वही पृ. 33)

प्रकृति सृष्टि में संतुलन बनाये रखने के लिए ऋतु परिवर्तन करती है। शिशिर यानी कि ठण्ड, जी हाँ ठण्ड यानी कि सर्दी, डॉ. मोहन अवस्थी सर्दी की विजय और उसके वर्चस्व का वर्णन कर रहे हैं -

सर्दी ने झंडा गाड़ दिया -
थर थर थर थर सब काँप, कर आग आग का जाप रहे
छोटी लाइन के इंजन बन, सब छोड़ भकाभक भाप रहे

उड़ रही धूल सब ओर, हाथ-पाँव को उसने फाड़ दिया। (बाल साहित्य समीक्षा अंक जनवरी 2011, पृ. 06, सं. डॉ. राष्ट्रबन्धु, कानपुर)

'लल्लू जगधर' के संपादक प्रेम 'विशाल' लिखते हैं -

बजे कट-कट दाँत सभी के/लगी काँपने सबकी काया/सभी लगे हैं हाथ सेंकने/घर-घर एक अलाव जलाया। (वही पृ. 08)

बाल साहित्यकार डॉ. सुधा गुप्ता 'अमृता' शिशिर की पड़ताल कुछ इस तरह करती हैं -

गई हेमंत शिशिर ऋतु आई, बड़ा सुहाना मौसम लाई

गर्म शाल, स्वेटर और कोट, बाँधें कान लगाएँ टोप

किरण सूर्य की उसे उठाती, सतरंगी आभा दिखलाती। (षट ऋतु वर्णन 2016, पृ. 07 सं. विकास दवे, गोपाल माहेश्वरी, 40 संवाद नगर, इंदौर)

इस ऋतु में डाक्टरों की दुकान जरा कम चलती है क्योंकि शिशिर यानी शीत ऋतु स्वास्थ्यवर्धक है। फल सब्जियाँ आदि भी भरपूर मिलती हैं।

बाल साहित्यकार जगदीश 'गुप्त' ने शिशिर के चित्र कुछ इस तरह उकेरे हैं -

ऋतुओं की शहजादी आती, शिशिर ऋतु मतवाली लाती

सुबह-सुबह लिपटी कोहरे में, देर से धूप सुहानी लाती

स्वेटर पहिने बच्चे दिखते, लाल गाल सब अच्छे लगते

धूप में गुरु जी कक्षा लेते, ठण्ड का पूरा आनंद लेते। (अप्रकाशित पाण्डुलिपि, पृ. 12)

भाग्यशाली हैं हम भारतीय जो हमारे देश में ईश्वर ने षट ऋतुओं की सौगात प्रदान की है वरना सोचो बारहों माह एक ही मौसम में किस तरह का नीरस जीवन जीते! विदेशों में जहाँ कभी सूर्य के दर्शन हो जाते हैं तो हॉलिडे हो जाता है, तो कभी बरसात हो गई तो रेनी डे हो जाता है। हमारे देश में तो प्रत्येक ऋतु दो दो माह अपने रंग दिखाकर हमें अपने में रंग लेती है।

सम्पर्क : *कटनी (म.प्र.)*

पवन चौहान

हिमाचल के बाल साहित्य की विकास यात्रा

हिमाचल प्रदेश एक पहाड़ी क्षेत्र होने के साथ अपने में प्राकृतिक सौंदर्य का अनमोल खजाना लिए हुए है। यहाँ की बर्फ से ढकी उज्जवल पहाड़ियाँ, वृक्षों की हरियाली, फलों की मिठास और आम जनमानस का स्नेहिल, मृदुल व्यवहार, यहाँ की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर किसी को भी अपना दीवाना बना देती है। कई पर्वत शृंखलाओं से घिरा इसका बहुत सारा क्षेत्र किसी भी व्यक्ति के मन में रोमांच भर देता है। प्राचीन समय में इसका कठिन पहाड़ी जीवन, टेढ़ी-मेढ़ी, ऊँची-नीची, समतल व खतरनाक इलाकों से गुजरती पगडंडियों का रोजाना का सफर; पशुपालन, मीलों दूर तक पैदल चलकर खानी नमक लाना, जंगल-जंगल भेड़-बकरियाँ व अन्य पशु चराना, राजाओं व अंग्रेजों की बगार और हाड़ तोड़ परिश्रम, मैदानों में ग्रामीणों द्वारा जलावन की लकड़ी, घास-पात व जंगली झाड़ू तथा फल आदि लाना बगैरह-बगैरह; यही यहाँ के जनमानस की दिनचर्या का हिस्सा था। ठेठ ग्रामीण परिवेश और अपने इलाके के आसपास ही अंतिम साँस तक का सामाजिक दायरा, बाहरी दुनिया से बेखबर अपनी ही मस्ती, अपने सुख-दुख तथा जिंदगी के हर रंग में अपने को ढालकर यहाँ का जनमानस जीवन के हर हिस्से को निभाता रहा है। इसमें बच्चे भी अपने बड़ों के संग कदम से कदम मिलाकर उनकी अँगुली थामे चलते रहे।

अब जब बच्चों की बात चल पड़ी है तो उनके मनोरंजन की बात भी अवश्य होगी ही और यही सब बाल साहित्य का एक अहम हिस्सा भी है। हिमाचल के सन्दर्भ में यदि बाल साहित्य की बात को कहें तो हम अपनी बात को 20वीं सदी के मध्य भाग यानी 1950 और उससे पहले के समय से शुरू कर आगे बढ़ते हुए वर्तमान समय तक लेकर चलेंगे। बाल साहित्य जहाँ बच्चों के मनोरंजन का साथी है वहीं उनके विकास का निरंतर घूमने वाला पहिया भी है। उस मुश्किल दौर में हिमाचल में बड़ों के मनोरंजन के साधन यदि लोकगीत, लोकनृत्य, रामलीला, महाभारत या फिर लोकनाट्यों का मंचन आदि रहा तो बालमन के मनोरंजन के लिए जो कुछ विशेष रह जाता था, वह था लोक कथाएँ, पहेलियाँ और उनके अपने खेल। यही उस समय का बाल साहित्य था। खेल तो ज्यादातर दिन में ही खेल लिए जाते थे लेकिन दिनभर की थकान के बाद, अँधेरा होते ही दीयों या लैंप की रोशनी में अपनी ही तरह की सुबह कर देता था लोक कथाओं और पहेलियों का जादू। उस समय अपने बुजुर्गों से बच्चों की यही एक माँग रहती थी। यह कार्य अपनी सुविधानुसार चूल्हे के पास बैठकर या फिर सोते समय, मिलकर मक्की से दाना

निकालते हुए या फिर 'ज्वारी' के समय पूरा किया जाता था। ये पल बच्चों के लिए सबसे मनोरंजक होते थे। रहस्य, रोमांच और कई प्रकार की कल्पनाओं से सजे हुए। पहाड़ के जो इलाके कई-कई महीनों बर्फ से ढके रहते, वहाँ भी यह कार्य निरंतर इसी रूटीन में जारी रहता था। यही था उस समय का हिमाचल का बाल साहित्य। बिल्कुल मौखिक। जहाँ तक जानकारी उपलब्ध हो पाती है हिमाचल में यह बाल साहित्य सन् 1950 तक संभवत: मौखिक रूप में ही रहा। सन् 1950 के अंतिम वर्षों तक हिमाचल में लिखित बाल साहित्य के बीज बोने शुरू हो गए थे जिसका अंकुरण सन् 1950 के बाद हुआ। यह समय राजा-रानी, भूत-प्रेत, जादू-टोना, तिलिस्म, परी कथाओं, पहेलियों, धार्मिक कथाओं, पौराणिक किस्सों या फिर अपने इलाके की किसी रोचक घटना आदि के सुनने-सुनाने का ही रहा।

प्रारंभिक काल : सन् 1950 से सन् 1975 तक के अंतराल को हम हिमाचल के बाल साहित्य का 'प्रारंभिक काल' माने तो गलत न होगा। इस समय हिमाचल से बाल साहित्य के प्रकाशन की शुरुआत हो चुकी थी। यह कहना उचित होगा कि इस समय बाल साहित्य की नींव तैयार की जा रही थी और इसके दो नींवकार थे संतराम वत्स्य तथा डॉ. मस्तराम कपूर जी। डॉ. मस्तराम कपूर के लेखन की शुरुआत सन् 1951 में बाल साहित्य लेखन से ही हुई। उनकी प्रथम बाल कहानी 'बहन' शीर्षक से नवभारत टाइम्स में प्रकाशित हुई थी। संतराम वत्स्य की बाल साहित्यिक रचनाओं के प्रकाशन का समय भी सन् 1950 के बाद का ही रहा। इन सब बातों को देखते हुए आसानी से कहा जा सकता है कि हिमाचल में लिखित बाल साहित्य का बीज अब अंकुरित हो चुका था। इन दोनों साहित्यकारों ने इसके बाद खूब बाल साहित्यिक सृजन किया। संतराम वत्स्य ने जहाँ पशु-पक्षी, परी कथाओं, लोक कथाओं, नीति कथाओं, धर्म कथाओं, बोध कथाओं, चरित्र निर्माण की कहानियाँ तथा पौराणिक कथाओं आदि को अपने बाल लेखन का हिस्सा बनाया वहीं डॉ. मस्तराम कपूर ने अपने लेखन की शुरुआत बाल साहित्य से ही करके बाल कहानी, बाल उपन्यास तथा बाल नाटक के माध्यम से बालमन को करीबी से पकड़ा। इन दोनों साहित्यकारों ने इस समय अंतराल में बाल साहित्य की विभिन्न विधाओं के अंतर्गत बहुत-सी किताबें लिखीं। यह सिलसिला यहाँ रुका नहीं बल्कि आगे बढ़ता रहा। इनके साथ फिर और साहित्यकार जुड़ते रहे। इसमें इनके सहचर बने यशवीर धर्माणी, ध्रुव कपूर, डॉ. गौतम शर्मा 'व्यथित', डॉ. सुशील कुमार फुल्ल और डॉ. प्रत्यूष गुलेरी आदि। डॉ. गौतम शर्मा 'व्यथित' के बाल कविता व गीत सन् 1957 में वीर प्रताप में प्रकाशित हुए। डॉ. सुशील कुमार फुल्ल की पहली बाल कहानी सन सन् 1962 में लुधियाना की लाहौर बुक शॉप से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'बाल लीला' में 'वर्षगाँठ' शीर्षक से प्रकाशित हुई। ध्रुव कपूर तथा डॉ. प्रत्यूष गुलेरी ने कविताएँ लिखीं तथा यशवीर धर्माणी ने बाल कविता और बाल कहानी दोनों में अपना लेखन किया।

हिमाचल के बाल साहित्य की यह शुरुआत बहुत बेहतर ढंग से हुई। इस दौर में डॉ. मस्तराम कपूर ने हिन्दी बाल साहित्य को एक नया आयाम दिया जब उन्होंने बाल साहित्य को अपने शोध का विषय चुना। शोध का विषय था 'हिंदी बाल साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन'। यह शोध कार्य सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर, गुजरात से पूर्ण किया गया। इस शोध प्रबंध में लिखे अपने लेखकीय वक्तव्य में डॉ. मस्तराम कपूर लिखते हैं- 'यह शोध कार्य सन् 1966 के आस-पास शुरू हुआ था और

मार्च 1968 में प्रस्तुत किया गया था।' मस्तराम कपूर जी की सुपुत्री श्रीमती मंजू जी से मिली जानकारी के अनुसार इस शोध कार्य को 15 दिसंबर, 1969 को स्वीकृति मिल गई थी। इस शोध ने बाल साहित्य के विकास के कई रास्ते खोल दिए थे। हिमाचल ही नहीं पूरे हिन्दी बाल साहित्य का इस कार्य से बहुत सम्मान बढ़ा। खासकर, हिमाचल के लिए यह अविस्मरणीय मौक़ा था। डॉ. सुशील कुमार फुल्ल का बाल उपन्यास 'टकराती लहरें' भी इसी अंतराल में प्रकाशित होकर आया। सन् 1950 से सन् 1975 के इस अंतराल में बेशक चुनिंदा साहित्यकारों ने ही बाल सहित्य का हाथ थामा लेकिन इन साहित्यकारों ने अपनी बाल कहानी, कविता, उपन्यास, नाटक, एकांकी आदि विधाओं में बेहतर रचकर हिमाचल के बाल साहित्य की नींव को मजबूती प्रदान कर दी थी।

स्वर्णिम काल : यदि सन् 1975 से सन् 2000 के मध्य के कालखंड को हिमाचल के बाल साहित्य का 'स्वर्णिम काल' कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। हिमाचल का बाल साहित्य अब देशभर की विभिन्न बाल पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लग पड़ा था। सब साहित्यकारों ने अपने-अपने तरीके से बेहतर से बेहतर रचने की कोशिश की। प्रारंभिक काल के साहित्यकार इस परिवार के अग्रज के रूप में निरंतर कार्य कर ही रहे थे लेकिन अब इस परिवार में रामप्रसाद शर्मा 'प्रसाद', महर्षि गिरिधर योगेश्वर, डॉ. राममूर्ति वासुदेव 'प्रशांत', सैन्नी अशेष, डॉ. पीयूष गुलेरी, कृष्णा अवस्थी, डॉ. मनोहर लाल, प्रेमलता वात्स्यायन, संसार चंद प्रभाकर, शशिकांत शास्त्री, संतोष शैलजा, सुदर्शन डोगरा, किशोरी लाल वैद्य, हेमकांत कात्यायन, रमेशचन्द्र शर्मा, रतनचंद रत्नेश, प्रेमसागर कालिया, केशवचंद्र, मोतीलाल घई, हरिकृष्ण मुरारी, आशा शैली, सुदर्शन वशिष्ठ, अशोक सरीन, डॉ. बंशी राम, मौलू राम ठाकुर, प्रभात कुमार, अमरदेव अंगिरस, अमर सिंह 'शौल', गुरमीत बेदी, खुशीराम गौतम, नरेंद्र अरुण, शम्मी शर्मा, प्रकाश चंद, रामकृष्ण कौशल, करमचंद श्रमिक, आर.के. वशिष्ठ, राजकुमार शर्मा, ओ.पी. सौंधी, कृष्ण कुमार सिंह 'नूतन', राजेन्द्र पालमपुरी, शेर सिंह, ओमप्रकाश सारस्वत, कृष्णचन्द्र महादेविया, डॉ. अदिति गुलेरी, गिरीश हरनोट, कुलदीप चंदेल, कमल के. प्यासा, डॉ. धर्मपाल कपूर, त्रिलोक मेहरा, श्रीनिवास जोशी, डॉ. प्रेमलाल आर्य, कृष्णा शर्मा आदि साहित्यकार भी शामिल हो चुके थे। इन बाल साहित्यकारों ने अपनी लेखनी से नए आयाम जोड़े और बाल साहित्य को समृद्ध किया। इस दौर में सृजन की मुख्य विधाएँ बाल कहानी, कविता, गीत रही परंतु बाल उपन्यास, नाटक, एकांकी तथा बाल पहेलियों की भी रचना हुई। बेशक, इन विधाओं में थोड़ा कम ही सही।

इस दौर में मौलिक सृजन के साथ-साथ बालोपयोगी साहित्य का सृजन भी खूब हुआ जिसमें हिमाचल की लोक कथाएँ, प्रेरक प्रसंग, प्रेरक कथाएँ, पहेलियाँ आदि प्रमुख थे। इस समय ने बाल साहित्य को बहुत कुछ बेहतर और नया दिया। इस कालखंड के दौरान 'पराग' जैसी पत्रिका ने जब वैज्ञानिक दृष्टिकोण के पक्ष को मजबूती से रखा तो बाल साहित्य में एक नई विचारधारा का जन्म हुआ। यह वह समय था जब हिन्दी बाल साहित्य में एक जोरदार आवाज के साथ बाल साहित्य की पुरानी परंपराओं को तोड़ने की वकालत हुई। हिमाचल के बाल साहित्यकारों की बात करें तो उनमें से जहाँ किसी ने अपने लेखन में एक नयापन लाया तो वहीं कुछ रचनाकारों ने पुरानी परंपरा का हाथ थामे रखा। लेकिन इतना तो तय है कि यह मिला-जुला साहित्य सबका मनोरंजन तथा अपने उद्देश्यों की पूर्ति करता

रहा। यह स्वर्णिम काल हिमाचल के बाल साहित्य का गौरवमयी युग था। इसी कालखंड में हिमाचल ने बाल साहित्य के एक नींव पत्थर संतराम वत्स्य जी को भी खोया। यह बाल साहित्य की एक अपूर्णीय क्षति थी।

उत्तर स्वर्णिम काल : 21वीं शताब्दी के इस शुरुआती दौर को हम हिमाचल के बाल साहित्य का 'उत्तर स्वर्णिम काल' कहें तो गलत न होगा। इस दौर में भी लेखकों ने वर्तमान समय की माँग को ध्यान में रखते हुए बाल साहित्य को उसी अनुरूप अपने लेखन का हिस्सा बनाया है। बाल साहित्य इस दौर में भी कई प्रयोगों से गुजरता रहा है ताकि इसे और बेहतर, मनोरंजक, रुचिकर और रोचक बनाया जा सके। यह हमेशा से समय की माँग रही है। आज भी है। भूत-प्रेत, जादू-टोना, चमत्कारिक कथाएँ, परी कथाएँ, राजा-रानी आदि की कथाओं से बच्चा थोड़ी देर के लिए भले ही बहल जाए लेकिन अंततः वह बोर होने लग जाता है। वह बोर होता भी सही है। उसने कभी भूत-प्रेत, चमत्कार, राजा-रानी या परियाँ अपने टीवी स्क्रीन के अलावा कहीं और अर्थात् हकीकत में तो कभी देखी ही नहीं हैं! बच्चों को तो वही चाहिए जो उन्हें सामने नज़र भी आए। इस उत्तर स्वर्णिम काल में भी हिमाचल को नए बाल साहित्यकार मिले हैं जिन्होंने बच्चों की जरूरतों, उनकी रुचियों को ध्यान में रखते हुए छलावे से दूर, हकीकत को अपनी कल्पनाओं संग बच्चों के समक्ष पेश किया है। डॉ. अदिति गुलेरी ने पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ से 'हिमाचल में रचित बाल साहित्य-सर्वेक्षण एवं विश्लेषण' विषय को लेकर हिमाचली बाल साहित्य पर प्रथम शोध कार्य किया जिसमें वर्ष 2002 तक के बाल साहित्यकारों को शामिल किया गया है। यह कार्य उल्लेखनीय है। इस अंतराल ने भी हिमाचल ने दूसरे नींवकार डॉ. मस्तराम कपूर जी को खोया है। यह हिन्दी बाल साहित्य की बहुत बड़ी क्षति थी।

हिमाचल के साहित्यकारों ने अपनी रचनाशीलता से बाल साहित्य के विकास की संभावनाओं को बल दिया है। इस दौर में भी पिछले दौर के बाल साहित्यकारों ने अपनी रचनाशीलता को बनाए रखा है। इस बात की गवाह इन दो दशकों में प्रकाशित उनकी रचनाएँ और पुस्तकें हैं। इसके अलावा, इस दौर में हिमाचल के बाल साहित्य पर गंभीरता से कार्य करने का सिलसिला शुरू हुआ है। इस उत्तर स्वर्णिम काल में नए जुड़े लेखकों में डॉ. नलिनी विभा 'नाजली', पवन चौहान, कंचन शर्मा, अनंत आलोक, राजीव त्रिगर्ती, मामराज शर्मा, हरदेव सिंह धीमान, डॉ. आशु फुल्ल, प्रतिभा शर्मा, अशोक दर्द, डॉ. गंगा राम राजी, प्रदीप गुप्ता, रुपेश्वरी शर्मा, कृष्णा ठाकुर आदि नाम शामिल किए जा सकते हैं। इस अंतराल के अंतिम वर्षों में एक सुखद बात यह रही कि जहाँ नए साहित्यकार बाल साहित्य की ओर मुड़े वहीं कुछ वरिष्ठ जो बाल साहित्य सृजन छोड़ चुके थे, उन्होंने भी दोबारा बाल साहित्य की ओर रुख किया। यह बात बहुत सुकून देती है। यही सब बातें हिमाचल के बाल साहित्य की भूमि को उर्वरा बनाती हैं। तसल्ली से कहा जा सकता है कि हिमाचल में रचित बाल साहित्य को भविष्य में अभी कई और नए आयामों को जोड़ना बाकी है।

सम्पर्क : सुंदरनगर, मंडी (हि.प्र.)

डॉ. रेखा मण्डलोई 'गंगा'

नैतिक मूल्य और बालक

एक उज्जवल राष्ट्र की मजबूत नींव उसकी नैतिकता पर ही अवलंबित होती है। नैतिक मूल्य हमारी संस्कार चेतना है, जो बालकों के चरित्र निर्माण की दिशा में अपनी महती भूमिका निभाते हैं। नैतिक मूल्यों के द्वारा बालकों में गुणों का विकास तो होता ही है, वह सामाजिक भी बनता है।

नैतिक मूल्यों का विकास प्रारम्भ में हमारे पूर्वजों द्वारा कहानियों, कविताओं, लोरियों, बाल-गीतों तथा विभिन्न प्रसंगों को माध्यम बनाकर किया जाता था क्योंकि अनादिकाल से बालक सृष्टि सत्ता के वास्तविक स्वरूप व विकास यात्रा का साक्षी रहा है। यही कारण है कि बाल-मन पर पड़ने वाला प्रभाव युगान्तरगामी रहा है। बाल-मन को कुछ इस प्रकार चित्रित किया जा सकता है-

'बालक सुमन पराग, सरस रस बंध है। बालक वाल्मीकि का पहला छंद है।। बालक परमहंस, शिव सुंदर सत्य है। बालक सरगम कला, स्वयं साहित्य है।।'

बालक का रागात्मक संबंध प्रकृति के साथ-साथ पशु-पक्षियों नक्षत्रों के साथ, फूलों और समस्त सृष्टि के साथ स्थापित होने से ही उसे एक बौद्धिक आकाश, जीवन का आलोक मिलता है और उसमें पर्याप्त मानवीय मूल्यों का विकास संभव हो पाता है। बालकों में बचपन से ही प्रेम, सेवा, सत्य, ईमानदारी, परदु:ख कातरता, परिश्रम आदि शाश्वत मानव मूल्यों की स्थापना के प्रयास होंगे तो उनमें दूसरों के प्रति सहज संवेदना स्वत: जाग्रत होगी। बालकों को बचपन से ही ऐसी पुस्तकों के अध्ययन की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा जगाना चाहिए जो इतिहास की आत्मा के प्रति वफादारी का भाव जाग्रत करके बच्चों के लिए सहज और प्रत्यक्ष ज्ञान का द्वार खोलने में सक्षम होने के साथ-साथ उनमें मानवीय संवेदना की अनुभूति के भाव जाग्रत कराए, वह ज्ञानवर्धन में सहायक हो तथा नैतिक गुणों से भी परिपूर्ण हो।

आज विज्ञान और टेक्नोलॉजी के युग में एक बालक का जन्म पाश्चात्य संस्कृति से परिपूर्ण और विज्ञापन भरे वातावरण में हो रहा है, जहाँ मानवीय मूल्यों की उपेक्षा का भाव समाहित होता है। भौतिक सुख-सुविधा के प्रति आग्रह ने बालकों को आज ऐसे दोराहे पर खड़ा कर दिया है, जहाँ उन्हें नैतिक मूल्यों से परिपूर्ण राजा-रानी व फूल-परियों की कहानियों के स्थान पर तलवारों व बंदूकों से भरपूर विज्ञापन परोसे जाते हैं। आज न संयुक्त परिवार और न दादी-नानी के शिक्षाप्रद परिवेश का वातावरण बालकों को मिल पा रहा है। एकल परिवार में माता-पिता जब एक साथ काम पर जाते हैं तो अधिकतर बच्चों को या

तो आया के भरोसे या झूलाघर में रखा जाता है, जहाँ स्नेहपूर्ण वातावरण के अभाव के कारण बच्चों में एक प्रकार से असुरक्षा की भावना पनपने लगती है, जिसके कारण बालकों में प्रेम, सौहार्द, ईमानदारी, विनम्रता, दया, करुणा, भाईचारे की भावना जैसे नैतिक मूल्यों का विकास हो पाना मुश्किल हो रहा है।

आज आवश्यकता है बालकों को सुसंस्कारित करने की। नैतिक मूल्यों के महत्व को प्रतिपादित कर बालकों के लिए एक ऐसी पृष्ठभूमि तैयार करना होगी जिससे बालक साहसी, कर्मठ, समर्पित, होनहार तथा ईमानदार बन सके। आज के बालक ही भविष्य के कर्णधार हैं, इनमें से ही आदर्श नेता, संयत वैज्ञानिक, सत्यनिष्ठ न्यायाधीश, आदर्श शिक्षक तथा ईमानदार व्यापारी वर्ग का प्रतिनिधि मण्डल देश को नई दिशा में अग्रसर कर पाएगा जिससे देश में बढ़ती हुई अनुशासनहीनता, निरंकुशता, भ्रष्टाचार और अराजकता जैसी बुराइयों को जड़ से उखाड़ कर फेंका जा सकेगा। इस प्रकार एक स्वस्थ समाज की संरचना के लिए नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करना आवश्यक है। अपनी लेखनी को विराम निम्न काव्य पंक्तियों के माध्यम से देना चाहूँगी –

‘नैतिक शिक्षा का जीवन में, सचमुच है महत्व भारी। इसे एक स्वर से स्वीकार, कर रही है दुनिया सारी।। नैतिक शिक्षा ही बच्चों का, है जीवन उच्च उठाती। नैतिक शिक्षा ही बालक को, सत्य पथ पर है ले जाती।’

सम्पर्क : *इन्दौर (म.प्र.)*

ओमप्रकाश क्षत्रिय 'प्रकाश'

बाल साहित्य का स्तर विभेदक विश्लेषण

किसी ने मुझ से पूछा, 'आप बालसाहित्यकार हैं?' मैंने कहा, 'हाँ,' तब वे तुरंत बोले, 'तब तो आपकी एक बालकविता सुना दीजिए।'

तब मुझे कहना पड़ा, 'मैं बालकहानियाँ लिखता हूँ। कविता नहीं।' तब उसका कहना था कि 'आप कैसे बालसाहित्यकार हैं जो कविता नहीं लिखते हैं।' इसका जवाब बहुत लंबा-चौड़ा है। आप इसे मन में सोचिएगा। अगर, मेरी जगह आप होते और आप से यही सवाल पूछा जाता, 'आप बालसाहित्यकार हैं। तब तो आपने कई बालउपन्यास लिखे होंगे।'

तब आप का जवाब क्या होता? यदि आप बालउपन्यास नहीं लिखते हैं तो आपका जवाब नहीं में होता। आप कहते कि में कविता लिखता हूँ। बालउपन्यास नहीं लिखता हूँ। शायद, आप उस व्यक्ति को समझाते कि उपन्यास लिखना बहुत सरल है। उसका क्षेत्र बहुत व्यापक होता है। मन में जो भाव, विचार, कथा और उपयुक्त संवाद आएँ उसे लिखते जाइए।

उपन्यास की कहानी को खण्ड में विभक्त कर लीजिए। उसको आठ से बारह अनुच्छेद में बाँट लीजिए। तब प्रत्येक अनुच्छेद की कहानी को लिखते जाइए। बस, यह ध्यान रखिएगा कि पिछले अनुच्छेद की कहानी का नए अनुच्छेद से संबंध बना रहे। पहला अनुच्छेद खत्म होने से पहले आप को दूसरे अनुच्छेद की कहानी का संकेत देना पड़ेगा। तभी पाठक की जिज्ञासा बनी रहेगी।

चूँकि मैं कविता लिखता हूँ। कविता में लय, छंद, मात्रा, यति, गति आदि का ध्यान रखना पड़ता है। इस कारण मेरी लेखन की विधा बहुत कठिन है। यह कह कर आप उस सवाल करने वाले को जवाब देते। कुछ ऐसा ही मैंने किया।

मगर, तब एक सवाल उठता है कि बालसाहित्य के स्तर कितने प्रकार के हैं। उनको किस स्तर पर किसके लिए लिखा जाता है। तभी हम बालसाहित्य को सही प्रकार से समझ पाएँगे। आपको इस विवेचन में इसे जानने-समझने को मौका मिलेगा।

आइए, जरा हम बालसाहित्य का स्तर के अनुसार विश्लेषण करते हैं। ताकि हमें बालसाहित्य को समझने का अवसर मिले। यह हमारे लेखन और उसकी गुणवत्ता को निखारने में हमारी सहायता करेगा। लेखन के शुरुआती दिनों में हम इस संशय से अवश्य गुजरते हैं। जैसे-जैसे हमारा अनुभव

बढ़ता जाता है हमारा यह संशय दूर होता जाता है।

नवोदित रचनाकार के साथ-साथ वरिष्ठ रचनाकारों के लिए यह आलेख उपयोगी होगा। ऐसा मेरा विश्वास है। इस आलेख में कुछ विश्लेषण आपको नया और अलग लग सकता है।

चूँकि पिछले 36 साल से बालसाहित्य का लेखन करते हुए मैंने यह अनुभव किया है। उसको इस आलेख में पिरोने की कोशिश की है। यह तो प्रबुद्ध पाठक ही बता पाएँगे कि मैं इसमें कहाँ तक सफल हो पाया हूँ। बालसाहित्य की मूल प्रवृत्ति को ध्यान में रख कर विश्लेषण करते हैं तब पाते हैं कि मूल रूप में बालसाहित्य का लेखन दो प्रकार का होता है-

एक- मौलिक लेखन

और दूसरा - अनुवाद लेखन।

इस में मौलिक लेखन का तात्पर्य उस लेखन से है जिसका सृजन रचनाकार ने अपनी क्षमता, रुचि, आदत और विधा के अनुसार स्वयं किया हो। उसमें दिए गए विचार, उपदेश्य, उपादेयता, संवाद, शैली और लिखने का ढंग उसका निजी हो। इसके द्वारा उस रचना का निर्माण किया गया हो।

विषय एक ही हो सकते हैं। इसका कोई बंधन नहीं है। वैसे भी बालसाहित्य का लेखन एक सीमित दायरे में ही किया जाता है। उसके विषय, कथ्य, शैली, विधा, संवाद, पात्र आदि का सीमित दायरा होता है। उसी के गिर्द बालसाहित्य लेखन करना होता है।

कुछ विद्वान मेरे इस मत से संतुष्ट नहीं हो सकते हैं। उनका अपना मत हो सकता है। वे बालसाहित्य को किसी दायरे में बाँधना उचित नहीं समझते हैं। मगर, मेरा मानना है कि बालसाहित्य का अपना उपदेश्य होता है। इसी को ध्यान में रख कर यह लिखा जाता है। बालसाहित्य का मुख्य उद्देश्य बालकों को मनोरंजन अथवा आनंद के साथ-साथ संस्कार, शिक्षा या उस बात की जानकारी देना है जो उस के भावी जीवन में उपयोगी हो। यह सब बालसाहित्य के अंतर्गत आता है।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए बालसाहित्य लिखा जाता है। किसी विद्वान का मत होता है कि बालसाहित्य में उद्देश्य जरूर होना चाहिए। कुछ रचनाकारों का मानना है कि बालसाहित्य में केवल विधागत रचना की जाना चाहिए। उद्देश्य उसके साथ स्वयं चला आए, तभी विधा की सार्थकता है।

मैं स्वयं दूसरे मत को ध्यान में रख कर अपनी कहानियाँ लिखता हूँ। मैंने कभी अपनी कहानी में यह बताने की कोशिश नहीं है कि इस कहानी से हमें यह शिक्षा मिलती है। इसे ध्यान में रख कर हमें फलाँ गलती नहीं करना चाहिए। इससे हमें हानि होती है। मेरा मानना है कि बच्चों ने कहानी पढ़ी है, यह उसके लिए बहुत है। यदि कहानी उसके ध्यान में है तो वह स्वयं समझ जाता है कि कहानी में क्या उपदेश्य है। क्या गलती करने से क्या होता है? इसे अलग से बताने की जरूरत नहीं पड़ती है।

बालसाहित्य का दूसरा स्तर अनुवाद लेखन है। इसके अंतर्गत संसार का समस्त साहित्य आ जाता हैं। जिसका अनुवाद दूसरी भाषा में किया जाता है। हिन्दी बालसाहित्य का अधिकांश बालसाहित्य संस्कृत भाषा से आया हुआ है। इसे अनूदित साहित्य कह सकते हैं। विद्वान साहित्यकार साथियों ने इसे अपनी मूल भाषा में लिखा था। बाद में इसका अनुवाद हिन्दी भाषा में हुआ है।

चूँकि भारत में श्रुत परंपरा थी जिसके अंतर्गत समस्त साहित्य को श्रुत रूप में एक पीढ़ी से

दूसरी पीढ़ी को स्थानांतरित किया जाता था। मुझे ज्ञात है कि मेरे यहाँ एक बैरागी जी रहते थे। उन्हें कई ग्रंथ मुँह जबानी याद थे। जब उनके मुँह से हम किसी ग्रंथ के श्लोक और उसका अनुवाद सुनते थे तो चकित रह जाते थे।

उनसे जब इसका कारण पूछा गया तो उनका कहना था कि गुरुजी द्वारा उन्हें यह कंठस्थ कराया जाता था। समय के साथ-साथ ऐसे विद्वानों ने इसे याद कर के अपनी याददाश्त के अनुसार अन्य भाषाओं में लिख लिया। यह सब साहित्य अनूदित साहित्य के अंतर्गत आता इसके बारे में विद्वानों में मत भिन्नता हो सकती है। मगर, एक तथ्य प्रामाणिक है किसी एक भाषा में लिखा गया साहित्य दूसरी भाषा में अनूदित साहित्य ही कहलाता है। भले ही उस साहित्य की भाषा एक ही देश में चलती हो। उसे मूल साहित्य नहीं माना जाता है।

इस हिसाब से साहित्य में यही दो स्तर प्रचलित हैं। इसके अनुसार मूलभाषा में लिखे गए साहित्य को हम मूल साहित्य तथा दूसरी भाषा से आए साहित्य को हम अनूदित साहित्य ही कहेंगे।

साहित्य की तरह बालसाहित्य लिखने का अपना उद्देश्य होता है। इसी को ध्यान में रखकर रचनाकार साहित्य की रचना करता है। उसके इसी उद्देश्य में प्रथम उद्देश्य उसे अपने नाम को प्रतिपादित करना होता है। कोई भी साहित्यकार स्वांत:सुखाय साहित्य नहीं लिखता है। उसका पहला एक मात्र उद्देश्य साहित्य के दैदीप्यमान आकाश में अपने नाम के सितारों को चमकाना होता है।

दूसरा उद्देश्य उसका धनोपार्जन होता है। वर्तमान युग में इसी को ध्यान में रख कर कुछ साहित्यकार साहित्य की रचना कर रहे हैं। उनका मुख्य ध्येय धनोपार्जन है। मगर, यह भी सत्य है कि भारत में केवल साहित्य सर्जन के सहारे रोजीरोटी कमाना साथ-साथ लिखना-संभव ही नहीं है। इस कारण भारत के अधिकांश साहित्यकार अपने धंधे यानी रोजगार के साथ-साथ साहित्य लेखन का कार्य कर रहे हैं।

इनमें वे साहित्यकार ज्यादा सफल हैं जिनका वास्ता सीधा बच्चों से पड़ता है। यानी पढ़ाने वाले शिक्षक साहित्यकारों की गिनती साहित्य के क्षेत्र में ज्यादा है। कुछ साहित्यकार अन्य पेशे में होने के बावजूद साहित्य को अपना साधन बनाए हुए हैं। वे सफल ही नहीं चर्चित व प्रतिष्ठित भी हैं।

हमारा उद्देश्य यह बताना भर है कि शिक्षक साहित्यकार का संपर्क बच्चे, उसके कार्य, और उसके पठनपाठन से रहता है। इस कारण वे बच्चों को गहराई से समझ पाते हैं इसलिए उनके द्वारा लिखा बालसाहित्य मनोवैज्ञानिक रूप से ज्यादा सफल होता है। इसका कारण उनकी योग्यता, बाल मनोविज्ञान की समझ, पढ़ाई के आधुनिक तरीके, बच्चों की समझ को जानने के साधन के साथ-साथ अनुभव होते हैं। इसी को ध्यान में रख कर वे ज्यादा अच्छी तरह सृजन कर पाते हैं।

बालसाहित्य को साहित्य के उद्देश्य के आधार पर देखें तो उसे पाँच भागों में बाँटा जा सकता है। हो सकता है इसके प्रति मतभिन्नता हो। कुछ विद्वान मेरे मत से सहमत न हों। मगर, इसके आधार पर बालसाहित्य को पाँच श्रेणी में बाँट सकते हैं-

1. सूचनात्मक साहित्य 2. मनोरंजक साहित्य 3. आनंददायक साहित्य 4. शिक्षाप्रद साहित्य 5. समय बिताऊ साहित्य।

इसका विश्लेषण करें तो सूचनात्मक साहित्य वह साहित्य है जिसको किसी तथ्य, जानकारी या सूचना के लिए लिखा जाता है। ताकि वह बालकों तक रोचक और मनोरंजक ढंग से पहुँच सके। इसके अंतर्गत कविता, कहानी, लेख, निबंध, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत, नाटक, एकांकी, प्रहसन आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

सूचनात्मक साहित्य की वर्तमान समय में बहुत धूम है। इसके अंतर्गत सबसे ज्यादा सूचनात्मक साहित्य लिखने में डॉ. परशुराम शुक्ल का नाम प्रमुख स्तर पर लिया जा सकता है। इसका प्रचार-प्रसार और उपदेयता सिद्ध करने में आपका बहुत बड़ा हाथ है। आपके साहित्य का अधिकांश भाग सूचनात्मक साहित्य के रूप में उल्लेखित है। इन्हीं की प्रेरणा से सूचनात्मक साहित्य को एक विधा के तौर पर स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है। आज की प्रत्येक पत्रिका में इसकी एक न एक रचना देखी जा सकती है। दूसरा मनोरंजक साहित्य है। यह बालसाहित्य में ज्ञान, शिक्षा और तथ्यों की जानकारी देने में इस का उपयोग बहुतायात से किया जाता है। इसके अंतर्गत चुटकुले, जोड़ी मिलाओ, गलती ढूँढ़ो आदि अनेक स्तंभ दिए जाते हैं। इनका उद्देश्य मनोरंजन करना होता है। इसीलिए इन्हें बालपत्रिकाओं में दिया जाता है। वैसे अधिकांश कहानियाँ, शिशुगीत, बालगीत, बालकविता आदि मनोरंजक ढंग से लिखें जाते हैं। ताकि उनको पढ़ कर बच्चों का मनोरंज न हो। इसी को ध्यान में रख कर पत्रिका की साज-सज्जा और प्रस्तुतिकरण किया जाता है। बच्चे भी उन्हीं पत्रिकाओं की ओर ज्यादा आकर्षित होते हैं जो ज्यादा मनोरंजक होती हैं।

बालसाहित्य का तीसरा उद्देश्य आनंद की प्राप्ति होता है। बच्चे साहित्य को पढ़ कर आनंद की अनुभूति करें। उसे पढ़ने में मजा आए। यही बालसाहित्य का मुख्य उद्देश्य होता है। इसी को ध्यान में रख कर बालपत्रिकाओं रोचक कहानी, कविता, शिशुगीत, पहेलियों के साथ-साथ चित्र कथाएँ भी दी जाती हैं। ताकि बच्चे आनंद के लिए इसका रसास्वादन करें। बालसाहित्य में लोटपोट पत्रिका इसी उद्देश्य के लिए निकाली जाती थी। उसके मोटू-पतलू चरित्र का चित्रण इसी उद्देश्य के लिए किया गया था। यह चरित्र आज भी बच्चों को हँसने-गुदगुदाने के साथ आनंद की अनुभूति कराने में सक्षम है।

अधिकांश पत्र-पत्रिकाएँ इसी को ध्यान में रख कर साज-सज्जा करती हैं। आपने देखा होगा कि जितनी भी बालसाहित्य की पत्रिकाएँ होती हैं उनका आवरण बहुत आकर्षक होता हैं। उस पर पशु-पक्षी, जीव-जंतु या प्रकृति के साथ-साथ मानव का बहुत आकर्षक चित्र लगा होता है। आवरण रंगीन और चमकदार होता है ताकि बच्चा उसे देख कर आकर्षित हो जाए। इसके अंदर की सामग्री भी यही ध्यान में रख कर सजोई जाती है।

यही कारण हैं कि संपादक उन्हीं रचनाकारों की रचना सामग्री को ज्यादा प्राथमिकता देते हैं जिनमें आनंद का समावेश होता है। जिन्होंने अपनी रचना में नई बातों को सम्मिलित किया हो। उस की कहानी में नई चीज हो। वह मनोरंजक के साथ-साथ आनंद की अनुभूति प्रदान करे। वे रचनाकार ज्यादा सफल होते हैं जो बच्चों के मनोविज्ञान को ध्यान में रख कर रचना रचते हैं। इसका कारण यह होता है कि उन्हें पता होता है कि बच्चा आनंद के लिए पढ़ता है। यह बात दूसरी है कि उसमें आनंद के

साथ-साथ शिक्षा के अलावा ज्ञान की बातें मिल जाती हैं। मगर, उसका मूल मकसद आनंद के लिए पढ़ना ही होता है।

शिक्षाप्रद बाल साहित्य के अंतर्गत उस साहित्य को रख सकते हैं जिसे विद्यालय में पढ़ाया जाता है। यह ऐसा बालसाहित्य होता है जो शासन स्तर पर बालकों को सिखाने के लिए नियत किया जाता है। इसका उद्देश्य बालकों को निर्धारित मापदंड के आधार पर कुछ निश्चित शिक्षा देना होता है। उसे उस साहित्य को अनिवार्यत: पढ़ना-पड़ता है। ज्ञानार्जन की दृष्टि से यह श्रेष्ठ और उत्तम गुणवत्ता का साहित्य होता है।

इस साहित्य की रचना का समावेश कुछ बातों को ध्यान में रख कर किया जाता है ताकि बच्चों में कुछ बुनियादी बातों, ज्ञान और शिक्षा का समावेश हो जाए। इस उद्देश्य के लिए रचा गया साहित्य शिक्षा साहित्य कहलाता है।

बालसाहित्य का यह पाँचवा उद्देश्य है। वह जिसका उद्देश्य समय बिताना है। यह बात दूसरी है कि इसके साथ-साथ बच्चों का ज्ञानार्जन हो जाता है। आजकल मोबाइल पर चलने वाले साहित्यिक खेल इसी के अंतर्गत आते हैं। इसके अंतर्गत बच्चा मोबाइल पर साहित्य को पढ़ कर या समय बिताता है। इसे ही समय बिताऊ साहित्य कहते हैं।

चूँकि बालसाहित्य बच्चों के लिए लिखा जाता है। उसके स्तर के अनुसार बालसाहित्य न हो तो बच्चा उसकी ओर देखता तक नहीं है। इसलिए मनोवैज्ञानिक आधार पर बालसाहित्य की चर्चा न हो तब तक बालसाहित्य की चर्चा अधूरी है। वह साहित्य ही सफल साहित्य है जो बच्चों के स्तर के अनुरूप हो। उसे पसंद आए और वह उसे पढ़े।

उबाऊ चीजों को वह छोड़ता चला जाता है। यही हाल बड़ों का होता है। मैं स्वयं उपन्यास पढ़ते वक्त ऐसे विवरण छोड़ दिया करता था जो उबाऊ या बोझिल होते थे। यह बात दूसरी है कि जब पता चलता था कि यह उपन्यास का अनिवार्य अंग है तो दोबारा पढ़ लेता था।

यह आदतें बच्चों में भी होती हैं। बच्चों को उसी स्तर का पढ़ने में रुचि होती है जो उसकी पसंद और रुचि के अनुसार हो। इस दृष्टि से देखे तो बच्चों को स्तर के अनुरूप चार श्रेणी में बाँटा जा सकता है।

सम्पर्क : *रतनगढ़, नीमच (म.प्र.)*

डॉ. प्रभा पन्त

सकारात्मक मानव संस्कारों की संवाहिका : बाल कहानियाँ

वे संस्कार जो मनुष्य को पाशविक प्रवृत्तियों, जाति, वर्ग, धर्म-सम्प्रदाय आदि भेदभावों से ऊपर उठाकर, उनमें मानवीय गुणों को विकसित करने में सहायक होते हैं, सकारात्मक संस्कार कहलाते हैं। बाल्यकाल, जीवन की वह स्वर्णिम बेला है, जिसमें बच्चे जो कुछ देखते, सुनते या पढ़ते हैं; उसका अनुकरण करने का प्रयास करते हैं। उचित-अनुचित का ज्ञान न होने के कारण प्रत्येक दृश्य, कथन और व्यवहार उन्हें अनुकरणीय प्रतीत होता है। व्यक्ति के भविष्य की नींव, जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में ही पड़नी प्रारम्भ हो जाती है। उसके शारीरिक तथा चारित्रिक गुणों के विकास की प्रक्रिया का प्रारम्भ तब से हो जाता है, जब वह माँ के गर्भ में होता है और विकास की यह प्रक्रिया सामान्यत: किशोरावस्था तक चलती रहती है। अत: शैशवकाल तथा बाल्यकाल व्यक्ति के जीवन का वह स्वर्णिम काल है, जिसमें माता-पिता, परिवारजन तथा शिक्षक बच्चे के अंतस् में सकारात्मक संस्कारों के बीज आरोपित करके, समाज को सदिशा प्रदान करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। यह कार्य बच्चों को उचित परिवेश तथा सद्साहित्य के प्रति उनकी अभिरुचि जाग्रत करके सहज ही किया जा सकता है। इस क्षेत्र में आदिकाल से ही बालकथाएँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती रही हैं।

एक समय था जब बच्चे, परीलोक, राजा-रानी, भूत-प्रेत एवं काल्पनिक कहानियाँ सुनकर आनन्दित होते थे और कल्पना लोक में विचरण करते हुए सुनहरे सपनों में खो जाया करते थे। यद्यपि आज भी ऐसी कहानियाँ उनको आनन्दित करती हैं, किन्तु आज वे स्वयं भी वैसा ही करना चाहते हैं, कथा नायक/नायिका के अनुरूप बनना चाहते हैं। आज वे कोरी कल्पनाओं को सत्य मानकर स्वीकार नहीं करते, उसकी प्रमाणिकता के प्रति जिज्ञासा भी प्रकट करते हैं। कोलेसनिक का मत है, ''बालकों को आनन्द प्रदान करने वाली सरल कहानियों द्वारा नैतिक शिक्षा दी जानी चाहिए।''

कहानी सुनना बच्चों के लिए अत्यन्त रुचिकर होता है। आज जिस तरह पारिवारिक संस्था टूटने के कगार पर है; ऐसे में कहानियों के माध्यम से एकल परिवार में रहने वाले बच्चों के मन में अपने दादी-दादी एवं अन्य संबंधियों के प्रति आदर-प्रेम निर्वहन के बीज बोने का प्रयास किया जा है। 'भोलू की दिवाली' कहानी का एक दृश्य दृष्टव्य है, भोलू! तुझे पता है, कल मैं अपने गाँव जा रही हूँ। गाँव?... बिटू! तू हर बार छुट्टियों में गाँव क्यों चली जाती है?

क्योंकि, वहाँ मेरे दादा-दादी रहते हैं, और मेरी माँजी कहती हैं, दादा-दादी के साथ त्योहार मनाना, उन्हें महँगा उपहार देने से ज्यादा अच्छा है, इसीलिए हम हर त्योहार में अपने गाँव जाते हैं।

बालकहानियाँ बच्चों का मनोरंजन करने के साथ ही उन्हें जीवन के यथार्थ से परिचित कराने में भी सहायक सिद्ध होती हैं। इतना ही नहीं, कहानियों के माध्यम से बच्चों का शब्दभंडार भी समृद्ध होता है जो उनके वार्तालाप अथवा संभाषण कौशल को विकसित करके, उसे आकर्षक एवं प्रभावशाली बनाता है। कहानी सुनते व पढ़ते हुए बच्चों के सामाजिक, प्राकृतिक एवं पर्यावरण संबंधी ज्ञान में वृद्धि होती है, इससे सहज ही उनकी सोच भी विकसित होने लगती है, 'पर...मेरी मम्मा तो कहती है गाँव में बहुत गन्दगी होती है।'

'अरे बुद्धू गंदगी तो शहरों में होती है। देख, गाड़ियाँ कितना धुँआ फैला रही हैं; जहाँ देखो मकान, और दुकान ही दुकान; न खेत हैं..न गाय, आम-अमरूद के बाग भी नहीं हैं... और न कहीं फूलों पर तितली मँडरा रही है।'

'सच्ची...। 'हाँ.... पता है भोलू, बहुत सुन्दर और रंग-बिरंगी होती हैं तितलियाँ...मेरे दादा जी की बगिया में तो तोते भी आकर बैठते हैं पेड़ पर...एक दिन मैंने देखा, तोता पेड़ पर बैठा कुतर-कुतर कर आम खा रहा था।' भोलू ने झटपट बस्ते से किताब निकाली, और पन्ने पलटकर चित्र दिखाते हुए बोला-'क्या ऐसे ही खा रहा था?' 'हाँ... बिल्कुल ऐसे ही।'

समाज रूपी भवन की नींव होते हैं, बच्चे। नींव जितनी अधिक गहन एवं परिपक्व होगी, समाज और राष्ट्र उतना ही अधिक सुदृढ़ एवं विकसित होगा। जिस देश के बच्चों में मातृभूमि के प्रति प्रेम एवं सम्मान और राष्ट्रगौरव का भाव होगा, वह राष्ट्र उतना ही अधिक सुरक्षित एवं विकसित होगा, 'क्या आप चाहते हैं कि मैं भी अपने बुजुर्गों की तरह बीमार होकर घिसट-घिसटकर मर जाऊँ? मैं मातृभूमि की सेवा करते हुए, एक सैनिक की मौत मरना चाहता हूँ।'

बच्चों के मनोमस्तिष्क को सकारात्मक मानव संस्कारों से सँवारे बिना, आदर्श समाज की कामना करना, कोरी कल्पना मात्र होगा। अत: हमारा दायित्त्व है कि हम उनके प्रश्नों का तर्कपूर्ण उत्तर देकर, उनकी जिज्ञासा शान्त करें; उनकी संवेदनशीलता की सराहना करें और रचनात्मकता को बढ़ावा दें। समकालीन बालकहानियाँ इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं, 'चुन्नी इतना काम क्यों करती है? वो हमारी तरह स्कूल क्यों नहीं जाती? उसकी माँ गरीब है न। उसके पास पैसे नहीं है, इसीलिये। ....हमारी गुल्लक में तो पैसे हैं, हम उसे स्कूल भेज सकते हैं न, दीदी.... अभी हमारे पास समय है, हम अपने कार्ड स्वयं बनाएँगे और रुपयों को बचा लेंगे और इन रुपयों को अपनी गुल्लक के रुपयों के साथ मिलाकर, हम चुन्नी का नाम स्कूल में लिखवा देंगे।' अंकिता और प्रेरणा की माँ, अपनी बेटियों की बातें सुनकर इतनी प्रभावित होती है कि उनकी परोपकारिता की भावना को प्रोत्साहित करने के लिए उनसे कहती है, 'दो सौ रुपये के कार्ड तो मैं भी ख़रीदती हूँ बेटा, इस बार अपने कार्ड मैं तुम लोगों से ही ख़रीदूँगी।... और कार्ड बनाने का सारा सामान भी आज मैं तुम्हें लाकर दूँगी, कार्ड बनाना भी सिखाऊँगी।'

'बच्चों को उपदेश सुनना अरुचिकर लगता है। अतएव नितान्त आवश्यक है कि हम उनके परिवेश के साथ-साथ अपने व्यक्तित्त्व को भी अनुकरणीय बनाएँ। जिस परिवार में शान्ति एवं सामंजस्यपूर्ण वातावरण होता है उस परिवार में बालक के मानसिक स्वास्थ्य में निश्चित रूप से सकारात्मक वृद्धि होती

है। इस विषय में कप्पूस्वामी का कथन है- 'अच्छा परिवार, जिसमें माता-पिता में सामंजस्यपूर्ण संबंध होता है तथा जिसमें आनन्द एवं स्वतन्त्रता का वातावरण होता है, वह बालक के मानसिक स्वास्थ्य की उन्नति में अतिशय योग देता है।'

बाल कहानियों के माध्यम से बच्चों में और बच्चों से समाज में, पर्यावरण संरक्षण संबंधी चेतना जाग्रत की जा सकती है। पोलीथिन के कारण आज हमारा पर्यावरण इतना प्रदूषित हो चुका है कि उसे जलाकर या दफ़नाकर भी प्रदूषण से मुक्ति मिलना असंभव सा प्रतीत हो रहा है। पर्यावरण को पॉलीथिन के कुप्रभाव से मुक्त कर पाना, वैज्ञानकों के लिए चुनौती बना हुआ है; किन्तु जनजागृति एक ऐसा उपाय है, जो समाज को इससे मुक्ति दिलाने में सहायक सिद्ध हो सकता है। आज अनेक साहित्यकार जनचेतना से संबद्ध बालकहानियों के माध्यम से समाज को जागरूक करने में संलग्न हैं, 'मम्मी पॉलीथिन पर्यावरण को बहुत नुकसान पहुँचाता है।' नितिन दार्शनिक की तरह बोला। ... 'प्लीज़ मम्मी, हमारे अध्यापक ने कहा है कि हम लोग अधिक कुछ न करें, बस अपने-अपने घरों में पॉलीथिन का प्रयोग एकदम बंद करा दें। इतना-सा हमारा योगदान देशहित में एक बड़ा कदम होगा।'

ईलेक्ट्रॉनिक क्रान्ति के इस दौर में, बच्चे ही नहीं माता-पिता भी स्वयं को आधुनिक तथा पड़ोसियों एवं संबंधियों से अधिक श्रेष्ठ दिखाने की होड़ में, अपने रीति-रिवाजों के पारम्परिक स्वरूप एवं आयोजन शैली को त्यागकर, सीरियल्स में दिखाई गई शैली में पर्व एवं उत्सवों का आयोजन करते दिखाई देते हैं। बच्चों के जन्मदिवस के सुअवसर पर दीप प्रज्ज्वलित न करके, केक पर लगी कैंडिल बुझाते, प्रसाद के स्थान पर चॉकलेट-टॉफ़ी बाँटते तथा आशीर्वाद के स्थान पर महँगे उपहार देते हुए दिखाई देते हैं। अपने बच्चों को क्षणिक प्रसन्नता देने के लिये, वे उधार माँगने तथा झूठ का सहारा लेने में भी संकोच नहीं करते। परिणामस्वरूप, धीरे-धीरे बच्चों को हठ करने, झूठ बोलने तथा दिखावा करने की आदत पड़ जाती है, 'आपने ही तो कहा था, तुम्हाला बल्थ दे कल मनाएन्दे।' मौली टाँगें पटकती हुई बोली। 'अरे बाबा वह तो मैंने मज़ाक में कहा था। चलो जल्दी से कपड़े पहनो, नहीं तो स्कूल के लिए देर हो जाएगी।' 'आपने झूठ बोला, आप गंदी हैं।' कहकर मौली ने रो-रोकर पूरा घर सिर पर उठा लिया।'

बच्चों के हठी स्वभाव के आगे नतमस्तक माता-पिता ये भी भूल जाते हैं कि इसके लिए वे स्वयं ज़िम्मेदार हैं। जबकि बाल-मनोविज्ञान के ज्ञान द्वारा बच्चों की ज़िद करने के कारण को जानने का प्रयास करके, उन्हें समझाकर, उनकी ज़रूरतों को पूरा करके व्यवहार को प्राकृतिक रूप से सहज ही परिमार्जित किया जा सकता है, 'तुम जल्दी से खाने बैठो, तुम्हें न कोई डाँटेगा और न मारेगा; आज से हम वही करेंगे। जो हमारी मौली को पसन्द है... और मौली भी वही करेगी जो दादी को पसन्द है... ठीक है न?' 'ठीक है दादी' कहकर मौली ने मुझे अपनी नन्हीं बाहों में कसकर पकड़ा और मेरे गालों पर अपने प्यार की मोहर लगा दी। टी.वी. देखते हुए जिस तरह वह मुस्कुराती हुई खाना खा रही थी, उसे देखकर मुझे लग रहा था जैसे आज उसने अपने बचपन को फिर से पाया हो। खाना खाने के बाद मैंने मौली से पूछा- 'एक बात बताओ बिटिया, तुम होमवर्क करके सोओगी या उठकर होमवर्क करोगी।' 'दादी आप बताओ क्या करूँ।' मौली ने आज्ञाकारी बच्चे की तरह कहा।... ...'देखो बिटिया, हमें अपना हर काम समय के हिसाब से करना चाहिये। तुम स्कूल से पढ़कर लौटी थीं, इसलिए दादी ने खाना खाते समय तुम्हें तुम्हारी पसन्द

का कार्टून शो दिखाया...अब तुम्हारा पेट भी भर गया है और थकान भी मिट गई है... इसलिए अब तुम्हें टी.वी. बंद करके होमवर्क कर लेना चाहिये। ठीक है न?' मौली को मेरी बात समझ आ गई। उसने झट से उठकर टी.वी. बंद किया और चुपचाप होमवर्क करने बैठ गई। मैंने भी एक किताब निकाली और उसके पास रखी कुर्सी पर बैठकर पढ़ने लगी। कुछ देर बाद वह बोली- 'दादी... बहुत ज़ोर से नींद आ रही है... क्या मैं सो जाऊँ?' संयुक्त परिवारों में जीवनमूल्यों के प्रति जो आस्था थी, वे संस्काररूप में बड़ों के माध्यम से छोटों में संचारित होते रहते थे। इनके अनुपालन से उनमें शालीनता, सहनशीलता, विनम्रता तथा सेवाभाव जैसे मानवीय गुण स्वत: विकसित होने लगते थे। 'मौली' कहानी के माध्यम से बच्चे और बड़े, दोनों एक साथ अपने व्यवहार एवं उसकी प्रतिक्रिया के बिम्ब को स्पष्टत: देख सकते हैं। अपने 'बर्थ डे' के लिए ज़िद करने वाली बच्ची दादी की समझदारी से किस तरह आज्ञाकारिणी बन जाती है।

स्कूल के बगीचे से या किसी पड़ोस के बगीचे से छिपकर फल-फूल तोड़ना, बच्चों के लिये मनोरंजन से अधिक कुछ भी नहीं। उनकी इस मस्ती से कोई आहत भी हो सकता है, इस बात की ओर बच्चों का ध्यान ही नहीं जाता; किन्तु यदि बाल्यकाल में उन्हें इस तरह की गल्तियाँ करने से रोका-टोका न जाए तो धीरे-धीरे बच्चे स्वकेन्द्रित एवं संवेदनाशून्य बनते चले जाते हैं। उन्हें किसी को धोखा देने, चोरी या बेइमानी आदि करने में लेशमात्र भी संकोच नहीं होता। बालकहानियों के माध्यम से भी बच्चों को ऐसे भ्रष्टआचरण को छोड़ने के लिये प्रेरित किया जा सकता है, 'परी रानी क्या मैं तुम्हारा दोस्त बन सकता हूँ?..हाँ, पर तुम्हें मुझसे यह प्रॉमिस करना होगा कि तुम हमेशा अच्छे बच्चे बनकर रहोगे...कभी कोई बुरा काम नहीं करोगे। ...लेकिन, एक दिन जब दुकानदार ने गलती से राहुल को, अट्ठारह के बदले पचास रुपए वापस किए तो उसने सोचा, 'कल स्कूल में दोस्तों की इंटरवल में दावत करेगा। घर आकर उसने मम्मी को चीनी दी, और बताया कि चीनी बत्तीस रुपए की है, बाकी अठारह रुपए उसने वापस कर दिए। ...जब परी तीसरी रात भी नहीं आई तो राहुल को लगने लगा, उससे ज़रूर कोई गल्ती हुई है।... अगले दिन उसने अपनी पॉकेटमनी से दुकानदार को पचास रुपए वापस कर दिए। उस रात स्वप्न में परी आई और बोली, 'मैं समझ गई कि तुम अच्छे बच्चे हो। चलो मेरा हाथ पकड़ लो, मैं तुम्हें परी लोक की सैर कराऊँगी।

बच्चे उपदेशों की अपेक्षा, व्यवहारिक ज्ञान से अधिक सीखते हैं। बालमनोविज्ञान के आधार पर ही अध्यापकों को बच्चों पर हाथ न उठाने के निर्देश दिये गए हैं, तथा बच्चों को शारीरिक दंड देना, कानूनन अपराध घोषित किया गया है। व्यावहारिक रूप में भी देखा जा सकता है कि शारीरिक प्रहार से अधिक प्रभावशाली, मनोमस्तिष्क पर किया जाने वाला प्रहार होता है बगीचे में खड़े-खड़े उदित अपने चारों ओर रंग-बिरंगे खूबसूरत फूलों को देख रहा था। ...सपने में उदित एक सूरजमुखी बन गया...वो भी एक क्यारी में खड़ा था। उसके पंजे जड़ बनकर ज़मीन के अंदर चले गये थे। ...मोहित उछलता-कूदता उदित के सामने आकर खड़ा हो गया। उसकी पंखुड़ियों पर हाथ फेरते हुए बोला, 'इतना बड़ा सूरजमुखी तो मैंने आज तक नहीं देखा।... ...मोहित ने अपनी मस्ती में सूरजमुखी की कली कसकर पकड़ ली....उदित चीखता रहा, पर मोहित को कुछ सुनाई नहीं दिया और उसने कली तोड़ ली। उदित ज़ोर से चीखा नहीं...बचाओ... बचाओ..' और उदित की आँख खुल गई। ...कोई बुरा सपना देखा क्या ...बुरा नहीं माँ एक अच्छा सपना, मुझे फूलों का दर्द दिखलायी दिया। (12) इस तरह स्वप्न के माध्यम से ही सही, एक

बच्चा स्वयं दर्द अनुभव करके, फूलों के दर्द को अनुभव कर पाया और उसने कभी भी फूल न तोड़ने का निश्चय कर लिया।

औद्योगिक क्रांति के इस युग में कॉरपोरेट कंपनियाँ, विविध टी.वी. चैनल्स के माध्यम से चित्ताकर्षक विज्ञापनों के मायाजाल में बच्चों को फँसाकर उनकी चेतना का दमन करके, विवेक एवं मूल्यों का हरण कर रही हैं। बच्चे उनके लिये राष्ट्रनिर्माता नहीं, बल्कि उनके द्वारा निर्मित उत्पादों के उपभोक्ता मात्र हैं। कहानियों के पात्र एवं उनका चरित्र बच्चों को विवेक जाग्रत करने में सहायक हो सकता है, 'मेहनत करने वाला आदमी हिमालय की चोटी पर भी फूल खिला सकता है।... ...आज का आदमी तो जल्दी-से-जल्दी अमीर होना चाहता है।...माँ-बाप बचपन में ही गुज़र गए थे। एक-एक पाई को तरसता था और अब देखो, मेरे पास क्या नहीं है। यह सब मेहनत के बल पर ही तो संभव हुआ।

हम बच्चों को जैसा बनाना चाहते हैं, उनसे जो अपेक्षा करते हैं, अपनी कहानियों में हमें वैसे परिवेश एवं पात्रों की सर्जना करनी होगी। कहानीकार कहलाने के लिये नहीं, बल्कि बच्चों की सोच जाग्रत करने के लिये, उनकी सोच को दिशा प्रदान करने के लिये तथा उन्हें सुसंस्कार देने के लिये, कहानी लेखन करना होगा। 'वैभव तुम इतने बड़े सेठ के बेटे हो, तुमने कभी बताया नहीं।...मुझे यह सोचकर शर्म आ रही है कि इतना बड़ा सेठ होकर भी स्वयं स्टेशन से मेरा सामान उठाकर लाए।...तुम्हारे घर आकर मेरी आँखें खुल गयीं। मैं तो एक साधारण किसान परिवार का लड़का हूँ; लेकिन सब पर रोब डालने के लिए अपने लक्ष्य से भटक गया था। समकालीन बालकहानियों के अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि बच्चों के भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिये तथा उन्हें मानवता से महामानवता की ओर ले जाने के लिये, उन्हें सकारात्मक मानव संस्कारों से परिचित कराना होगा और इसके लिये, हमें उनके बाल्यकाल से ही उनके समक्ष स्वयं को एक आदर्श रूप में प्रस्तुत करना होगा क्योंकि अनुकरण करना मानव की मूल प्रवृत्ति है।

संदर्भ सूची : 1. बच्चों के सर्वांगीण विकास में बालसाहित्य की भूमिका, पत्रिका बालसाहित्य समीक्षा 2 हिम्मत ने जीती बाजी पृ.सं.-45-47 अंकिता प्रकाशन इलाहाबाद-6 सन 2006 3. पंत प्रभा, भोलू की दीवाली, बाल प्रहरी 2014 4. शुक्ल परशुराम, शिक्षाप्रद बालकहानियाँ, पृ.सं.-40 विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर 2016 5. नीलम राकेश, क्रिकेट का कमाल पृ.सं. 69-70, ग्लोबल बिजन पब्लिशर्स नई दिल्ली 6. नीलम राकेश, क्रिकेट का कमाल पृ.सं. 70, ग्लोबल विजन पब्लिशर्स नई दिल्ली 7. बच्चों के सर्वांगीण विकास में बालसाहित्य की भूमिका, बालसाहित्य समीक्षा, लखनऊ एए 8. नीलम राकेश, ठग से ठगी, पृ.सं.-68-69 उद्योग प्रकाशन गाजियाबाद 2015 9. पंत प्रभा, मौली कल्याणी 2015 10. श्रीवास्तव मृणालनी, मास्टर साहब, पा.सं.-29 चिल्डन बुक ट्रस्ट 11. शुक्ला आशीष, सपनों वाला तकिया, पृ.सं. 45, 46, 47 ज्ञानज्योति प्रकाशन, दिल्ली 12. नीलम राकेश, ठग से ठगी, पृ.सं.- 59 उद्योग प्रकाशन गाजियाबाद 2015 13. अरशद मोहम्मद, श्रेष्ठ बाल कथाएँ, लहर प्रकाशन इलाहाबाद 2012 14. नीलम राकेश, अनोखी एदटियाँ, पृ.सं. 75-76.

सम्पर्क : *हल्द्वानी (उत्तराखंड)*

अखिलेश श्रीवास्तव 'चमन'

हिन्दी बाल साहित्य : आवश्यकता बदलाव की

विगत लगभग ढाई-तीन दशकों के अंदर हिन्दी बाल साहित्य की स्थिति काफी सुदृढ़ और समृद्ध हुयी है। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में बाल साहित्य को लेकर चर्चा, परिचर्चा, गोष्ठियों और कार्यशालाओं आदि का सिलसिला तेज हुआ है। हिन्दी की गंभीर पत्रिकाओं तथा दैनिक, साप्ताहिक पत्रों में बाल साहित्य पर केन्द्रित आलेख तथा समीक्षायें दिखने लगी हैं। और न सिर्फ साहित्यिक, सामाजिक संस्थाओं बल्कि राज्य सरकारों द्वारा भी बाल साहित्य के क्षेत्र में बहुतेरे सम्मानों एवं पुरस्कारों को दिए जाने का सिलसिला बढ़ा है। हिन्दी के नामचीन प्रकाशक जो बाल साहित्य के नाम से नाक-भौं सिकोड़ा करते थे, वे भी बाल साहित्य की पुस्तकें छापने लगे हैं। तात्पर्य यह कि लगभग एक शताब्दी से हाशिए पर उपेक्षित पड़ा बाल साहित्य अब शनैः शनैः चर्चा के केन्द्र की ओर खिसकने लगा है। बाल साहित्य की स्थिति में आया यह सुखद बदलाव स्वमेव इस बात का प्रमाण है कि समाज द्वारा बाल साहित्य के महत्त्व और उपयोगिता को समझा और स्वीकार किया जाने लगा है। ऐसे में जब कि बाल साहित्य को महत्त्व मिलने लगा है, इसकी स्वीकार्यता बढ़ने लगी है, इससे अपेक्षायें भी बढ़ गयी हैं। बाल साहित्य से अपेक्षायें बढ़ने का मतलब यह कि बाल साहित्य के रचनाकारों की जिम्मेदारियाँ बढ़ गयी हैं। बाल साहित्य अपनी जिम्मेदारियों को निभा सके, पाठकों की अपेक्षाओं को पूरा कर सके, समीक्षकों की कसौटी पर खरा उतर सके और साहित्य की मुख्य धारा में स्थापित हो सके यह सब तभी संभव है जब कि वह उपयोगी और समय सापेक्ष हो।

हिन्दी में बाल साहित्य की परम्परा बहुत प्राचीन है। पंचपंत्र, हितोपदेश, जातक कथायें तथा कथासरित्सागर आदि ग्रन्थ इस बात के प्रमाण हैं। अगर इन सबको किनारे कर दें तो भी हिन्दी का बाल साहित्य, साहित्य की मुख्यधारा के समकालीन ही ठहरता है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र को आधुनिक हिन्दी साहित्य का निर्माता कहा जाता है। दूसरी तरफ सन् 1882 में हिन्दी की पहली बाल पत्रिका 'बाल दर्पण' के प्रकाशन का श्रेय भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को ही है। यद्यपि कुछ लोगों का कथन है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा प्रकाशित पत्रिका का नाम 'बाल दर्पण' नहीं 'बाला दर्पण' था और यह बच्चों की नहीं बल्कि महिलाओं की पत्रिका थी। यदि इसे स्वीकार कर लिया जाये तो भी हिन्दी की पहली बाल पत्रिका 'बाल सखा' का प्रकाशन सन् 1917 में देखने को मिलता है। कहने

का तात्पर्य यह कि हिन्दी बाल साहित्य यदि मुख्य धारा के साहित्य (प्रौढ़ साहित्य) की समकालीन नहीं भी है तो भी इनके आविर्भाव में बहुत थोड़े ही समय का अंतर है। ऐसे में एक बहुत स्वाभाविक सा प्रश्न उठता है कि आखिर वे कौन से कारण हैं जिनके चलते एक ही साथ, एक ही हिमनद से निकलने वाली दो धाराओं में से एक (प्रौढ़ साहित्य) तो उत्तरोत्तर समृद्ध और बलवती होती चली गयी किन्तु दूसरी धारा (बाल साहित्य) इस योग्य भी नहीं बन सकी कि उसको स्वतंत्र रूप से मान्यता प्राप्त हो सके।

वैसे तो बाल साहित्य के आशानुकूल विकसित न हो सकने के ढेर सारे कारण गिनाए जा सकते हैं, लेकिन उनमें एक प्रमुख कारण है उसमें बदलाव की गति का धीमा होना। एक बहुत प्रचलित कथन है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। अगर बहुत सीधे, सरल शब्दों में कहें तो इस कथन का तात्पर्य यह है कि साहित्य को समय के साथ कदम से कदम मिला कर चलना चाहिए। चूँकि समाज निरंतर परिवर्तनशील है इसलिए यह आवश्यक है कि साहित्य भी उसके अनुरूप परिवर्तित होता रहे। और परिवर्तनशील साहित्य की रचना तभी संभव है जब रचनाकार के पास मौलिक सोच तथा अपने समाज की बारीक पहचान हो। दुर्भाग्य से हिन्दी बाल साहित्य में लीक पर चलने वाले रचनाकारों की बहुतायत तथा मौलिक सोच वाले रचनाकारों की कमी रही है।

यदि हम प्रारम्भिक बाल साहित्य को देखें तो उसमें धार्मिक, पौराणिक आख्यानों की भरमार है। उससे आगे बढ़ें तो पंचतंत्र, हितोपदेश और जातक कथाओं आदि को आधार बना कर लिखी गयी रचनाओं की बहुलता है। लोक प्रचलित दंतकथायें, धार्मिक, पौराणिक आख्यान, तथा जनमानस में रूढ़ हो चुकी सामाजिक मान्यतायें सदा से बाल साहित्य के लिए खाद-पानी (रॉ मैटेरियल) का काम करती रही हैं। देवी-देवता, भूत-प्रेत, परी-राक्षस तथा जादू-टोना आदि अलौकिक शक्तियाँ और उनके चमत्कार प्रारम्भ से ही बाल साहित्य की विषयवस्तु बनते आ रहे हैं। बाल साहित्यकार इन अलौकिक शक्तियों के चमत्कारों के माध्यम से बच्चों में कौतूहल, जिज्ञासा, आतुरता, आदर, श्रद्धा, जुगुप्सा, निडरता, साहस तथा प्रेरणा आदि की भावना जागृत करते हैं। तात्पर्य यह कि हिन्दी का परम्परागत बाल साहित्य मुख्यतया कल्पना प्रधान तथा आदर्श मंडित रहा है। उसमें तर्क-वितर्क और व्यवहारिकता की गुंजाइश न के बराबर है किन्तु आज स्थितियाँ बदल चुकी हैं। विज्ञान, टेक्नोलॉजी, सूचना तथा संचार माध्यमों के क्षेत्र में आयी असाधारण क्रांति ने हमारे सामाजिक परिदृश्य को पूरी तरह से बदल कर रख दिया है।

आज का बच्चा इतना जागरूक, तार्किक और व्यावहारिक हो गया है कि उसे आधारहीन चमत्कारिक गाथाओं, काल्पनिक घटनाओं तथा कोरे आदर्श की बातों से बहला सकना संभव नहीं रह गया है। आज का बच्चा कहानी के साथ सिर्फ हुंकारी भरने वाला नहीं बल्कि पलट कर प्रश्न करने वाला है। इंटरनेट और गूगल ने आज के बच्चों की जानकारी को अत्यधिक समृद्ध कर दिया है। वह हर कार्य के कारण की तह में जाने को उद्यत है। आज का बच्चा सूरज को देवता, पृथ्वी को माँ, चन्द्रमा को मामा, गंगा को विष्णु भगवान के कमण्डल से निकली मोक्षदायिनी धारा अथवा

वर्षा को इन्द्र देवता के अनुग्रह के रूप में स्वीकार करने को कतई तैयार नहीं है। वह जान चुका है कि सूरज एक तारा है, पृथ्वी उसकी ग्रह है तथा चन्द्रमा उसका उपग्रह। वह जान चुका है कि गंगा गो-मुख नामक ग्लेशियर से निकली एक साधारण नदी है जो मैदानी क्षेत्र तक आते-आते बुरी तरह से प्रदूषित हो चुकी है। और वह यह भी जान चुका है कि वर्षा का होना मौसम परिवर्तन की प्रकिया का स्वाभाविक परिणाम है न कि इन्द्र देवता की दैवीय कृपा। लेकिन मजे की बात यह है कि इन सब बातों से बेखबर तमाम ऐसे बाल साहित्यकार हैं जो आज भी बाल साहित्य के नाम पर लगातार पिष्टपेषण किए जा रहे हैं और अतार्किक, अवैज्ञानिक चीजें परोसे चले जा रहे हैं।

कहने का तात्पर्य यह कि आज के वैज्ञानिक समय में हमारी आधारहीन धार्मिक, सामाजिक मान्यतायें तेजी से खण्डित और अनावृत होती जा रही हैं। ढोंग एवं चमत्कारों की पोल खुलती जा रही है और भावुकता तथा अंधविश्वास पर जीवन का व्यावहारिक पक्ष हावी होता जा रहा है। ऐसे समय में आज के बच्चों को सिर्फ वही साहित्य स्वीकार है जो व्यावहारिक हो, समय सापेक्ष हो, उनकी जिज्ञासाओं का शमन करता हो और उनके तर्क की कसौटी पर खरा उतरता हो। लेकिन विडम्बना यह है कि हिन्दी के अधिकांश बाल साहित्यकार अभी भी लकीर के फकीर बने बैठे हैं। वे परम्रागत विषयों और परम्परागत शैली से आगे नहीं बढ़ सके हैं। यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं कि आज का बाल पाठक बाल साहित्यकारों के मुकाबले काफी आगे निकल चुका है। इस अंतर को भरना आज के बाल साहित्यकारों के समक्ष एक बहुत बड़ी चुनौती है। बाल साहित्य को समय सापेक्ष तथा सहज स्वीकार्य बनाने के लिए यह आवश्यक है कि विज्ञान, टेक्नोलॉजी, नवीनतम अनुसंधानों तथा जीवन की व्यावहारिक सच्चाइयों को इसमें समाहित किया जाये।

हमारे परम्परागत बाल साहित्य का मुख्य स्वर उपदेशात्मक रहा है। कविता हो, कहानी हो, नाटक हो, उपन्यास हो, महापुरुषों की जीवनियाँ हों या प्रेरक प्रसंग आदि इन सभी का एक मात्र उद्देश्य बच्चों के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करना तथा उसके माध्यम से उन्हें सत्कर्मों की शिक्षा देना रहा है। सच कहें तो यह दृष्टिकोण काफी हद तक बच्चों के साथ ज्यादती है। जिन उच्च आदर्शों को हम अभिवावक वर्ग स्वयं नहीं अपना पाते उन्हें बच्चों पर थोपना सरासर बेईमानी नहीं तो भला और क्या है? वैसे भी आज का जागरूक और तर्कशील बच्चा भावुकता भरे आदर्श तथा कोरे उपदेशों को सुनने, पढ़ने और स्वीकार करने के लिए कतई तैयार नहीं है। आज के बच्चों को सिर्फ वही साहित्य स्वीकार है जो उनसे सीधे जुड़े, उनका मनोरंजन करे, कल्पना लोक की नहीं बल्कि उनके परिवेश की बात करें तथा उनकी जिज्ञासाओं का तार्किक समाधान प्रस्तुत करे। ऐसा नहीं है कि हमारा परम्परागत बाल साहित्य पूरी तरह से अर्थहीन या अप्रासंगिक हो गया हो। अपनी जगह उसकी भी उपयोगिता है किन्तु साथ ही उसमें नवीनता का समावेश होना भी आवश्यक है। परम्परागत चीजों को नए परिवेश के अनुरूप ढाल कर प्रस्तुत किए जाने की आवश्यकता है।

एक महत्त्वपूर्ण उल्लेखनीय बात यह है कि सामान्यतौर पर हम जिसे बाल साहित्य का पाठक मानते हैं, या जिन बच्चों को ध्यान में रख कर बाल साहित्य की रचना की जाती है, आयु के आधार पर उनमें तीन वर्ग हैं-1-शिशु, 2-बालक तथा 3-किशोर। इन तीनों वर्गों के बच्चों की रुचि,

मनोविज्ञान तथा बौद्धिक क्षमता में भारी अंतर होता है और बाल साहित्यकार का प्राथमिक दायित्व यह है कि वह इस अंतर को पूरी स्पष्टता के साथ पकड़े। मेरी समझ से शिशु वर्ग के लिए लिखे गए साहित्य का मुख्य स्वर कल्पना, विनोद, कौतूहल और मनोरंजन होना चाहिए। उसमें मस्ती, बेफिक्री और खिलंदड़ापन होना चाहिए। इस आयु वर्ग के बच्चों को किसी भी प्रकार के उपदेश अथवा आदर्श की सीख आदि से मुक्त रखा जाना चाहिए।

शिशु से बालक की उम्र में पहुँचने के साथ ही बच्चों में सीखने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। अत: बालक वर्ग के लिए लिखा गया साहित्य घटना प्रधान, संस्कार प्रधान, शिक्षाप्रद, तथा व्यावहारिकता से पूर्ण होना चाहिए। इस वर्ग का साहित्य ऐसा होना चाहिए जो बगैर घोषणा या शोर किए बच्चों के अंदर चुपचाप अच्छाइयों का बीजारोपण कर सके और तीसरी श्रेणी यानी किशोरावस्था को प्राप्त बच्चों में आत्मबल, आत्मसम्मान, आत्म निर्णय, स्वतंत्र सोच तथा जिम्मेदारी आदि की भावनाओं का विकास होने लगता है। यह आयु बच्चों के भावि जीवन की आधारशिला रखने का काम करती है। अत: किशोर वर्ग के लिए रचित साहित्य साहस, चुनौती, जिज्ञासा, व्यावहारिकता, तार्किकता तथा वैज्ञानिक दुष्टि से सम्पन्न होना चाहिए। यह साहित्य सूचनापरक तथा उद्देश्यपरक होना चाहिए। लेकिन विडम्बना यह है कि हिन्दी के अधिकांश बाल साहित्यकार इस वर्गीकरण के प्रति सचेत नहीं हैं। वे चार साल के बच्चों से ले कर चौदह साल के किशोर तक को एक ही दृष्टि से देखते और सभी को एक ही डंडे से हाँक रहे हैं। परिणामस्वरूप बाल साहित्य के नाम पर अजीब किस्म का घालमेल सामने आ रहा है।

इस घालमेल का एक कारण यह भी है कि बाल साहित्य को सामने लाने का कार्य पत्र, पत्रिकायें करती हैं किन्तु अधिकांश पत्रों और पत्रिकाओं के सम्पादक (विशेष रूप से दैनिक तथा साप्ताहिक पत्रों के फीचर सम्पादक) बाल साहित्य के प्रति निष्पक्ष तथा गंभीर नहीं हैं। बाल-पत्रिकाओं के गिने-चुने सम्पादक ही ऐसे हैं जो बाल साहित्य की सामग्री चयन में अपेक्षित गंभीरता तथा निष्पक्षता बरतते हैं। वरना अधिकांश लोग बाल साहित्य को इस योग्य नहीं समझते कि इसके लिए परिश्रम किया जाये। बाल साहित्य के नाम पर उन्हें जो कुछ भी सहज उपलब्ध हो जाता है, उसे प्रकाशित कर देते हैं। दूसरी तरफ कुछ ऐसे लोग भी हैं जो रचनाओं के चयन में रचना की गुणवत्ता के बजाय रचनाकार के नाम तथा सम्बन्धों को वरीयता देते हैं। विशेष रूप से समाचार पत्रों की सम्पादकीय नीति में बाल साहित्य की स्थिति कितनी उपेक्षित है इस बात का अंदाजा इससे भी लगाया जा सकता है कि अधिकांश दैनिक तथा साप्ताहिक पत्रों में बाल साहित्य के पृष्ठ का प्रभार सम्पादक मंडल के उस सदस्य को दिया जाता है जो सबसे नया और कम अनुभव वाला होता है। सम्पादकों के इस गैरजिम्मेदाराना रवैया के कारण गंभीर तथा अपेक्षाकृत बेहतर बाल साहित्य तो अप्रकाशित और अचर्चित रह जाता है किन्तु अगंभीर और दोयम दर्जे की रचनायें प्रमुखता से छपती रहती हैं। इस प्रवृत्ति का दुष्परिणाम यह है कि सामान्य तौर पर बाल साहित्य का जो स्वरूप सामने आता है वह हल्का, सतही तथा अगंभीर है। और इसी आधार पर समीक्षकों द्वारा यह कह दिया जाता है कि हिन्दी में अच्छा या स्तरीय बाल साहित्य लिखा ही नहीं गया है।

बाल साहित्य के स्वरूप में बदलाव के साथ-साथ आवश्यकता अभिवावक वर्ग की मानसिकता में बदलाव की भी है। दरअसल बाल साहित्य के साथ विडम्बना यह है कि इसका उपभोक्ता (पाठक) किसी भी दृष्टि से स्वतंत्र तथा आत्मनिर्भर नहीं है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह अपने अभिवावकों पर निर्भर है। और अभिवावकों की स्थिति यह है कि वे पाठ्यक्रम से इतर कोई भी दूसरी पुस्तक खरीदना और उसे पढ़ने के लिए अपने बच्चे को देना धन तथा समय दोनों का अपव्यय समझते हैं। अगर ध्यान से देखा जाये तो अभिवावकों की इस सोच के पीछे आर्थिक कम मनोवैज्ञानिक कारण अधिक हैं। जो अभिवावक अपने बच्चे को पन्द्रह-बीस रुपए की कोई पुस्तक या पत्रिका खरीदने से मना कर देता है वही अभिवावक पचास रुपए का चाकलेट, आइसक्रीम, या पिज्जा, बर्गर बहुत आसानी से खरीद देता है।

दरअसल हमारे सामाजिक जीवन में तेजी से हावी होती भौतिकता, बच्चों के भविष्य के प्रति तेजी से बढ़ती असुरक्षा की भावना तथा अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों द्वारा फैलाए गए अंग्रेजियत के तिलिस्म ने आज के अभिवावक वर्ग को इतना अधिक आतंकित कर दिया है कि वह अपने बच्चे के एक-एक पल तथा उसकी एक-एक गतिविधि का हिसाब रखने को तत्पर है। आज के सामाजिक परिवेश में हिन्दी पढ़ना पिछड़ेपन की निशानी समझी जाने लगी है और साहित्य पढ़ना तो कत्तई गैर जरूरी। आज का अभिवावक इस आशंका से निरंतर भयाक्रांत है कि उसका बच्चा अंग्रेजियत और आधुनिकता की दौड़ में कहीं पिछड़ न जाये। इसलिए हिन्दी और उसमें भी साहित्यिक चीजें पढ़ा कर अपने बच्चे का समय बरबाद करना उसको कतई स्वीकार नहीं है। अभिवावकों की इस भ्रमित मानसिकता का ही दुष्परिणाम है कि आज के बच्चे अपने साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संस्कारों से वंचित होते जा रहे हैं। संस्कारों के अभाव के कारण बच्चों में दया, ममता, आदर, स्नेह आदि कोमल भावनाओं (संवेदनाओं) का हास होता जा रहा है तथा क्रूरता, कठोरता, वैमनस्यता और असहिष्णुता आदि की वृद्धि होती जा रही है। समय सापेक्ष और उद्देश्यपूर्ण बाल साहित्य इस विकृति को दूर करने में बहुत प्रभावी भूमिका निभा सकता है।

सम्पर्क : *लखनऊ (उ.प्र.)*

शालिनी तायवाड़े

21वीं सदी के बाल नाटकों में रंगमंचीय परिदृश्य

साहित्य की सभी सक्षम विधाओं में सम्प्रेषणात्मक दृष्टिकोण से नाटक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी विधा है। विशेषकर बाल नाटक, बालकों के चारित्रिक एवं सर्वांगीण विकास के लिए एवं उनके जीवन में नैतिक मूल्यों के साथ सामाजिक शिक्षा प्रदान करने के लिए इनका अत्यंत महत्व है। बाल नाटकों के इसी महत्व को समझते हुए बाल नाटक और रंगमंच ने महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया है। किसी एक पहलू का अभिमंचन न करके यह समाज के विभिन्न पहलुओं का मंचन करता है। इसीलिए यह एक सामाजिक विधा है। रंगमंच और बाल नाटकों का महत्व बच्चों के अभिनय कौशल को जानने एवं उनकी प्रतिभा को निखारने का साधन है। यह बच्चों के लिए एक नई ऊर्जा शक्ति से परिपूर्ण तथा अन्त:करण को सृजनात्मक रूप से विकसित कर अनुरंजित करते हैं। बाल नाटक एवं रंगमंच बालकों की जिज्ञासाओं के समाधान और प्रतिभाओं को निखारने का सुनहरा अवसर प्रदान करते हैं। रंगमंच के माध्यम से बच्चों की प्रतिभाओं को दर्शकों के समक्ष लाने का अथक प्रयास किया जा रहा है।

हमारे देश के छोटे बड़े शहरों में रंगमंच कार्यशालाएँ आयोजित की जा रही हैं। रंगमंच एक ऐसा आयाम बन चुका है जिसके माध्यम से बच्चे देश की संस्कृति को जानने और उससे जुड़ने का कार्य कर रहे हैं। यह रंगमंच बालकों में आपसी सहयोग, अनुशासन तथा आत्मविश्वास जगाते हैं।

बाल रंगमंच बच्चों के लिए खुले आसमान की तरह है। यह रंगमंच उनकी अपनी एक दुनिया जिसमें उन्हें अपनी इच्छानुसार अपनी कुशलता को निखारने का अवसर प्राप्त होता है। जिसमें खुले रूप से अभिनय करने, बोलने और नाचने-गाने की स्वतंत्रता होती है। आज बच्चों के लिए ऐसे बाल नाटकों की आवश्यकता महसूस होने लगी है जिसमें किसी प्रकार की रोकटोक, बड़े-बड़े संवाद और वेशभूषा का कोई प्रतिबंध न हो। 21वीं सदी के बाल नाटकों में बच्चों के अनुसार उनकी समस्याओं को लेकर नाटकों की रचना होने लगी है। बाल नाटकों की कथावस्तु बच्चों की अपनी कथावस्तु है। बच्चों के अपने संवाद हैं।

बाल नाटक और बाल रंगमंच का आपस में घनिष्ठ संबंध है। दोनों की सफलता एक-दूसरे पर निर्भर करती है। सामान्यत: देखा जाए तो बाल रंगमंच ना हो तो बाल नाटकों का कोई औचित्य संभव नहीं है। बाल नाटकों का सृजन करने का कार्य बाल रंगमंच करते हैं।

बाल रंगमंच के बारे में दो-तीन स्तरों पर गंभीरतापूर्वक सोचने और कुछ करने की जरूरत है। 'बच्चों की सहज सर्जनात्मक अभिव्यक्ति के रूप में, स्कूलों में पढ़ाई के अलावा एक महत्त्वपूर्ण और जरूरी गतिविधि के रूप में और वयस्कों द्वारा नियमित रंगमंच के महत्त्वपूर्ण कल्पना प्रधान प्रकार के रूप में एक बाल रंगमंच के विभिन्न रूप न केवल सामान्यत: बच्चों के सौंदर्य बोध और कलात्मक प्रवृत्तियों को जगाते, संवारते और उत्तेजित करते, वरन् भविष्य के अभिनेता, निर्देशक रंगशिल्पी और इन सबसे भी अधिक संवेदनशील दर्शक भी तैयार करते हैं।'[1] (हिन्दी बाल पत्रकारिता उद्भव और विकास, डॉ. सुरेन्द्र विक्रम, संस्करण प्रथम 1992 पृ. 99)

स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले बाल नाटक लेखन में कोई बड़ी उपलब्धि प्राप्त नहीं हुई थी। 1930 में बच्चों के लिए प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'बाल सखा' जिसमें 'दयालु लड़का' नामक नाटक रामानुजलाल श्रीवास्तव द्वारा प्रकाशित किया गया था। उस समय नाटकों के मंचन की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया ना ही रंगमंच कार्यशालाएँ आयोजित की गईं। यह समय बाल नाटकों के क्षेत्र में कोई खास नहीं था। उस समय के नाटक बालकों को नई दिशा देने और उनकी कल्पनाओं को उर्वर बनाने में सक्षम नहीं हो सके। इस समय ऐतिहासिक, पौराणिक नाटक लिखे गये। परंतु इन नाटकों में कलात्मक और सार्थकता को ढूँढ़ पाना बड़ा ही कठिन कार्य था। उस समय के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राजा लक्ष्मण सिंह, रामनरेश त्रिपाठी, हरिकृष्ण, 'प्रेमी', जगन्नाथ प्रसाद, रामचन्द्र रघुनाथ सरवटे, डॉ. राम कुमार, रामदयाल दुबे आदि प्रसिद्ध नाटककार हैं।

जब तक बच्चों का रंगमंच सक्रिय नहीं होगा तब तक बाल नाटकों का बड़ी संख्या में लिखे जाने पर भी कोई सार प्राप्त नहीं होगा। सही दृष्टिकोण में बाल नाटकों की सफलता रंगमंच है। डॉ. हरिकृष्ण देवसरे जी ने बाल नाटकों को दो वर्गों में बाँटा है- 'अमंचीय नाटक', 'मंचीय नाटक'।

अमंचीय नाटक-'पहली कोटि के नाटक शिशु और बाल वर्ग के लिए होते हैं। इनका अभिनय करने के लिए बच्चों को किसी के निर्देशन की तथा प्रस्तुतीकरण के लिए मंच की आवश्यकता नहीं होती। ये कक्षा के कमरे में, घर के बरामदे में या खेल के मैदान अथवा पार्क में खेले जा सकते हैं। दूसरी कोटी में वे नाटक आते हैं जो बालकों द्वारा मंच बनाकर खेले जाते हैं।'[2] (हिन्दी बाल पत्रकारिता : उद्भव और विकास, डॉ. सुरेन्द्र विक्रम, प्रथम सं. 1992 पृ. 39)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद में नाटकों को लिखने के क्षेत्र में सभी स्तरों पर एक बौद्धिक चेतना का विकास देखने को मिला। बाल नाटक वास्तविक रूप से बच्चों के सुगम्य, संतुलित विकास के लिए एवं नैतिक व सामाजिक शिक्षा देने के लिए, नाटकों से सशक्त दूसरा कोई माध्यम नहीं है। नाटक लेखन की इसी पहल को आगे बढ़ाते हुए बाल रंगमंच में भी पिछले कुछ समय से महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सर्वप्रथम दिल्ली में चिल्ड्रन थिएटर संस्था का प्रारंभ हुआ जहाँ बच्चों को नियमित रूप से प्रशिक्षण दिया जाता था और बड़ी ही सहज और रोचकतापूर्ण नाटक छोटे बच्चों के साथ प्रस्तुत किये जाते थे। हमारे देश के प्रथम प्रधानमंत्री और बच्चों के बीच में प्रसिद्ध चाचा नेहरू स्वयं इस संस्था के प्रदर्शन को देखने के लिए आते थे और बच्चों का उत्साहवर्धन करते थे। वे नाटक के प्रदर्शन में प्रारंभ से अंत तक रुककर बच्चों के साथ बातें करते, उन्हें हँसाते और उनका उत्साह बढ़ाते। बच्चों के

साथ नाटक करने वालों को उत्साह और प्रेरणा मिलती जिससे बाल रंगमंच के कार्य में विकास देखने को मिला।

बाल नाटक के महत्व को प्रतिपादित करते हुए ऐसे प्रयोगात्मक एवं बालकों की समस्या से संबंधित ऐतिहासिक, पौराणिक, राजनैतिक नाटकों को लिखा गया जिसमें प्रफुल्लचंद, हरिकृष्ण देवसरे, विष्णु प्रभाकर, रेखा जैन, रामधारी सिंह दिनकर, देवराज, दिनेश कुदसिया जैदी, मंगल सक्सेना, चिरंजीत का नाम उल्लेखनीय है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बाल रंग को भी बालकों के चारित्रिक विकास और मनोरंजन के साधन के रूप में स्वीकारा गया। नाट्य रंगमंच की कुछ प्रमुख संस्थाएँ हैं- उमंग (दिल्ली), टोली (भोपाल), क्रिएटिव आर्ट सृजन संस्थान (जोधपुर), बाल रंगमंच, गोरखपुर। बाल रंगमंच के क्षेत्र में कलकत्ता के उत्साही रंगकर्मी स्व. श्री समर चैटर्जी ने दिल्ली में चिल्ड्रन लिटिल थिएटर नामक बाल रंगमंच की स्थापना की है। इसके अलावा अन्य संस्थाएँ बाल रंगमंच के क्षेत्र में काम कर रही हैं जिसमें बैरी जॉन की संस्था थिएटर एक्शन ग्रुप भी बच्चों के नाटक कराते हैं। दिल्ली रंगमंच के अलावा हिन्दी बाल नाटकों में उत्तर प्रदेश के कई छोटे-बड़े शहरों में बाल रंग सक्रिय है।

हिन्दी बाल रंग आज सम्पूर्ण भारतवर्ष में संचालित है। महाराष्ट्र, गुजरात में भी बच्चों के नाटक कराये जाते हैं। यहाँ पर बड़े-बड़े नाटककार और लेखक रुचि लेकर बच्चों के लिए नाटक लिखते हैं।

विख्यात कवि-नाटककार सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का कथन है कि 'यदि आप बच्चों के साथ खेल नहीं सकते तो बच्चों के लिए लिख भी नहीं सकते, चाहे वह नर्सरी, कविता हो चाहे नाटक।'[3] (प्रतिनिधि बाल नाटक, सं. डॉ. हरिकृष्ण देवसरे, प्रथम संस्करण, 1996, पृ. 95)

प्रारंभिक समय में नाटक विद्यालय के वार्षिक कार्यक्रमों और गली मोहल्लों के छोटे-छोटे मंचों पर खेले जाते थे। इन नाटकों की विशेषता यह थी कि इसमें संवाद बड़े-बड़े होते थे परन्तु 1953-54 में बाल रंगमंच की शुरुआत में नाटकों में बच्चों के लिए बड़े-बड़े संवादों की अपेक्षा नाटकीय रूपरेखा में परिवर्तन कर छंदबद्ध, लयात्मक, पद्य कृतियों और गीतों पर आधारित नाटक कराये गये। इस प्रकार बच्चों को यह पद्धति अधिक आकर्षक एवं रोचक लगने लगी। आज बच्चों के लिए ऐसे नाटकों को लिखने की आवश्यकता है जिसमें बच्चे पूरी तरह विलीन हो जायें, यदि नाटककार बच्चों के लिए नाटक लिखें तो उनकी कथावस्तु एवं भाषा में अधिक संवेदनशीलता होगी। नाटककारों के इस योगदान से बाल नाटक और बाल रंगमंच दोनों ही अधिक समृद्धशाली होंगे।

21वीं सदी में बाल रंगमंच का भविष्य अधिक समृद्ध एवं उज्ज्वल है। हालाँकि देखा जाए तो रंगमंच के क्षेत्र में कार्य अधिक नहीं हो रहे हैं फिर भी छोटी-मोटी कोशिशें हो रही हैं। इस समय का रंगमंच स्वतंत्र और महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर चुका है। बाल रंगमंच से तात्पर्य नाटकों का मंचन कराना ही नहीं है बल्कि बच्चों के सर्वांगीण विकास एवं उनके सुनहरे भविष्य का निर्माण करना है। यह बच्चों का अपना बाल मंच है। इसमें बच्चे स्वयं ही नाटककार एवं निर्देशक होते हैं। बाल मंच में उनकी अपनी स्वयं की भाषा, उन्हीं के अभिनय स्वर गूँजते हैं। आज बच्चे स्वयं ही खेल-खेल में नाटकों का निर्माण कर लेते हैं। वर्तमान समय में बाल नाटक और रंगमंच आपस में मिलकर बच्चों की जरूरतों, उनकी रुचियों तथा उनके सपनों को उड़ान भरने में जुट गया है। इस प्रकार बच्चे क्रियाशील एवं स्वतंत्र महसूस करते हैं।

रंगमंच बाल नाटकों का प्रमुख अंग है। प्रोफेसर ए.ए. मिले का मत है कि 'बाल नाटकों की सफलता का रहस्य रंगमंच है। उनका कहना है कि नाटक में कथानक एवं संवाद को अधिक प्रभावशाली बनाने तथा बाल दर्शकों को आकर्षित करने के लिए सुंदर दृश्य तथा रंगमंच की साज-सज्जा आवश्यक होती है।'[4] (बाल साहित्य : रचना और समीक्षा, डॉ. हरिकृष्ण देवसरे संस्करण 1998, पृ. 100)

बाल नाटक आज के इस 21वीं सदी में मनोविज्ञान पर आधारित है। इसे बड़ों के निर्देशन की आवश्यकता नहीं है। अत: 21वीं सदी के प्रथम दशक में हिन्दी बाल मंच पूर्णत: बच्चों का रंगमंच है। इस कार्यक्षेत्र को आगे बढ़ाने में तथा बाल नाटकों के मंचन में जिन्होंने प्रयास किये हैं उनमें दिल्ली के नेमिचन्द्र जैन, रेखा जैन, कलकत्ता की श्यामा जैन, उज्जैन के प्रभात कुमार भट्टाचार्य तथा वाराणसी के डॉ. श्रीप्रसाद आदि उल्लेखनीय हैं।

'हिन्दी में अब यह स्पष्ट रूप से महसूस किया जाने लगा है कि बाल रंगमंच बच्चों का अपना खुला संसार होता है। जिसमें उन्हें अपनी पंसद और इच्छा अनुसार अभिनय करने बोलने और गाने-नाचने की पूरी छूट मिलनी चाहिए। इसलिए अब ऐसे नाटकों की रचना होने लगी है, जिसमें न वेशभूषा की बंदिश है, न परदा उठाने-गिराने का झंझट और न लम्बे-लम्बे संवाद रटने की समस्या। आज के नाटकों के कथानक बच्चों के अपने कथानक होते हैं, जिनके संवाद आवश्यकता पड़ने पर बच्चे स्वयं भी अभिनय करते-करते सोचकर बोलते जाते हैं।'[5] (बाल साहित्य : समीक्षा के प्रतिमान और इतिहास लेखन, डॉ. सरोजनी पाण्डेय, संस्करण 2011, पृ. 100)

हम यह कह सकते हैं, कि आज के दशक का बाल रंगमंच अपने आप में एक स्वतंत्र और अहम स्थान प्राप्त कर चुका है। बाल रंगमंच का कार्य बाल नाटकों का मंचन कराना ही नहीं है बल्कि बच्चों के भविष्य निर्माण एवं बौद्धिक विकास का सृजन करना है। यह हिन्दी रंगमंच का भाग न होकर अपनी विशिष्ट कला के साथ प्रस्तुत है। आज का रंगमंच बच्चों का रंगमंच है। इस रंगमंच में बच्चे ही सर्वोपरि हैं। ये रंगमंच बच्चों की जिज्ञासाओं उनकी आवश्यकताओं और रुचियों से परिपूर्ण है। बाल नाटक और बाल रंगमंच मनोविज्ञान पर आधारित है। आज 21वीं सदी के हिन्दी बाल नाटकों को नये-नये रूप और रंगमंच के प्रयोग से उपयुक्त अध्ययन सफलता प्रदान कर सकता है।

सम्पर्क : *इन्दौर (म.प्र.)*

डॉ. मंजरी शुक्ला

बाल साहित्य के पुरोधा

बाल कहानी के इतिहास में हम देखते हैं कि हमारे जो वरिष्ठ रचनाकार थे, जो बड़ों के साहित्य में भी बेहद प्रसिद्ध हुए, उन्होंने बच्चों के लिए भी बहुत कहानियाँ लिखीं। हम उन्हें 'नींव का पत्थर' कह सकते हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, सुदर्शन, इनकी बड़ों की कहानियाँ और कथाएँ बेहद प्रसिद्ध हैं। इन्होंने बच्चों के लिए भी बहुत लिखा और पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, जिन्हें 'मास्टरजी' के नाम से भी जाना जाता है, रामवृक्ष बेनीपुरी, प्रेमचंद और स्वर्ण सहोदर, इन सभी लेखकों ने बड़ी मात्रा में बच्चों की कहानियाँ लिखी हैं।

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने कुछ पौराणिक आख्यान भी लिखे हैं जैसे, पांडवों का विवाह जयशंकर प्रसाद की 'बालक चंद्रगुप्त' बहुत प्रसिद्ध है। सुदर्शन की 'हार की जीत' कहानी शायद ही कोई बच्चा भूल पाता होगा। जब इस कहानी के नायक बाबा भारती ठगे जाते हैं तो दिल में एक टीस सी उठती है और कहानी के अंत तक बच्चा समझ जाता है कि उसे दूसरों को धोखा नहीं देना चाहिए। यह कहानी पाठ्यक्रम में भी चलती है।

इस तरह से हम देख सकते हैं कि बहुत सारी बाल कहानियाँ ऐसी हैं जो कि प्रसिद्ध भी हैं और पाठ्यक्रमों में भी चलती हैं। जयशंकर प्रसाद की 'बालक चंद्रगुप्त' ऐसी ही एक ऐतिहासिक कहानी है, जिसमें उन्होंने सम्राट चंद्रगुप्त का बाल्यकाल बताया है। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का तो पूरा एक कहानी संग्रह ही आया था 'सीख भरी कहानियाँ', ये किताब उन्होंने बच्चों के लिए लिखी थी। उन्हें महाकवि की उपाधि मिली हुई थी पर लेखन की शुरुआत उन्होंने कहानियों से ही की थी। इस पुस्तक की भूमिका में लिखा था कि मैं ये कहानियाँ लिखकर अपने आप को कृतार्थ अनुभव कर रहा हूँ और कोई भी रचनाकार तब तक परिपूर्ण रचनाकार नहीं हो सकता जब तक वह बच्चों के लिए ना लिख ले। सबसे रोचक बात ये है कि उस किताब की भूमिका में उनकी हस्तलिखित ये पंक्तियाँ छापी गई थीं। जो पहला संस्करण निकला था, उसमें ये पंक्तियाँ हस्तलिखित प्रकाशित की गई थीं। पहले प्रिंटिंग की व्यवस्थाएँ आज की तरह आधुनिक नहीं थीं और उस ज़माने में पहले फॉण्ट बनते थे इसलिए साँचा बनाकर उनके हाथ की लिखी हुई ये पंक्तियाँ छापी गई थीं।

कहानियों की महत्ता हम इसी बात से समझ सकते हैं कि जिन्हें हम 'महाकवि' कहते हैं, वह भी

बच्चों की कहानियों के लिए इतनी बड़ी बात कह रहे हैं कि जिन्होंने बच्चों के लिए नहीं लिखा वे परिपूर्ण रचनाकार नहीं हो सकते।

हम आधुनिक युग के रचनाकारों की बात करें तो हमारे श्रद्धेय और वरिष्ठ साहित्यकार जैसे प्रकाश मनु, डॉ. राष्ट्रबंध, हरेकृष्ण देवसरे, परशुराम शुक्ल, देवेंद्र कुमार, रमेश तैलंग, दिविक रमेश और देवेंद्र मेवाड़ी ने भी बाल साहित्य को अपना पूरा जीवन ही समर्पित कर दिया।

डॉ. राष्ट्रबंधु जी ने बालसाहित्य के द्वारा न केवल बालमन में जगह बनाई बल्कि उनकी शिक्षा में भी महान् योगदान दिया। उन्होंने बच्चों के लिए लिखने के साथ-साथ उनके लिए बहुत सारी कार्यशालाएँ भी आयोजित करवाईं, जिससे बच्चों का सर्वांगीण विकास हुआ। राष्ट्रबंधु जी की कहानी 'फटी शर्ट' पढ़कर तो शायद ही कोई ऐसा होगा जिसकी आँखें नम ना हो गई हों। इस कहानी पर एक टेली फ़िल्म भी बनी हैं जो राजेश राठी द्वारा निर्देशित की गई है। ये टेली फ़िल्म सन 2006 में बनी और लाखों बच्चों तक पहुँची और इसे बेहद पसंद भी किया गया। आप ये फ़िल्म ऑनलाइन भी देख सकते हैं।

हरिकृष्ण देवसरे जी की किताबें तीन सौ से ऊपर हैं और उन्होंने बच्चों के लिए हज़ारों कहानियाँ लिखी हैं। देवसरे जी का पाँच खण्डों का संग्रह आ रहा है। दो खंड शीघ्र ही आ जाएँगे और बाकी पर भी काम चल रहा है। ये हम सबके लिए बहुत खुशी और गर्व का विषय है कि अब हमें देवसरे जी की कहानियाँ एक ही जगह पढ़ने को मिल जाएँगी। इसे सस्ता साहित्य मंडल द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है। हरिकृष्ण देवसरे जी ने अपना पूरा जीवन बाल साहित्य के लिए ही समर्पित कर दिया और 14 नवंबर 2013 यानी, बाल दिवस के दिन ही उनका निधन हो गया।

प्रकाश मनु जी के लिए अगर कहा जाए कि वे हिंदी बाल साहित्य के स्तम्भ हैं तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। उन्होंने 650 से अधिक कहानियाँ लिखी हैं और बच्चों के लिए ढेरों पुस्तकें लिखी हैं। 'हिंदी बाल साहित्य का इतिहास' पुस्तक लिखकर उन्होंने पूरे हिंदी साहित्य को एक तरह से अपना ऋणी बना दिया है। वे करीब कोई दो-ढाई दशकों से इस काम में जुटे थे और उन्होंने ना जाने कितनी दूर जा जाकर स्वयं वे सभी पुस्तकें खरीदीं और उन्हें एकत्रित करके पढ़ा। उन्होंने हमारे साथ-साथ हमारी आने वाली पीढ़ियों को भी एक ऐसा उपहार दिया हैं जिसे हर साहित्यकार अपने घर में सहेज कर रखना चाहेगा।

रमेश तैलंग जी ने भी बाल साहित्य को लाखों बच्चों तक पहुँचाया है। उनकी बच्चों की कहानियों की अब तक करीब दस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

परशुराम शुक्ल जी ने अन्य विषयों के साथ-साथ पर्यावरण और जीव-जंतुओं के बारे में हजारों रचनायें लिखी हैं। उनका साहित्य पढ़कर, बहुत ही आसानी से बच्चों को पशु-पक्षियों के बारे में याद भी हो जाता है। उनकी 'वृक्ष कथा' तो इतने रोचक ढंग से लिखी गई है कि उसके अगले भाग की हर बार प्रतीक्षा बनी रहती है। नन्हें सम्राट पत्रिका में तो बहुत लम्बे समय तक परशुराम जी की वृक्ष कथा प्रकाशित हुई है। उन्होंने भी ढेरों किताबें लिखकर बच्चों के साहित्य को समृद्ध किया है और वे अभी भी लेखन में बेहद सक्रिय हैं।

देवेंद्र कुमार जी 27 वर्षों तक नंदन से जुड़े रहे और उन्होंने सैकड़ों कहानियाँ लिखी हैं। उनकी 60

से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और उन्होंने 300 पुस्तकों का सार संक्षेप किया है।

नंदन में बहुत पहले 'विश्व की महान कृतियाँ' नाम का एक कॉलम प्रकाशित हुआ करता था। उसमें किसी एक क्लासिक को ले करके उसका दो हजार शब्दों में सार संक्षेप किया जाता था और देवेंद्र जी ने हर अंक में अपना ये अमूल्य योगदान दिया क्योंकि जो हमारे अर्ध शहरी बच्चे हैं या गाँव में रहने वाले बच्चे हैं, वे विश्व का साहित्य इतनी सहजता और सरलता से समझ नहीं पाएँगे क्योंकि वह साहित्य अंग्रेजी में है। उन पुस्तकों तक उनकी और हमारी पहुँच भी बहुत मुश्किल से होती है या शायद होती ही नहीं है। 'आत्माराम एंड संस प्रकाशन' ने दो खंडों में कुल 20 कृतियों का सार संक्षेप बहुत वर्षों पहले प्रकाशित भी किया था और वे अभी भी हर चार-पाँच दिन में एक बाल कहानी लिखते हैं।

फरीदाबाद से, डॉ. सुनीता ने भी बाल साहित्य के क्षेत्र में बहुत काम किया है। उन्होंने अब तक करीब 250 से ज्यादा कहानियाँ लिखी हैं। उनकी कई पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं। आज की शैली और आज की चेतना के हिसाब से उन्होंने बच्चों की जातक कथाएँ बहुत ही सहजता से लिखी है, उन्हें पढ़ने में बहुत मज़ा आता है। उन्होंने 'पूर्वोत्तर राज्यों की भावपूर्ण लोक कथाएँ' नाम से पूर्वोत्तर राज्यों की लोक कथाओं पर भी एक पुस्तक लिखी है जो सन 2018 में एनबीटी से आई है। ये एक बहुत ही सुंदर किताब है। बालभारती में भी हमने सुनीता जी की बहुत कहानियाँ पढ़ी हैं और अभी भी पढ़ते रहते हैं।

बाल साहित्य लेखन में दिविक रमेश जी की भी गहरी पैठ है। वे बाल मनोविज्ञान के पारखी हैं। उन्होंने बच्चों की रुचि और उनके मनोविज्ञान को केन्द्र में रखकर कहानियाँ लिखी हैं। दिविक रमेश जी ने अनुवाद के क्षेत्र में भी बहुत योगदान दिया है। कोरिया में रहकर हिन्दी भाषा का अध्यापन कराते हुए उनकी भाषा को भी सीखा और वे उसमें इतने पारंगत हो गए कि उन्होंने कोरिया की लोककथाओं का अनुवाद भी किया। जब मैं उनकी अनूदित कहानियाँ पढ़ती हूँ तो ऐसा लगता ही नहीं है कि वे किसी और भाषा की है। वे कहानियाँ मौलिक कहानियों सा ही आनंद देती हैं। अनेकानेक कहानियों के साथ दिविक जी ने कई पुस्तकें लिखीं और अभी भी वे निरंतर लिख रहे हैं।

वरिष्ठ विज्ञान लेखक देवेंद्र मेवाड़ी जी ने लगभग आधी सदी तक विज्ञान लेखन की साधना की है। देवेंद्र मेवाड़ी जी विगत 45 वर्षों से हिंदी में, नियमित रूप से विज्ञान लेखन, अनुवाद और संपादन का कार्य कर रहे हैं। 'मेरी यादों का पहाड़' उनका आत्म कथात्मक संस्मरण है जिसे पढ़ने के बाद मन वहीं घूमा करता है। वे कई वर्षों से विद्यालयों में जाकर हजारों बच्चों को विज्ञान की कहानियाँ सुना चुके हैं। उन्होंने बहुत सारी कहानियों के साथ-साथ कई पुस्तकें भी लिखी हैं। उन्हें प्रकृति से बहुत ज़्यादा प्रेम है। मेरी जब भी बात होती है तो हम कौओं के बारे में ढेर सारी बातें करते हैं। शकुंतला कालरा जी और उषा यादव जी ने भी बाल साहित्य में बहुत काम किया है।

अगला नाम मैं जो लेने जा रही हूँ, उन्हें हम सभी ने बहुत पढ़ा और सुना है। एक बहुत अच्छे लेखक होने के साथ ही वे बेहतरीन वक्ता हैं। विकास दवे जी, देवपुत्र नाम की बाल पत्रिका से विगत 25 वर्षों से एक संपादक के रूप में जुड़े हुए हैं और वर्तमान में साहित्य अकादमी, मध्य प्रदेश के निदेशक हैं। उनके 3-4 कहानी संग्रह आए हैं और उनकी सभी कहानियाँ सामाजिक सरोकार से जुड़ी होती हैं। मुझे जो कहानी सबसे अधिक अच्छी लगी वह है 'अपनी-अपनी छुट्टियाँ'।

इस कहानी में बड़े रोचक ढंग से अलग-अलग घरों के बच्चे एक साथ अपनी आने वाली गर्मी की छुट्टियों की योजना बनाते हैं। मध्यमवर्ग अथवा उच्च वर्ग के बच्चे जो अपेक्षाएँ रखते हैं, वही सारी अपेक्षाएँ ही इन बच्चों की होती हैं- कोई संगीत सीखना चाहता है, कोई तैरना सीखना चाहता है, कोई चित्रकला, कोई नृत्य। लेकिन अचानक दादा जी एक दिन इन सब को लेकर एक निम्न वर्गीय बस्ती में जाते हैं जहाँ के बच्चों के लिए उनकी सामान्य दिनचर्या ही मजदूरी अथवा सड़कों पर से पन्नी बीनने की रहती है। उन बच्चों से बातचीत करने पर ध्यान में आता है कि मनुष्य की सर्वाधिक प्राथमिकता दो समय का भोजन ही है। यदि वह ठीक से हो जाए तो उसके बाद उस श्रेणी के बच्चे थोड़ा बहुत पढ़ने के बारे में विचार कर पाते हैं। दादा जी सब बच्चों को प्रेरणा देते हैं कि सारे बच्चे मिलकर इस बस्ती के बच्चों को अपनी-अपनी रुचि की कोई एक विधा सिखाएँगे। इस तरह एक अनूठे सेवा संकल्प के साथ कहानी का समाधान के रूप में समापन होता है। ऐसी ही अनेक बाल कहानियाँ विकास दवे ने लिखी हैं क्योंकि बाल मनोविज्ञान पर भी वे गहरी पकड़ रखते हैं।

इंदौर के गोपाल माहेश्वरी, देवपुत्र बाल मासिक पत्रिका के कार्यकारी संपादक होने के साथ ही बेहतरीन लेखक एवं वक्ता भी हैं। उन्होंने कई बाल कहानियाँ एवं कवितायें लिखी हैं जो बेहद रोचक और मज़ेदार हैं।

अनिल जायसवाल पिछले 25 वर्षों से बाल कहानी लेखन कर रहे हैं और नंदन से जुड़े हुए हैं। उनकी करीब 50 कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी कहानियों में, अँगूठी में चूहा, बैक बेंचर, थैंक्यू सर, सच हुआ सपना और दाने की तलाश मुझे बहुत पसंद हैं। 'दाने की तलाश' कहानी एक चिड़िया की है जो अपने लिए खाना ढूँढ़ती है और अंत में उसे एक बच्ची मिलती है जो उस चिड़िया की तकलीफ़ समझती है और उसे खाना देती है और रोज खाना देने का वादा भी करती है।

इस कहानी में दया का भाव बहुत ही खूबसूरती के साथ निकल कर आया है और मैंने जितनी बार भी ये कहानी पढ़ी है, मुझे ये बहुत पसंद आई है। अनिल जी की इस कहानी में हमारी सोनी चिड़िया ब्रेड खा रही थी और साहित्यकार शिवदयाल जी की कहानी में चमचम मैना बहुत चटोरी है। दादी और उसकी दोस्ती किशमिश खाने को लेकर शुरू होती है और बड़ी ही खूबसूरती से आगे बढ़ती है। शिवदयाल जी बच्चों की पत्रिका बाल किलकारी के संपादक हैं और बड़ों की कहानियों के साथ-साथ उन्होंने कई बाल कहानियाँ भी लिखी हैं। उनकी कहानियाँ जैसे दोस्ती, बिल्ली की भूख, सवारी, छवि रानी, नील परी और 'लौटकर चीका घर को आया' मुझे बेहद पसंद हैं।

पटना के ही भगवती प्रसाद द्विवेदी जी की प्रकाशित बालकहानियाँ लगभग तीन सौ हैं। 'मेरी प्रिय बालकहानियाँ' नाम से उनकी चुनिंदा कहानियों का संग्रह भी है। 'मन का चोर' कहानी का किशोर, शिक्षक की कीमती कलम को चोरी की नीयत से छिपा लेता है, पर मनोवैज्ञानिक ढंग से वह न सिर्फ़ गुरु जी की कलम लौटाता है, बल्कि अपनी ईमानदारी के लिए पुरस्कार स्वरूप उसे प्राप्त भी करता है। एक और उनकी कहानी है, 'चार दिन की चाँदनी', यह कहानी बाल कलाकारों के शोषण और उनका स्वाभाविक बचपन छीनने की कहानी है।

पवित्रा अग्रवाल जी की कहानियाँ हमेशा दिल को छू जाती हैं। 'नोट कभी नहाते नहीं' कहानी में

उन्होंने साफ़-सफ़ाई के बारे में बहुत ही आसान तरीके से समझाया है। उन्होंने करीब 140 कहानियाँ लिखी हैं और 25-25 कहानियों के उनके दो संग्रह प्रकाशित हुए हैं।

क्षमा शर्मा जी लम्बे समय तक नंदन से जुड़ी रहीं। उनकी अब तक 40 किताबें और उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी शिब्बू पहलवान, पप्पू चला ढूँढ़ने शेर और बोलने वाली घड़ी कहानी मुझे बेहद पसंद है। बोलने वाली घड़ी, बड़ी मज़ेदार कहानी है। इसमें एक बच्चा अपनी बोलने वाली घड़ी से बातें करता है। सारे खिलौने इस बात से घड़ी से नाराज हो जाते हैं पर बाद में बच्चे को दुख न हो इसलिए वे सब उसके दोस्त भी बन जाते हैं।

घमंडीलाल अग्रवाल जी को हम सबने बहुत पढ़ा है और उन्होंने बाल साहित्य में बहुत काम किया है। उन्होंने अब तक 45 पुस्तकें सम्पादित की हैं। ये बहुत बड़ी बात होती है कि लेखक अपने साथ-साथ दूसरे लेखकों के कार्यों को भी समाज तक पहुँचाए। उनकी 'पीपल में भूत और बादल बरस गए' कहानियाँ बहुत ही खूबसूरत हैं। कहानी में दया और मदद का भाव बहुत ही सहज रूप से दिखाया गया है जिसे बाल मन तुरंत समझ लेगा। घमंडीलाल जी ने बाल कहानियों की बहुत पुस्तकें लिखी हैं और अभी भी वह बाल साहित्य में बेहद सक्रिय हैं।

लखनऊ की अमिता दुबे भी कई वर्षों से लेखन में अपना अमूल्य योगदान दे रही हैं। वह उप्र हिंदी संस्थान में संपादक के रूप में कार्यरत हैं। उनकी बाल कहानियाँ भी बेहद प्यारी होती हैं। उनके कई निबंध संग्रह, कविता संग्रह, कहानी संग्रह, समीक्षाएँ, आलोचनाएँ आदि प्रकाशित हो चुके हैं।

लखनऊ के ही संजीव जायसवाल 'संजय' जी हर आयु वर्ग के लिए लिखते हैं। उनकी अब तक लगभग 750 कहानियाँ बच्चों की प्रकाशित हो चुकी हैं। मुझे उनकी कहानी 'चंदा गिनती भूल गया' काफ़ी पसंद है। इस कहानी में चंदा रोज रात में आसमान के तारों को गिनने की कोशिश करता है लेकिन असंख्य तारों को गिनते-गिनते कभी गिनती भूल जाता है और कभी रात बीत जाती है। कहानी की कुछ पंक्तियाँ हैं- 'उस दिन तो चंदा रो ही पड़ा, 'ऊँ..., ऊँ...' ये क्या हो जाता है? क्या मैं गिनती भूल गया हूँ? कभी गिनती पूरी ही नहीं कर पाता हूँ। और आख़िरी में रास्ते में एक गाँव में बच्चे खेल रहे थे, नाच और गा रहे थे कि धरती पर जितने बच्चे प्यारे-प्यारे, आसमान में हैं उतने ही तारे।' बस सूरज को उत्तर मिल जाता है और वह दौड़कर चंदा को बताता है तो चंदा रोज रात में बाहर निकलता है और बच्चों को देखकर खुश होता है।

लखनऊ के हेमंत कुमार जी ने बाल साहित्य में बहुत काम किया है। उनकी अब तक आठ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इसके अलावा उनकी सात चित्रात्मक कहानियों की पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं। मुझे उनकी हाईटेक जंगल, बड़ी बहादुर चींटी, चुनमुन का घर, मंत्री बन्दर मस्त कलंदर और दीदी मुझे माफ कर दो, कहानी बहुत पसंद है।

लखनऊ के ज़ाकिर अली रजनीश जी ने अनेकानेक विज्ञान कथाएँ लिखी हैं। उन्होंने विज्ञान केंद्रित ऐसी बहुत सारी कहानियाँ लिखी हैं, जो समाज से जुड़ी हुई हैं और इसी कारण इन्हें सराहा गया। उनकी सर्वश्रेष्ठ विज्ञान कथा मैं 'ह्यूमन ट्रांसमिशन' को मानती हूँ जो एक लम्बी कहानी है और जिसे लघु बाल उपन्यास भी कह सकते हैं। ज़ाकिर जी की अब तक कुल 67 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें से 22

पुस्तकें मौलिक बाल कहानी एवं बाल उपन्यास संग्रह हैं।

लखनऊ की ही नीलम राकेश जी ने लगभग 500 से ऊपर बाल कहानियाँ लिखी हैं। उनकी एक कहानी मुझे बहुत पसंद है, 'घड़ी ने खोला राज़'। इस कहानी में रहस्य, जिज्ञासा, रोचकता के साथ-साथ विपरीत परिस्थितियों में हिम्मत और दूसरे की मदद की भावना रेखांकित होती है। नीलम जी ने बच्चों के लिए अब तक 15 पुस्तकें लिखी हैं।

लखनऊ की शीला पांडेय भी सक्रिय रूप से लेखन कर रही हैं। इधर मत आना, सबक, भूरा और भूरी, अनुभूति और साँची की गुड़िया मेरी पसंदीदा कहानियाँ हैं। उनकी तीन पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं।

अब जब लखनऊ के साहित्यकारों के बारें में ज़िक्र हो रहा हैं तो एक प्रसिद्ध नाम मैं और लेना चाहूँगी, लायक राम मानव जी का... मानव जी, उजाला पत्रिका के संपादक हैं, और सन 1988 से इस पत्रिका का संपादन कर रहे हैं। कुछ प्रमुख बाल कहानियाँ जो मुझे पसंद हैं। ऊपर भी मुसीबत, नीचे भी मुसीबत, चूहों की कामयाबी, लौट के बुद्धू घर को आए, कौन बड़ा, कौन छोटा, अकड़ू-बकड़ू, एक घूँट पानी, अनमोल खजाना, छोटी सी गलती, हँसमुखी, प्यारे का गुस्सा और जन्मदिन की पार्टी।

मेरी सबसे प्रिय कहानी है - जन्मदिन की पार्टी। यह कहानी एक ऐसे बच्चे की है, जिसे खाना बर्बाद करने की आदत है। वह घर में तो रोज खाना बर्बाद करता ही है, बाहर शादी-पार्टी में भी कई तरह की चीजों से पूरी प्लेट भर लेता है। जबकि उसमें से खा थोड़ा ही पाता है, बाकी डस्टबिन में जाता है। उसकी इस आदत से उसके माता-पिता बहुत परेशान रहते हैं। अंत में वे उसके एक मित्र की मदद से एक योजना बनाते हैं और उसकी आदत सुधारने में कामयाब हो जाते हैं। यह आदत बहुत से बड़े लोगों में भी होती है। इस आदत की वजह से हमारे देश में प्रतिदिन इतना खाना बर्बाद होता है, जिससे लाखों भूखे लोगों का पेट भर सकता है। बच्चों में प्रारंभ से ही यह समझ पैदा करना जरूरी है, जिससे वे भोजन के एक-एक दाने का महत्त्व समझ सकें।

बीकानेर की इंजीनियर आशा शर्मा की कहानी 'छई छप छई' बेहद पसंद है जिसमें एक पिल्ले के माध्यम से, बच्चों को नहाने से बचने की आदत के बारे में बताया है। उनकी कहानी काव्य, बाल-कहानी, बाल कविता की छः कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। आपकी रचनाएँ प्रायः ही पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं।

हिंदी बाल साहित्य के क्षेत्र में एक सुपरिचित नाम है-गोविंद शर्मा। ये बाल कथा लेखक हैं। अब तक इनकी बाल साहित्य की 36 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनका एक लोकप्रिय बाल कथा संग्रह है- काचू की टोपी। इस पुस्तक पर उन्हें केंद्रीय साहित्य अकादमी का बाल साहित्य पुरस्कार 2019 मिल चुका है। वैसे राजस्थान साहित्य अकादमी का पुरस्कार, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार का भारतेंदु पुरस्कार वर्षों पहले उन्हें मिल चुके हैं। उनके उक्त पुरस्कृत बाल कथा संग्रह की शीर्ष कथा है 'काचू की टोपी', इसमें ईमानदार पहाड़ी युवक काचू और उसकी गर्म ऊनी टोपी की कहानी है। उसकी टोपी चुरा ली जाती है। वह चोर की तलाश करता है। एक जगह चोर उसकी टोपी सिर पर पहने सो रहा होता है। काचू अपनी टोपी ले लेता है। टोपी लेकर सीधा पुलिस स्टेशन पहुँचता है और कहता है कि 'यह मेरी

टोपी है। इसे चुरा लिया गया था। पर वह चोर एक जगह सोया हुआ मिल गया। मैंने चुपके से अपनी टोपी ले ली।' थानेदार बोले- 'तुम्हारी टोपी तुम्हारे पास आ गई बात ख़त्म। यहाँ क्यों आए हो?'

'साहब, ये मेरी टोपी मेरे पास चोरी से आयी है। मुझे सजा मिलनी चाहिए।'

थानेदार ने पूछा- 'जब तुम इस तरह की ईमानदारी और सच्चाई की बात करते हो तो लोग तुम्हें बुद्धू या बावला नहीं कहते हैं?'

'हाँ, कहते हैं। बहुत कुछ कहते हैं, समझदार कोई नहीं कहता। तो क्या समझदार कहलाने के लिए झूठा और बेईमान बनना पड़ता है। नहीं-नहीं मुझे नहीं बनना ऐसा समझदार।'

यह एक नमूना है उनके लेखन का। बाल साहित्य की उनकी प्रत्येक रचना में दो तत्व अवश्य ही होते हैं - सीख और मनोरंजन। उनकी कई हास्य रचनाएँ पढ़कर बहुत हँसी आती है और हम सोचने को मजबूर हो जाते हैं कि कैसे रोचक तरीक़े से वह, एक सीख दे गये।

सलूम्बर की विमला भंडारी जी भी लेखन में बहुत सक्रिय हैं और अब तक करीब डेढ़ सौ बाल कहानियाँ लिख चुकी हैं। उनकी एक कहानी है, 'करो मदद अपनी'... मेहनत करने वालों की कभी हार नहीं होती, ये बात तो हम अब जानते हैं पर विमला जी ने एक चींटी के माध्यम से ये बात बहुत ही मजेदार तरीके से बताई है और हास्य का पुट देते हुए चींटी को चाची भी कहलवाया है।

कुसुम अग्रवाल जी की भी कहानियाँ हम बहुत पढ़ते रहते हैं। उन्होंने अब तक करीब 400 कहानियाँ लिखी हैं। उनकी एक कहानी है, 'हमें बचाओ', बच्चों को पर्यावरण की रक्षा के लिए प्रोत्साहित करती है, खासकर पेड़ों को काटने से बचाने के लिए। 'चाँद' पर एक और कहानी बहुत खूबसूरत मुझे याद आ रही है, और वह है शिवचरण सरोहा जी की.. इस कहानी का शीर्षक भी चाँद है और पूरी की पूरी कहानी, चाँद का मानवीकरण कर आगे बढ़ती है। कहानी का एक हिस्सा है- 'रात के अँधेरे में नाव पर लालटेन धरे, एक मल्लाह नाव खे रहा था। चप्पू, पानी को चीरते हुए छप्प-छप्प कर रहे थे। चाँद चप्पू से बचना चाहता था। बचते-बचते चप्पू उसके सिर से टकरा गया। उसे दर्द महसूस हुआ लेकिन वह यह देखकर खुश हुआ कि मल्लाह चाँद का गीत गा रहा था।

'ओ...ओ...मेरी मड़ैया आना चंदा।'

शिवचरण सरोहा जी ने लगभग अस्सी बाल कहानियाँ लिखी है और उसमें से अधिकांश मुझे बहुत पसंद है।

और अब शिव मोहन यादव की कहानियों के बारे में कुछ बताना चाहूँगी। उनकी कहानियाँ बाल मनोविज्ञान, बच्चों के शोषण, बाल शिक्षा, जैसे विषयों पर आधारित होती हैं। उनकी लगभग 120 कहानियाँ और दो किताबें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी कहानी 'बोझ' मुझे बहुत पसंद है। यह कहानी बच्चों पर होने वाले पढ़ाई के दबाव की ओर लोगों का ध्यान खींचती है। कहानी संदेश देती है कि बच्चों का स्वास्थ्य जितना बेहतर होगा, वे पढ़ाई में भी उतना ही बेहतर कर सकेंगे।

गिरिजा कुलश्रेष्ठ जी ने भी बेहद सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं। उन्होंने लगभग चालीस कहानियाँ लिखी हैं। जिसमें 'कुट्टू कहाँ गया' मुझे पसंद है।'

हरियाणा की ही शील कौशिक जी के तीन बाल कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। वे अब तक

70 के करीब बाल कहानियाँ लिख चुकी हैं। मुझे उनकी कुछ कहानियाँ बहुत पसंद हैं, धूप का जादू, काला आसमान, मिष्ठी का सवाल, दादा-दादी रैंप पर। 'धूप का जादू' कहानी में धूप का मानवीकरण करते हुए धूप को बिटिया की संज्ञा दी गई है। धूप का सर्दियों में सभी स्वागत करते हैं। बूढ़े सोहन काका, वृक्ष, गृहिणियाँ व बाल-बच्चे। वे सब उसे जादूगर बिटिया कहते हैं। कहानी में सहज व दिलचस्प तरीके से धूप से होने वाले फायदों के बारे में भी बताया गया है।

कटनी की डॉ. सुधा गुप्ता अमृता ने भी बाल साहित्य के क्षेत्र में बहुत काम किया है। कुल ग्यारह 11 पुस्तकें एवं अनेक संकलन सभी विधाओं में उन्होंने लिखे हैं साथ ही सात किताबें प्रकाशनाधीन हैं। उनकी एक पुस्तक 'चलें भ्रमण की ओर' आई है, जो बेहद रोचक है।

संभल से डॉ. उमेश चंद्र सिरसवारी भी वर्षों से साहित्य के क्षेत्र में अपना अमूल्य योगदान दे रहे हैं। उन्होंने बहुत सारी बाल कहानियाँ, लेख, और निबंध आदि लिखे हैं। उनका एक बाल कहानी संग्रह 'जन्मदिन का उपहार' भी शीघ्र ही प्रकाशित होकर आ रहा है और 'स्मार्ट जंगल' नाम से एक ही प्यारा कविता संकलन भी है, जिनकी कवितायें बाल मन को लुभा लेती हैं।

संगीता सेठी ने बच्चों के लिए करीब सौ कहानियाँ लिखी हैं। उनकी एक कहानी है, 'अब आस्था चप्पल पहनेगी'। उनकी अब तक छः कहानियों की पुस्तकें भी आ चुकी हैं।

राजस्थान की अलका अग्रवाल जी ने भी बहुत बाल कहानियाँ लिखी हैं। 'जब खिलौने रूठ गए' उनका कहानी संग्रह बहुत ही रोचक है। उनका दूसरा संग्रह है कहानियों की दुनिया, इसके अलावा उनकी अब तक 5 पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं। मुझे उनकी 'चिंटू और चॉकलेट' कहानी बहुत ही मज़ेदार लगी।

राजस्थान के दीनदयाल शर्मा जी भी वर्षों से बाल साहित्य लेखन में अपना अमूल्य योगदान दे रहे हैं। उन्होंने रोचक और मनोरंजक कहानियाँ लिखी हैं। अब तक उनके पाँच कहानी संग्रह आ चुके हैं। 'चिंटू-पिंटू की सूझ' उनका प्रथम हिंदी बाल कहानी संग्रह है। इसकी प्रथम शीर्षक कहानी मुझे बेहद प्रिय है। इसमें कहानी के महत्व को दर्शाया गया है। एक बिल्ली अपने दोनों बच्चों को रोजाना कहानी सुनाती है। एक दिन उसी पुरानी कहानी की स्थिति आ जाती है जो दो बिल्ली और बंदर वाली थी। तब दोनों बच्चे झगड़ा छोड़कर आपस में ही बँटवारा कर लेते हैं और बंदर अपना सा मुँह लेकर रह जाता है। दीनदयाल जी बच्चों के लिए वर्षों से 'टाबर टोली' नाम का अखबार भी निकाल रहे हैं।

राजेंद्र श्रीवास्तव जी ने अब तक 42 बाल कहानियाँ लिखी हैं। उनकी कहानियाँ भी बेहद सारगर्भित और प्यारी होती हैं। उनका एक बाल कहानी संग्रह 'जैसा खोया वैसा पाया' भी है, जिसमे नौ बाल कहानियाँ हैं। इसी संग्रह की एक बाल कहानी है - 'जैसा खोया वैसा पाया', यह मेरी प्रिय कहानियों में से एक है। इस कहानी की कुछ पंक्तियाँ हैं, कई दिनों तक खूब पानी गिरा नदियों, बाँधों और समुद्र से जो पानी भाप बनकर उड़ गया था, वही बादल बनकर बरस रहा था। समुद्र भी खुश, नदियाँ भी खुश, और धरती भी खुश, पौधे भी खुश, और नन्हीं भी खुश। सब खुश।

दादा जी ने कहा-'बरसा जल धरती पर आया, जैसा खोया वैसा पाया।'

अब मैं ज़िक्र करना चाहूँगी जयंती रंगनाथन जी का, जयंती रंगनाथन जी की कहानियाँ भी मैं कई

वर्षों से पढ़ती चली आई हूँ। उन्होंने बड़ों के साहित्य के साथ-साथ बाल साहित्य में भी बहुत काम किया है और अनेक कहानियाँ लिखी हैं। खुशियों की छड़ी, रोशी कहाँ गया? और जुगाडू चूहा मेरी मनपसंद कहानियाँ हैं। बच्चों की प्रसिद्ध पत्रिका 'नंदन' में उन्होंने वर्षों तक कार्यकारी संपादक के रूप में काम किया है।

राजकुमार धर द्विवेदी जी की कहानियाँ भी बहुत रोचक होती है। उनकी कहानियों में पेड़-पौधों के संवाद बहुत ही रुचिकर लगते हैं। उनकी 'टेलीफोन और मोबाइल', 'घड़ा और सुराही' कहानियाँ मुझे बहुत पसंद हैं। उन्होंने इनमें इस बात को उभारा है कि अपने पुरखों का, बड़ों का सम्मान करो, चाहे जितने बड़े बन जाओ, चाहे जितने लोकप्रिय हो जाओ। मोबाइल कहता है कि वह आज हर हाथ में है, आधुनिक तकनीक से युक्त है, लेकिन उसके लिए टेलीफोन कम नहीं। उसी का वह नया रूप है। इसी तरह सुराही भी घड़े से कहती है कि मैं और आप एक ही काम के लिए हैं। वह काम है लोगों को ठंडा जल पिलाकर उन्हें तृप्त करना, सेवा करना। तो सही बात है कि हर व्यक्ति हर वस्तु का अपना विशेष महत्त्व होता है जो कि किसी से भी बदला नहीं जा सकता है।

फ़क़ीर चंद शुक्ला जी का भी बाल साहित्य में बहुत काम हैं और उन्होंने कई किताबें लिखी हैं। वर्षों से काम करते हुए वे आज भी निरंतर अपना साहित्य सृजन कर रहे हैं।

राकेश चक्र जी भी विगत कई वर्षों से लिख रहे हैं और उनकी करीब 150 बाल कहानियाँ हैं। उनकी 10 पुस्तकें बाल कहानियों की अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं।

दिल्ली के विज्ञान भूषण विगत ग्यारह वर्षों से हिंदी दैनिक हरिभूमि के फीचर विभाग में कार्यरत हैं। इसी की बालपत्रिका बालभूमि में संपादन सहयोग कर रहे हैं। एक बालकथा संकलन 'हार की खुशी' उनकी प्रकाशित कृति है। एक कविता संग्रह 'कुकुरमुत्तों का शहर' और आलोचनात्मक लेखों की पुस्तक समीक्षा का लोकतंत्र भी प्रकाशित हो चुकी है। उनकी कई कविताएँ, कहानियाँ, समीक्षाएँ, साक्षात्कार और बाल कथाएँ पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं।

सिराज अहमद की मज़ेदार कहानियाँ भी हम पढ़ते रहते हैं। उन्होंने अब तक करीब 250 कहानियाँ लिखी हैं।

नीलिमा टिक्कू ने भी बड़ों के साथ-साथ बाल साहित्य पर काम किया है। उन्होंने बीस के करीब बाल कहानियाँ लिखी हैं और मुझे वे बड़ी मज़ेदार लगी हैं।

कानपुर के शिवचरण चौहान जी की अनेकानेक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। बाल साहित्य की उनकी दो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। उन्होंने बच्चों के अभियान चला कर बाल कल्याण व बाल साहित्य के लिए विशेष कार्य किये हैं। उनकी कई कहानियाँ मुझे बहुत पसंद हैं, जिनमें अंगूर के बीज, पेट के छाले, गले बँधी घंटी, देश का बेटा, एक अकेला, जिद का फल, प्रमुख हैं। नवम्बर 20 से प्रकाशित होने जा रही, 'बाल संस्कार' नाम की मासिक पत्रिका का वे संपादन भी करेंगे।

मथुरा के दिनेश पाठक शशि जी बरसों से लेखन में सक्रिय हैं। बड़ों के साथ-साथ उन्होंने बच्चों के लिए भी बहुत काम किया है। उनकी कहानियाँ दिल को छू जाती हैं। पाठक जी की अब तक बाल साहित्य की कुल 13 पुस्तकें छपी हैं जिनमें 12 बाल कहानी संग्रह, एक बाल उपन्यास है। 'मॉर्निंग वॉक

कहानी में धैर्य नाम का एक छोटा सा बच्चा है जो अपना सारा समय टीवी देखने में खराब कर देता है। पर जब गाँव से उसके दादाजी आते हैं तो वह उसको बड़े ही सरल और सुन्दर तरह से समय का सदुपयोग करना सिखाते हैं। इसी कहानी की कुछ पंक्तियाँ हैं, एक सुबह धैर्य जब दादू के साथ प्रात: भ्रमण पर गया तो उसने कई मोरों को अपने सुन्दर पंखों को फैलाकर नाचते देखा। उसका मन किया कि वह एक मोर के ऊपर बैठकर आनन्द ले। तालाब में तैरती बतखों व उनके बच्चों को तैरते देखकर तो धैर्य खुशी से ताली बजाने लगा। आज प्रात: भ्रमण में बहुत आनन्द आया, प्रसन्न होते हुए वह सारी बातें अपने मम्मी-पापा को बताने लगा। दादा और पोते की ये कहानी बहुत ही प्यारी है।

मथुरा के ही आचार्य नीरज शास्त्री जी ने भी बाल साहित्य में बहुत योगदान दिया है। उनके द्वारा लिखी गई बाल कहानियाँ बेहद मार्मिक और ममस्पर्शी होती हैं। उन्होंने कई बाल कहानियाँ लिखी हैं और 'सोच का प्रतिफल' उनका बाल कहानी संग्रह है। उनकी एक कहानी मुझे बेहद पसंद है जो उन्होंने माँ के ऊपर लिखी है। माँ की कुरूपता को देखकर बेटा असहज महसूस करता है और माँ से दूरी बनाने की कोशिश करता है, इसी कहानी की कुछ पंक्तियाँ हैं, माँ बोलीं- 'बेटा !...बात तब की है... जब तेरे पिताजी सीमा पर तैनात थे। दिवाली का दिन था... फुलझड़ी पटाखे... चारों ओर चल रहे थे। अचानक... कोई पटाखा आकर हमारे घर में गिरा... और... हमारे घर में आग लग गई बेटा! आग इतनी भयंकर थी कि... कोई भी पास आने की हिम्मत नहीं कर पा रहा था। तुम घर के अंदर थे... मेरे लाल। तुम्हें बचाने वाला... कोई नहीं था मेरे जतिन! इसलिए... मैं तुम्हें बचाने को आग में कूद गई और मेरा शरीर... जल गया। इसलिए मैं कुरूप हो गई मेरे बेटे!...'

और बेटा माँ के इस त्याग को देखकर उनके आगे नतमस्तक हो उठता है।

संजीव ठाकुर जी भी बाल साहित्य में एक लम्बे समय से जुड़े हुए हैं। उनकी दो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। कबूतरी आंटी बहुत ही मज़ेदार पुस्तक है और सौ के लगभग उनकी बाल कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं।

बाल कहानियों को बच्चों तक पहुँचाने की बड़ी ज़िम्मेदारी चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट और नेशनल बुक ट्रस्ट ने भी एक व्यापक स्तर पर निभाई है।

सीबीटी से गीता मेनन और नवीन मेनन ने भी बहुत सारी कहानियाँ लिखी हैं। और हज़ारों पुस्तकें सीबीटी से प्रकाशित हुई हैं जिनमें बच्चों के लिए बेहद मनोरंजक और खूबसूरत कहानियाँ हैं। चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट और नेशनल बुक ट्रस्ट ने लेखकों की बाल कहानियों को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलवाई है। नेशनल बुक ट्रस्ट हर साल राष्ट्र भर में बाल साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए सेमिनार और वर्कशॉप आयोजित करता रहता है। द्विजेन्द्र कुमार जी, जो कि रीडर्स क्लब बुलेटिन के संपादक भी हैं, प्रति वर्ष देश भर में 60-70, कार्यक्रम बहुत ही सुनियोजित और बेहतर ढंग से संपन्न करवाते हैं।

मैंने भी कई सेमीनार अटेंड किये हैं और बच्चों के बीच में जाना, उन्हें कहानी सुनाना, उनसे कहानी सुनना हर बार एक नया और सुखद अनुभव देता है।

'एसोसिएशन ऑफ़ राइटर्स वरिटेरस एंड इल्लुस्ट्रेटर्स फ़ॉर चिल्ड्रन' (AWĐC) से ईरा सक्सेना और

मनोरमा ज़फ़ा ने बहुत सारी कहानियाँ और किताबें लिखी हैं। ईरा जी वर्षों से लेखन के क्षेत्र में सक्रिय हैं। उनका एक बहुत ही रोचक उपन्यास है, गजमुक्ता की तलाश। सन 1996 में 'गजमुक्ता की तलाश' पर उन्हें 'शंकर पुरस्कार' भी प्राप्त हो चुका है। मनोरमा ज़फ़ा जी ने भी बाल साहित्य पर बहुत काम किया है। उन्होंने अब तक करीब 150 पुस्तकें लिखी हैं। मनोरमा जी, बहुत सारी लेखकों के लिए कार्यशालाएँ आयोजित करवाईं ताकि हर उम्र के बच्चों के हिसाब से कहानियाँ लिखी जा सकें। उन्होंने शिशु किताबें भी लिखीं जिनमें दस वाक्यों की कहानी के साथ 14 पन्नों की किताब की शुरुआत हुई। छोटे बच्चों की बड़ी साइज़ की और बड़े बच्चों की छोटे साइज़ की किताबें छपीं। जिससे बाल मन सहज ही उन पुस्तकों की तरफ़ आकर्षित हुआ। आज भी वे बच्चों की किताबों पर काम कर रही हैं।

पश्चिम बंगाल, कोलकाता से त्रिलोकनाथ पांडे जी ने भी बाल साहित्य पर बहुत काम किया है। उन्होंने कई किताबें और बहुत सारी कहानियाँ भी लिखी हैं, जिनमें मेरी मनपसंद कहानियाँ, शेरू का वादा, बंटी की दिवाली, पापा ये कोरोना क्या है? और धरती के रक्षक हैं। बंटी की दिवाली, कहानी में उन्होंने बड़ी ही सहजता के साथ जानवरों की तकलीफ़ को बताया है। बंटी नाम का बच्चा जब सिर्फ़ अपने मज़े और खुशी के लिए कुत्ते की पूँछ पर पटाखे बाँधता है। उसको उसके पापा उस कुत्ते के दर्द का एहसास कराते हैं।

कोलकाता से ही शिखर चंद जैन भी बाल साहित्य से पिछले 25 वर्षों से जुड़े हुए हैं। उनकी बालकहानियों की एक बहुत ही प्यारी पुस्तक प्रकाशित हुई है, डिजाइनर घोंसला और कई सौ से ज़्यादा उनकी कहानियाँ, लेख, आदि छप चुके हैं।

उज्जैन से, मीरा जैन ने भी बच्चों में सुंदर आचरण, व्यक्तित्व विकास एवं देशभक्ति आदि की भावना को समाहित करते हुए लगभग 200 बाल कहानियाँ लिखी हैं और सक्रियता के साथ लगातार लिख भी रही हैं। बाल कहानियों पर आधारित किताब 'सम्यक लघुकथाएँ' की मुझे बहुत सी कहानियाँ पसंद हैं। उनमें से एक है, 'ज़मीन आसमान' जो देशभक्ति पर आधारित है। इस कहानी में- 15 अगस्त के अवसर पर बालआश्रम में झंडा वंदन के वक्त, एक विदेशी संस्था के पदाधिकारी मौजूद होते हैं वे बच्चों से पूछते हैं कि –'बताओ बच्चों! आप लोगों की क्या आवश्यकता है, हम उन्हें पूरा करेंगे, हमारी संस्था बेसहारा व अनाथ बच्चों के हित में ही काम करती है?'

इस पर एक बालक खड़ा होकर तिरंगे झंडे की ओर इशारा कर कहता है-

'अंकल! जिसके सिर पर तिरंगा लहरा रहा हो, वह भला अनाथ कैसे हो सकता है?'

और अब मैं ज़िक्र करना चाहूँगी, रेनू मंडल का। उनकी अब तक ढाई सौ से अधिक बाल कहानियाँ और एक साझा बाल कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुका है। यूँ तो बहुत सी कहानियाँ मन के करीब हैं किंतु कहानी 'वेलकम एंजिल' और 'गुड्डू का हाथी' मुझे बहुत पसंद हैं। 'वेलकम एंजिल' की कुछ पंक्तियाँ हैं...सूर्य देवता, उनींदी आँखें लिए आलस्य में बिस्तर पर पड़े हुए थे। तभी मिनी चिड़िया उनके कान में आकर फुसफुसाई। उसकी बात सुनते ही सूर्य देवता का आलस छूमंतर हो गया। उन्होंने तुरंत बिस्तर छोड़ दिया। झटपट तैयार हुए और अपने रथ पर सवार होकर आकाश मार्ग से पूरब दिशा की ओर चल दिए। तभी रास्ते में राजा कबूतर मिल गया। वे अपने लिए दाना चुगने जा रहा था। सूर्य देव को देख

उसने पूछा, 'अरे सूर्य देव, इतनी जल्दबाजी में कहाँ भागे जा रहे हो?' 'मिनी चिड़िया ने मुझे बताया है कि नन्हें एंजिल का जन्म हुआ है। बस उसी का स्वागत करने जा रहा हूँ।'

नागेश पांडे 'संजय' जी ने बाल साहित्य में बहुत काम किया है। उनकी अब तक कुल 38 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जिसमें से मुझे, नेहा ने माफी माँगी, आधुनिक बाल कहानियाँ, अमरूद खट्टे हैं, मोती झरे टप-टप, अपमान का बदला और भाग गए चूहे बेहद पसंद है।

मनोहर चमोली 'मनु' जी भी बाल साहित्य में बहुत वर्षों से अपना योगदान दे रहे हैं। उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और उन्होंने बाल कहानियाँ भी लिखी हैं और निरंतर लिख रहे हैं। मुझे उनकी 'चाँद का स्वेटर' और जीवन में बचपन, पुस्तक बहुत पसंद है। मनोहर जी की 'जलेबी के पेड़' और 'हवाई सैर' कहानी भी बहुत मज़ेदार है। वे शैक्षिक दख़ल पत्रिका में 'बाल साहित्य संपादक' भी हैं।

रजनीकांत शुक्ल जी की तेरह पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। उन्होंने 350 के करीब बाल कहानियाँ लिखी हैं। मज़ेदार पढ़ाई और बेफिज़ूल की बात उनकी चर्चित कहानियाँ हैं जो बच्चों को अपनी ओर खींच लेती हैं।

मोहम्मद अरशद खान जी ने करीब 650 से अधिक बाल कहानियाँ लिखी होंगी। उनके बाल कहानियों के 12 संग्रह प्रकाशित हैं। उनकी कहानियाँ बेहद रोचक और भावपूर्ण होती हैं। उनकी दो कहानियाँ बहुत ही मज़ेदार हैं। उनके नाम हैं, खुजली ऐसे हुई छुमंतर और घने जंगल में...।

किशोर श्रीवास्तव जी ने भी बच्चों के लिए काफी काम किया है। उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हुईं हैं और उन्होंने भी कहानियाँ लिखी हैं। किशोर जी की 'विश्वास की रक्षा' मेरी प्रिय कहानियों में से एक है। इसमें एक परिवार के पिता सबसे ज़्यादा विश्वास अपने नौकर पर करते हैं परन्तु परिस्थितिवश वही एक दिन घर में चोरी कर बैठता है। सबसे छोटे बेटे को यह पता होता है परंतु पूछताछ के वक्त वह नौकर के प्रति पिता जी के विश्वास को बनाये रखने के लिए चोरी का इल्ज़ाम अपने ऊपर ले लेता है।

पवन कुमार वर्मा जी की अब तक 70 के करीब कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इसके अलावा छ: बाल कथा संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी कहानियाँ भी सरल शब्दों में पाठक को बाँध लेती हैं। मिट्ठू चाचा, गाँव की सैर, खुशी के आँसू, मेरी पसंदीदा कहानियाँ हैं। 'खुशी के आँसू' की कुछ पंक्तियाँ हैं, 'पापा, मम्मी पूरे साल हमारे लिए बहुत मेहनत करती हैं। हमारे लिए खाना-नाश्ता तैयार करती हैं। मैंने सोचा कि अपनी इस छुट्टी में मैं उनकी मदद करके उन्हें आराम करने का मौका दूँगी।' सृष्टि ने पापा की बात का जवाब दिया।

राजस्थान के राजकुमार जैन राजन जी बहुमुखी प्रतिभा के रचनाकार हैं, जिनकी करीब 40 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें 36 पुस्तकें बाल साहित्य की हैं। 'मन के जीते जीत', 'पेड़ लगाओ', 'खोजना होगा, अमृत कलश', एवं 'जीना इसी का नाम है' मुझे बहुत पसंद हैं। राजकुमार जी कई पत्रिकाओं के संपादन से जुड़े हुए हैं और कई पत्रिकाओं ने अपने चर्चित 'बाल साहित्य विशेषांक' आपके संपादन में प्रकाशित किये हैं। कई विद्यालयों और संस्थाओं में लाखों रुपये का साहित्य आप नि:शुल्क भेंट कर दिया है जिससे अनेक बच्चे लाभान्वित हो चुके हैं।

कानपुर के आशीष शुक्ला भी बिलकुल नए तरह से वर्षों से बाल कहानी लेखन कर रहे हैं। उन्होंने

बहुत सारी कहानियों के साथ ही दो पुस्तकें भी लिखी हैं। उनकी सपनों वाला तकिया पुस्तक बेहद रोचक है। जादुई गोलगप्पे और रावण का पुतला आशीष की बहुत ही प्यारी कहानियाँ हैं।

फ़हीम अहमद बाल साहित्य में बेहद परिचित नाम है। उनकी अब तक 800 से ज़्यादा रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं और उन्होंने अब तक 32 कहानियाँ लिखी हैं और मुझे उनकी 'नन्हा फरिश्ता' कहानी बेहद पसंद है।

34 वर्षों में डॉ. देशबंधु की लगभग 1100 से ज्यादा कहानियाँ और 11 बालसाहित्य की पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। एक कहानी की कुछ पंक्तियाँ- 'वह तो भगवान का लाख-लाख धन्यवाद कहो कि मैंने डाक्टर साहब की दुकान पर माँ को देखा और उधर चली गई। तभी डॉक्टर साहब की ये सारी बातें सुन लीं, वरना माँ तो अपने लिए कभी दवाएँ नहीं खरीदतीं।' कुछ क्षण रुककर रजनी ने फिर कहा,- ''मैंने पार्टी के लिए जोड़कर रखे अपने सारे पैसे माँ को दवा के लिए दे दिए। पार्टी से जरूरी माँ की दवाएँ हैं।'' ये 'माँ से प्यारा कुछ नहीं' कहानी की पंक्तियाँ हैं और कहानी है, देशबंधु शाहजहाँपुरी जी की।

वरिष्ठ बाल साहित्यकार बंधु कुशावर्ती जी का भी बाल साहित्य में बहुत योगदान रहा है। उन्होंने सन 1964-70 के बीच बालसाहित्य लिखा। बच्चों के रंगमंच यानी बालनाट्य लेखन और उसके मंचन पर उनका विशेष काम रहा है और यह मार्च 1974 से शुरू हुआ। इसमें उन्होंने बच्चों के रंगमंच के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्ष पर काम किया। हिन्दी में बच्चों के रंगमंच की पहली पत्रिका 'बालरंगमंच' का सन् 1976 से सम्पादन-प्रकाशन भी किया।

बरेली के कुमार रावेन्द्र कुमार रवि भी बच्चों के लिए और बच्चों के साथ बहुत काम किया है। उनकी कहानियों की संख्या डेढ़ सौ से 200 के बीच में है। 1983 से वह लेखन में निरंतर सक्रिय हैं। उनकी कहानी 'तितली उड़कर जा रही है', बेहद प्यारी और मार्मिक कहानी है।

ललित शौर्य की भी कहानियाँ बिलकुल नए तरह की होती हैं। मैंने कई कहानियाँ पढ़ी हैं और ज़्यादातर कहानियाँ पढ़कर मुझे लगा कि साधारण बातों से भी कितनी खूबसरती से कोई बात निकल कर आ सकती है। वे अब तक करीब 150 से अधिक कहानियाँ लिख चुके हैं। उनके दो कहानी संग्रह आये हैं, 'दादाजी की चौपाल और कोरोना वारियर्स'।

मुनटुन राज भी बहुत अच्छी कहानियाँ लिखते हैं। उन्होंने सौ के करीब कहानियाँ लिखी हैं। उनकी एक कहानी 'नया जीवन' बहुत ही सुन्दर कहानी है, जिसमें पेड़-पौधों के महत्त्व को दर्शाया गया है।

इंद्रजीत कौशिक जी की लगभग 1000 कहानियाँ हो चुकी होंगी जो लगातार प्रकाशित भी होती रहती हैं और बहुत ही सारगर्भित एवं रोचक कहानियाँ होती हैं। उनका एक कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ है जिसका शीर्षक 'मूँछों वाले मामाजी' है। बड़ी ही चर्चित और रोचक पुस्तक है।

भोपाल की प्रीती प्रवीण खरे ने भी बाल साहित्य में बहुत काम किया है। हालाँकि उन्होंने दस, बारह बाल कहानियाँ ही लिखी हैं। एक कहानी है उनकी, पलटू राम, जो हास्य का पुट लिए हुए है।

हास्य की बात चले तो मूर्खिस्तान लिखने वाले सुखवंत कलसी जी का नाम भुलाया नहीं जा सकता। उन्होंने बहुत सारी कहानियाँ लिखी हैं, कार्टून बनाये हैं। वे वर्षों से नन्हें सम्राट पत्रिका में मूर्खिस्तान के कार्टून भी बना भी रहे हैं। 1988 से ही नन्हें सम्राट का प्रकाशन शुरू हुआ और हम ये कह सकते हैं कि

नन्हें सम्राट के साथ ही मूर्खिस्तान की भी शुरुआत हुई। जूनियर जेम्स बॉन्ड की शुरुआत सन 1983 से हुई। उस समय में एक मैगज़ीन हुआ करती थी, 'चित्र भारती कथा माला।' 1971 में दीवाना नाम से एक मैगज़ीन आती थी, सुखवंत जी ने उसमें भी बहुत कार्टून बनाये हैं। 'टाटा स्काई' पर पिछले 3 साल से सुखवंत जी का चाचा-भतीजा लगातार प्रसारित भी हो रहा है।

भोपाल की ही कीर्ति श्रीवास्तव की कहानियाँ 40 के करीब होंगी। वे साहित्य समीर दस्तक की संपादक भी हैं। उनकी एक कहानी, 'शरारत नहीं करूँगी' सीख देती हुई, प्यारी सी कहानी है। उसकी कुछ पंक्तियाँ हैं, चीनी खुजली के कारण परेशान हो रही थी और फुदकते हुए चिल्ला भी रही थी। तभी चीनी बोली- 'सुन्दर मुझे माफ कर दो। मैं समझ गई कि किसी को परेशान करके मजे लेना कोई अच्छी बात नहीं है। अब मैं कभी भी ऐसी कोई शरारत नहीं करूँगी जिससे किसी का नुकसान हो।'

देहरादून के बद्री प्रसाद राघव जी के कई कहानियों के साथ-साथ 'पहाड़ और पहाड़ बाल-कहानी संग्रह' बेहद रोचक हैं और बच्चों को बातों ही बातों में सीख भी दी गई है।

ओमप्रकाश क्षत्रिय जी की अब तक 500 से ज्यादा कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी सात पुस्तकें व 108 ई बुक प्रकशित हो चुकी हैं। उनकी रचनाएँ बहुत सुंदर और मनोरंजक होती हैं।

बरेली के गुडविन मसीह भी साहित्य के क्षेत्र में जाना माना नाम है। उनकी अब तक तीन सौ के करीब बाल कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उनका 'प्रेरक बाल कहानियाँ' बहुत ही मनभावन कहानियों का संग्रह है। आकाशवाणी और दूरदर्शन से उनके सौ से ज़्यादा नाटक प्रसारित हो चुके हैं। देश की सभी स्तरीय बाल पत्रिकाओं में उनका लेखन पढ़ने को मिलता है। उनकी एक चर्चित बाल कहानी 'ईश्वर सब देखता है' मुझे बेहद प्रिय है।

सुंदरनगर के लेखक पवन चौहान भी वर्षो से बाल साहित्य में निरंतर सक्रिय हैं। उन्होंने कई कहानियाँ, संस्मरण एवं आलेख लिखे हैं। उनकी पुस्तक 'भोलू भालू सुधर गया' बाल कहानियों का संग्रह हैं, जिसमें मनोरंजक कहानियाँ हैं।

डॉ. भैरूलाल गर्ग, मुकेश नौटियाल, उदय किरोला, दर्शन सिंह आशट, साजिद खान, पूनम पांडेय, अलका प्रमोद, श्रद्धा पांडेय, स्नेह लता, सुधा आदेश, समीर गांगुली, इंदिरा त्रिवेदी, प्रमोद सनवानी, अंजीव अंजुम, भाग्यम शर्मा, अलका अस्थाना, बानो सरताज भी बाल साहित्य के क्षेत्र में निरंतर रूप से सक्रिय हैं और लगातार बाल साहित्य के क्षेत्र में अपना अमूल्य योगदान दे रहे हैं।

सम्पर्क : *पानीपत (हरियाणा)*

नीलम राकेश

पहचानो बालमन की चुनौती को

कार स्कूल की ओर दौड़ी चली जा रही थी और मेरा मन कारण तलाशने में लगा हुआ था। इस स्कूल से जुड़े मुझे दस से ज्यादा वर्ष हो चुके हैं परंतु इस तरह तो कभी नहीं बुलाया। ऐसी इमर्जेन्सी क्या आ गई होगी। प्रिंसीपल के स्वर में घबराहट स्पष्ट थी। मेरे पूछने पर भी कि क्या हुआ है उन्होंने कुछ नहीं बताया। बस एक ही बात ''आप तुरन्त आ जाइये।''

कक्षा बारह तक का स्कूल है। मतलब साफ है कि आधे से ज्यादा बच्चे 'टीन एज' यानी 13 से 19 साल की उम्र के हैं। अब इस उम्र की एक खास मन:स्थिति यानी साईकोलॉजी होती है-बहुत गुस्सा आता है, जल्दी जल्दी गुस्सा आता है। जब देखो तब मूड खराब हो जाता है। अपने विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण महसूस करना बड़ी ही स्वाभाविक बात है। टोका-टाकी बिल्कुल नहीं भाती। कोई कुछ कहे, मुँह से 'न' पहले निकलता है। दोस्तों के बीच झगड़ा आम बात है। झूठ बोलना, बहाने बनाना, पढ़ाई में मन न लगना ये सब इस उम्र में होता ही है। इन आम समस्याओं के लिये स्कूल समय-समय पर अलग-अलग समस्या को लेकर 'काउंसलिंग सेमिनार' आयोजित करता रहता है। पर प्राय: प्रिंसिपल मुझसे बात कर के सुविधानुसार कोई तारीख तय करती हैं। और सभी स्कूल भी यही प्रक्रिया अपनाते हैं। सभी को इससे सुविधा रहती है। सोचते-सोचते मैं स्कूल पहुँच गई थी।

प्रिंसिपल के ऑफिस में घुसते ही सदा मुस्कुराकर मिलने वाली मैडम अपनी कुर्सी पर बेचैनी से पहलू बदलती मिलीं। मुझे देखते ही बोलीं, ''आज कक्षा आठ के एक बच्चे ने स्कूल की छत पर जाकर अपने हाथ की नस काटने की कोशिश की। वो तो अचानक स्वीपर वहाँ पहुँच गया तो बड़ा हादसा बच गया। बहुत पूछने पर भी कुछ नहीं बता रहा। बस रोए जा रहा है। उसे आपके काउंसलिंग कक्ष में मीता मैम के साथ बैठा दिया है। अब आप देखिये।'' एक साँस में उन्होंने पूरी बात बता दी।

मैं तेजी से बच्चे के पास पहुँची। वो और जोर-जोर से रोने लगा। अपनी कुर्सी मैंने उसके पास खिसकाई और बैठ कर उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। उसने नज़रें उठा कर सीधे मेरी आँखों में देखा और कुछ देर देखता रहा। फिर सपाट स्वर में बोला, 'मैं घर नहीं जा सकता'। मैंने

सिर हिलाया, ''ठीक है तुम कह रहे हो तो कोई न कोई कारण तो होगा ही।''

''मैं मैथ्स में फेल हो गया।'' सपाट स्वर में वो पुनः बोला।

उसका हाथ थपथपाते हुए मैं बोली, ''अरे इतना परेशान क्यों हो? ट्यूशन लगवा देंगे। थोड़े दिनों में सब समझ आने लगेगा। तुम अकेले थोड़े न फेल हुए हो, और भी बच्चे फेल हुए होंगे...'' अभी मेरी बात पूरी भी नहीं हुई थी कि वो बात काटकर जोर से बोला, ''...पर उनके पापा, मेरे पापा जैसे नहीं हैं।''

कुछ पल के सन्नाटे को मैंने तोड़ा, ''कोई बात नहीं अगर वो नहीं कर सकते तो स्कूल तुम्हारे ट्यूशन की व्यवस्था कर देगा।'' उसने मुझे ऐसी नज़रों से देखा कि मैं कैसी बचकानी बात कर रही हूँ।

''बात पैसों की नहीं है मैम, पापा मैथ्स के टीचर हैं। वो खुद मुझे पढ़ाते हैं। पर वो इतना डाँटते और मारते हैं कि जैसे ही वो आते हैं मेरा दिमाग काम करना बंद कर देता है। वो डेढ़ घन्टा पढ़ाते हैं जिसमें वो पढ़ाते कम, मारते-डाँटते ज्यादा हैं।...और इस बार तो उन्होंने कहा था छमाही में अगर कम नम्बर लाये तो घर मत आना। मैं घर नहीं जा सकता।'' और उसका रोना फिर से शुरू हो गया।

यह बच्चा तो सँभल गया। उसकी और उसके माता-पिता की काउंसलिंग करके। पर ये और इसके जैसी अनेक घटनाएँ सोचने पर विवश करती हैं कि हम कैसे ऐसी परिस्थिति पैदा कर लेते हैं कि हमारी अपनी संतति को हमारे पास आने से अधिक आसान मत्यु को वरण करना लगने लगता है। हमारे बच्चे जो हमें जान से ज्यादा प्यारे हैं। हमारे सारे सपने उनके ही इर्द-गिर्द बुने होते हैं। फिर क्यों ऐसा होता है कि हम शासक बन जाते हैं। सिर्फ आदेश देने लगते हैं। हमारी अपेक्षाएँ बालक से बाल-सुलभ ना होकर रोबोट जैसी हो जाती हैं। जो सब कुछ परफेक्ट करेगा। हम उसकी क्षमता का भी ध्यान नहीं रखते। बस हमारे बच्चे को हर चीज में श्रेष्ठ होना चाहिये। इसी अपेक्षा से हम उसके पीछे पड़ जाते हैं। अकहा सा सामाजिक दबाव हम स्वयं ओढ़ लेते हैं। हमारी ममता, हमारा वात्सल्य कहाँ सो जाता है? इस उम्र में बच्चे को माँ की ममता, पिता का प्यार, भाई-बहन का स्नेह, दादी-बाबा का मनुहार चाहिये होता है। ये सब उसकी मानसिक और मनोवैज्ञानिक जरूरत है।

बच्चे को केवल अच्छे स्कूल में पढ़ाना, ब्रैन्डेड कपड़े पहनाना, महँगे रेस्त्रा में खिलाना, हिल स्टेशन पर घुमाना, और पढ़ाई में अच्छे नम्बर लाने के लिये डाँट लगाना ही हमारे माता-पिता होने की जिम्मेदारी की इतिश्री नहीं है। बड़ा होता हुआ बच्चा माता-पिता का साथ चाहता है। आपके साथ बचकाने खेल खेलना चाहता है। हँसना, रोना, गाना चाहता है। रूठने पर आपके द्वारा मनाया जाना चाहता है। ये सब करना बालक को खुशी देता है और आपके रिश्ते को गहराता भी है, उसे प्यार की ऊष्मा से सींचता भी है। जब आप उसके साथ दोस्त की तरह खेलते हैं, समय बिताते हैं, बतियाते हैं तो वो आपके करीब आता है, आपसे खुल जाता है। अपने मन की बात आपसे कह पाता है। अपने मन में आने वाले हर प्रश्न के हल के लिये वो आपकी ओर देखता है। इस विश्वास

से कि अकेला नहीं है। उसके माता-पिता हर हाल में उसके साथ हैं। ये विश्वास उसके व्यक्तित्व को मजबूती देता है कि बालक कठिन से कठिन काम करने की हिम्मत रखता है।

आज हम बिखरते रिश्तों की बात करते हैं, टूटते परिवारों का रोना रोते हैं। बच्चों में बढ़ती आत्महत्या और अपराधी प्रवृत्ती के प्रति चिन्ता जताते हैं। पर सच तो यह है कि इसका बीज हम स्वयं अपने बच्चों के बचपन में बो देते हैं। आज अधिकांश माता-पिता दोनों कामकाजी हैं। अत: दोनों ही अपने-अपने कारणों से बच्चे को समय नहीं देते। बड़ा होता हुआ बच्चा देखता है कि परिवार में बुजुर्ग बोझ हैं। जो एक बेटे के पास से दूसरे बेटे के पास भगाए जाते हैं। रिश्तेदारों का आना मुसीबत है। हाँ बच्चे को जो भी चाहिये, महँगे से महँगा, पाना उसका अधिकार है। एक बार कहते ही मिल जाता है। आखिर दोनों मिलकर कमा तो उसी के लिये रहे हैं। ऐसे में बच्चे को अधिकार का ज्ञान होता है, उसी की पहचान होती है। साथ ही उसे पैसों का महत्व समझ आता है। रिश्तों की मर्यादा और उनका जीवन में महत्व जानते ही नहीं। जिस चीज से उनका परिचय ही नहीं उसकी अपेक्षा उनसे कैसे की जा सकती है।

जरूरत है हम सारे माता-पिताओं के जाग जाने की। जब जागे तभी सवेरा। आज से हम अपने बच्चों के साथ समय बिताना शुरू करें तो परिस्थितियाँ धीरे-धीरे बदलेंगी। परन्तु ध्यान रखें, जब बच्चों के साथ हों तब अपने मोबाइल को कुछ देर के लिये बन्द कर दें। ये समय पूरी तरह से उसे दे दें। खुद भी बच्चा बन जाएँ, खुल कर हँसें, उछलें, कूदें, दौड़ें। और हाँ पढ़ाई की बात इस समय बिल्कुल ना करें। पढ़ाई की बात करें परन्तु पढ़ाई के टाइम पर ही। अगर हम सब इतना कर सके तो केवल हमारा बच्चा ही नहीं भविष्य का पूरा समाज बदल जायेगा। एक कोशिश तो ईमानदारी से करो साथियों।

सम्पर्क : *लखनऊ (उ.प्र.)*

हरि जोशी

बच्चों की तुकबंदी भी सृजनात्मकता है

नदी की कल-कल करती जल धार हो या संगीत लहरी का प्रवाह हो, कविता गेय तथा लयबद्ध हो तभी बच्चों के कोमल मन को आकर्षित करती है। सरल मन वाले बच्चों को यदि क्लिष्ट शब्द सनी, गूढ़ कविताएँ सुनाई जाएँ तो वे उठकर भाग जाएँगे। उनसे संवाद करने के लिए हमें उन्हीं के स्तर पर उतरना होगा। इसलिए यदि मातृभाषा में बालकोचित मनोवैज्ञानिक कविताएँ होंगी तो वे उनके लिए ग्राह्य होंगी। हरिकृष्ण देवसरे जी ने छोटी-छोटी नीति कथाएँ, बाल मन को आकर्षित करती कहानियाँ लिखीं तो नारायणलाल परमार, निरंकार देव सेवक, श्रीप्रसाद आदि सभी बाल साहित्यकारों ने इन बातों का ध्यान अपनी रचनाओं में रखा। 'छुक छुक जाती रेलगाड़ी, पुल के नीचे खेती बाड़ी।' जैसी तुकबन्दियाँ बच्चे करते रहते हैं। ये तुकबन्दियाँ भी उन्हें नए-नए शब्द खोजने को बाध्य करती हैं और वे अपनी सीमित शब्द संख्या में से भी उपयुक्त शब्द ढूँढ़ निकालते हैं। ऐसी ही सर्जनात्मक प्रतिभा बच्चों में विकसित की जानी चाहिए। यदि लिखने-पढ़ने का शौक बच्चों में विकसित हो जाए तो समाज के आधे अपराध समाप्त हो जाएँ। बच्चों के समुचित विकास के लिए भारतीय ग्रंथों में भी लिखा गया है 'लाड़ते पञ्च वर्षाणि दस वर्षाणि ताड़ियेत, प्राप्ति तु षोडशे वर्षाणि पुत्र मित्रवत समाचरेत। 'यानी पाँच वर्ष तक बच्चे को लाड़-प्यार दिया जाना चाहिए, दस वर्ष तक ताड़ते यानी समझाइश देते रहना चाहिए, और जब वह सोलह वर्ष का हो जाये तब उसके साथ मित्रवत व्यवहार किया जाना चाहिए। स्पष्ट है लाड़ के साथ-साथ बच्चे को बहुत कुछ सिखाया जा सकता है। अमेरिका और भारत में बचपन के पालन-पोषण के तरीकों में बहुत अंतर है लेकिन कविताओं के संदर्भ में एक बात समान है, वहाँ के बच्चे भी कविताएँ गाकर ही याद करते हैं। यह एक विश्वव्यापी शैली है। कहा जा सकता है, अपनी मातृभाषा में दुनिया भर के बच्चे लयबद्ध कविताएँ गाते-गाते ही बड़े होते हैं। अंग्रेजों का नियंत्रण तो वर्षों पूर्व समाप्त हो गया वर्तमान सरकार के सद्प्रयास से अब अंग्रेजी का नियंत्रण भी शायद छूट जाये? अच्छा संकेत है कि अब मातृभाषा पर जोर दिया जायेगा और भविष्य में शायद 'ट्विंकल ट्विंकल लिटिल स्टार' की रटंत हमारे यहाँ के बालमन को न करना पड़े? इसलिए कविताएँ लयबद्ध, गेय और छंद में हों तो प्रवाह के साथ गाने में बच्चों को अच्छा लगता है। मैं अक्सर अमेरिका जाता रहता हूँ तथा यहाँ और वहाँ के बच्चों के अंतर को देखता रहता हूँ। अमेरिका में जन्म होते ही, बच्चे को माँ से दूर अलग बिस्तर पर सुलाया जाता है जबकि भारत की माताएँ उसे अपने

सीने से चिपकाये रहती हैं। अमेरिका में बच्चों को अक्षर ज्ञान या गणित का ज्ञान भी देर से दिया जाता है किन्तु खेलकूद, आमोद-प्रमोद, चित्रकारी या लयबद्ध कविताओं से उनका बचपन संपृक्त कर दिया जाता है। भले ही अमेरिका के बच्चे गणित में कमजोर होते हैं किन्तु अन्वेषण और तार्किक शक्ति के विकास पर वहाँ जोर दिया जाता है। उनके खिलौने भी अलग तरह के होते हैं, बहुधा शस्त्र होते हैं जैसे पेटर्न टैंक, गन, मिग अथवा युद्धपोत आदि। रूस, जर्मनी, चीन या जापान आदि असंख्य देशों के बच्चे अपनी मातृभाषा में ही अध्ययन करते हैं और वहाँ के नागरिक कहते हैं हमें दूसरी भाषा सीखने की क्या आवश्यकता? मेरे रूस के मित्र प्रो. अलेक्जेन्डर वोलिक भारत में बच्चों को अंग्रेज़ी पढ़ते हुए बहुत आश्चर्य से देखते थे, पूछते भी थे 'आपकी कोई भाषा नहीं है?' यह सच है कि ग्राह्य शक्ति बचपन में सर्वाधिक होती है तो क्यों न उस शक्ति का उपयोग हम अपनी ही भाषा में विज्ञान, टेक्नोलॉजी, औषधि या अन्य क्षेत्रों में विशेषज्ञता प्राप्त करने में करें। वर्तमान भारतीय सरकार का शैक्षिणक परिवेश में मातृभाषा पर जोर स्वागत योग्य कदम है। भारत में बच्चों को ऐसी कविताएँ पढ़ायी जानी चाहिए जो उन्हें संवेदनशील बनाती हों तथा श्रम के प्रति उनके मन में आदर भाव जगाती हों। उनमें विज्ञान सम्मत दृष्टि का विकास होना अत्यंत आवश्यक है। जैसे-जैसे हम बड़े होते हैं, हम स्वार्थी होते जाते हैं, निश्छलता और औदार्य भाव में कमी आने लगती है। किन्तु बड़े होते-होते हम अच्छे और बुरे का भेद भी समझने लगते हैं। साहित्य में प्रवेश के बिलकुल प्रारम्भिक दिनों में मैंने बचपन के संदर्भ में लिखा था -

हमारा बचपन

'एक बचपन लिए थे हम सब सरीखा/ स्वार्थ का गहना पहिन कोई न दीखा/ धूल मिट्टी में सने हम संग खुशी के/ नाचते गाते लगा था स्वर्ग फीका/ उम्र तो बढ़ती गई, छोटे हुए हम/ फट गए निश्छल रचे परिधान थे जो।/ मत मुझे ऐसे सहेजो, अब जगत की प्रीति मैं पहिचानता हूँ,/ भेज सकते हो, हृदय मुस्कान भेजो।

लोरियाँ भी शिक्षा देती रही हैं?

सुबह-सुबह जल्दी उठने का, अनुशासन सहित जीने का आग्रह लोरियों में होता था। अब वे लुप्तप्राय हो रही हैं। बच्चों को लोरियों की सहायता से उनकी माताएँ इसीलिये सुलाती थीं ताकि संगीतमय और कर्णप्रिय स्वर लहरी बच्चों में सुख और शान्ति का संचार करती रहें। लोरियों या कविताओं में देश प्रेम का स्वर भी समाविष्ट होता था। अब तो टीवी मोबाइल और आइपेड के कृत्रिम और कर्कश शोर बच्चों के कोमल मन को अशांत करते हैं किन्तु उनकी मजबूरी उनके संरक्षण में रहने की हो गई है। परिवार के सदस्यों से तो दूरी बढ़ने लगी है किन्तु इन उपकरणों से निकटता हो गई है।

मैंने गिनती की ही बाल कवितायें लिखीं किन्तु वे सन 1980-81 में धर्मयुग में प्रकाशित हुई थीं। एक कविता तो यह रही जो श्रम करने वाले व्यक्ति के प्रति सम्मान व्यक्त करती है, इस कविता में डाकिये के संघर्ष की कहानी है-

डाकिया

चिट्ठी लेकर चला डाकिया/ सचमुच कितना भला डाकिया/ सर्दी धूप न पानी जाने/ बाँट रहा अक्षर के दाने/ संदेशे की भूख न किसको/ मिलें शीघ्र दो शब्द सुहाने।/ सुख-दु:ख की ख़बरें बटोरने/ लाने का सिलसिला डाकिया।/ सुबह पत्र की छँटनी करता/ समाचार पहुँचाने सबको/ उसका नाम न ज्ञात हमें/ वह

सही-सही पहिचाने सबको/ झोले भर वितरण करने की/ किससे सीखा कला डाकिया?

इसी प्रकार पालतू पशुओं के प्रति भी संवेदनशील और दयालु बने रहने की भावना बच्चों में विकसित हो, इसी विचार को ध्यान में रखकर एक अन्य कविता लिखी थी, वह भी धर्मयुग में प्रकाशित हुई थी। रचना दृष्टव्य है-

टॉमी सर्दी खा जायेगा

कम्बल उढ़ा रात ठंडी है, टॉमी सर्दी खा जायेगा।
हम तो ओढ़ रजाई सोते, वह बैठा रहता कोने में,
सर्द हवा में कितनी ठिठुरन, हम निश्चिन्त रहें सोने में।
टॉमी यदि बीमार हो गया, कौन डॉक्टर को लायेगा?
सुबह ठण्ड उसको लगती है,चाय पिला देना अदरक की,
वह कुटुंब का प्रिय सदस्य है, देना सुविधा उसके हक़ की,
चोर अगर परिसर में आये, भौंक-भौंक सब को जगायेगा।

पहले भारतीय शिक्षा का सूत्र होता था 'छड़ी पड़े छम-छम'

प्राथमिक शालाओं में पचास-साठ वर्ष पूर्व की पिटाई प्रथा पर अब अंकुश लगने लगा है, यह भी एक शुभ संकेत है। इस सोच का निरंतर विकास सभ्यता के विकास के साथ हुआ है। विश्वास है भविष्य में मातृभाषा में अध्ययन का लाभ भी उन्हें अवश्य मिलेगा। आज से पचास साल पहले का शिक्षा का सूत्र था 'छड़ी पड़े छम-छम, विद्या आये धम-धम।' उन दिनों प्रत्येक परिवार में बच्चों की संख्या अधिक होती थी, गुलामी की जंजीरों से छूटे ही थे, अत: जो कुछ शासकों के तौर तरीकों से सीखे थे वैसा ही व्यवहार घर में करने लगते थे। गुलामीतंत्र की असभ्य व्यवस्था में वह सब संभव था, अब तो प्रजातंत्र है, सभी को अपनी बात कहने की स्वतंत्रता है, अत: अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठायी जा सकती है।

अमेरिका में तो बच्चों को इस सीमा तक संरक्षण दिया जाता है कि यदि बच्चे की घर में पिटाई हो जाये तो वह 911 पर टेलीफोन करके पुलिस को बुला सकता है। शाला में प्रवेश लेने के दिन ही 911 नंबर का उपयोग उन्हें बता दिया जाता है। यद्यपि यह वहाँ के पारिवारिक गठन और परिवेश के प्रभाव का परिणाम है, जिसे भारत के परिवेश में अनुकूल नहीं माना जा सकता। भारतीय युवकों के लिए अमेरिका इसलिए भी उदार है क्योंकि यहाँ के बच्चे परिश्रमी, ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ होते हैं। आश्चर्य की एक बात और यह है कि अमेरिका अन्य देशों के मुसलमानों को आतंकवादी मानता है जबकि भारतीय मुसलमानों को नहीं। यह यहाँ दी जाती शिक्षा का सद्परिणाम है। विश्वास है वर्तमान परिवेश बच्चों में मानवीय संवेदना तथा देशप्रेम की भावना जगाने में सार्थक सिद्ध होगा।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*

विवेक रंजन श्रीवास्तव

वैज्ञानिक अभिरुचि के विकास हेतु बाल विज्ञान

गलत धारणा बन गई है कि नई तकनीक के जनक पश्चिमी देश ही होते हैं। यह बिलकुल भी सही नहीं है। पुरातन ग्रंथों में भारत विश्व गुरु के दर्जे पर था। हमारे वैज्ञानिकों एवं तकनीकज्ञों में नवीन अनुसंधान करने की क्षमतायें हैं। तब प्रश्न उठता है कि क्यों वर्तमान परिवेश में हमारे देश से पाश्चात्य देशों की तुलना में नये पेटेंट लगभग नगण्य हैं। इसका मूल कारण है कि हम अपने बच्चों में उनकी वैज्ञानिक अभिरुचि के विकास की व्यापक उपेक्षा कर रहे हैं। युवा होने के बाद ही विज्ञान शिक्षण प्रारंभ किया जाता है। विज्ञान की भाषा अंग्रेजी मान ली गई है। राष्ट्र की प्रगति में तकनीकज्ञों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। सच्ची प्रगति के लिये वैज्ञानिकों व अभियंताओं का राष्ट्र की मूल धारा से जुड़ा होना अत्यंत आवश्यक है। अपने तकनीकज्ञों पर अंग्रेजी थोप कर हम उन्हें न केवल जन सामान्य से एवं उनकी समस्याओं से दूर कर रहे हैं वरन अपने अभियंताओं एवं वैज्ञानिकों को पश्चिमी राष्ट्रों का रास्ता भी दिखा रहे हैं। क्यों न हम दूसरों की अन्वेषित तकनीक के अनुकरण की जगह अपनी क्षेत्रीय स्थितियों के अनुरूप स्वयं की जरूरतों के अनुसार अनुसंधान को प्रोत्साहित करें जिससे उसे सीखने के लिये दूसरों को हिंदी अपनाने की आवश्यकता महसूस हो। इसके लिये बच्चों में वैज्ञानिक अभिरुचि के विकास में बाल विज्ञान साहित्य का योगदान सुनिश्चित करने की जरूरत है।

नाम करेगा रोशन, जग में तेरा राजदुलारा...

पर इसके लिये अब अ अनार के साथ ही अ अमीबा का पढ़ाना आवश्यक हो चला है। हिन्दी में मौलिक शिशु व बाल वैज्ञानिक सामग्री लगभग नगण्य है। हमारे बच्चे आज भी चीन में बने खिलौनों से खेल रहे हैं, जो हथियार, गाड़ियाँ या पारंपरिक गुड्डे-गुड़ियाँ ही हैं। बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टि के विकास के लिये इस परिवेश को बदलना आवश्यक है। मैंने अमेरिका में देखा है कि वहाँ बच्चों के लिये उम्र के लेबल के साथ प्रयोग धर्मिता को बढ़ावा देने वाले खिलौने मिलते हैं। जिनसे बच्चे स्वयं प्रयोग कर अपना मनोरंजन भी करते हैं व अवचेतन में उनकी वैज्ञानिक समझ विकसित होती है। वहाँ माल्स में बच्चों की किताबों का अलग सेक्शन मुझे मिला, जहाँ ए फार अमीबा से पी फार प्लूटो का सचित्र परिचय देती शिशुओं की किताबों सहित वैज्ञानिक विषयों पर सरल बाल साहित्य प्रचुरता में सुलभ है। हिन्दी में ऐसे वैज्ञानिक बाल लेखन को बढ़ावा देने की बड़ी कमी दृष्टिगोचर होती है। जो इक्का-दुक्का वैज्ञानिक विषयों पर किशोर वय के बच्चों हेतु लेख पढ़ने मिलते हैं वे अनुवाद होते हैं। हमारे देश में इस क्षेत्र में बहुत काम होने बाकी हैं।

आज का अंतर्राष्ट्रीय समय रोबोट्स, कृत्रिम बुद्धि, कम्प्यूटर्स और ब्रह्माण्ड की खोज का है। चिकित्सा के क्षेत्र में, रोबोट्स बहुत कुछ कर रहे हैं, हाल की कोरोना महामारी से निपटने में भी जब

डॉक्टर को सीधे संपर्क से बीमारी का खतरा है, रोबोट्स का महत्व उल्लेखनीय रहा है। ये सब ऐसे विषय हैं जिनमें स्वत: ही क्या, क्यों, कैसे? के बाल कौतूहल अंतर्निहित हैं। आवश्यकता केवल इतनी है कि हम बच्चों को ऐसा शिशु, बाल तथा किशोर साहित्य प्रचुरता में उपलब्ध करायें। बाल वैज्ञानिक साहित्य पर फिल्में, कार्टून बनें। विज्ञान कथाओं को पत्र पत्रिकायें प्रकाशित करें। यदि ऐसा किया जायेगा तो यह सब न केवल बच्चे बल्कि बड़ों को भी पसंद आयेगा/यह तय है। क्योंकि विज्ञान की सोच मनुष्य को प्रकृतिदत्त गुण है, केवल उसे स्फुरित करने की कमी है।

वैज्ञानिक प्रयोगों को केवल चमत्कार समझ कर बच्चों को अपनी जिज्ञासा शांत न करने दें। इसकी जगह यदि उन्हें वैज्ञानिक बाल साहित्य सुलभ हो तो वे स्वयं प्रयोगों की विस्तृत शृंखला अपनाकर अपनी जिज्ञासा को और बढ़ा सकेंगे। निश्चित ही इस तरह नये नये अनुसंधान को बढ़ावा मिलेगा। इतिहास गवाह है कि अनेक ऐसे खोजें हो चुकी हैं जो विज्ञान के अध्येताओं ने नहीं किंतु आवश्यकता के अनुरूप अपनी जिज्ञासा के अनुसार जनसामान्य ने की हैं। इसका अर्थ यही है कि विज्ञान की वृत्ति मानव मात्र का नैसर्गिक गुण है।

आज हर हाथ में स्मार्ट मोबाइल है, दुनिया का सबसे सस्ता इंटरनेट हमारे देश में है। आवश्यकता है कि हम इसका बच्चों के विकास में सकारात्मक उपयोग कर एक अन्वेषी बुद्धि की पीढ़ी का निर्माण कर सकें जो विश्व का वैज्ञानिक नेतृत्व करे। आज मोबाइल पर अनेकानेक एप्स हैं जो आपकी एक आवाज (वॉइस) कमांड पर फोन लगाने से लेकर बहुत कुछ कर देते हैं, बोलकर टाइपिंग, निर्धारित समय पर अलार्म, मेल सेंडिग और जाने क्या-क्या यह सारा करिश्मा आर्टीफीशियल इंटेलीजेंस का है। 1984 में मेरा एक लेख छपा था। ऐसे तय करेगा शादियाँ कम्प्यूटर। 19वीं सदी के अंतिम दशक में हमने देखा कि मेट्रोमोनियल साइट्स ने किस तरह परिचितों, रिश्तेदारों, पंडितों, नाईयों द्वारा तय होती शादियों को सात समंदर पार के आयाम दे दिये हैं। यह सब आर्टीफीशियल इंटेलीजेंस के हमारे जीवन में बढ़ते हस्तक्षेप का परिणाम ही है। आविष्कार पत्रिका में उन्नीस सौ नब्बे के दशक में मैने एक विज्ञान कथा में रात में प्रकाश के लिये हर शहर के लिये एक कृत्रिम चंद्रमा की कल्पना की थी, अब यह विचार चीन में मूर्त रूप ले रहा है। यह बताने का आशय केवल यह है कि विचार को मूर्त रूप में बदलने के लिये अनुसंधान की जरूरत होती है, और यह बच्चों में वैज्ञानिक अभिरुचि के विकास में बाल विज्ञान साहित्य के योगदान से संभव है। इस दिशा में देश में भारतीय विज्ञान संस्थान भारत का गौरव है। भारत सरकार के विज्ञान और तकनीकी विभाग द्वारा प्रायोजित किशोर वैज्ञानिक प्रोत्साहन योजना का मुख्य उद्देश्य शोध कार्यों में रुचि रखने वाले छात्रों को प्रोत्साहित करना है। कभी डॉ ए. पी. जे. अब्दुल कलाम, साइकिल पर देश का पहला सेटेलाइट लांचिंग स्टेशन तक ले गए थे। वे भारतीय विज्ञान संस्थान बैंगलोर के फेलो थे। उन्होंने भी बच्चो में वैज्ञानिक प्रवृत्तियों के विकास की महती आवश्यकता प्रतिपादित की थी, पर आज जो कुछ हो रहा है वह आवश्यकता से बहुत बहुत कम है। योजना बद्ध तरीके से शिशुओं, नन्हें बच्चों, किशोरों व युवाओं के लिये सतत् वैज्ञानिक लेखन, प्रकाशन, उसके पठन-पाठन को बढ़ावा देने की व्यवस्थायें समय की माँग हैं। वैज्ञानिक विषयों पर लेखन, गीत, नाटक, फिल्म, धारावाहिक, टी वी शो, को हर स्तर से बढ़ावा दिया जाना चाहिये।

सम्पर्क : भोपाल (म.प्र.)